कठोपनिषद

अनुक्रम

1. जीवन का गुह्यतम केंद्रः मृत्यु..2
2. मृत्यु-पार की प्रामाणिक राजदां: मृत्यु.......................................30
3. संन्यास व वैराग्य में हेतुरूपाः मृत्यु......................................48
4. नास्तिक का सत्य, आस्तिक का असत्यः मृत्यु....................................66
5. सतत अतिक्रमण की प्रक्रिया ही परमात्मा..87
6. ज्ञान अनंत यात्रा है..103
7. धर्म का आधार-सूत्रः विवेक...121
8. धर्म का आधार-सूत्रः मौन...139
9. आत्मज्ञान ही प्रत्यक्ष ज्ञान...158 10...निर्धूम-ज्योति की खोज
.... 176
11..बोध ही ऊर्ध्वगमन
.... 191
12..परमात्मा एक माध्यमरहित अनुभव
.... 210
13...सत्य की अभिव्यंजना विपरीतताओं में
.... 225
14..परमात्माः परम तटस्थता
.... 243
15..अचाह छलांग है प्रभु में
.... 259
16...कामना का विसर्जन ही मृत्यु का विसर्जन
.... 275
17...अमृत की उपलब्धि मृत्यु के द्वार पर
.... 293

कठोपनिषद
पहला प्रवचन

जीवन का गुह्यतम केंद्रः मृत्यु

प्रथम वल्ली

ओम उशन ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस।।
1।।

तंह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत।।
2।।

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान स गच्छति ता ददत्।। 3।।

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।
द्वितीयं तृतीयं तंहोवाच मृत्यवे त्वा ददामीति।। 4।।

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किंस्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्ममाद्य करिष्यति।। 5।।

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।। 6।।

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शांन्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम्।। 7।।

आशाप्रतीक्षे संगतं सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।
एतद वृड्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन वसति ब्राह्मणो गृहे।।
8।।

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्तेऽतु ब्रह्मन स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात प्रति त्रीन वरान वृणीष्व।। 9।।

शान्तसंकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे।।
10।।

यथा पुरस्ताद भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्।। 11।।

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।। 12।।

स त्वमग्निम स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम्।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद द्वितीयेन वृणे वरेण।। 13।।

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्।।
14।।

2

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तृष्टः।। 15।।

तमब्रवीत प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नाम्ना भवितायमग्निः सृंकां चेमामनेकरूपां गृहाण।। 16।।

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य संधिं त्रिकर्मकृत तरति जन्ममृत्यू।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति।।
17।।

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्युपाशान पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके।। 18।।

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यंति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व।।
19।।

ओम इस सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा के नाम का स्मरण करके उपनिषद का आरंभ करते हैं।

प्रसिद्ध है कि यज्ञ का फल चाहने वाले वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने (विश्वजित यज्ञ में) अपना सारा धन (ब्राह्मणों को) दान कर दिया। उसका नचिकेता नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र था।। 1।।

(जिस समय ब्राह्मणों को) दक्षिणा के रूप में देने के लिए गौवें लाई जा रही थीं, उस समय छोटा बालक होने पर भी नचिकेता में श्रद्धा का आवेश हो गया और उन जराजीर्ण गायों को देखकर वह विचार करने लगा।। 2।।

जो अंतिम बार जल पी चुकी हैं, जिनका घास खाना समाप्त हो गया है, जिनका दूध अंतिम बार दुह लिया गया है, जिनकी इंद्रियां नष्ट हो चुकी हैं, ऐसी निरर्थक, मरणासन्न गौवों को देने वाला वह दाता तो नीच योनियों और नरकादि लोक जो सब प्रकार के सुखों से शून्य हैं, उनको प्राप्त होता है। (अतः पिताजी को सावधान करना चाहिए)।। 3।।

यह सोचकर वह अपने पिता से बोला कि हे प्यारे पिताजी! आप मुझे किसको देंगे? (उत्तर न मिलने पर उसने वही बात) दुबारा-तिबारा कही, तब पिता ने उससे क्रोधपूर्वक कहा कि तुझे मैं मृत्यु को देता हूं।। 4।।

(यह सुनकर नचिकेता मन ही मन विचारने लगा कि) बहुतों में मैं प्रथम श्रेणी के आचरण पर चलता आया हूं और बहुतों में मध्यम श्रेणी के आचार पर चलता हूं, (कभी भी नीची श्रेणी के आचरण को मैंने नहीं अपनाया, फिर पिताजी ने ऐसा क्यों कहा!) यम का ऐसा कौन-सा कार्य हो सकता है, जिसे आज मेरे द्वारा (मुझे देकर) (पिताजी) पूरा करेंगे? ।। 5।।

उसने अपने पिता से कहाः आपके पूर्वज पितामह आदि जिस प्रकार का आचरण करते आए हैं, उस पर विचार कीजिए और (वर्तमान में भी) दूसरे श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण कर रहे हैं, उस पर भी दृष्टिपात कर लीजिए, (फिर आप अपने कर्तव्य का निश्चय कर लीजिए।)यह मरणधर्मा मनुष्य अनाज की तरह पकता है अर्थात जराजीर्ण होकर मर जाता है तथा अनाज की भांति ही फिर उत्पन्न हो जाता है।।
6।।

अतएव इस अनित्य जीवन के लिए मनुष्य को कभी कर्तव्य का त्याग करके मिथ्या आचरण नहीं करना चाहिए। आप शोक का त्याग कीजिए और अपने सत्य का पालन कर मुझे मृत्यु (यमराज) के पास जाने की अनुमति दीजिए।
पुत्र के वचन सुनकर उद्दालक को दुख हुआ, परंतु नचिकेता की सत्यपरायणता देखकर उन्होंने उसे यमराज के पास भेज दिया। नचिकेता को यमसदन पहुंचने पर पता लगा कि यमराज कहीं बाहर गए हुए हैं; अतएव नचिकेता तीन दिनों तक अन्न-जल ग्रहण किए बिना ही यमराज की प्रतीक्षा करता रहा। यमराज के लौटने पर उनकी पत्नी ने कहा--हे सूर्यपुत्र! स्वयं अग्निदेवता ही ब्राह्मण अतिथि के रूप में गृहस्थ के घरों में प्रवेश करते हैं, साधुपुरुष उनका सत्कार किया करते हैं, अतः आप उनके लिए जल आदि अतिथि- सत्कार की सामग्री ले जाइए।। 7।।

जिसके घर में ब्राह्मण अतिथि बिना भोजन किए निवास करता है, उस मंदबुद्धि मनुष्य की नाना प्रकार की आशा और प्रतीक्षा, उनकी पूर्ति से होने वाले सब प्रकार के सुख, सुंदर भाषण के फल एवं यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मों के फल तथा समस्त पुत्र और पशु आदि वैभव, इन सबको वह नष्ट कर देता है।। 8।।

पत्नी के वचन सुनकर यमराज नचिकेता के पास गए और उसका यथोचित सत्कार
कर बोलेः हे ब्राह्मण! आप अतिथि हैं। आपको नमस्कार हो। हे ब्राह्मण! मेरा कल्याण हो। आपने जो तीन रात्रियों तक मेरे घर पर बिना भोजन किए निवास किया है, इसलिए (आप मुझसे) प्रत्येक रात्रि के बदले (एक-एक करके) तीन वरदान मांग लीजिए।। 9।।
यमराज ने जब इस प्रकार कहा, तब पिता को सुख पहुंचाने की इच्छा से नचिकेता बोलाः हे मृत्युदेव! मेरे पिता गौतमवंशीय उद्दालक मेरे प्रति शांत संकल्प वाले, प्रसन्नचित्त और क्रोध एवं खेद से रहित हो जाएं तथा आप के द्वारा वापस भेजे जाने पर जब मैं उनके पास जाऊं तो वे मुझ पर विश्वास करके पुत्र-भाव रखकर मेरे साथ प्रेमपूर्वक बातचीत करें। यह मैं अपने तीनों वरों में पहला वर मांगता हूं।। 10।।

यमराज ने कहाः तुमको मृत्यु के मुख से छूटा हुआ देखकर, मुझसे प्रेरित तुम्हारे पिता उद्दालक पहले की भांति ही, यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है, ऐसा समझ करके दुख और क्रोध से रहित हो जाएंगे और वे अपनी आयु की शेष रात्रियों में सुखपूर्वक शयन करेंगे।। 11।।

इस वरदान को पाकर नचिकेता बोला, हे यमराज! स्वर्गलोक में किंचितमात्र
भी भय नहीं है; वहां मृत्युरूप स्वयं आप भी नहीं हैं। वहां कोई बुढ़ापे से भी भय नहीं करता। स्वर्गलोक के निवासी भूख और प्यास, इन दोनों से पार होकर, दुखों से दूर रहकर सुख भोगते हैं।। 12।।

हे मृत्युदेव! आप उपर्युक्त स्वर्ग की प्राप्ति के साधनरूप अग्नि को जानते हैं। अतः आप मुझ श्रद्धालु को वह अग्निविद्या भलीभांति समझाकर कहिए, जिससे कि स्वर्गलोक के निवासी अमरत्व को प्राप्त होते हैं। यह मैं दूसरे वर के रूप में मांगता हूं।। 13।।

तब यमराज बोलेः हे नचिकेता! स्वर्गदायिनी अग्निविद्या को अच्छी तरह जानने वाला मैं तुम्हारे लिए उसे भलीभांति बतलाता हूं; तुम उसे मुझसे भलीभांति समझ लो। तुम इस विद्या को स्वर्गरूपी अनंत लोकों की प्राप्ति कराने वाली तथा उसकी आधारस्वरूपा और (बुद्धिरूप) गुफा में छिपी हुई समझो।। 14।।

उस स्वर्गलोक की कारणरूपा अग्निविद्या का उस नचिकेता को उपदेश दिया। उसमें कुंड-निर्माण आदि के लिए जो-जो और जितनी ईंटें आदि आवश्यक होती हैं तथा जिस प्रकार उनका चयन किया जाता है, वे सब बातें भी बताईं। तथा उस

नचिकेता ने भी वह जैसा सुना था, ठीक उसी प्रकार समझकर यमराज को पुनः सुना दिया। उसके बाद यमराज उस पर संतुष्ट होकर फिर बोले।। 15।।

(उसकी अलौकिक बुद्धि देखकर) प्रसन्न हो, महात्मा यमराज नचिकेता से बोलेः अब मैं तुम्हें यहां पुनः यह अतिरिक्त वर देता हूं कि यह अग्निविद्या तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी तथा इस अनेक रूपों वाली रत्नों की माला को भी तुम स्वीकार करो।। 16।।

(उस अग्निविद्या का फल बतलाते हुए यमराज कहते हैंः)
इस अग्नि का शास्त्रोक्त रीति से तीन बार अनुष्ठान करने वाला, तीनों ऋक्, साम, यजुर्वेद के साथ संबंध जोड़कर यज्ञ, दान और तपरूप तीनों कर्मों को निष्कामभाव से करने वाला मनुष्य जन्म-मृत्यु से तर जाता है। वह ब्रह्मा से उत्पन्न सृष्टि के जानने वाले स्तवनीय इस अग्निदेव को जानकर तथा इसका निष्कामभाव से विधिपूर्वक चयन करके इस अनंत शांति को पा जाता है, (जो मुझको प्राप्त है)।। 17।।

(ईंटों के स्वरूप, संख्या और अग्नि-चयन-विधि) इन तीनों बातों को जानकर, तीन बार नाचिकेत अग्निविद्या का अनुष्ठान करने वाला तथा जो कोई भी इस प्रकार जानने वाला पुरुष इस नाचिकेत अग्नि का चयन करता है, वह मृत्यु के पाश को अपने सामने ही (मनुष्य शरीर में ही) काटकर शोक से पार होकर स्वर्गलोक में आनंद का अनुभव करता है।। 18।।

हे नचिकेता, यह तुम्हें बतलाई हुई स्वर्ग प्रदान करने वाली अग्निविद्या है, जिसको तुमने दूसरे वर से मांगा है। इस अग्नि को अब से लोग तुम्हारे ही नाम से स्मरण करेंगे। हे नचिकेता, अब तुम तीसरा वर मांगो।।
19।।

उपनिषद जीवन के रहस्य के संबंध में इस पृथ्वी पर अनूठे शास्त्र हैं।
कठोपनिषद उन सब उपनिषदों में भी अनूठा है। इसके पहले कि हम उपनिषद में प्रवेश करें, इस उपनिषद की अंतर-भूमिका समझ लेनी चाहिए।
पहली बात, इस जगत में जो व्यक्ति भी जीवन को जानना चाहता है, उसे स्वयं
ही मृत्यु से गुजरे बिना और कोई उपाय नहीं है।
जीवन को जानना हो तो मरने की कला सीखनी पड़ती है। जो मृत्यु से भयभीत है, वह जीवन से भी अपरिचित रह जाता है। क्योंकि मृत्यु जीवन का गुह्यतम, गहन से गहन केंद्र है। केवल वे ही लोग जीवन को जान पाते हैं, जो सचेतन, होशपूर्वक, स्वागत से भरे हुए मृत्यु में प्रवेश कर सकते हैं।
मरते सभी हैं, लेकिन सभी लोग मरने के कारण जीवन को नहीं जान पाते।
हम भी बहुत बार मरे हैं। और डर है कि अभी और बहुत बार मरेंगे। लेकिन मृत्यु होती है एक जबर्दस्ती। हम मरना नहीं चाहते, मरना पड़ता है; इसलिए मृत्यु होती है एक दुख, एक पीड़ा, एक संताप। और मृत्यु की पीड़ा इतनी गहन है कि उस पीड़ा को झेलने का एक ही उपाय है कि आप मूर्च्छित हो जाएं। इसलिए मरने के पहले ही हम मूर्च्छित हो जाते हैं। सर्जन तो बहुत बाद में खोज पाए कि पीड़ा से बचने का उपाय बेहोशी है। लेकिन प्रकृति को सदा से पता है--मृत्यु के भय के कारण, पीड़ा के कारण चेतना मूर्च्छित हो जाती है।
हम सब मरते हैं मूर्च्छा में। बहुत बार मरे हैं बेहोश। इसलिए हमें कोई स्मरण नहीं है। बहुत बार जन्मे भी हैं, लेकिन बेहोश। हमें उसका भी कोई स्मरण नहीं। अतीत की तो बात छोड़ दें, इतना तो निश्चित ही है कि इस बार आप जन्मे हैं। लेकिन इस जन्म का भी कोई स्मरण नहीं है।
जिसकी मृत्यु मूर्च्छा में होती है, उसका जन्म भी मूर्च्छा में होता है। क्योंकि मृत्यु एक पहलू है उसी सिक्के का, जन्म जिसका दूसरा पहलू है। एक छोर पर जो बेहोश है, वह दूसरे छोर पर भी बेहोश ही होगा। जो मरता है बेहोश, वह जन्मता है बेहोश। इसलिए हमें जन्म का भी कोई स्मरण नहीं है।
सुना है आपने कि आप जन्मे। माता-पिता कहते हैं, परिवार-समाज कहता है।
आप खुद जन्मे हैं, लेकिन आपको अपने जन्म की कोई स्मृति नहीं है। मरते सभी

हैं, लेकिन बेहोश मरते हैं। इसलिए मृत्यु से जो सीखा जा सकता है, उससे वंचित रह जाते हैं।
धर्म होशपूर्वक मरने की कला है।
धर्म जानते हुए, समझपूर्वक मृत्यु में प्रवेश करने का विज्ञान है।
और जो व्यक्ति होशपूर्वक मृत्यु में प्रवेश कर जाता है, उसके लिए मृत्यु सदा के लिए समाप्त हो जाती है। क्योंकि होशपूर्वक मरते हुए वह जानता है कि मैं मर ही नहीं रहा हूं। होशपूर्वक मरते हुए वह जानता है कि जो मर रहा है, वह मेरी देह है, शरीर है; वस्त्रों से ज्यादा नहीं। और जो मेरी अंतर-चेतना है, वह मृत्यु में भी प्रज्वलित है। मृत्यु की आंधी भी उसे बुझा नहीं पाती।
मृत्यु में जो जानता है--जागता है, होश से भरा है, उसके लिए मृत्यु समाप्त हो गई। जो बेहोश मरता है, उसी के लिए मृत्यु है। जो होशपूर्वक मरता है, उसके लिए कोई मृत्यु नहीं है। फिर मृत्यु ही उसके लिए अमृत का द्वार हो जाती है।
जो होशपूर्वक मरता है वह होशपूर्वक जन्मता भी है। और जो होशपूर्वक जन्मता है, उसके जीवन का पूरा गुण बदल जाता है; वह होशपूर्वक जीता भी है। उसका रोआं-रोआं, उसकी चेतना का कण-कण प्रकाश से, ज्ञान से, बुद्धत्व से भर जाता है।
जो व्यक्ति होशपूर्वक जन्मता है, उसकी फिर कोई मृत्यु नहीं होती। फिर उसका कोई जन्म नहीं होता। फिर यह देह छूट जाती है, लेकिन परमब्रह्म में लीनता शेष रहती है। उसे ज्ञानियों ने निर्वाण कहा है, ब्रह्म-उपलब्धि कही है, मोक्ष कहा है, कैवल्य कहा है।
जिसने मृत्यु को पहचानकर अमृत को जान लिया, शरीर से उसके संबंधों का फिर कोई कारण नहीं रह जाता। शरीर से हम जुड़ते हैं, क्योंकि हम बेहोश हैं। बेहोशी हमारा शरीर से जोड़ है, वही सेतु है। होश--जोड़ टूट जाता है। शरीर अलग और हम अलग हो जाते हैं। और जैसे ही इस अलगपन की स्मृति गहन होती है, वैसे ही फिर कोई मृत्यु नहीं है। क्योंकि शरीर ही मरता है, शरीर ही जन्मता है। शरीर के भीतर जो छिपा है--अशरीरी--वह न जन्मता है, वह न मरता है। वह स्वयं जीवन है। जीवन की मृत्यु कैसी?
और जो मरता है, उसका जीवन धोखे का था, उधार था। जो मरता है, उसके जीवन
का कोई अर्थ नहीं है।
यह बड़े मजे की बात है। मनुष्य दो का जोड़ है। एक हैः मरणधर्मा शरीर। वह मरा हुआ ही है। और एक हैः अमृत आत्मा। वह स्वयं जीवन है। आत्मा के जीवन की निकटता के कारण ही शरीर जीवित मालूम होता है।
शरीर की जीवंतता उधार है, प्रतिफलन है। जैसे दर्पण के सामने आप खड़े हों, और दर्पण में आप दिखाई पड़ें। वह जो दर्पण में दिखाई पड़ रहा है, वह उधार है। वह वास्तविक नहीं है। आप हटे कि वह दर्पण से हट जाएगा। वह प्रतिबिंब है, सचाई नहीं। सचाई की खबर तो उससे मिलती है, सचाई का इशारा भी उससे मिल सकता है। लेकिन जो उसे ही सचाई समझ ले, वह भटक जाएगा। उससे सत्य का संबंध सदा के लिए टूट जाएगा।
शरीर सिर्फ खबर देता है, भीतर छिपे जीवन की। शरीर जीवित मालूम होता है सिर्फ निकटता के कारण, सान्निध्य के कारण। आत्मा की जीवंतता इतनी प्रगाढ़ है कि मुर्दा शरीर भी जीवित हुआ मालूम पड़ता है। लेकिन जो इस शरीर के जीवन को ही जीवन समझ लेता है, वह जीवन को जानने से वंचित हो जाता है।
मृत्यु में प्रवेश का अर्थ है, दर्पण से हटकर मूल में प्रवेश, इस उपनिषद का सारभूत यही है। शेष कथा है।
लेकिन शेष कथा भी बड़ी मधुर है। और बहुत सी अनूठी बातों की सूचक है। कठोपनिषद बहुत बार आपने पढ़ा होगा। बहुत बार कठोपनिषद के संबंध में बातें सुनी होंगी। लेकिन कठोपनिषद जितना सरल मालूम पड़ता है, उतना सरल नहीं है।
ध्यान रहे, जो बातें बहुत कठिन हैं, उन्हें ऋषियों ने बहुत सरल ढंग से कहने की कोशिश की है। क्योंकि वे बातें ही इतनी कठिन हैं कि सरल ढंग से कहने पर भी समझ में न आएंगी। अगर सीधी-सीधी कह दी जाएं तो आपसे उनका कोई संबंध, कोई संपर्क ही नहीं होगा।

कठोपनिषद एक कथा है, एक कहानी है। लेकिन उस कहानी में वह सब है, जो जीवन में छिपा है। हम इस कहानी की एक-एक पर्त को उघाड़ना शुरू करेंगे।
ओम इस सच्चिदानंदघनरूप परमात्मा के नाम का स्मरण करके उपनिषद का आरंभ करते हैं।
परमात्मा के स्मरण से आरंभ!
जीवन में हम भी बहुत आरंभ करते हैं, लेकिन सभी आरंभ अहंकार के स्मरण
से होते हैं। हम जो भी करते हैं, उसमें मैं मौजूद होता हूं। असल में हम करते ही इसलिए हैं कि मैं घना हो, सघन हो, मजबूत हो। हमारी सारी क्रियाएं मैं को ही मजबूत करने की चेष्टाएं हैं। हमारा सारा कर्तापन अहंकार को भरने की कोशिश है। इसलिए संसार में सभी कुछ प्रारंभ हो सकता है अहंकार से, लेकिन धर्म का प्रारंभ अहंकार से नहीं हो सकता। धर्म का प्रारंभ निरअहंकार से होगा।
परमात्मा का स्मरण इस बात का स्मरण है कि मैं नहीं हूं, तू है। मेरा होना न होने के बराबर है। मैं तेरे स्मरण से शुरू करता हूं, उसका अर्थ है कि मैं अपने को केंद्र से हटा लेता हूं। तू केंद्र पर है। मैं परिधि बनता हूं। मैं गौण हो जाता हूं, तू प्रमुख है।
परमात्मा का स्मरण अगर वास्तविक हो, तो मात्र स्मरण से ही सब कुछ घट सकता है। शायद आगे उपनिषद में जाने की जरूरत भी न रह जाए। मात्र स्मरण--कि तू ही सब कुछ है, और मैं कुछ भी नहीं हूं--अगर यह सचमुच वास्तविक हो जाए, जीवंत हो जाए, अनुभव बन जाए, पूरे प्राण हमारे इसी एक भाव से भर जाएं; पूरी श्वास की, हृदय की धड़कन-धड़कन एक ही गूंज से उठ जाए, प्रभु के स्मरण से, तो शायद आगे जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। या आगे जो कहा गया है वह ऐसे लोगों ने कहा है, जो ऐसे स्मरण से भर गए। जिन्होंने इस स्मरण को जाना, उनके लिए जीवन के सारे रहस्य खुल गए। उनके लिए कहीं कोई पर्दा न रहा। उनके लिए जीवन एक खुली किताब हो गई।
ऋषि कहता हैः प्रभु के स्मरण से हम इस उपनिषद का प्रारंभ करते हैं। आपसे भी मैं कहूंगा, इस साधना शिविर का प्रारंभ आप अपने से न करें, प्रभु- स्मरण से करें। जो अपने से करेगा, वह खाली हाथ लौट जाएगा। जो अपने से करेगा, वह व्यर्थ ही आया। वह आया ही नहीं। क्योंकि ध्यान वहीं शुरू होता है, जहां आप समाप्त होते हैं। जहां तक आप हैं, वहां तक कोई ध्यान नहीं है। आपकी मृत्यु, आपका मरना ही ध्यान है।
प्रभु के स्मरण का अर्थ है कि मैं मूल्यवान नहीं हूं कि मेरा स्मरण करूं। मैं हट जाता हूं; मैं जगह दे देता हूं। और जब आप जगह दे देते हैं, जैसे कोई द्वार खोल दे और बाहर का सूरज भीतर प्रवेश कर जाए, जैसे ही आप हट जाते हैं कि शाश्वत प्रकाश आपके भीतर भरना शुरू हो जाता है। आपके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है।
लोग मेरे पास आते हैं और पूछते हैं, क्या है बाधा? क्या है अड़चन? बड़ी कोशिश करते हैं ध्यान की, नहीं होता। प्रार्थना करते हैं, अधूरी रह जाती है। स्मरण करते हैं, छूट-छूट जाता है। माला फेरते हैं, हाथ में ही रह जाती है, भीतर कुछ और फिरने लगता है। मंदिर में जाते हैं, पहुंच नहीं पाते। शास्त्र पढ़ते हैं, कहीं भी प्राण उससे स्पंदित नहीं होते हैं। क्या बाधा है? क्या अड़चन है?
कोई और बाधा होती तो मैं भी छीन सकता था। आप ही बाधा हैं। आपके अतिरिक्त इस बाधा को और कोई भी मिटा नहीं सकता।
प्रभु के स्मरण का अर्थ हैः मैं अपने को हटाता हूं, मैं अपने को भूलता हूं और तुझे स्मरण करता हूं।
पर हम बड़े मजेदार लोग हैं। हम प्रभु का स्मरण भी करते हैं, तो भी हम ही स्मरण करते हैं। और जहां आप मौजूद हैं, वहां प्रभु मौजूद नहीं हो सकता। आपके और उसके मिलने का कोई भी उपाय नहीं है। आपकी उससे कभी कोई मुलाकात न होगी। कभी हुई नहीं किसी की। जब व्यक्ति मिट जाता है, तब उसका प्रगट होना शुरू होता है।
कबीर ने कहा है कि बड़ी उलझन है। पहले मैं खोजता था। खोजते-खोजते खुद
खो गया। अब तुम मिले हो, लेकिन तुम मिले हो तब मैं नहीं हूं। जो खोजने निकला था, वह अब नहीं है। कबीर ने कहा है, जब मैं तुम्हें पुकारता फिरता था,

खोजता था, तुम्हारा कोई पता न चलता था। और अब तुम मेरे पीछे-पीछे घूमते हो, कबीर-कबीर बुलाते, और अब मैं नहीं हूं!
आज तक किसी मनुष्य का परमात्मा से मिलन नहीं हुआ। कभी हो भी नहीं सकता। वह मिलन असंभव है। वह वैसे ही असंभव है जैसे प्रकाश और अंधेरे का कोई मिलन नहीं होता। अंधेरा होता है तो प्रकाश नहीं होता। प्रकाश होता है तो अंधेरा नहीं होता।
आप अंधेरा हैं। हम स्मरण भी करते हैं प्रभु का, तो इस अंधेरे के भीतर
ही वह स्मरण भी है। हम उस स्मरण को भी इस अंधेरे का एक अंग बना लेते हैं। हमारा धर्म भी हमसे छोटा होता है; हमारी प्रार्थना भी हमसे छोटी होती है। और जैसे हम और चीजें सम्हालकर रखते हैं, वैसे ही अपनी प्रार्थना को भी सम्हालकर रख लेते हैं। लेकिन मालिक, मालिक अहंकार ही होता है।
प्रभु के स्मरण का अर्थ है कि अब मैं नहीं हूं। और अगर एक बार पूरे हृदय से यह ख्याल आ जाए कि मैं नहीं हूं, तो आप सब कुछ हो जाते हैं। कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता।
प्रभु-स्मरण, स्वयं का विस्मरण है।
स्वयं का स्मरण, प्रभु का विस्मरण है।
वह जो हमारे भीतर छिपा है, तब तक छिपा रहेगा, जब तक हमारा अहंकार, जब तक मैं का भाव मजबूत है। जैसे ही मैं-भाव हटता है, वह जो भीतर छिपा है, प्रकट हो जाता है। वह जो भीतर छिपा है, वह परमात्मा है।
परमात्मा कहीं कोई आकाश में नहीं बैठा है। इसलिए अगर आप आकाश की तरफ अपनी प्रार्थनाएं भेज रहे हैं तो व्यर्थ ही भेज रहे हैं। और परमात्मा किसी मंदिर में भी नहीं छिपा है। अगर आप किसी मंदिर की तलाश कर रहे हैं, आप समय और जीवन नष्ट कर रहे हैं। परमात्मा आपके भीतर छिपा है। लेकिन जब तक आप हैं, तब तक जो भीतर छिपा है वह प्रगट न हो सकेगा। ऐसे ही जैसे एक बीज जब टूट जाता है तो अंकुरित होता है और वृक्ष बन जाता है। बीज की खोल ही वृक्ष को छिपाए हुए है।
जब तक आप टूट न जाएंगे और मिट्टी में न मिल जाएंगे, जब तक आप खो न जाएंगे, मर न जाएंगे, तब तक आपके भीतर जो छिपा है वह प्रगट नहीं होगा। आप बाधा हैं। इसलिए उपनिषद शुरू होता है प्रभु के स्मरण से।
प्रसिद्ध है कि यज्ञ का फल चाहने वाले वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने अपना सारा धन विश्वजित यज्ञ में ब्राह्मणों को दे दिया। उसका नचिकेता नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र था।
इस कहानी की एक-एक पर्त उघाड़नी है।
प्रसिद्ध है कि यज्ञ का फल चाहने वाले वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने विश्वजित यज्ञ में अपना सारा धन ब्राह्मणों को दे दिया।
इस वचन में इतना कुछ छिपा है! पहली तो बात कि लोग धर्म के नाम पर भी विश्व को ही जीतने की आकांक्षा रखते हैं। विश्वजित यज्ञ--सारी दुनिया को जीत लूं! सारे संसार का मालिक हो जाऊं! लोग छोड़ते भी हैं तो पाने के लिए! तो छोड़ना व्यर्थ हो जाता है। उस त्याग का दो कौड़ी भी मूल्य नहीं, जो किसी भोग के लिए किया गया हो। उस त्याग का क्या अर्थ है, जिसके पीछे पाने की कामना और वासना हो! सौदा हुआ, त्याग न हुआ।
आप भी छोड़ते हैं। ऐसे तो हर आदमी छोड़ता है। बाजार से कुछ खरीदना है तो आपको जेब खाली करनी पड़ती है, लेकिन उस खाली करने को आप त्याग नहीं कहते। आप उसे सौदा कहते हैं। जब आप कुछ पाना चाहते हैं तो आपको कुछ देना पड़ता है। लेकिन उस देने को त्याग कोई भी न कहेगा।
त्याग का अर्थ ही यह है कि जब कोई दे, और पाना न चाहे। जब दान तो हो, लेकिन मांग न हो। जब कोई सिर्फ दे। और जिसकी लौटने के लिए कोई शर्तबंदी न हो। जो यह न कहे कि इसलिए देता हूं। जो यह न कहे कि मैं यह पाने के लिए देता हूं। उसका देना ही दान है। अन्यथा दान धोखा है।
आप अगर दान करते हैं कि स्वर्ग मिल जाए, तो आप सिर्फ दुकान का विस्तार करते हैं। आप सिर्फ इन्वेस्टमेंट करते हैं। आप स्वर्ग को खरीदने की चेष्टा में लगे हैं। और जो भी खरीदा जा सकता है, वह नर्क ही होगा। जो भी खरीदा जा सकता है, वह संसार होगा।

परमात्मा खरीदा नहीं जा सकता। इसलिए परमात्मा को पाने के लिए अगर आप कुछ देते हैं तो आप परमात्मा को न पा सकेंगे। आप सारा संसार भी दे दें, लेकिन अगर पाने की कामना भीतर है तो सारा संसार भीतर मौजूद है। वासना संसार है।
बुद्ध ने कहा हैः वासना, तृष्णा, कामना संसार है। यह जो संसार दिखाई पड़ता है बाहर फैला हुआ, यह नहीं। यह तो ऐसे ही फैला रहेगा। आप नहीं थे तब भी था, आप नहीं होंगे तब भी होगा। यह तो तब भी फैला रहता है जब बुद्ध जैसा व्यक्ति अपनी सारी वासना से मुक्त हो जाता है। तब भी यह संसार तो बना ही रहता है। इस संसार से कोई सवाल नहीं है। संसार से उस कामना का सवाल है, जो इस संसार की तरफ आप अपने भीतर से फैलाते हैं। वह जो वासना के हाथ फैलते हैं, पंख फैलते हैं और सारे संसार को अपने कब्जे में ले लेना चाहते हैं। उपनिषद का ऋषि यह कह रहा है कि उद्दालक ने विश्वजित यज्ञ किया। सारे संसार का मैं विजेता हो जाऊं।
संसार का जो विजेता होना चाहता है उसका धर्म से क्या संबंध! वह सिकंदर
की चाह है, नेपोलियन की चाह है, हिटलर की चाह है। सभी पागलों की इच्छा यही है।
जीसस ने कहा है कि तुम सारा संसार भी पा लो और अगर स्वयं को खो दो, तो
इस पाने से क्या होगा? उद्दालक सारे संसार को जीतने की आकांक्षा से भरा है। स्वयं को पाने की कोई आकांक्षा नहीं दिखाई पड़ती। स्वयं का कोई ख्याल भी नहीं है।
उद्दालक का धर्म से कोई भी संबंध नहीं है। उद्दालक कुलीन है। बड़ी प्रसिद्ध उसकी वंश-परंपरा है। समझदार है, बुद्धिमान है, पंडित है। यज्ञ कर रहा है, लेकिन संसार को जीतने के लिए! ज्ञानी नहीं है, अनुभवी है। उम्र है उसकी। लेकिन फिर भी अनुभव निचुड़कर ज्ञान नहीं बन पाया है। तो वह धर्म के नाम पर जो कुछ भी करेगा, वह सिर्फ औपचारिक होगा, फारमल होगा, उसके भीतर अंतरात्मा नहीं होगी। उसने अपना सारा धन ब्राह्मणों को दे दिया। लेकिन वासना है विश्व-विजय की! वासना है ख्याति की, यश की! वासना है अहंकार की! अहंकार सब कुछ छोड़ सकता है, सिर्फ आप अहंकार को भर मत छोड़ें। अहंकार
सब छोड़ सकता है, महलों को लात मार सकता है, सिंहासनों को लात मार सकता है, धन को फेंक सकता है, पत्नी-बच्चों को त्याग सकता है, अहंकार सब छोड़ सकता है, अगर आप अहंकार भर को सम्हालने को राजी हों। अहंकार डरता है सिर्फ एक बात से कि आप उसको न छोड़ दें। आप सब छोड़ें। क्योंकि अहंकार बड़ा कुशल है। आप जो भी छोड़ते हैं, उसी से अपने को भर लेता है।
अहंकार धन से ही नहीं भरता, त्याग से भी अपने को भर लेता है। अहंकार का गणित बहुत साफ है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप महल में रहते हैं कि झोपड़े में। आप महल छोड़कर झोपड़े में रह सकते हैं, और अहंकार अकड़ा हुआ रहेगा कि मैंने महलों को लात मार दी। क्या रखा है महलों में! मेरे लिए कुछ भी नहीं। अहंकार नग्न खड़ा हो सकता है कि मैंने वस्त्रों को लात मार दी! अहंकार किसी भी चीज से रस ले सकता है।
तो दान तो किया है उद्दालक ने; दान में कोई कमी नहीं है। इसलिए आप अपने छोटे-मोटे दान से बहुत ज्यादा परेशान मत हो जाना। उद्दालक ने सब छोड़ दिया, सब दे दिया। सब दे दिया, फिर भी उसकी बुद्धि एक छोटे बच्चे के मुकाबले भी शुद्ध नहीं है। उसका ही बेटा नचिकेता, जो अभी कुछ भी नहीं जानता, ज्यादा शुद्ध है, ज्यादा निर्दोष है, इनोसेंट है। उसे भी दिखाई पड़ जाता है कि यह बाप बड़ी गलती कर रहा है।
इसे भी थोड़ा समझ लें।
बहुत बार जो बाप को नहीं दिखाई पड़ता, वह बेटे को दिखाई पड़ जाता है।
क्योंकि बाप की बुद्धि अक्सर धूल से भर जाती है। समय, जीवन के कडुवे-मीठे अनुभव बुद्धि को निखारते नहीं, कुंद कर जाते हैं; जंग खा जाती है बुद्धि।
तो आप यह मत सोचना कि उम्र बढ़ जाने से आप बुद्धिमान हो जाते हैं। बूढ़े हो जाते हैं, बुद्धिमान नहीं होते।
सच तो यह है कि बच्चे के पास ज्यादा साफ-सुथरी बुद्धि होती है। बच्चे
के पास ज्यादा निर्दोष आंख होती है। वह चीजों को सीधा-सीधा देख पाता है।
उसके पास ईमानदार हृदय होता है। इसलिए नहीं कि उसने ईमानदारी साध ली है,

इसलिए कि अभी उसे बेईमानी का कोई पता नहीं। जल्दी ही वह भी बेईमान हो जाएगा, क्योंकि आप सब उसे सिखाने में लगे हैं। मां-बाप हैं, परिवार है, समाज है, विश्वविद्यालय हैं, गुरु हैं, ये सब सिखाने में लगे हैं। इसके पहले कि वह अपनी निर्दोषता को सम्हाल पाए, हम सारे विकार उसमें डाल देंगे। वह हमारे काम का तभी है, जब विकारग्रस्त हो जाए, जब बीमार हो जाए।
हमारी सारी शिक्षा की व्यवस्थाएं उस निर्दोष बुद्धि को नष्ट करने का उपाय करती हैं, जिसको प्रत्येक व्यक्ति जन्म से लेकर पैदा होता है--एक कोरा हृदय, जिस पर अभी कोई दाग नहीं पड़े। लेकिन दाग पड़ेंगे। यह कोरा हृदय कोई उपलब्धि नहीं है। यह कोरा हृदय बहुत जल्दी गंदा हो जाएगा। इसे भी संसार में जाना पड़ेगा। इसके बाप के पास भी किसी दिन ऐसा ही कोरा हृदय था। इसलिए बचपन प्राकृतिक घटना है। उसमें कोई गौरव नहीं है। लेकिन कोई बूढ़ा होकर फिर जब बच्चे की आंख पा लेता है, तब गौरव की बात है। जब कोई बूढ़ा होकर भी हृदय को बूढ़ा नहीं होने देता, ताजा और निर्दोष रख लेता है, तब गौरव की बात है।
इसलिए जीसस ने कहा है कि मेरे प्रभु के राज्य में वे ही प्रवेश कर सकेंगे, जो छोटे बच्चों की तरह हैं। छोटे बच्चों की भांति! काश, जीसस को नचिकेता का पता होता, तो जीसस ने नचिकेता का नाम जरूर लिया होता। क्योंकि पूरे इतिहास में नचिकेता जैसा शुद्ध हृदय खोजना मुश्किल है। सभी बच्चों के पास होता है।
और आप यह मत सोचना कि आपके बच्चे के पास नहीं है। उद्दालक को भी समझ में नहीं आया था, आपको भी समझ में नहीं आएगा। आप जरा अपने बेटे की, अपनी बेटी की बात गौर से सुनना। उद्दालक ने भी नहीं सुनी थी, आप भी नहीं सुनेंगे। क्योंकि आप समझते हैं कि बेटे नासमझ हैं, आप समझदार हैं। उम्र को लोग समझदारी का पर्यायवाची समझ लेते हैं!
काश, हम बच्चों की बातें गौर से सुन सकें। काश, हम अपनी बुद्धिमत्ता
को एक तरफ हटाकर उनकी बातें सुन सकें, तो कठोपनिषद जैसे लाखों उपनिषद पैदा हो जाएं। यह तो कोई ऋषि पकड़ पाया इस कथा को; उद्दालक नहीं समझ पाया।
हुआ क्या? होता क्या है रोज? रोज यही होता है। आप अपने बचपन को खो दिए, आपने बेच दिया। आपने संसार की कुछ चीजें खरीद लीं। उन्हें खरीदने में आपको अनिवार्यरूप से अपनी निर्दोषता बेचनी पड़ी। आपने कुछ तिजोड़ी बड़ी कर ली, कोई मकान बना लिया, कोई जमीन खरीद ली। आपने बचपन खो दिया।
और जब कोई बच्चा आपसे कुछ कहता है, तो एक तो आपको एक-दूसरे की भाषा समझ में नहीं आती। क्योंकि बच्चा किसी और ही दुनिया से बोलता है। बच्चे के लिए कुछ और चीजें मूल्यवान हैं। आप किसी और दुनिया से बोलते हैं। आप दोनों के बीच बड़ा फासला है। आपने बचपन खो दिया है। आप दोनों के बीच एक खाई है।
और जब बच्चा बोलता है तो आपकी समझ में नहीं आता है। और जब आप बोलते हैं
तो बच्चे की समझ में आने का कोई उपाय नहीं। अगर बच्चा तितलियों के पीछे भागता है तो आप समझते हैं, पागल है। और आप जब रुपए गिनते हैं रोज रात को बैठकर, दरवाजे बंद करके, तो बच्चे की समझ में नहीं आता है कि इतनी खूबसूरत तितलियां दुनिया में हैं और इस बूढ़े बाप को क्या हुआ कि रद्दी गंदे कागजों को गिनता है! ये कागज बच्चा फेंक देगा, फाड़ देगा। और बच्चा अगर आपका नोट फाड़ दे, तो आपकी आत्मा फटती है। और आप सोच भी नहीं सकते कि बच्चे के लिए नोट में कोई भी मूल्य नहीं है। नोट में मूल्य होने के लिए आप जैसी विकृत बुद्धि चाहिए। तब उसमें मूल्य होता है। क्योंकि वह मूल्य डाला हुआ है। मैं देखता हूं--कभी किसी घर में ठहरा हुआ था--बाप बेटे पर नाराज हो रहा
है और उसको कह रहा है कि मैंने पच्चीस बार तुम्हें कह दिया कि अपने छोटे भाई को मत मारो। फिर तुमने मारा! और इतनी बार समझा दिया कि अपने से छोटे को मारना बुरा है! और बाप उसको एक चांटा मारता है। और वह लड़का चौंककर देखता है और कहता है, मैं भी छोटा हूं और आप बड़े हैं! लेकिन बाप की बिल्कुल समझ में नहीं आता कि इसमें कुछ भूल हो रही है।
बेटे को दिखाई पड़ रहा है कि मैं अपने से छोटे को मारता हूं, तो गलती है। मुझसे बड़ा मुझे मार रहा है--और इसीलिए मार रहा है कि छोटे को मारना बुरा है--तो कोई गलती नहीं है! और बच्चा इससे क्या सीख रहा है? बच्चा इससे सिर्फ इतना ही सीख रहा है कि छोटे को मारना बुरा नहीं है, ठीक से बड़ा होना

जरूरी है। यह बच्चा कल बड़ा हो जाएगा। और बाप कल धीरे-धीरे छोटा हो जाएगा, बूढ़ा हो जाएगा। तब बहुत-बहुत तरकीबों से यह बच्चा भी बाप को मारेगा।
सब बच्चे बाप को मारते हैं। तरकीबें बदल जाती हैं। और बाप तब पीड़ित होते हैं और दुखी होते हैं। और उन्हें पता नहीं है कि यह केवल उन्होंने ही जो आवाज दी थी, वही वापस लौट रही है। उन्होंने जो बीज बोए थे, वे ही काटे जा रहे हैं। अब फसल काटने का वक्त आ गया है।
हर बाप अपने बेटे के साथ जो करता है बचपन में, बेटा बाप के बूढ़े होने
पर वही करेगा। क्योंकि बाप बूढ़ा होकर फिर कमजोर हो गया, दीन हो गया।
बच्चों की भाषा कोई समझ ले, तो संतों की भाषा समझनी बहुत आसान हो जाए।
संत अक्सर बच्चों जैसे हो जाते हैं। ठीक बच्चे नहीं हो जाते, बच्चों जैसे।
जीवन का सारा अनुभव उनके साथ होता है। वे उस जगह से गुजर गए, जहां कालिख लग सकती थी। और कालिख से अपने को बचाकर गुजर गए।
कबीर ने कहा है, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। वह जो चादर तुमने मुझे दी थी, वह मैंने वैसी की वैसी रख दी है बचाकर; उसमें जरा भी दाग नहीं लगने दिया। इसका अर्थ है कि मैंने बचपन को वापस लौटा दिया है तुम्हारे हाथों। वे परमात्मा से यह कह रहे हैं कि जैसा बच्चा तुमने मुझे भेजा था, वैसा ही बच्चा मैं मरकर वापस लौटा हूं।
अगर कोई मरते वक्त भी बच्चे की तरह भोला और सरल हो, तो उसके मोक्ष में कोई भी बाधा नहीं है।
उसका नचिकेता नाम का एक पुत्र था... । जिस समय ब्राह्मणों को दक्षिणा
के रूप में देने के लिए गौवें लाई गईं --यह बच्चे को दिखाई पड़ा, बाप को दिखाई नहीं पड़ रहा है--ये गौवें अपना आखिरी पानी पी चुकीं, अपना आखिरी चारा चर चुकीं, इनका आखिरी दूध दुह लिया गया। नचिकेता को विचार उठने लगा मन में कि इन गौवों को दान देने का क्या अर्थ है?
लेकिन गौवें लोग दान ही तब देते हैं जब उनका आखिरी दूध निकाल लिया जा चुका हो। गौवों का ही नहीं, सभी चीजों का आप तभी दान करते हैं जब आखिरी दूध निकाल लिया गया हो।
क्वेकर, ईसाइयों का एक छोटा-सा अनूठा संप्रदाय है। क्वेकर संप्रदाय
का एक नियम है कि हर सप्ताह एक चीज दान करें। लेकिन वह चीज वही हो, जो आपको सबसे ज्यादा प्रिय है। जिसको आप बिल्कुल दान न करना चाहेंगे, वही दान करें, नहीं तो दान का कोई अर्थ नहीं है।
आप भी दान करते हैं। घर में जो कूड़ा-करकट इकट्ठा हो जाता है, जिसकी आपको कोई जरूरत नहीं रह जाती, उसका आप दान करते हैं।
आप सोचते होंगे कि बहुत धनपति इतना दान करते हैं। उनके लिए धन की कोई जरूरत नहीं रह गई, दूध दुह लिया गया। धन की एक सीमा है, उसके बाद उसमें से दूध नहीं निकाला जा सकता। अब समझें कि एंड्रू कारनेगी या फोर्ड या रॉकफेलर या बिरला--अब ये धन से क्या खरीद सकते हैं जो इनके पास नहीं है! अब धन से जो भी खरीदा जा सकता है, वह ये खरीद चुके हैं। अब धन फिजूल है। अब इस धन का क्या करें? अब इससे स्वर्ग खरीदने की कोशिश शुरू होती है। तो बिरला- मंदिर खड़े होने लगते हैं! यह गाय का दूध दुह लिया गया है। इस धन से अब कुछ मिलने वाला नहीं था--जो मिल सकता था वह मिल चुका--और यह धन फिजूल था। फिजूल धन को लोग परमात्मा की तरफ लगाते हैं। हृदय को नहीं, कूड़े-कचरे को लगाते हैं।
नचिकेता को दिखाई पड़ने लगा। उपनिषद का ऋषि कहता है, नचिकेता में श्रद्धा का आवेश हो गया।
असल में भोलापन श्रद्धा है। सरलता श्रद्धा है।
नचिकेता कोई तर्क नहीं कर सकता, लेकिन तर्क की कोई जरूरत नहीं है। एक छोटे बच्चे को भी यह दिखाई पड़ रहा है कि इस गाय में से दूध तो निकलता नहीं है, इसे दान क्यों किया जा रहा है?
बाप नाराज होगा ही। क्योंकि यह बात चुभने वाली है। यह घाव को छूना है। बेटे अक्सर घाव को छू देते हैं। यह बाप को चुभने वाली बात है। यह तो बाप भी जानता है कि ये दूध नहीं देतीं, इसीलिए तो दान दे रहा है। अगर दूध अभी बाकी होता तो बाप ने दान दिया ही नहीं होता। बाप इतना नासमझ नहीं है, जितना नचिकेता है।

शुद्ध आंख के लिए एक तरह की नासमझी चाहिए। समझदारी चालाक हो जाती है। इसलिए दुनिया जितनी समझदार होती जाती है, उतनी चालाक होती जाती है।
लोग मुझसे कहते हैं कि विश्वविद्यालयों से इतने लोग निकलते हैं पढ़-लिखकर तो दुनिया में चालाकी घटनी चाहिए, वह बढ़ रही है! मैं कहता हूं, वह बढ़ेगी ही। क्योंकि समझदारी से चालाकी बढ़ती है, घटती नहीं। जब एक आदमी गणित ठीक-ठीक करने लगता है, तर्क ठीक-ठीक बिठाने लगता है, तो चालाकी बढ़ेगी, घटेगी नहीं। दुनिया जितनी सार्वभौम रूप से शिक्षित होगी, उतनी सार्वभौम रूप से चालाक और कनिंग हो जाएगी। हो ही गई है।
किसी भी व्यक्ति को शिक्षित कर दें और फिर अगर वह भोला रह जाए तो समझें कि संत है। शिक्षित होते से ही भोलापन खो जाता है।
यह बाप भी जानता है; बाप होशियार है। गणित जानता है। वह जानता है कि गाय को दान ही तब देना, जब दूध समाप्त हो जाए। तो गाय के खोने से कुछ खोता भी नहीं और दान देने से कुछ मिलता है। दान दिया, यह वह परमात्मा के सामने खड़े होकर कहेगा कि हजार गौवें दान कर दीं।
लेकिन तुम एक छोटे बच्चे को धोखा नहीं दे पा रहे हो, तुम परमात्मा को धोखा दे पाओगे? नचिकेता को लगा कि यह क्या हो रहा है? इन जराजीर्ण गायों को देखकर उसमें आस्तिकता का उदय हुआ, भोलेपन का उदय हुआ, सरलता का उदय हुआ, चालाकी का नहीं।
मेरे हिसाब में भी नास्तिकता एक गणित है और आस्तिकता एक भोलापन है। नास्तिक कहता है कि मैं सिद्ध कर सकता हूं कि ईश्वर नहीं है। उसके पास गणित और तर्क है। और जब कोई आस्तिक भी कहता है कि मैं सिद्ध कर सकता हूं कि ईश्वर है, तो समझना कि वह आस्तिक नहीं है। वह भी नास्तिक ही है।
आस्तिक तो कहता है कि मैं सिद्ध तो नहीं कर सकता, लेकिन ईश्वर है। आस्तिक कहता है, तुम सिद्ध भी कर दो कि ईश्वर नहीं है तो भी मैं कहता हूं कि ईश्वर है। क्योंकि ईश्वर का होना गणित और तर्क और बुद्धि की बात नहीं है, मेरे हृदय का गहन अनुभव है। आस्तिक कहता है कि तुम कितनी ही कोशिश करो, तुम कितना ही सिद्ध करो, तुम्हारे सब सिद्ध करने से इतना ही सिद्ध होता है कि तुम होशियार हो, कुशल हो, गणितज्ञ हो, तर्कवान हो; ईश्वर असिद्ध नहीं होता। रामकृष्ण के पास केशवचंद्र ने आकर सिद्ध करने की कोशिश की थी कि ईश्वर नहीं है। और आशा रखी थी कि रामकृष्ण जवाब देंगे। और जब केशवचंद्र तर्क करने लगे, तो रामकृष्ण हर तर्क पर उठ-उठकर केशवचंद्र को गले लगा लेते थे। केशवचंद्र बड़ी मुश्किल में पड़े! वह ईश्वर को असिद्ध कर रहे थे। और यह नासमझ, समझ नहीं रहा है या क्या मामला है। क्योंकि आस्तिक को तो नाराज हो जाना चाहिए। उसको जवाब देना चाहिए, प्रत्युत्तर देना चाहिए। और जब प्रत्युत्तर न मिले तो केशव भी हतप्रभ हुए और उनके साथ आए हुए लोग भी बड़ी मुश्किल में पड़े। क्योंकि सोचा था कि आज बड़ा आनंद होगा, और सोचा था कि यह नासमझ रामकृष्ण, गंवार, बेपढ़ा-लिखा, आज बड़ी मुश्किल में पड़ेगा। इसकी फजीहत देखने काफी लोग इकट्ठे हो गए थे। लेकिन फजीहत रामकृष्ण की करनी मुश्किल है। नासमझ की फजीहत कैसे करिएगा? समझदार भर की की जा सकती है!
जब केशवचंद्र थक गए और उदास हो गए और उन्होंने पूछा कि आप कोई जवाब न देंगे? रामकृष्ण ने कहा, जवाब क्या दूं? तुम्हें देखकर मुझे और पक्का भरोसा आ गया कि ईश्वर है। केशवचंद्र ने कहा, मुझे देखकर? रामकृष्ण ने कहा, तुम्हें देखकर, क्योंकि ऐसी प्रतिभा बिना ईश्वर के जगत में हो नहीं सकती। रामकृष्ण ने कहा, ईश्वर के अतिरिक्त और कौन ईश्वर को गलत सिद्ध कर सकता है?
यह आस्तिक है।
तो उपनिषद का ऋषि कहता है कि नचिकेता को श्रद्धा का जन्म हुआ, और उसे लगा कि इन जराजीर्ण गायों को देकर पिता क्या कर रहे हैं!
जो अंतिम बार जल पी चुकीं, जिनका घास खाना समाप्त हो चुका, जिनका अंतिम दूध दुह लिया गया, जिनकी इंद्रियां नष्ट हो गई हैं--ऐसी निरर्थक, मरणासन्न गायों को देने वाला दाता तो नीच योनियों में, नरकादि लोकों में, जहां सब सुख समाप्त हैं, जहां सब सुख शून्य हैं, उनको प्राप्त होता है। अतः पिता जी को सावधान करना चाहिए।

उसे लगा कि यह तो धोखा है, बेईमानी है। और साधारण धोखा नहीं है, परमात्मा से धोखा है।
अगर आपकी कोई जेब काट ले तो आपको धोखा दे रहा है। एक आदमी एक आदमी को धोखा दे रहा है, समझ में आता है। लेकिन जब कोई आदमी परमसत्ता को धोखा देने चल पड़ता है, तब स्वभावतः इसका परिणाम महादुख होगा। क्योंकि परमसत्ता को धोखा देने का क्या उपाय है?
परमसत्ता वही है जो हमारे हृदय के अंतसतम में बैठी है। इसे तो उद्दालक भी जानता होगा। जिसे नचिकेता कह रहा है, उद्दालक के भीतर भी छिपा हुआ बचपन है, वह जानता है। वह भी जानता है। बेईमान से बेईमान आदमी भी भीतर जानता है कि बेईमानी है; चोर जानता है कि चोरी है; धोखा देने वाला जानता है कि धोखा है। उस भीतर के बच्चे को, उस निर्दोष तत्व को नष्ट तो किया नहीं जा सकता। वह भीतर छिपा कितने ही गहरे में हो, उसे हमने दबाया कितना ही हो, लेकिन वह मौजूद है, सजीव है, और वहां से धक्के दे रहा है।
नचिकेता की बात को सुनकर पिता को क्रोध आया, क्योंकि खुद का नचिकेता
भी भीतर जग गया होगा, चोट खाकर। उसे भीतर भी लगा होगा कि बात तो सच है।
आप ध्यान रखें, जब कोई झूठ कहता है तो क्रोध नहीं आता है। जब कोई सच कहता है तो क्रोध आता है। अगर आप चोर नहीं हैं, और कोई कहता है, आप चोर हैं, तो आप हंस सकते हैं, क्रोध करने का कोई कारण नहीं है। लेकिन आप चोर हैं, और कोई कहता है, आप चोर हैं, आप आग से भर जाते हैं, क्योंकि उसने कोई घाव छू दिया। उसने कोई बात जो आपने छिपाकर रखी थी, बाहर ला दी। उसने कोई नस छू दी, जहां से मवाद बहने लगी। तो जब भी आप क्रोधित हों, तो समझना कि कोई सच आपके आसपास आ गया। क्रोध बताता है कि घाव छू दिया गया।
बुद्ध और महावीर क्रोधित नहीं होते, क्योंकि कोई घाव नहीं है, जिसको
आप छू सकें। कुछ छिपाया नहीं है, जिसे आप उघाड़ सकें। सब उघड़ा हुआ है। अगर संतों को हम गाली देते हैं और वे हंसते हैं, तो उसका यह कारण नहीं है कि आपकी गालियों से उन्हें बड़ा मजा आ रहा है। उसका कुल कारण इतना है कि आप हंसी योग्य बात ही कर रहे हैं--हास्यास्पद। आप अपना ही मजाक उड़वा रहे हैं। क्योंकि आपकी गाली बिल्कुल ही निरर्थक है, वह कहीं भी छूती नहीं, उससे कहीं कोई तालमेल नहीं है।
आपको जब कोई गाली देता है, तो आप फौरन खड़े हो जाते हैं रक्षा के लिए। किसकी रक्षा कर रहे हैं? भीतर कुछ छिपा है, जो गाली तोड़ देगी। भीतर कुछ छिपा है, जो गाली प्रगट कर देगी। भीतर कुछ छिपा है, जो गाली आपको भी जागरूक कर देगी।
पिता नाराज हो गए। क्योंकि बेटे ने दिखता है ठीक घाव छू दिया। ठीक स्थान पर उसने हाथ रख दिया।
सोचा बेटे ने, नचिकेता ने कि पिता को सावधान करूं। लेकिन बड़ा मुश्किल है। बेटा जब भी पिता को सावधान करे, पिता को बुरा लगेगा। क्योंकि यह पिता मान ही नहीं सकता कि तुम और मुझसे ज्यादा समझदार! यह असंभव है।
जीसस के पिता नहीं मान सकते कि जीसस समझदार है। न बुद्ध के पिता मानते हैं कि बुद्ध समझदार हैं। बुद्ध के पिता ने बुद्ध से कहा है--बुद्ध हो जाने के बाद--कि तू अपनी नासमझी छोड़, घर वापिस आ। बहुत हो चुका। और मैं तेरा पिता हूं, मैं तुझे अभी भी माफ कर सकता हूं। मेरे भीतर पिता का हृदय है। और यह आवारागर्दी बंद कर। और मेरे कुल में कभी किसी ने भिक्षा नहीं मांगी, तू भिखारी होकर मेरी ही राजधानी में भीख मांग रहा है! मेरी नाक को मत डुबा। मेरी इज्जत को मत मिटा।
सोचें, बुद्ध का पिता कोई गैर पढ़ा-लिखा आदमी नहीं था, सम्राट था।
सुशिक्षित था, सुसंस्कृत था। शास्त्र पढ़े थे, ज्ञानियों के वचन सुने थे।
घर में महापंडित आते थे, विद्वत-समूह था आसपास। लेकिन बुद्ध को पहचानना मुश्किल है।
बाप का जो अहंकार है, वह यह मान नहीं सकता कि मुझसे पहले और मेरा बेटा ज्ञान को उपलब्ध हो गया! बुद्ध ने कहा विनम्रता से कि आप ठीक कहते हैं कि आपके कुल में किसी ने भीख नहीं मांगी। लेकिन जहां तक मैं जानता हूं, मैं पुराना भिखारी हूं। मैं पहले भी भीख मांग चुका हूं। तो पिता ने कहा, क्या तू अपने आपको मुझसे ज्यादा जानता है! मेरा खून तेरे खून में बह रहा है। और

मेरी हड्डियां तेरी हड्डियों में हैं। मैंने तुझे पैदा किया। मैं तुझे भलीभांति जानता हूं। बुद्ध ने कहा, आप थोड़ी सी भूल कर रहे हैं। मैं आपसे पैदा हुआ, आपके द्वारा पैदा नहीं हुआ। आप एक मार्ग थे, जिससे मैं आया। लेकिन आप मेरे स्रष्टा नहीं हैं।
स्वभावतः, जब कोई बेटा किसी बाप से कहे कि आप मेरे स्रष्टा नहीं हैं,
तो पीड़ा होगी, अहंकार को चोट लगेगी। बुद्ध ने कहा कि आप एक चौराहा थे, जिससे मैं गुजरा। लेकिन मेरी यात्रा बहुत पुरानी है। मैं पहले भी था।
आपसे पैदा होने के पहले भी था।
जीसस से किसी ने कहा है--जीसस एक भीड़ में खड़े हैं और किसी ने कहा कि तुम्हारे माता और पिता तुमसे मिलने आए हैं--तो जीसस ने कहा कि मेरे कौन माता और कौन पिता! बड़ी अजीब बात कही। क्योंकि मैं उनके भी पहले था। अब्राहम पैदा हुआ उसके पहले भी मैं था।
ज्ञान पिता के अहंकार को कष्ट देगा। इसलिए कोई बेटा अगर पिता को सावधान करना चाहे तो बहुत सावधानी पूर्वक सावधान करे। खतरा है। किसी और को सावधान करना ठीक है, पिता को सावधान करना खतरा है। क्योंकि वहां अहंकार को गहन चोट लग जाएगी। मेरा बेटा, मुझे सावधान करे! जो मुझसे पीछे आया, जो मुझसे जन्मा, वह मुझे सावधान करे!
नचिकेता ने वही भूल की। निर्दोष चित्त से कई बार भूलें होती हैं। होंगी ही। उसे लगा कि पिता भूल में पड़ रहे हैं। यह दान झूठा है, यह बेईमानी है, यह धोखा है और इसका परिणाम महादुख होगा।
यह सोचकर वह अपने पिता से बोला, आप मुझे किसको देंगे?
क्योंकि पिता ने कहा था, मेरा सब कुछ मैं दान कर दूंगा। तो नचिकेता को लगा कि मैं भी तो उन्हीं का हूं, और जब सब कुछ ही दान हो रहा है, तो जरूर मेरा भी दान होगा।
पिता बेटों को भी अपनी संपत्ति ही मानते हैं, पति पत्नियों को अपनी संपत्ति मानते हैं। हम व्यक्तियों को भी संपत्ति बना लेते हैं--कहते हैं, मेरी!
वस्तुएं तक जिस जगत में मेरी नहीं हैं, वहां कोई व्यक्ति मेरा नहीं हो सकता। व्यक्ति पर कब्जा करने की कोशिश पागलपन है। लेकिन बाप को लगता है, बेटा मेरा है।
तो नचिकेता को लगा कि पिता मेरे कहते हैं कि नचिकेता तू मेरा है और कहते हैं कि सब मैं दान कर दूंगा, तो सीधी बात है कि अब मेरा भी दान होगा। तो पूछ लूं कि मुझे किसको दान करेंगे। यह सरल हृदय में उठा हुआ सवाल है। कि अगर सब कुछ ही दान कर रहे हो, तो ममत्व का भी दान करोगे या नहीं? तो ममता का भी दान करोगे या नहीं? तो मोह का भी दान करोगे या नहीं? तो यह मेरा बेटा जो है, इसका भी मैं दान करूंगा या नहीं?
नचिकेता ने सवाल तो ठीक पूछा है। सच तो यह है कि ममत्व ही छोड़ना चाहिए, वस्तुएं और व्यक्तियों को छोड़ने का कोई अर्थ नहीं है। मेरेपन का भाव छोड़ना चाहिए। तो गाएं बूढ़ी तुम दान कर रहे हो, ठीक। मुझे किसको दान करोगे? मैं किसके पास जाने वाला हूं?
इससे तो बात और भी गहन चोट की हो गई। पिता को लगा कि यह लड़का तो सीमा से ज्यादा बढ़ा जा रहा है! यह पिता ने भी नहीं सोचा था कि जब मैं कहा हूं कि मैं सब कुछ दान कर दूंगा, तो मेरा बेटा भी दान में दिया जाएगा। यह उसने सोचा नहीं था। यह सोचने का कोई कारण भी नहीं था। धन ही छोड़ रहा था, मोह और ममता तो नहीं। लेकिन बेटे ने चिढ़ा दिया। चोट गहरी पड़ी होगी। आप मुझे किसको देंगे? पिता चुप रह गया।
चुप रह जाने से पता नहीं चलता कि आदमी क्रोधित नहीं है। अक्सर तो आदमी क्रोध में चुप रह जाता है। अगर बेटा चालाक होता तो वह भी चुप रह जाता; वह पिता का क्रोध समझता। लेकिन वह सीधा-सादा बच्चा है--उसने फिर से पूछा, दुबारा पूछा, तिबारा पूछा कि मुझे किसको देंगे? पिता क्रुद्ध हो गया। और जैसा कि कोई भी पिता कहता, बिल्कुल स्वाभाविक है, पिता ने कहा, मैं तुझे मृत्यु को दे देता हूं। अक्सर बाप जब नाराज हो जाता है तो कहता है, तू पैदा ही न हुआ होता तो अच्छा था। मां नाराज हो जाती है तो कहती है, मर जाओ; हटो सामने से; मिट जाओ।

उद्दालक ने कहा कि मैं तुझे मृत्यु को दे देता हूं।
यह बड़ी स्वाभाविक बात है। जिसने जन्म दिया है, वह अगर पूरी तरह क्रुद्ध हो जाए तो मृत्यु दे सकता है। असल में बाप अगर नाराज हो तो बेटे को मार डालना चाहेगा। जिसको मैंने बनाया, उसको मैं मिटा दूंगा। इसके पीछे बड़ा मनोविज्ञान छिपा है।
बाप के मन में जन्म देने का ख्याल है, तो साथ ही मृत्यु देने का ख्याल
भी छिपा हुआ है। दोनों साथ-साथ हैं। इसलिए कोई भी बेटा अपने बाप को कभी माफ नहीं कर पाता। बड़ा कठिन है। और जब कोई बेटा अपने बाप को माफ कर देता है तो साधुता का परम फूल खिलता है। बेटे बाप के खिलाफ बने रहते हैं।
तुर्गनेव ने एक बहुत अदभुत किताब लिखी है--फादर्स एंड संस, बाप-बेटे। जिसमें तुर्गनेव ने एक मौलिक विचार, सारभूत और आधारभूत विचार पर पूरी कथा निर्मित की है। तुर्गनेव का ख्याल है कि बाप और बेटे का संघर्ष पुरातन है, सनातन है, सदा से चलता रहा है। बाप बेटे से लड़ रहा है, बेटा बाप से लड़ रहा है। और यही संघर्ष व्यापक होकर पीढ़ियों का संघर्ष बन जाता है। जेनरेशन्स आपस में लड़ने लगती हैं। आज सारी दुनिया में झगड़ा है। बेटों की पीढ़ी कुछ और कर रही है, बाप की पीढ़ी कुछ और कह रही है। दोनों के बीच खाई है। कोई बीच में संवाद भी नहीं रहा है।
और जितना संपन्न होगा देश, बाप और बेटे की खाई उतनी ही बढ़ जाएगी। जितना गरीब होगा देश, उतनी कम होगी। क्योंकि जितना संपन्न देश होगा, उतना ही बेटे ज्यादा सुशिक्षित होंगे और ज्यादा देर तक जवान रहेंगे। गरीब मुल्क में बारह साल, दस साल का बच्चा भी काम में लग जाता है, जुट जाता है। फिर बाल-विवाह हो जाता है उसका, वह खुद ही बाप बन जाता है। इसके पहले कि ठीक से बेटा बन पाता और बाप से लड़ता, वह खुद बाप बन जाता है। यह बाल-विवाह बापों की बड़ी पुरानी ईजाद हो सकती है। इससे पहले कि बेटा उपद्रव खड़ा करे, उसे बाप बना देना जरूरी है। जैसे ही वह बाप बनता है, वह बाप की पीढ़ी का हिस्सेदार हो जाता है, भागीदार हो जाता है।
आप जानकर हैरान होंगे कि जब तक आप बाप नहीं बनते, तब तक आप जवान बने रहते हैं। जिस दिन आप बाप बनते हैं, उसी दिन आप ब.ूढे हो जाते हैं। एक बड़ा गहरा रूपांतरण मन में हो जाता है। जब तक एक आदमी की शादी नहीं होती, उसका बच्चा नहीं होता, तब तक उसके ढंग और होते हैं। तब तक वह एक खानाबदोश हो सकता है। तब तक वह फिकर नहीं करता सुरक्षा की। तब तक धन को लात मार सकता है, तब तक समाज से लड़ सकता है, तब तक बगावती हो सकता है, विद्रोही हो सकता है। शादी होते ही जैसे खूंटे से कहीं बंध जाता है। घर चारों तरफ से घेर लेता है। लेकिन बेटा होते ही वह बूढ़ा हो जाता है। वह खुद बाप की तरह सोचने लगता है। उसे अपने बाप की बात तक ठीक मालूम पड़ने लगती है।
यह बड़े मजे की बात है। यह जब तक आप बाप नहीं बन जाते, तब तक आपको अपने बाप की बात ठीक नहीं मालूम पड़ेगी। तब तक लगेगा कि बूढ़ा सनक गया है। इसका दिमाग खराब है। किस पुराने जमाने की पिटी-पिटाई बातें कर रहे हो! आप भी बाप होते ही ठीक वे ही पिटी-पिटाई, पुराने जमाने की बातें शुरू कर देंगे। अमरीका में नए जवान लड़के हिप्पी हैं, बड़ी तादाद में। लेकिन जैसे ही वे शादी कर लेते हैं और उनको एक बच्चा हुआ कि हिप्पी विदा हो जाता है। वापस समाज में वे भी लौट आते हैं। उनको अपने बाप की बातें ठीक मालूम होने लगती हैं कि पिता ठीक कहते थे। असल में अनुभव के अतिरिक्त कोई उपाय भी तो नहीं है। जब तक आप पिता न बनें, तब तक पिता की बात का आपको ख्याल नहीं हो सकता। यह जो बच्चों के, जवानों के और बूढ़ों के बीच एक संघर्ष है सतत, उस संघर्ष का कारण वही है कि बाप ने जन्म दिया है, वह पूरा मालिक होना चाहता है। वह जरा-सी भी बगावत पसंद नहीं करेगा। वह चाहता है कि बेटा उसकी प्रतिछवि हो, उसकी प्रतिध्वनि हो, उसकी आवाज हो। वह कहे रात तो रात, वह कहे दिन तो दिन।
लेकिन मुश्किल है। क्योंकि बेटे का अपना अहंकार है। जैसे-जैसे बेटा बड़ा हो रहा है, उसका अपना अहंकार मजबूत हो रहा है। और बेटा स्वतंत्र होना चाहता है। और कई मौकों पर तो दिन भी हो और बाप अगर कहे कि दिन है, तो बेटा कहेगा, रात है। क्योंकि सिवाय बाप से बगावत किए, उसके अपने अहंकार के खड़े होने का कोई उपाय नहीं है। बाप से लड़कर ही अहंकार निर्मित होता है। जैसे-

जैसे बेटा बाप से लड़ता है, वैसे-वैसे बाप दबाने की कोशिश करता है। और बाप के मन में, क्योंकि उसने जन्म दिया है, छिपा रहता है कि वह चाहे तो मृत्यु भी दे सकता है।
नचिकेता के पिता ने कहा कि मैं तुझे मृत्यु को दे दूंगा। नचिकेता ने सही मान लिया। बेटे इतनी छोटी उम्र में तर्क नहीं कर सकते। आस्था तर्क नहीं करती। निर्दोषता तर्क नहीं करती। उसने मान लिया कि निश्चित ही मैं मृत्यु को दे दिया जाऊंगा। उसने स्वीकार कर लिया।
यह स्वीकृति का भाव बड़ा क्रांतिकारी है। और यह कोई छोटी स्वीकृति न थी! उसने यह न पूछा कि क्यों देंगे मृत्यु को? उसने यह न कहा कि क्या आप विक्षिप्त हो गए हैं कि मुझे मृत्यु को देंगे? कि मैंने ऐसा क्या बुरा किया है कि आप मुझे मृत्यु को देंगे? न उसने कोई तर्क किया, न उसने यह माना कि मृत्यु को दिए जाने में कुछ बुरा है। उसने सोचा कि पिता मृत्यु को देते हैं, तो ठीक ही देते होंगे। पिता मृत्यु को देते हैं, तो मृत्यु के देवता को जरूर मेरी कोई जरूरत होगी। उसने इसे स्वीकार कर लिया। यह स्वीकृति ही इस पूरे शास्त्र का आधार है। जो व्यक्ति मृत्यु को भी स्वीकार कर ले, वह मृत्यु के पार आ जाएगा, अमृत होकर।
इस पिता के वचन का एक और गूढ़ रहस्य भी है। एक इसका और इसोटेरिक, एक और छिपा हुआ अर्थ भी है। पुराने शास्त्रों ने कहा है कि मृत्यु गुरु है। और पुराने शास्त्रों ने यह भी कहा है कि गुरु मृत्यु-रूप है। क्योंकि गुरु के पास जब शिष्य जाता है तो गुरु उसे काटता है, मिटाता है। उसे इतना मिटा देता है कि वह बचता ही नहीं है। उसके भीतर एक खालिस शून्य पैदा हो जाता है। समाधि निर्मित हो जाती है। उस समाधि में ही परम से साक्षात्कार होता है। शिक्षक और गुरु में फर्क है। शिक्षक आपको कुछ देता है, गुरु आपसे कुछ छीनता है। शिक्षक आपको भरता है, गुरु आपको खाली करता है। शिक्षक आपको सूचनाएं देता है, गुरु, आपके पास जो अहंकार है, उस अहंकार का जो ज्ञान है तथाकथित, उसको छीन लेता है। शिक्षक आपको आजीविका देता है, गुरु आपको जीवन। आजीविका देनी हो तो आपको कुछ सिखाना पड़ता है। गणित है, भूगोल है, इतिहास है, साइंस है, केमेस्ट्री है, फिजिक्स है, यह कुछ सिखाना होता है। और अगर ज्ञान देना हो, तो आपने जो भी सीखा है उसे अनसिखाना होता है, उसे अनलर्न करवाना होता है। उसे मिटाना होता है।
स्कूल में, कालेज में, विश्वविद्यालय में जो है, वह शिक्षक है। गुरु
खो गया है इस सदी में। गुरु वह था, जिसके पास आप तब जाते थे जब आप सीखने से ऊब जाते थे और बोझ उतारना चाहते थे।
इसलिए शास्त्रों ने कहा है कि गुरु मृत्यु-रूप है, वह मार डालता है।
वह आपको मिटा देता है। और जब आप वापस लौटते हैं तो आपका पुनर्जन्म हो गया होता है; आप नए होकर, द्विज होकर, ट्वाइस बॉर्न, फिर से जन्म लेकर वापस लौटते हैं। तो एक गर्भ तो मां का है और एक गर्भ गुरु का भी है।
मृत्यु गुरु है। यह भी इस छिपे हुए, इस कथा का छिपा हुआ सूत्र है। और नचिकेता के लिए मृत्यु गुरु सिद्ध हुई। और आपके लिए भी सिद्ध होगी।
अगर आप मरना सीख जाएं, तो आप सब पा जाएंगे जो पाने योग्य है। फिर पाने
को कुछ शेष न रह जाएगा।
यहां मैंने आपको बुलाया है कि आप भी नचिकेता बन सकें। यहां मैं आपको
भी मृत्यु के हाथ में दे देना चाहूंगा। और चाहूंगा कि सब तरफ से मृत्यु आपको घेर ले, और आपके भीतर जो भी मर सकता है वह मर ही जाए। और जो नहीं मर सकता, जिसको मारने का मृत्यु के पास कोई उपाय नहीं है, वही केवल आपके भीतर जगमगाता हुआ बच रहे। जो कूड़ा-करकट है वह जल जाए, जो स्वर्ण है वह निखर आए। इस अग्नि से आपको भी गुजरना होगा।
आगे मृत्यु नचिकेता को कहती है कि वह अग्नि तेरे ही नाम से जानी जाएगी; वह अग्नि जिससे गुजरकर आदमी नया होता है, अमरत्व को उपलब्ध होता है।
यह सुनकर नचिकेता मन ही मन विचार करने लगा कि मैं प्रथम श्रेणी के आचरण पर चलता चला आया हूं। जिसे भी शुभ कहा जाता है, वह मैंने किया है। कभी- कभी कठिनाई अगर होती है और प्रथम कोटि का आचरण नहीं पालन कर पाता, तो भी मैं मध्यम श्रेणी का आचरण तो निश्चित ही पालन करता रहा हूं। और कभी भी

मैंने निम्न श्रेणी का आचरण नहीं अपनाया, फिर भी पिताजी ने ऐसा क्यों कहा! जरूर ही यम का कोई कार्य होगा। लेकिन यम का कौन-सा कार्य हो सकता है, जो मेरे द्वारा पूरा हो! मैं मृत्यु के किस काम आ सकता हूं?
इसे सोचें।
स्वभावतः, जब कोई आपको कहे कि मृत्यु को दे दूंगा, तो पहला ख्याल यह उठता है कि मेरी कोई भूल, मेरा कोई दोष, मेरी कोई गलती होगी, जिससे मुझे दंड दिया जा रहा है। लेकिन नचिकेता ने सोचा कि मैंने ऐसी कोई भूल नहीं की है। जिसे शुभ कहते हैं, वह मैं करता हूं। और अगर कभी चूकता भी हूं तो भी निम्न तक नहीं गिर पाता हूं, मध्य में तो रह ही जाता हूं। तब मेरे दोष का तो कोई कारण नहीं है। तब एक ही बात हो सकती है कि मृत्यु को कोई काम हो, जो मेरे द्वारा पूरा हो सके। निश्चित ही पिताजी इसीलिए मुझे मृत्यु को देते होंगे।
यह बहुत सोचने जैसा है कि इसमें भी नचिकेता ऐसा नहीं सोचता कि पिता क्रोध के कारण देते होंगे। यह धार्मिक चित्त का लक्षण है। अपना दोष सोचता है कि शायद मेरी कोई भूल हो। वह भूल नहीं पाता। तो सोचता है कि यम को कोई काम होगा जो मुझसे पूरा हो सके। लेकिन उसकी समझ में नहीं आता कि यम का क्या कार्य हो सकता है जो मैं कर सकूंगा। लेकिन भूलकर भी उसे यह ख्याल नहीं आता कि पिता क्रुद्ध हैं। पिता नाराज हैं, पिता दोषी हैं, ऐसा उसे ख्याल नहीं आता।
जब कोई व्यक्ति अपने दोष देखता है, तो जीवन में धर्म का प्रारंभ होता है। हम सारे लोग सदा दूसरे का दोष देखने में संलग्न होते हैं। अगर कोई गाली दे आपको, तो गाली देने वाले ने ही कुछ उपद्रव किया है। आप गाली के योग्य हो सकते हैं, यह तो सोचने में भी नहीं आता। कि गाली बिल्कुल मौजू हो सकती है, आपको बिल्कुल लगती है, बिल्कुल आपके लायक थी, यह तो ख्याल में भी नहीं आता। या गाली का कोई प्रयोजन हो सकता है, जो देने वाले ने इसलिए दी है कि कुछ कार्य पूरा हो, वह भी ख्याल में नहीं आता। ख्याल आता है कि यह आदमी दुष्ट है। यह आदमी शैतान है। धार्मिक और अधार्मिक चित्त का यही भेद है। नचिकेता, ऋषि कहता है, सोचने लगा। लेकिन उसे यह ख्याल नहीं आया जरा भी--मजा यह है। और पिता ने क्रोध के कारण ही ऐसा कहा था।
तो यह सवाल नहीं है कि दूसरे ने गाली दी है, तो उसने अपने पागलपन के कारण न दी हो। यह सवाल नहीं है। उसने भला विक्षिप्तता के कारण दी हो, उसके भीतर आग जल रही हो, वह शैतान हो। यह सवाल नहीं है। सवाल यह है कि आप कैसा सोचते हैं। अगर आप सोचते हैं कि मेरी ही किसी भूल के कारण दी है, तो आप अपने जीवन को बदलने में लग जाएंगे। और अगर आप सोचते हैं, उसका ही कसूर है, तो आप अपनी तरफ तो ध्यान भी नहीं देंगे।
और अगर जिंदगी में हमारा यह ढंग हो जाए सोचने का--जैसा कि हो गया है--कि हमेशा दोष दूसरे में दिखाई पड़ता है, तो फिर जिंदगी अपरिवर्तित रह जाती है। फिर कोई रूपांतरण, फिर कोई क्रांति कैसे हो सकती है! दूसरे सही हैं या गलत, यह सवाल नहीं है। लेकिन मेरा ध्यान मुझ पर ही लगा रहे, तो मैं धीरे-धीरे अपने को बदल लूंगा। और मेरे भीतर एक नए जीवन का सूत्रपात हो सकता है। उसने अपने पिता से कहा, आपके पूर्वज जिस प्रकार का सदा आचरण करते आए हैं, उस पर विचार कीजिए। और वर्तमान में भी दूसरे श्रेष्ठ लोग जैसा आचरण कर रहे हैं, उस पर भी दृष्टिपात कीजिए। फिर आप अपने कर्तव्य का निश्चय कर डालिए। यह मरणधर्मा मनुष्य अनाज की तरह पकता है अर्थात जराजीर्ण होकर मर जाता है, तथा अनाज की भांति ही फिर उत्पन्न होता है।
छोटे बच्चे की यह उपमा सोचने जैसी है। असल में जितनी कौमें अभी भी निर्दोष बच्चों की तरह जी रही हैं--जंगलों में आदिवासी हैं--उनके सोचने का ढंग और चिंतना यही है।
इसलिए नचिकेता की यह बात सुनकर आप ऐसा मत समझना कि एक छोटा-सा बच्चा ऐसी बुद्धिमानी की बात कैसे कर रहा है--कि जैसे अनाज पकता है और गिर जाता है, फिर अंकुरित होता है, फिर पकता है और फिर गिर जाता है, ऐसा ही जन्म और जीवन का आवर्तन है। यह तो बड़े ज्ञान की बात है, नचिकेता जैसा छोटा बच्चा कैसे कर सकता है! लेकिन आप समझें। जो कौमें भी अभी भी आदिम हैं, जो अभी भी

बहुत पुराने ढंग से जी रही हैं, प्रकृति के निकट हैं, और जिन्होंने वैज्ञानिक सभ्यता का कोई निर्माण नहीं किया है, उनके सोचने का यही ढंग है। जीवन को अगर हम देखें तो वह वर्तुलाकार है। सुबह सूरज उगता है, सांझ डूब जाता है। फिर सुबह उगता है, फिर सांझ डूब जाता है। एक वर्तुल निर्मित होता है, एक सर्किल बनता है। गर्मी आती है, वर्षा आती है, शीत आती है; फिर गर्मी आ जाती है, फिर वर्षा आती है, फिर शीत आ जाती है। एक वर्तुल निर्मित होता है। मौसम गोलाकार घूमते चले जाते हैं। फसल उगती है, बीज पकते हैं, फिर बीज गिरते हैं; फिर अंकुर होते हैं, फिर फसल पकती है, फिर बीज गिरते हैं--एक वर्तुल है।
तो सभी भोले मन से सोचने वाले समाजों ने मनुष्य को भी कुछ अपवाद नहीं माना। और उन्होंने कहा, जैसे बीज गिरता है, पकता है, फिर गिरता है, फिर पकता है, ऐसा ही जन्म और मृत्यु है। आदमी मरता है, फिर जन्मता है, फिर मरता है, फिर जन्मता है। सारा जीवन वर्तुलाकार है। चांद-तारे गोल घूम रहे हैं। मौसम गोल घूम रहा है। मनुष्य का जीवन भी ऐसा ही वर्तुलाकार है। छोटे बच्चे इस उपमा को समझ सकते हैं। कि जब सभी चीजें वर्तुलाकार हैं, तो मनुष्य रेखाबद्ध नहीं हो सकता। मनुष्य भी वर्तुलाकार ही होगा।
पश्चिम और पूरब के विचार में बड़ा फर्क है इस संबंध में। पश्चिम सोचता हैः जीवन रेखाबद्ध है। एक सीधी रेखा में चला जा रहा है, जैसे रेल की पटरियां जाती हैं। पूरब सोचता है कि ऐसा नहीं है, जीवन की सारी की सारी गति वर्तुल में है। बचपन, जवानी, बुढ़ापा, फिर बचपन। वहीं, जहां से प्रारंभ होता है, वहीं अंत होता है। फिर प्रारंभ, फिर अंत। इसलिए हमने जीवन-मरण के वर्तुल का ख्याल किया है।
संसार का अर्थ है व्हील, एक घूमता हुआ चाक। वह जो भारत के राष्ट्रीय पताका पर जो हमने चक्र निर्मित किया है, वह चक्र बहुत पुराना है। वह अशोक ने अपने स्तंभों में खुदवाया था। और खुदवाया था बुद्ध-विचार के अनुसार। क्योंकि बुद्ध कहते हैं, जीवन एक चक्र की भांति घूमता है। सीधा नहीं है जीवन एक रेखा में।
तो वह छोटा बच्चा कहने लगा कि इसमें कोई चिंता की बात नहीं है कि मुझे
आप मृत्यु को दे दें, क्योंकि आदमी मरता है, फिर जन्मता है। कोई मृत्यु अंतिम नहीं है। फिर-फिर जन्म होगा। यह बात महत्वपूर्ण नहीं है कि आप मुझे मृत्यु को दे दें, लेकिन इतना ही मैं निवेदन करता हूं कि आप थोड़ा सोचकर कहें, कहीं ऐसा तो नहीं कि आप क्रोध में कह रहे हों।
यह थोड़ा समझने जैसा है।
यहां वह यह नहीं कह रहा है कि मुझे मृत्यु को मत दें, या मृत्यु को देना बुरा है। यहां वह यह कह रहा है कि अगर आप क्रोध में दे रहे हैं तो आप अकारण ही उस क्रोध के कारण दुख पाएंगे।
आप मुझे मृत्यु को दे दें। क्योंकि कोई मरता नहीं। सब चीजें वापस लौट आती हैं अपने मूल स्रोत पर। गंगोत्री से गंगा बहती है, गिरती है सागर में, फिर भाप बनकर आकाश में उठती है, फिर बदलियां गंगोत्री पर बरसती हैं, फिर गंगा बहने लगती है। तो फसल की तरह वापस लौट आऊंगा। मृत्यु को देने में कोई हर्जा नहीं है। लेकिन आप किसी भीतरी पीड़ा, क्रोध, दुख, संताप के कारण तो ऐसा नहीं कह रहे हैं, इसे थोड़ा विचार करें।
ध्यान रहे, अगर आप क्षणभर भी विचार करें तो क्रोध विलीन हो जाता है। क्षणभर भी होशपूर्वक जगें तो क्रोध विलीन हो जाता है। क्रोध का एक ही उपाय है, एक ही औषधि है, एंटीडोट है कि आप होश से भर जाएं। क्रोध आए, आंख बंद कर लें और सजग हो जाएं। और आप पाएंगे, यहां सजगता बढ़ने लगी, वहां क्रोध नीचे गिरने लगा। क्रोध की ऊर्जा ही, क्रोध की शक्ति ही सजगता बन जाती है, अवेयरनेस बन जाती है।
बुद्ध ने कहा है कि क्रोध मत करो, ऐसा मैं नहीं कहता। होशपूर्वक क्रोध करो। होशपूर्वक क्रोध कभी कोई कर ही नहीं सकता। बुद्ध ने कहा है, चोरी मत करो, ऐसा मैं नहीं कहता। होशपूर्वक करो। होशपूर्वक कोई चोरी कर ही नहीं सकता।

जीवन में जो भी बुरा होता है, बेहोशी में होता है। जीवन में जो भी शुभ होता है वह होश में होता है। अगर होश पूरा है, तो जो भी होगा शुभ होगा। अगर बेहोशी गहन है, तो जो भी होगा वह अशुभ होगा।
कृत्य न शुभ होते हैं न अशुभ होते हैं। करने वाले के होश पर सब निर्भर होता है। ऐसा हो सकता है कि आप बेहोशी में अच्छा भी काम कर रहे हों, आपको लगे कि अच्छा कर रहे हैं, उसका परिणाम बुरा ही होगा। और ऐसा भी हो सकता है कि होशपूर्वक कोई आदमी कोई काम कर रहा हो और आपको लगे कि बुरा हो रहा है, तो भी अच्छा ही होगा। अंतिम निर्णायक बात यह है कि भीतर कितना गहन होश है, कितना जागा हुआ है आदमी! सोया हुआ नहीं। सोना पाप है और जागना पुण्य है। नचिकेता अपने पिता से कहने लगा, आप जो भी करें थोड़ा सोच लें, थोड़ा विवेक से भर जाएं।
इस अनित्य जीवन के लिए मनुष्य को कभी कर्तव्य का त्याग करके मिथ्या आचरण नहीं करना चाहिए। आप शोक का त्याग कीजिए और अपने सत्य का पालन कर मुझे मृत्यु के पास जाने की अनुमति दीजिए।
निश्चित ही नचिकेता की ये बातें सुनकर पिता को शोक हुआ होगा। होश आया होगा, थोड़ी-सी चोट पड़ी होगी। और उसे लगा होगा कि उसने क्या कह दिया! उसने कैसी बात कह दी! बाप अपने बेटे से कह भी दे कि जाओ मर जाओ, तो ऐसा कोई मतलब नहीं होता। क्षणभर बाद सोचता है, यह मैंने क्या कह दिया! क्षणभर बाद मोह वापस लौट आया होगा। और इस बेटे ने जो बातें कही हैं वे इतनी कीमती हैं, सारे जीवन का सार-निचोड़ उनमें है, कि बाप को भी लगा होगा--बाप को भी लगा होगा, बाप को लगना बहुत मुश्किल है--उसको भी लगा होगा कि बेटा कह तो ठीक ही रहा है और उसे शोक हुआ होगा।
नचिकेता ने उसकी आंखों में, उसके चेहरे पर उदासी देखी होगी। तो वह यह
कह रहा है कि आप शोक का त्याग करें और जो वचन आपने दे दिया कि मैं मृत्यु को दूंगा, उसे आप पूरा करें। जो कह दिया उसे पूरा करें, अब उसे असत्य न होने दें।
पुत्र के वचन सुनकर उद्दालक को दुख हुआ। लेकिन अब कोई उपाय न था। और नचिकेता की सत्यपरायणता देखकर उसे यमराज के पास भेज दिया। नचिकेता को यमसदन पहुंचने पर पता लगा कि यमराज कहीं बाहर हैं। अतएव नचिकेता तीन दिनों तक अन्न-जल ग्रहण किए बिना यमराज की प्रतीक्षा करता रहा।
कोई उपाय न था। वचन दे दिया गया था। और नचिकेता जोर डाल रहा है कि अब
आप शोक न करें, जो हो गया हो गया। और जो किया जा चुका, उसे अनकिया नहीं किया जा सकता, और वचन दे दिया है अब मुझे भेज दें। तो मृत्यु के पास भेज दिया यह कथा है, यह प्रतीक है। यहां कहीं कोई यमराज बैठे हुए नहीं हैं, जिनके पास आपको भेजा जा सके। लेकिन कथा बड़ी मधुर है। और कई इशारे करती है।
नचिकेता यम के द्वार पर पहुंच गया। उसने मृत्यु का दरवाजा खटखटाया। लेकिन मृत्यु बाहर थी। इसमें दो बातें समझ लें। एक, नचिकेता के अतिरिक्त और किसी ने कभी मृत्यु का द्वार नहीं खटखटाया। हमेशा मृत्यु आपका द्वार खटखटाती है। और आप हमेशा घर में मिलते हैं, कभी बाहर नहीं होते! आप होंगे भी कहां? बाहर होने का कोई उपाय नहीं है।
शरीर घर है। और जब भी मृत्यु खटखटाती है, आपको वहां पाती है। नचिकेता गया मृत्यु के द्वार पर, घटना सब उलटी हो गई। क्योंकि हमेशा मृत्यु आती है आदमी के पास, आदमी नहीं जाता। और जब आदमी जाता है मृत्यु के पास, तो सब उलटा हो जाता है। उस उलटे के प्रतीक हैं ये। नचिकेता गया, मृत्यु को घर पर नहीं पाया।
सारी प्रक्रिया उलटी हो जाती है। जैसे ही व्यक्ति स्वयं मरने की तैयारी करता है, सब उलटा हो जाता है। जहां जीवन दिखाई पड़ता था, वहां मृत्यु दिखाई पड़ने लगती है। और जहां मृत्यु दिखाई पड़ती थी, वहां जीवन दिखाई पड़ने लगता है। और जहां सब सार-सर्वस्व मालूम होता था, वहां कचरा हो जाता है। और जहां कभी ख्याल भी नहीं किया था, वहां जीवन के सारे खजाने खुल जाते हैं। यह प्रतीक है सिर्फ कि सब उलटा हो जाता है।
जब आदमी खुद हिम्मत करके मृत्यु के द्वार पर दस्तक देता है, तो पाता
है कि वहां मृत्यु नहीं है। जब आप मृत्यु के पास जाएंगे, तो पाएंगे कि मृत्यु नहीं है। मृत्यु है ही नहीं। उससे दूर भागने में ही उसका होना है।

जितना हम भागते हैं, उतनी ही ज्यादा वह है। जितना हम बचते हैं, उतनी ही वह है। जितना हम चाहते हैं कि हमें मृत्यु न आए, हम न मरें, उतने ही हम मरते हैं।
हिम्मतवर आदमी एक बार मरता है, लोग कहते हैं, कायर हजार बार मरता है। आखिर हिम्मतवर और कायर में फर्क क्या है? हिम्मतवर और कायर में इतना ही फर्क है कि कायर निरंतर कोशिश करता है बचने की मृत्यु से, इसलिए रोज मरता है। हिम्मतवर कहता है, जब आनी होगी तो आ जाएगी, इसलिए एक बार मरता है। लेकिन नचिकेता जैसा व्यक्ति, जो मृत्यु के द्वार पर दस्तक देता है, वह पाता है कि मृत्यु वहां है ही नहीं। वह घर पर मौजूद नहीं है। जिन्होंने भी मृत्यु के दरवाजे पर कभी दस्तक दी है, उन्होंने उसे वहां नहीं पाया। वह एक भ्रम है। एक इल्यूजन है। भ्रम की एक खूबी है, आप दूर हटें तो वह बढ़ता है। आप पास जाएं तो कमता है।
एक रस्सी पड़ी है। अंधेरे में पड़ी है। और आप रास्ते से गुजरे हैं और सांप का भ्रम पैदा हो गया है। भागे, पसीना आने लगा--क्योंकि पसीने को कोई मतलब नहीं है कि सांप असली था कि नकली--छाती जोर से धड़कने लगी, रक्तचाप बढ़ गया, सिर की नसें तन गईं, पैर भागे जा रहे हैं। और जितना आप भाग रहे हैं, आपके भागने से घबड़ाहट और बढ़ रही है।
पश्चिम का एक मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स तो कहता था कि लोग घबड़ाकर नहीं भागते, भागने की वजह से घबड़ा जाते हैं। भय के कारण नहीं भागते, भागते हैं इसलिए भयभीत हो जाते हैं। उसकी बात में थोड़ी सचाई है। आप जितना ही भागेंगे, उतनी ही घबड़ाहट बढ़ती जाएगी। आपका भागना आपकी घबड़ाहट के लिए जीवन दे रहा है। और जितने आप दूर होते जा रहे हैं उस रस्सी से, उतना ही सांप पक्का होता चला जा रहा है। अब सांप रस्सी है, यह जानने का कोई उपाय न रहा। इसको जानने का तो एक ही उपाय था कि आप और पास गए होते। आपने दीया जलाया होता और आप रस्सी के बिल्कुल पास बैठ गए होते और आपने देख लिया होता, तो आप पाते कि वहां सांप नहीं है।
इल्यूजन का अर्थ है--दूर जाने से जो बढ़ता है, पास जाने से जो घटता है।
अब यह बड़ा मजा है, अगर हम इस परिभाषा को समझ लें, तो हमारी जिंदगी में चुकता भ्रमों के सिवाय कुछ भी नहीं है।
एक स्त्री बहुत सुंदर मालूम पड़ती है। बस आपको उससे मिलने न दिया जाए,
वह सदा सुंदर रहेगी। मिलने दिया जाए, सब गड़बड़ हो जाएगा। अगर आपका विवाह करवा दिया जाए, तो वह स्त्री सुंदर नहीं रह जाएगी। जिसको देखकर आप दीवाने हो जाते थे, नाच उठते थे, उसको देखकर आपके भीतर धड़कन भी पैदा नहीं होगी, कुछ भी नहीं होगा।
सच तो यह है कि पत्नियों को लोग देखना ही बंद कर देते हैं। देखते ही नहीं। आंख भी पड़ती है, तो पत्नी दिखाई नहीं पड़ती। सिर्फ दूसरों की पत्नियां दिखाई पड़ सकती हैं, अपनी पत्नी दिखाई पड़ ही नहीं सकती। बहुत मुश्किल है। क्योंकि भ्रम तो कुछ बचता नहीं है। सब टूट जाता है, सब उघड़ जाता है।
जो आपके पास नहीं है, वह बड़ा मूल्यवान मालूम पड़ता है। और पास आते ही मूल्य खो जाता है। इसलिए शंकर जैसे ज्ञानियों ने संसार को मिथ्या कहा है, झूठ कहा है, असत्य कहा है, माया कहा है। उसका कुल मतलब इतना है कि माया की परिभाषा यही है कि जिसके पास जाने से जो मिट जाए और दूर जाने से बढ़े।
आप सोचते हैं कि धनपति अपने महल में बड़े आनंद में हैं। यह आप ही सोचते हैं। कोई धनपति आनंद में नहीं है। मगर यह आपको पता तब तक नहीं चलेगा, जब तक आप धनपति न हो जाएं और महल में न पहुंच जाएं। महल में पहुंचते-पहुंचते आपको पता चलेगा कि मैं कहां आ गया? यहां कुछ भी नहीं है! लेकिन यह आपको पता चलेगा। आपके मकान के करीब से जो लोग गुजर रहे हैं, वे सोच रहे हैं कि आप बड़े आनंद में हैं।
आप देखते हैं--जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के पुत्र हैं। बुद्ध राजा के पुत्र हैं। हिंदुओं के सब अवतार राजाओं के पुत्र हैं। कारण? असल में राजा हुए बिना संसार का पूरा भ्रम नहीं टूटता। राजा का मतलब, जिसके पास सब कुछ है। जब सब कुछ है, तो दिखाई पड़ जाता है कि सब बेकार है।

तीर्थंकर राजपुत्र ही हो सकता है। दरिद्र का बेटा तीर्थंकर हो, बड़ा मुश्किल है। मुश्किल इसलिए कि भ्रम टूटेंगे कैसे? जिनसे दूरी है, वे भ्रम नहीं टूटते। जिनसे निकटता है, वे भ्रम टूट जाते हैं।
पश्चिम में स्त्री-पुरुष के बीच सारे बंधन हटा दिए गए हैं, करीब-करीब।
और एक पुरुष सैकड़ों स्त्रियों से संबंध निर्मित कर लेता है, एक स्त्री सैकड़ों पुरुषों से संबंध निर्मित कर लेती है। अब यह बड़े मजे की बात है कि सारे इतिहास में जो भ्रम कभी नहीं टूटा था, वह अमरीका में टूट रहा है। अमरीका में लोग पूछ रहे हैं कि इसमें कुछ भी तो नहीं है। इस कामवासना में कुछ भी नहीं है। इससे ज्यादा कुछ चाहिए। तो एल.एसड़ी., मेस्क्लीन, मारीजुआना, इनकी आशा में हैं कि कुछ ड्रग, कोई इंजेक्शन शरीर में डालने से शायद थोड़ा-बहुत सुख मिले।
पुराने लोग बड़े होशियार थे। उन्होंने स्त्री-पुरुष के बीच इतनी बाधाएं खड़ी की थीं कि स्त्री-पुरुष का आकर्षण कभी नहीं टूटा। इस मुल्क में अपनी पत्नी से भी आकर्षण कभी नहीं टूटता था, क्योंकि दिन में पति भी नहीं देख सकता था उसको। रात में पति-पत्नी भी करीब-करीब चोरी से मिलते थे।
संयुक्त परिवार, बड़े परिवार, सबके सामने पति-पत्नी भी नहीं मिल सकते थे। रस जीवनभर कायम रहता था। बड़े होशियार लोग थे। तलाक का कोई सवाल ही नहीं था, मिलना ही नहीं हो पाता था पूरा! तलाक तो पूरे मिलने का परिणाम है।
जिंदगी को जितना आप जानेंगे, उतना जिंदगी व्यर्थ होती चली जाएगी।
जानने से जो व्यर्थ हो जाए, वह भ्रम है। जानने से जो और भी सार्थक होने लगे, वह सत्य है।
इसलिए जिसके पास जा-जाकर आपको लगे कि और भी सत्य है, और भी सत्य है, समझना कि वह माया का जो जाल था, उसके बाहर है। परमात्मा मैं उसे कहता हूं, जिसके पास जितना ज्यादा आप जाएं वह उतना सत्यतर होने लगे, और संसार उसे कहता हूं, जिसके पास जितना ज्यादा आप जाएं वह उतना असत्यतर होने लगे।
यह बड़ी मीठी बात है कि नचिकेता ने मृत्यु के द्वार पर दस्तक दी और पाया कि मृत्यु घर में नहीं है। आप भी दस्तक दें! इन आने वाले दिनों में मेरी यही चेष्टा होगी कि आप भी उस जगह पर खड़े होकर एक बार खटखटाएं। और मैं आपको भरोसा दिलाता हूं कि आप भी पाएंगे कि मृत्यु वहां नहीं है।
मृत्यु है ही नहीं। मृत्यु सरासर झूठ है। बड़े से बड़ा झूठ जो इस जगत में हो सकता है, वह मृत्यु है। पर उस झूठ से हम इतने भयभीत हैं और इतने डरे हुए हैं और इतने भागे हुए हैं कि वह सत्य बना हुआ है।
नचिकेता तीन दिन तक उपवास किए बैठा रहा। उसने कहा, बिना मृत्यु से मिले मैं भोजन न कर सकूंगा। मृत्यु नहीं है वहां। घर पर मौजूद नहीं है, कहानी की भाषा में। नचिकेता तीन दिन उपवास किया।
इसे थोड़ा समझें।
असल में जिसको हम जीवन कहते हैं, वह भोजन से चलता है। जिसको हम जीवन कहते हैं, वह भोजन से चलता है। तो अगर मृत्यु का अनुभव करना हो, तो इस भोजन को रोक देना जरूरी है। इसलिए उपवास एक महान प्रक्रिया बन गई। उपवास का अर्थ है कि जीवन जिससे चलता है, उसे हम थोड़ी देर के लिए रोक देते हैं, ताकि मौत चलने लगे। ताकि जीवन की गति बंद हो जाए, और हम पहचान सकें कि जीवन की गति जब बंद हो जाती है तब भी हम मरते हैं या नहीं मरते।
महावीर ने उपवास के इस विज्ञान को उसकी चरम कोटि तक पहुंचाया। कहते हैं, महावीर ने बारह वर्षों में केवल तीन सौ पैंसठ दिन भोजन लिया, बारह वर्ष की साधना में। कभी महीने, कभी दो महीने, कभी तीन महीने वे बिना भोजन के रहे। यह चेष्टा इस बात की थी कि जब भोजन बिल्कुल नहीं मिलता... और ध्यान रहे, नब्बे दिन आखिरी सीमा है। आप अगर बिना भोजन के रहें और पूरे स्वस्थ हों, तो आप नब्बे दिन तक बिना भोजन के रह सकते हैं। नब्बे दिन के बाद वह घड़ी आएगी जहां शरीर अटक जाएगा, चल नहीं सकेगा, जहां शरीर का जीवन शून्य हो जाएगा। उसी घड़ी में देखना पड़ेगा कि मैं जिंदा हूं या नहीं। जब शरीर मृतवत हो जाता है और तब भी मैं पाता हूं कि मैं जीवित हूं, तो उपवास का काम पूरा हो गया। उपवास के माध्यम से अमृत का अनुभव हुआ।
नचिकेता तीन दिन बिना खाए-पीए बैठा रहा। उसने कहा, जब तक मैं मृत्यु
के दर्शन न कर लूं, तब तक मैं खाऊंगा नहीं। यह उपवास का विज्ञान है। जब तक

मृत्यु का दर्शन न हो जाए, तब तक भोजन बंद रखूंगा। यह एक प्रक्रिया है।
बहुत, हजारों प्रक्रियाओं में एक।
लेकिन जो उपवास करते हैं, उन्हें भी पता नहीं कि वे क्या कर रहे हैं। इसके भीतर बड़ी सूक्ष्म प्रक्रिया है। यहां शरीर का जीवन क्षीण होने लगे, वहां भीतर होश बढ़ना चाहिए। अगर शरीर के जीवन के क्षीण होने के साथ भीतर भी शिथिलता और उदासी आने लगे, तो सब व्यर्थ हो गया। वहां होश बढ़ना चाहिए, वहां जीवंतता बढ़नी चाहिए। और एक घड़ी आती है जब शरीर बिल्कुल मृतवत है, और फिर भी आप पूर्ण जीवित हैं। तो आप जान लिए कि भोजन जीवन नहीं देता, केवल शरीर का ईंधन है। भोजन से जीवन पैदा नहीं होता, सिर्फ चलता है शरीर। अगर भोजन बिल्कुल समाप्त हो जाए तो शरीर समाप्त हो जाएगा, क्योंकि शरीर भोजन से निर्मित है। लेकिन आप समाप्त नहीं होंगे।
यह कथा में तो प्रतीक है। तीन दिन नचिकेता उपवासा बैठा रहा।
यमराज के लौटने पर यमराज की पत्नी ने कहा, ब्राह्मण अतिथि रूप में जब
घर में प्रवेश करते हैं, तो समझो कि देवता ही प्रवेश करते हैं। उनके शयन की, भोजन की सुविधा जुटाना कर्तव्य है। यह ब्राह्मण-पुत्र घर में आकर बैठा है, तीन दिन से इसने भोजन नहीं लिया है। आप जाएं उनका सम्मान करें।
जो व्यक्ति उपवास की प्रक्रिया से साधना के जगत में प्रवेश करता है,
वह घड़ी जल्दी ही आ जाती है जब मृत्यु प्रगट होती है। क्योंकि शरीर तो भोजन से ही चलता है। भोजन के बिना शरीर ज्यादा दिन नहीं चल सकता। मैंने कहा, नब्बे दिन चल सकता है, अगर पूर्ण स्वस्थ हो। क्योंकि शरीर इकट्ठा करता है भोजन, रिजर्वायर इकट्ठा करता है। आपके पास जो मांस-मज्जा है, वह इकट्ठा भोजन है। जरूरत के वक्त के लिए आप इकट्ठा करते हैं। वह इकट्ठा है। तीन महीने तक आप इसी का भोजन कर लेंगे।
शरीर के भीतर दोहरी प्रक्रिया है। अगर आप बाहर से भोजन लेना बंद कर दें, तो तीन, चार, पांच दिन आपको तकलीफ होगी। पांचवें दिन के बाद तकलीफ बंद हो जाएगी। भूख नहीं लगेगी। क्योंकि शरीर अपना ही मांस पचाना शुरू कर देगा। इसलिए रोज उपवास में एक पौंड, डेढ़ पौंड, दो पौंड वजन गिरने लगेगा। वह दो पौंड वजन आपका कहां जा रहा है? आप पचा रहे हैं। आप भोजन कर रहे हैं अपना ही। शरीर में दोहरी प्रक्रिया है।
सुरक्षित भोजन है आपके शरीर में, उसको आप पचा रहे हैं। तीन महीने में चुक जाएगा सब, सिर्फ हड्डियां रह जाएंगी, जिनके पास भोजन बिल्कुल नहीं बचा। मृत्यु घटित हो जाएगी। मृत्यु उपस्थित हो जाएगी।
यह तीन दिवस प्रतीक हैं। और शायद नचिकेता जैसी सरलता से भरा हुआ हृदय हो, तो तीन दिन में भी मृत्यु का देवता उपस्थित हो जाएगा। शरीर मरा हुआ दिखाई पड़ेगा। सिर्फ स्वयं की चेतना ही जीवित रह जाएगी।
पत्नी के वचन सुनकर यमराज नचिकेता के पास गए। बोले, हे ब्राह्मण! आप नमस्कार करने योग्य अतिथि हैं --अतिथि का अर्थ होता है, जो बिना तिथि बताए घर आ जाए, बिना कोई खबर किए, बिना एक पोस्टकार्ड डाले कि आ रहा हूं--आप अतिथि हैं, ब्राह्मण हैं। आपने तीन रात्रियों तक मेरे घर बिना भोजन के निवास किया। इसलिए आप मुझसे प्रत्येक रात्रि के बदले एक-एक वरदान मांग लीजिए।
यह कहानी है। कहानी का प्रतीक समझ लें। जो व्यक्ति भी ठीक से उपवास करेगा, मृत्यु घटने के पूर्व उसके पास अनेक शक्तियां आ जाएंगी, जो उसके भीतर छिपी पड़ी हैं। जिनको हम सिद्धियां कहते हैं। जो व्यक्ति भी लंबे उपवास करेगा, ठीक मृत्यु की घटना के पूर्व उसके पास बहुत-सी सिद्धियां आ जाएंगी। और बहुत संभावना तो यह है कि वह यह भूल ही जाएगा कि मैं किस खोज में निकला था और उन सिद्धियों में उलझ जाएगा। वे वरदान अभिशाप सिद्ध होते हैं। आखिरी समय के पहले जब कि मौत आपको आत्मा का ज्ञान दे सकती है, आखिरी प्रलोभन मन के पकड़ते हैं।
पतंजलि ने जिन सिद्धियों का उल्लेख किया है, वे सारी सिद्धियां लंबे उपवासी में पैदा होना शुरू हो जाती हैं। यह यम का कहना नचिकेता को कि मैं तुझे तीन रात्रि तक उपवासा रहने के लिए, हर रात्रि के लिए एक वरदान देता हूं, तू वरदान मांग ले--यह घटना घटती है हर एक व्यक्ति को। जो जल्दी से साधारण वरदानों से संतुष्ट हो जाता है, वह परम वरदान से वंचित रह जाता है।

लेकिन नचिकेता साधारण वरदानों से संतुष्ट होने वाला नहीं था। नचिकेता पूछे ही चला जाता है और आगे, और आगे, और परम गुह्य रहस्य को खोल लेना चाहता है।
नचिकेता ने कहा, हे मृत्युदेव! जिस प्रकार मेरे पिता गौतमवंशीय उद्दालक मेरे प्रति शांत संकल्प वाले, प्रसन्नचित्त हों और क्रोध एवं खेद से रहित हो जाएं, तथा आपके द्वारा वापस भेजे जाने पर, जब मैं उनके पास जाऊं तो वे मुझ पर विश्वास करके पुत्र-भाव रखकर मेरे साथ प्रेमपूर्वक बातचीत करें। यह मैं अपने तीनों वरों में पहला वर मांगता हूं।
पहला वर पिता के लिए है। उसके लिए, जिसने नचिकेता को मृत्यु में भेजा। पहला वर उसके लिए, जिसके लिए हमने पहला अभिशाप मांगना चाहा होता। जो हमें मृत्यु दे, उसको हम दोहरी मृत्यु देना चाहेंगे। आप होते तो आप कहते, पहला तो काम यह करो कि पिता जहां हों, वहीं, इसी वक्त समाप्त कर दो। शत्रु के लिए--और मृत्यु जो दे वह शत्रु ही मालूम पड़ेगा--शत्रु के लिए पहला वरदान कि मेरे पिता शांतचित्त हो जाएं। उनका क्रोध विलीन हो जाए। और जब मैं घर लौटूं तो वे मुझे प्रेम से पुत्र-भाव से स्वीकार कर सकें।
इसमें कई बातें हैं। एक तो जिसने बुरा किया है, उसके लिए शुभ की मांग है।
बुद्ध ने कहा है, तुम्हारी प्रार्थनाएं अगर तुम्हारे शत्रुओं के लिए
न हों, तो व्यर्थ हैं। और जीसस ने कहा है, अगर तुम्हारा एक भी शत्रु है, तो तुम वापस जाओ, उससे क्षमा मांगो, उसे मित्र बनाओ; तभी मंदिर में लौटकर आना। क्योंकि उसके पहले कोई भी प्रार्थना पूरी नहीं हो सकती। अगर कहीं भी कोई तुम्हारे चित्त में खटका है कांटे की तरह, तो उस कांटे को तुम मिटा दो, अन्यथा जीवन के फूल नहीं खिल सकते।
नचिकेता ने कहा, मेरे पिता शांत हो जाएं। और जब मैं लौटूं तो मुझे पुत्र-भाव से प्रेमपूर्वक स्वीकार करें।
यह बड़ी कठिन है दूसरी बात। क्योंकि नचिकेता लौटेगा मृत्यु को जानकर। बड़ा मुश्किल होगा। इस ज्ञानी पुत्र को पुत्र की तरह स्वीकार करना। बड़ा कठिन होगा।
यमराज ने कहा, तुमको मृत्यु के मुख से छूटा हुआ देखकर मुझसे प्रेरित तुम्हारे पिता उद्दालक पहले की भांति ही, यह मेरा पुत्र नचिकेता ही है, ऐसा समझकर दुख और क्रोध से रहित हो जाएंगे। और वे अपने आयु की शेष रात्रियों में सुखपूर्वक शयन करेंगे।
इस वरदान को पाकर नचिकेता बोला, हे यमराज! स्वर्गलोक में किंचितमात्र
भी भय नहीं है; वहां मृत्युरूप स्वयं आप भी नहीं हैं। वहां कोई बुढ़ापे से भी भय नहीं करता। स्वर्गलोक के निवासी भूख और प्यास, इन दोनों के पार होकर, दुखों से दूर रहकर सुख भोगते हैं।
हे मृत्युदेव! आप उपर्युक्त स्वर्ग की प्राप्ति के साधन-रूप अग्नि को जानते हैं। अतः आप मुझ श्रद्धालु को वह अग्निविद्या भलीभांति समझाकर कहिए, जिससे कि स्वर्गलोक के निवासी अमरत्व को प्राप्त होते हैं। यह मैं दूसरा वर-रूप मांगता हूं।
नचिकेता कह रहा है, मैं दूसरी बात मांगता हूं, जिससे मैं मृत्यु के पार हो जाऊं, जिससे मैं अमृत को उपलब्ध हो जाऊं। यह वरदान मृत्यु से ही पाया जा सकता है। जिन्हें जानना है कि मृत्यु के पार क्या है, कैसा जीवन, वे मृत्यु से गुजरकर ही जान सकते हैं।
तब यमराज बोले, हे नचिकेता! स्वर्गदायिनी अग्निविद्या को अच्छी तरह जानने वाला मैं, तुम्हारे लिए उसे भलीभांति बतलाता हूं। तुम उसे मुझसे भलीभांति समझ लो। तुम इस विद्या को स्वर्गरूपी अनंत लोकों को प्राप्त कराने वाली तथा उसकी आधारस्वरूपा बुद्धिरूपी गुहा में छिपी हुई समझो। तुम्हारे भीतर ही छिपी है वह अग्नि जिसके माध्यम से तुम अमृत को उपलब्ध हो जाओगे। तुम उस महासुख को उपलब्ध होओगे, जहां कोई दुख नहीं; उस परम स्वतंत्रता को, जो मुक्ति है। लेकिन वह अग्नि तुम्हारे ही हृदय की गुफा में छिपी है। उस अग्नि को खोजने तुम्हें कहीं जाना नहीं है। उस अग्नि को कहीं और प्रज्वलित नहीं करना है। वह प्रज्वलित है ही। तुम उसके मालिक हो ही; तुम अमृत हो ही। लेकिन तुम्हें इसका बोध और पता नहीं है।

उस स्वर्गलोक की कारणरूपा अग्निविद्या का उस नचिकेता को उपदेश दिया। उसमें जो-जो प्रक्रियाएं हैं, उन सबको विस्तार से समझाया। उसकी अलौकिक बुद्धि को देखकर प्रसन्न हो यमराज ने कहा, अब मैं तुमको यहां पुनः यह अतिरिक्त वर देता हूं कि यह अग्निविद्या तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। और इस अनेक रूपों वाली रत्नों की माला को भी तुम स्वीकार करो।
यह जो अग्नि है, जो हृदय में छिपी है, इसे कैसे प्रज्वलित करना? इसकी पूरी प्रक्रिया है। कैसे यह यज्ञकुण्ड बने? कैसे अरणियों से रगड़कर यह अग्नि पैदा की जाए? किन ईंटों से यह निर्माण होगा यज्ञकुण्ड का? कैसे तुम इसके भीतर जलोगे और तुम्हारा कचरा समाप्त होगा और तुम शुद्ध कुंदन बनोगे? यह सब विस्तार से यम ने कहा।
उसका कोई विस्तार यहां नहीं दिया है। लेकिन इन आठ दिनों में मैं पूरी प्रक्रिया आपको दूंगा। वह नहीं दी है जानकर। उपनिषदों में वे बातें छिपा ली गई हैं, जो गुरु स्वयं ही सीधा देगा। लिख दिए जाने पर खतरा है। भूल-चूक हो सकती है। शब्द को पढ़कर कोई करे, अनर्थ भी हो सकता है। और आग से खेलना, भीतर की आग से खेलना, बाहर की आग से खेलने से बहुत ज्यादा खतरनाक है।
जिन ध्यान की प्रक्रियाओं से हम यहां गुजरेंगे, वे भीतर की अग्नि को जलाने की प्रक्रियाएं हैं। और इन आठ दिनों में, तुम्हें ख्याल में साफ हो जाएगा कि हृदय कैसे प्रज्वलित अग्निकुण्ड बन जाता है, और कैसे मृत्यु समाप्त हो जाती है और अमृत का अनुभव होता है। यह अनुभव से ही होगा। और मेरी चेष्टा होगी कि तुम्हें प्रक्रिया से गुजार चलूं। शब्दों में न कहूं, बल्कि यह तुम्हारा कृत्य बन जाए, ऐसी आयोजना हम यहां करेंगे।
नचिकेता को यम ने कहा कि यह अग्नि तेरे ही नाम से जानी जाएगी। इस अग्नि का शास्त्रोक्त रीति से तीन बार अनुष्ठान करने वाला ऋक्, साम और यजुर्वेद आदि तीनों वेदों के साथ संबंध जोड़कर यज्ञ, दान, तप रूप तीनों कर्मों को निष्कामभाव से करने वाला मनुष्य जन्म-मृत्यु से तर जाता है। वह ब्रह्मा से उत्पन्न सृष्टि को जानने वाले स्तवनीय इस अग्निदेव को जानकर तथा इसका निष्कामभाव से विधिपूर्वक चयन करके अनंत शांति को पा जाता है, जो मुझको प्राप्त है।
जो मृत्यु को प्राप्त है, वह आपको भी प्राप्त हो सकता है। मृत्यु को अमृत प्राप्त है, क्योंकि मृत्यु की कोई मृत्यु नहीं होती। आप मरेंगे, मृत्यु नहीं मर सकती। मृत्यु कैसे मरेगी? मृत्यु अमरत्व का सूत्र है। अगर आप मरना सीख जाएं, तो आप भी अमरत्व को उपलब्ध हो जाते हैं।
यम ने कहा, जो भी इस अग्नि का आयोजन कर लेता है, वह मृत्यु के पाश को अपने सामने ही, मनुष्य शरीर में ही काटकर, शोक के पार होकर स्वर्गलोक में आनंद का अनुभव करता है।
हे नचिकेता, यह तुम्हें बतलाई हुई स्वर्ग प्रदान करने वाली अग्निविद्या है, जिसको तुमने दूसरे वर में मांगा है। इस अग्नि को अब से लोग तुम्हारे ही नाम से स्मरण करेंगे। अब तुम तीसरा वर मांगो।
हम इस अग्नि से गुजरेंगे। बजाय इसके कि मैं आपसे कुछ कहूं, उचित होगा
कि आपको उस अग्नि में ले चलूं। पहुंचाऊं आपको उस जगह जहां आप भी यम के द्वार पर दस्तक दे सकें। इस प्रक्रिया को ठीक से अभी समझ लें, क्योंकि कल सुबह से हम प्रारंभ करेंगे।
रात्रि आज सोने के पूर्व दस मिनट बिस्तर पर लेट जाएं, कमरे में अंधेरा
कर लें। आंख बंद कर लें, और जोर से श्वास मुंह से बाहर निकालें। निकालने से शुरू करें, एक्झेलेशन से। लेने से नहीं, निकालने से। जोर से मुंह से श्वास बाहर निकालें। और निकालते समय ओऽऽऽ... की ध्वनि करें। जैसे-जैसे ध्वनि साफ होने लगेगी, ओम अपने आप ही निर्मित हो जाएगा। आप सिर्फ ओऽऽऽ... का उच्चारण करें। ओम का आखिरी हिस्सा अपने आप, जैसे ध्वनि व्यवस्थित होगी, आने लगेगा। आपको ओम नहीं कहना है, आपको सिर्फ ओ कहना है, म को आने देना है। पूरी श्वास को बाहर फेंक दें। फिर ओंठ बंद कर लें और शरीर को श्वास लेने दें, आप मत लें। निकालना आपको है, लेना शरीर को है।
आमतौर से लेते हम हैं, निकालता शरीर है। और उसका कारण है। जाती हुई श्वास जीवन से जुड़ी है--भीतर जाती हुई श्वास। बाहर जाती हुई श्वास मृत्यु से जुड़ी है। बच्चा जब जन्मता है तो पहला काम करेगा, श्वास भीतर लेगा। बाहर

निकालने को तो उसके पास कोई श्वास होती भी नहीं। भीतर लेगा। श्वास का भीतर जाना, जीवन का पहला स्पंदन है। मरता हुआ आदमी जो आखिरी काम करेगा, श्वास को बाहर निकालेगा। क्योंकि भीतर श्वास रह जाए तो मृत्यु हो ही नहीं सकती। मृत्यु है श्वास का बाहर जाना। जीवन है श्वास का भीतर आना।
प्रतिपल, आप जब श्वास भीतर लेते हैं, तो जन्मते हैं। और जब श्वास बाहर जाती है, तो मरते हैं। यहां हम नचिकेता बनने की तैयारी में हैं। इसलिए जोर श्वास छोड़ने पर रहेगा इस पूरे शिविर में। लेने की आप बात ही मत करें। घबड़ाएं नहीं कि मर जाएंगे, लेने का काम शरीर कर लेगा कोई श्वास रोकनी नहीं है। लेते समय आपको कुछ भी नहीं करना है, न लेना है न रोकना है, छोड़ना है। रात दस मिनट सोने के पहले। क्योंकि सोना भी मृत्यु का हिस्सा है। नींद छोटी मौत है। और अगर आप छोड़ती हुई श्वास के साथ सो जाएं, तो आपकी पूरी नींद गहरी मृत्यु बन जाएगी।
दस मिनट ओ की आवाज के साथ श्वास को छोड़ें मुंह से। फिर नाक से श्वास लें। फिर मुंह से छोड़ें फिर नाक से लें। और ऐसे ओऽऽऽ... की आवाज करते-करते- करते-करते सो जाएं। यह रात्रि के लिए। फिर सुबह का प्रयोग है। वह मैं आपको सुबह समझा दूंगा।

कठोपनिषद
दूसरा प्रवचन

मृत्यु-पार की प्रामाणिक राजदां: मृत्यु

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः।। 20।।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम्।। 21।।

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यो यन्न सुविज्ञेयमात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्।।
22।।

शतायुषः पुत्रपौत्रान वृणीष्व बहून पशून हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि।। 23।।

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि।। 24।।

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः।। 25।।

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्व जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते।। 26।।

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव।। 27।।

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत।। 28।।

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते।। 29।।

नचिकेता तीसरा वर मांगते हुए कहता हैः मरे हुए मनुष्य के विषय में यह संशय है--कोई तो यों कहते हैं कि मरने के बाद आत्मा रहता है, और कोई ऐसा कहते हैं कि नहीं रहता। आपके द्वारा उपदेश पाया हुआ मैं इसका निर्णय भलीभांति समझ लूं, यही तीनों वरों में से तीसरा वर है।। 20।।

यमराज ने सोचा कि अनधिकारी के प्रति आत्मतत्व का उपदेश करना हानिकर होता है अतएव पहले पात्र-परीक्षा की आवश्यकता है, ऐसा विचारकर यमराज ने इस तत्व की कठिनता का वर्णन करके नचिकेता को टालना चाहा और कहा--हे नचिकेता! इस विषय में पहले देवताओं ने भी संदेह किया था, परंतु उनकी भी समझ में नहीं आया। क्योंकि यह विषय बड़ा सूक्ष्म है, सहज ही समझ में आने वाला नहीं है। इसलिए तुम दूसरा वर मांग लो, मुझ पर दबाव मत डालो। इस आत्मज्ञान संबंधी वर को मुझे लौटा दो।। 21।।

नचिकेता आत्मतत्व की कठिनता की बात सुनकर घबराया नहीं, न उसका उत्साह मंद हुआ, वरन उसने और भी दृढ़ता के साथ कहा, हे यमराज! आपने कहा कि इस विषय पर देवताओं ने भी विचार किया था परंतु वे निर्णय नहीं कर पाए और यह सरलता से

जानने योग्य भी नहीं है; इतना ही नहीं, इस विषय का कहने वाला भी आपके जैसा दूसरा नहीं मिल सकता। इसलिए मेरी समझ में इसके समान दूसरा कोई वर नहीं है।। 22।।

विषय की कठिनता से नचिकेता नहीं घबड़ाया, वह अपने निश्चय पर ज्यों का त्यों दृढ़ रहा। इस एक परीक्षा में वह उत्तीर्ण हो गया। अब यमराज दूसरी परीक्षा के रूप में उसके सामने विभिन्न प्रकार के प्रलोभन रखने की बात सोचकर उससे कहने लगे--सैकड़ों वर्षों की आयु वाले बेटे और पोतों को तथा बहुत से गौ आदि पशुओं को एवं हाथी, स्वर्ण और घोड़ों को मांग लो, भूमि के बड़े विस्तार वाले साम्राज्य को मांग लो। तुम स्वयं भी जितने वर्षों तक चाहो जीते रहो।। 23।।

हे नचिकेता! धन, संपत्ति और अनंतकाल तक जीने के साधनों को यदि तुम इस आत्मज्ञानविषयक वरदान के समान वर मानते हो तो मांग लो और तुम इस पृथ्वीलोक में बड़े भारी सम्राट बन जाओ। मैं तुम्हें संपूर्ण भोगों में से अति उत्तम भोगों को भोगने वाला बना देता हूं।। 24।।

इतने पर भी नचिकेता अपने निश्चय पर अटल रहा, तब स्वर्ग के दैवी भोगों
का प्रलोभन देते हुए यमराज ने कहा--जो-जो भोग मनुष्यलोक में दुर्लभ हैं, उन संपूर्ण भोगों को इच्छानुसार मांग लो। रथ और नाना प्रकार के वाद्यों के सहित इन स्वर्ग की अप्सराओं को अपने साथ ले जाओ। मनुष्यों को ऐसी स्त्रियां निःसंदेह अलभ्य हैं। मेरे द्वारा दी हुई इन स्त्रियों से तुम अपनी सेवा कराओ। पर हे नचिकेता! मरने के बाद आत्मा का क्या होता है, इस बात को मत पूछो।। 25।।

परंतु नचिकेता तो दृढ़निश्चयी और सच्चा अधिकारी था। वह जानता था कि इस लोक और परलोक के बड़े से बड़े भोग-सुख की आत्मज्ञान के सुख के किसी क्षुद्रतम अंश के साथ भी तुलना नहीं की जा सकती। अतएव उसने अपने निश्चय का युक्तिपूर्वक समर्थन करते हुए पूर्ण वैराग्ययुक्त वचनों में यमराज से कहा--हे यमराज! जिनका आपने वर्णन किया, वे क्षणभंगुर भोग (और उनसे प्राप्त होने वाले सुख) मनुष्य के अंतःकरण सहित संपूर्ण इंद्रियों का जो तेज है उसको क्षीण कर डालते हैं। इसके सिवा समस्त आयु चाहे वह कितनी भी बड़ी क्यों न हो, अल्प ही है। इसलिए ये आपके रथ आदि वाहन और ये अप्सराओं के नाच-गान आपके ही पास रहें, (मुझे नहीं चाहिए)।। 26।।

मनुष्य धन से कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता है। जबकि हमने आपके दर्शन पा लिए हैं तब धन को तो हम पा ही लेंगे, और आप जब तक शासन करते रहेंगे तब तक तो हम जीते भी रहेंगे। इन सबको भी क्या मांगना है। अतः मेरे मांगने लायक वर तो वह आत्मज्ञान ही है।। 27।।

इस प्रकार भोगों की क्षणभंगुरता का वर्णन करके अब नचिकेता अपने वर का महत्व बतलाता हुआ उसी को प्रदान करने के लिए दृढ़तापूर्वक निवेदन करता है-- यह मनुष्य जीर्ण होने वाला और मरणधर्मा है, इस तत्व को भलीभांति समझने वाला मनुष्यलोक का निवासी कौन ऐसा मनुष्य है जो कि बुढ़ापे से रहित, न मरने वाले आप सदृश महात्माओं का संग पाकर भी स्त्रियों के सौंदर्य-क्रीड़ा और आमोद-प्रमोद का बार-बार चिंतन करता हुआ बहुत काल तक जीवित रहने में उत्सुकता रखेगा? ।। 28।।

हे यमराज! जिस महान आश्चर्यमय परलोक संबंधी आत्मज्ञान के विषय में लोग यह शंका करते हैं कि यह आत्मा मरने के बाद रहता है या नहीं; उसमें जो निर्णय है, वह आप मुझे बतलाएं। जो यह अत्यंत गूढ़ता को प्राप्त हुआ वर है, इससे दूसरा वर नचिकेता नहीं मांगता।। 29।।

27

छोटे से नचिकेता के संबंध में एक बात ध्यान में ले लेनी चाहिए, तो ही मृत्यु के साथ उसका यह अन्वेषण हमारी समझ में आ सकेगा। नचिकेता कितना ही छोटा हो, कितनी ही उसकी शरीर की उम्र कम हो, उसकी आत्मा की उम्र अनंत है। कोई भी बच्चा बच्चा ही नहीं है! और कोई भी बच्चा सिर्फ कोरी स्लेट की भांति नहीं है। अनंत जन्मों की कथा उस चित्त पर लिखी है। बच्चा भी बहुत बार बूढ़ा हो चुका है। इसलिए बच्चे के साथ भी अत्यंत सम्मानपूर्वक व्यवहार चाहिए। यह शरीर नया हो, लेकिन इसके भीतर छिपी चेतना नई नहीं है। जितनी इस संसार की उम्र है, उतनी ही उम्र इस चेतना की भी है। यह चेतना हजारों बार शरीरों में जन्मी है और विदा हुई है। सुख और दुख, जीवन की उलझनें और सुविधाएं, जीवन के रहस्य और रस, जीवन के भ्रम और सत्य, सब इस चेतना ने भी अनुभव किए हैं।
इसलिए नचिकेता की अति गुरु-गंभीर खोज भारतीय मन के लिए चिंता का विषय नहीं है। पश्चिम के विचारक जरूर चिंतित होंगे कि इतना छोटा-सा बच्चा ऐसे प्रश्न कैसे उठा सकता है? क्योंकि ईसाइयत और इस्लाम और यहूदी धर्म, तीनों धर्म जो भारत के बाहर पैदा हुए हैं--शेष सारे महत्वपूर्ण धर्म भारत में पैदा हुए हैं--ये तीनों धर्म मानते हैं एक ही जन्म है, एक ही मृत्यु है, उसके बाद कोई पुनरागमन नहीं है। इसलिए उनकी धारणा में बच्चे तो ऐसे प्रश्न उठा ही नहीं सकते। और बच्चा इतनी गहन चिंतना भी नहीं कर सकता। उनकी समझ में तो ऐसे चिंतनपूर्ण विचार वृद्धावस्था में ही संभव हैं।
लेकिन नचिकेता सिर्फ कथा नहीं है। और भी हजारों बच्चों ने ऐसे प्रमाण दिए हैं। पश्चिम में भी ऐसे बहुत से प्रमाण हैं।
पश्चिम का बहुत बड़ा संगीतज्ञ मोजर्ट सात वर्ष की उम्र में वैसे संगीत में कुशल हो गया, जैसा व्यक्ति सत्तर वर्ष की उम्र में भी नहीं हो पाता। चौंकाने वाली बात है। क्योंकि जिस संगीत के अभ्यास के लिए सत्तर वर्ष चाहिए, वह संगीत का अभ्यास सात वर्ष में हो कैसे सकता है? और मोजर्ट तीन साल की उम्र में महान संगीतज्ञ होने की संभावना प्रगट करने लगा। निश्चित ही पीछे यात्रा होनी चाहिए। पीछे के अनुभव चाहे स्मरण न हों, पीछे की संपदा चाहे उसका बोध न हो, मोजर्ट के साथ है।
दो वर्ष की उम्र तक में बच्चों ने ऐसे प्रमाण दिए हैं हजारों, जो सिवाय पिछले जन्म की धारणा के अतिरिक्त और किसी तरह से समझाए ही नहीं जा सकते। नचिकेता अनूठा नहीं है। नचिकेता ने जो पूछा है वह इस बात की खबर है कि यह खोज बहुत पुरानी है और यह बच्चा बहुत बूढ़ा है।
लाओत्से के संबंध में कथा है कि लाओत्से बूढ़ा ही पैदा हुआ था। यह नचिकेता भी ऐसा ही बूढ़ा है। इसकी खोज पीछे से जुड़ी है। यह जो पूछ रहा है, इसे खुद भी पता नहीं है कि क्या पूछ रहा है। लेकिन इसने बहुत बार, बहुत-बहुत जन्मों में यह पूछा है; बहुत-बहुत द्वार इसने खटखटाए हैं। बहुत-बहुत गुरुओं के चरणों में यह बैठा है। यह धारा जो आज प्रगट होकर दिखाई पड़ रही है, भू-गर्भ में बहती रही है।
इस बात को ख्याल में ले लें, तो ही नचिकेता के प्रश्न समझने योग्य लगेंगे, अन्यथा अस्वाभाविक मालूम पड़ते हैं। अन्यथा ऐसा लगता है कि नचिकेता के नाम पर ऋषि वे सारी बातें थोप रहा है जो कि वृद्ध भी नहीं पूछते। लेकिन और बच्चों ने भी ऐसा ही पूछा है।
शंकराचार्य तैंतीस वर्ष की उम्र में तो चल ही बसे। तैंतीस वर्ष की उम्र में उन्होंने ब्रह्म-सूत्र, उपनिषद और गीता पर अपनी महान व्याख्याएं पूरी कर लीं। तीन सौ वर्ष की उम्र भी किसी आदमी को मिले, तो भी शंकर का कोई मुकाबला नहीं है। शंकर ने जो तैंतीस वर्ष की उम्र में लिखा है, वह तीन सौ वर्ष की उम्र भी साधारणतः मिले तो भी लिखने की कोई संभावना नहीं है।
शंकर ने अपनी व्याख्या का सिलसिला सत्रह साल की उम्र में शुरू किया।
और शंकर ने नौ वर्ष की उम्र में संन्यस्त होने की कामना प्रगट की।
यह जो नौ वर्ष की उम्र में... नौ वर्ष की उम्र ही क्या है! हम तो नब्बे वर्ष की उम्र में भी बचकाने बने रहते हैं। हमारे चित्त की कोई प्रौढ़ता नहीं हो पाती। वृद्धावस्था में भी हमारा चित्त वैसा ही होता है जैसा नासमझ अज्ञानी का होना चाहिए।

शंकर के नौ वर्ष की उम्र में संन्यस्त होने की धारणा का उदय, जब अभी जीवन देखा नहीं! तो जिस जीवन को अभी देखा नहीं है, उससे मुक्त होने का सवाल भी कहां उठता है! अभी दुख जाना नहीं, तो दुख से छुटकारे की बात ही क्या अर्थ रखती है! अभी भोग देखे नहीं, तो त्याग में क्या अर्थ हो सकता है!
निश्चित ही भोग बहुत बार देखे गए हैं। बहुत बार देखे गए भोगों का ही
यह सार निष्कर्ष है कि नौ वर्ष का बच्चा संन्यस्त हो जाना चाहता है। मुझसे कई बार लोग आकर पूछते हैं कि आप कभी-कभी छोटे बच्चे को भी संन्यास दे देते हैं! कोई छोटा बच्चा नहीं है। शरीर की उम्र वास्तविक उम्र नहीं है।
पश्चिम में एक धारणा मानसिक-उम्र की पैदा हुई है, मेंटल एज की। इस संदर्भ में ख्याल ले लेना चाहिए। फ्रांस में एक बहुत कीमती विचारक हुआ बिनेट। और बिनेट ने पहली दफा मनुष्य की मानसिक-उम्र की धारणा विकसित की। उसने कहा कि एक उम्र तो शरीर की होती है और एक उम्र मन की होती है। शरीर की उम्र के साथ मन की उम्र का कोई संबंध नहीं है। आप सत्तर साल के हो सकते हैं और मन की उम्र हो सकता है सात साल की हो। और उससे उलटा भी हो सकता है कि मन की उम्र सत्तर साल की हो और शरीर की उम्र सात साल की हो।
पिछले महायुद्ध में अमरीका ने अपने सैनिकों की मानसिक-उम्र का पता लगाना चाहा, तो बड़ी हैरानी का निष्कर्ष मिला। औसत उम्र सैनिकों की तेरह वर्ष थी मन की, शरीर की तो बहुत थी। मन वहां रुक गया जहां तेरह साल पूरे हुए।
अधिक लोगों की उम्र तेरह, चौदह साल से आगे नहीं जाती। जैसे ही व्यक्ति कामुक रूप से प्रौढ़ होता है, सेक्सुअली मेच्योर होता है, वहीं उसकी मानसिक-उम्र रुक जाती है। स्त्रियों की मानसिक-उम्र पुरुषों से भी पहले रुक जाती है। क्योंकि पुरुषों से कोई एक, डेढ़, दो वर्ष पहले कामुक रूप से प्रौढ़ हो जाती हैं। फिर वह उम्र वहीं रुकी रहती है, शरीर की उम्र बढ़ती चली जाती है लेकिन मन वहीं ठहरा रह जाता है।
बिनेट ने मन की उम्र खोजी, लेकिन पूरब के मनीषियों के पास तीन उम्रों
का हिसाब है। एक उम्र शरीर की, एक उम्र मन की और एक उम्र आत्मा की। उस आत्मा की उम्र का कोई हिसाब नहीं है। वह एक दिन के बच्चे के पास भी उतनी ही पुरानी है, जितनी किसी वृद्ध के पास है। आत्मा की उम्र की दृष्टि से हम सब समवयस्क हैं। हम सब की उम्र समान है।
तो नचिकेता पूछ रहा है, आत्मा की उम्र से। उसकी मानसिक-उम्र भी बड़ी प्रगाढ़ रही होगी। क्योंकि वह जो सवाल उठा रहा है, वे खबर देते हैं इस बात की कि उसके सवाल गहन अनुभव से निकले हुए हैं।
बूढ़ों को देखें, बच्चों को देखें। बच्चों में जरूर कभी कोई बूढ़ा मिल जाएगा। और बूढ़ों में तो अक्सर बहुत से बच्चे मिलेंगे। फर्क हो जाते हैं उम्र के साथ, पर फर्क ऊपरी हैं। छोटे बच्चे, छोटे लड़के और लड़कियां अपने गुड्डे-गुड्डियों का विवाह कर रहे हैं; बड़े-बूढ़े रामलीला कर रहे हैं! रामचंद्र जी बनाए हैं, सीताजी बनाई हैं, विवाह हो रहा है, जुलूस निकल रहा है। मन की उम्र नहीं बढ़ी। मन की उम्र वही की वही है। गुड्डे-गुड्डी थोड़े बड़े हो गए हैं, उनका नाम राम-सीता रख लिया है। लेकिन विवाह करने का गुड्डे- गुड्डियों का मजा वही है। जुलूस निकल रहा है। शोभायात्राएं हो रही हैं। अभी तो सारे मुल्क में हो रही हैं। अभी तो दिन हैं बूढ़े बच्चों के! शादी का मजा ले रहे हैं! शादी करवाने का मजा ले रहे हैं! बारात में सम्मिलित हो रहे हैं!
निश्चित ही बूढ़े जब बच्चों जैसा काम करते हैं तो उसको रेशनलाइज करते हैं, उसके आसपास तर्क बिठाते हैं। नहीं तो उनको अपने बूढ़ेपन पर शर्म मालूम होगी। उनको बेचैनी लगेगी।
छोटे बच्चे छोटी-छोटी चीजों पर लड़ते हैं। बड़े-बूढ़े भी कुछ बड़ी चीजों
पर लड़ते हुए मालूम नहीं पड़ते। छोटी ही उनकी लड़ाइयां हैं। लेकिन उम्र बड़ी होने के कारण अपनी छोटी बातों को वे बड़ा करके दिखलाते हैं।
अभी एक दिन मैं निकला, चौपाटी के पास से गुजर रहा था, मैंने देखा कि वहां स्कूल के बच्चे भी इकट्ठे हैं चौपाटी पर, बड़े नेता भी मौजूद हैं, और सब मिलकर गीत गा रहे हैं--झंडा ऊंचा रहे हमारा।

बचकानी बुद्धि की बात है। और झंडा क्या है! एक डंडे पर कपड़ा बांधा हुआ है; धारणा जोड़ी हुई है। उस झंडे के पीछे जानें चली जाएंगी। वह झंडा नीचा हो जाए तो सैकड़ों गर्दनें कट जाएंगी! और दूसरे का झंडा ऊंचा न होने पाए, और अपना झंडा ऊंचा रहे।
छोटे बच्चे अपने बाप के पास खड़े हो जाते हैं कुर्सी पर, और कहते हैं कि मैं तुमसे बड़ा हूं--यह झंडा ऊंचा रहे हमारा... । बाप मुस्कुराता है, अगर समझदार है। नहीं तो वह भी चोट खाता है। वह भी खड़ा हो सकता है कि नहीं, मैं तुमसे बड़ा हूं।
यह मैं बड़ा हूं, यह खोज ही बचकानी है। मगर बड़े इस बचकानी खोज के लिए तर्क देते हैं। वे ढंग से बताते हैं। वे ऐसा नहीं कहते कि मैं बड़ा हूं। ऐसा कहना बहुत छोटापन मालूम पड़ेगा। वे कहते हैं, मेरा राष्ट्र महान है। लेकिन मेरा राष्ट्र महान क्यों है? क्योंकि मैं इस राष्ट्र में पैदा हुआ हूं। मेरी वजह से। मैं अगर पाकिस्तान में पैदा होता, तो पाकिस्तान महान होता। और मैं अगर अफगानिस्तान में पैदा होता, तो अफगानिस्तान महान होता। जहां मैं हूं, वही राष्ट्र महान होता है। मेरा धर्म महान है। मेरा शास्त्र, मेरी गीता, मेरे पुराण, मेरे तीर्थंकर, मेरे भगवान, मेरे अवतार, वे बड़े हैं। उनके पीछे आड़ में हम बड़े हो जाते हैं। और यह पागलपन सारी दुनिया में सभी के ऊपर है।
ऐसा लगता है, मनुष्यता अभी तक प्रौढ़ नहीं हुई। पूरी मनुष्यता की औसत उम्र दस साल के करीब है। इसलिए इतने युद्ध होते हैं, इतनी मूढ़ताएं होती हैं। निपट अज्ञान से भरा हुआ सारा व्यवहार है।
अगर बूढ़े बचकाना व्यवहार करते हैं, तो कभी-कभी कोई बच्चा वृद्धों जैसा गौरवपूर्ण व्यवहार भी करता है। वह दूसरी संभावना ही नचिकेता का सार है। अब हम सूत्र में प्रवेश करें--
नचिकेता तीसरा वर मांगते हुए कहता हैः मरे हुए मनुष्य के विषय में यह संशय है--कोई तो यों कहते हैं कि मरने के बाद आत्मा रहता है! और कोई ऐसा कहते हैं कि नहीं रहता है। आपके द्वारा उपदेश पाया हुआ मैं इसका निर्णय भलीभांति समझ लूं, यही तीनों वरों में तीसरा वर है।
सारे धर्म की खोज यही है। इस एक बिंदु पर ही सारे धर्मों का अंतस्तल टिका हुआ है कि क्या शरीर की मृत्यु मनुष्य की मृत्यु है? क्या मर जाने के बाद सभी कुछ मर जाता है, या कुछ शेष रहता है? और यह इतना केंद्रीय सवाल है कि इस पर सभी कुछ निर्भर है। जीवन के सारे मूल्य, जीवन का सारा अर्थ, प्रयोजन, अभिप्राय, जीवन की सारी गरिमा, गीत, गौरव, सभी कुछ इस एक बात पर निर्भर है कि क्या शरीर के साथ सब कुछ समाप्त हो जाता है?
अगर शरीर के साथ सभी कुछ समाप्त हो जाता है तो न नीति में कोई अर्थ है,
न धर्म में कोई अर्थ है। न अच्छाई है फिर कुछ, न बुराई है फिर कुछ। क्योंकि अच्छे भी मिट्टी में मिल जाते हैं, बुरे भी मिट्टी में मिल जाते हैं। अच्छे आदमी की मिट्टी में और बुरे आदमी की मिट्टी में कोई गुणात्मक फर्क नहीं होता। एक चोर और एक साधु के मरे हुए शरीर में कोई भी तो भेद नहीं है। और अगर चोर भी वहीं पहुंच जाता है और साधु भी वहीं पहुंच जाता है, मिट्टी में, और दोनों समान हो जाते हैं, तो दोनों के जीवन में जो भेद था वह काल्पनिक था। क्योंकि मृत्यु ने प्रगट कर दिया कि सब भेद काल्पनिक थे। तुम अच्छे थे कि बुरे, दो कौड़ी की बात है।
अगर मृत्यु के साथ सब कुछ समाप्त हो जाता है, तो इस जगत में कोई नैतिक, कोई धार्मिक, किसी मूल्य का, किसी वैल्यू का कोई अर्थ नहीं है। फिर बेईमानी और ईमानदारी समान हैं। फिर हत्या और जीवनदान बराबर हैं। फिर हिंसा और अहिंसा में कोई भी फर्क नहीं है। फिर सत्य और असत्य में क्या भेद है? फिर मैं अच्छा रहूं या बुरा रहूं, जब अंत में सब समान ही हो जाता है, और अच्छे और बुरे दोनों ही मिट्टी में मिलकर खो जाते हैं, तो अच्छे होने की सारी आधारशिला गिर जाती है।
सारी साधुता एक ही धारणा पर टिकी है कि शरीर के साथ सब समाप्त नहीं होता। और जीवन का अर्थ इसी बात पर निर्भर है कि शरीर जब गिरता है तो कुछ बिना गिरा भी शेष रह जाता है। शरीर जब मिटता है मिट्टी में, तो सभी कुछ

मिट्टी में नहीं गिरता। कुछ मेरे भीतर, कोई ज्योति, किसी और यात्रा पर निकल जाती है। मैं बचता हूं किसी अर्थों में।
अगर मैं बचता हूं, तो ही मेरे जीवन का भेद बचता है। अगर मैं ही नहीं बचता, तो क्या भेद है? फिर तो शायद जिन्हें हम बुरा कहते हैं वे ही ज्यादा समझदार हैं। जिन्हें हम भला कहते हैं वे नासमझ हैं।
अगर आत्मा भी मरणधर्मा है, तो साधु मूढ़ हैं, ध्यानी अज्ञानी हैं। मंदिरों में पागलों की जमात है। मस्जिदों में नमाज पढ़ते हुए लोग विक्षिप्त हैं। क्योंकि वे जो भी कर रहे हैं, वह किसी अर्थ का नहीं है। फिर आप प्रार्थना करें या जुआ खेलें, बराबर है।
आत्मा अगर बचती है शरीर के बाद, तो ही मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारा; कुरान और बाइबिल और वेद कुछ अर्थ रखते हैं। महावीर, बुद्ध, कृष्ण और क्राइस्ट और मुहम्मद में कुछ भेद है, कुछ राज है उनके पास। वे किसी महान जीवन की कुंजी की खोज कर रहे हैं।
लेकिन अगर शरीर के साथ सब समाप्त हो जाता है, तो कैसी कुंजी और किसकी खोज! तब जीवन एक व्यर्थ दौड़धूप है।
शेक्सपियर का वचन बड़ा महत्वपूर्ण है--ए टेल टोल्ड बाइ एन ईडिएट, फुल
आफ फ्यूरी एंड नॉइ.ज, सिग्नीफाइंग नथिंग--एक मूढ़ द्वारा कही हुई कथा जैसा है जीवन; जिसमें शोरगुल तो बहुत है, मतलब बिल्कुल भी नहीं।
आत्मा की अमरता, आत्मा का शेष रहना शरीर के पार, आत्मा का अतिक्रमण करना शरीर को; दीया मिट जाए, लेकिन ज्योति बचती है; यह सवाल नचिकेता उठाता है। नचिकेता कहता है, बड़ा संशय है। कोई कहता है कि आत्मा बचती है और कोई कहता है कि आत्मा नहीं बचती। मृत्यु के बाद क्या होता है? यही मेरा तीसरा वर है, यही मैं जान लेना चाहता हूं।
यही प्रत्येक जान लेना चाहता है। अगर मृत्यु के बाद कुछ बचता है, तो अभी भी आपके भीतर कुछ है। और अगर मृत्यु के बाद कुछ भी नहीं बचता, तो अभी भी आपके भीतर कुछ भी नहीं है। अभी भी आप खाली, कोरे, एक यंत्रवत। एक यंत्र से ज्यादा नहीं हैं। आप अभी भी नहीं हैं--अगर मृत्यु के बाद आप नहीं बचेंगे। तो धोखा है, आपको सिर्फ ख्याल है कि आप हैं--अगर आप पदार्थ का एक जोड़ हैं, और एक रासायनिक व्यवस्था हैं, और एक यंत्र की भांति चल रहे हैं।
एक कार चल रही है, एक घड़ी चल रही है, एक मशीन चल रही है, लेकिन हम यह नहीं कह सकते कि मशीन है। मशीन सिर्फ एक जोड़ है। कल-पुर्जे अलग कर लेंगे, कुछ भी पीछे बचेगा नहीं।
आदमी भी क्या एक जोड़ है, कि सारे कल-पुर्जे अलग कर लें तो भीतर कुछ भी न बचे? क्योंकि मृत्यु कल-पुर्जे अलग करेगी। और अगर भीतर कुछ भी नहीं बचता, आप सिर्फ एक जोड़ हैं--तो आप थे ही नहीं। आपका होना ही नहीं है। आप सिर्फ ख्याल में हैं। एक वहम है होने का।
न तो आपकी बुद्धि से पता चलता है कि आपके भीतर आत्मा है। क्योंकि आप जितनी बुद्धिमानी का काम करते हैं, उससे ज्यादा बुद्धिमानी का काम करने वाले यंत्र, कंप्यूटर खोज लिए गए हैं। आप जितनी कुशलता से काम करते हैं, उससे कुछ आत्मा का पता नहीं चलता, क्योंकि यंत्र की कुशलता आप नहीं पा सकते। यंत्र ज्यादा कुशल है। और इसलिए जहां भी ज्यादा कुशलता की जरूरत होती है, वहां आदमी का भरोसा नहीं किया जा सकता। वहां यंत्र का भरोसा करना होता है।
आपकी खूबी क्या है? कि आप गणित कर लेते हैं? कि आप भाषा बोल लेते हैं?
ये सब काम यंत्र कर सकते हैं। उन्होंने करीब-करीब करना शुरू कर दिया है। आदमी की विशिष्टता, यंत्रों से, इसमें नहीं है कि वह बुद्धिमान है। आइंस्टीन भी जो काम कर रहा है, वह काम भी उससे ज्यादा कुशलता से एक कंप्यूटर कर सकता है। तो फिर आपका मस्तिष्क एक यंत्र, कंप्यूटर से ज्यादा नहीं है। आप भी एक यंत्र हैं।
आदमी बच्चे पैदा करता है। लेकिन अभी वैज्ञानिकों ने ऐसे यंत्र विकसित किए हैं, जो अपने बच्चे पैदा कर सकते हैं। यंत्र खुद ही अपने जैसा यंत्र अपने भीतर से पैदा कर सकता है, निर्मित कर सकता है। तब फिर वह भी कोई बड़ी बात नहीं रह गई। यंत्र अपने जैसा यंत्र स्वयं ही निर्मित कर सकता है, आटोमैटिक। और ऐसी भी व्यवस्था की गई है कि वह आने वाले यंत्र में, जो उससे

पैदा होगा, अपने से श्रेष्ठता लाए। और इस तरह हर यंत्र जो उससे पैदा होगा, और आगे पैदा होगा, वह पिछले से श्रेष्ठ होता चला जाएगा।
आपका बेटा जरूरी नहीं है कि आपसे श्रेष्ठ हो। अक्सर तो ऐसा नहीं होता। अच्छे बाप अक्सर बुरे बेटों को जन्म देते हैं। यंत्र में ऐसी आंतरिक व्यवस्था की जा सकी है कि वह जो यंत्र पैदा करे, उससे श्रेष्ठ हो। जो-जो उसमें भूल-चूक थीं, वह उसमें न हों। फिर उसके बाद वह जो यंत्र पैदा करेगा, वह और भी श्रेष्ठ होगा। और एक ऐसी जगह आ सकती है कि यंत्र पैदा करते- करते श्रेष्ठतम यंत्र को पैदा कर दे, जो कि आदमी अभी तक सफल नहीं हुआ है। और आप जिनको सुख-दुख कहते हैं, वे भी सारी यांत्रिक घटनाएं हैं।
स्किनर एक बहुत बड़ा मनसविद है। स्किनर ने बहुत से प्रयोग किए हैं जिनमें आपके सुख-दुख यांत्रिक हैं, इसकी खोज की है। मनुष्य जिस सुख को गहरा से गहरा जानता है, वह संभोग का सुख है। लेकिन स्किनर, देलगादो और दूसरे मनोवैज्ञानिकों की खोज बड़ी हैरान करने वाली है।
चूहों पर स्किनर और उसके मित्र काम कर रहे थे। उन्होंने मस्तिष्क में
वे बिंदु खोज लिए हैं जहां सुख का अनुभव होता है--प्लेजर प्वाइंट्स, और वे भी बिंदु खोज लिए हैं जहां दुख का अनुभव होता है। तो बिजली का तार जोड़ देते हैं जहां सुख का अनुभव होता है। और उस बिंदु को अगर बिजली से छेड़ा जाए, तो बड़ा सुख मालूम होता है। दुख का बिंदु जोड़ दिया जाए इलेक्ट्रोड से, तो बड़ा दुख मालूम होता है।
एक चूहे पर स्किनर प्रयोग कर रहा था। और संभोग के क्षण में चूहे को जो
रस और आनंद मालूम होता है, वह मस्तिष्क के किस हिस्से में मालूम होता है उस हिस्से का उसने अध्ययन किया, और उस हिस्से में उसने बिजली से तार जोड़ दिया। और चूहे को बटन बता दी, बटन दबाकर। और जैसे ही बटन दबाई, चूहा बड़ा आनंदित हुआ। फिर तो चूहे ने खुद बटन दबाना सीख लिया। आप चकित होंगे कि एक घंटे में चूहे ने पांच हजार बार बटन दबाई। पांच हजार! रुका ही नहीं, जब तक कि बेहोश होकर नहीं गिर पड़ा।
स्किनर का कहना है कि आने वाली सदी में हम हर आदमी के खीसे में रखने वाला छोटा यंत्र दे देंगे। पुरुष को स्त्री की जरूरत नहीं है, स्त्री को पुरुष की जरूरत नहीं है। जब भी वह कामसुख पाना चाहे, जरा-सा बटन को दबाए, उसके मस्तिष्क का सुख-केंद्र संचालित हो जाएगा। रास्ते पर चलते हुए आप संभोग करते चले जाएंगे। किसी को पता भी नहीं चलेगा। और संभोग के लिए जो उपद्रव झेलने पड़ते हैं--घर-गृहस्थी बसाओ; एक स्त्री की परेशानी भोगो; एक पति का उपद्रव झेलो--वह कुछ भी नहीं। आप पूरी तरह मालिक हो जाते हैं।
ठीक ऐसे ही दुख के केंद्र भी मस्तिष्क में हैं। स्किनर कहता है कि वे काटकर अलग किए जा सकते हैं। कोई दुख अनुभव ही नहीं होगा। आप सोचते हैं कि दुख इसलिए अनुभव होता है कि दुख है, तो आप गलती में हैं। सिर्फ आपके पास दुख का केंद्र है, वह अलग कर दिया जाए, आपको दुख अनुभव नहीं होता। जब आपको मारफिया दिया जाता है, या क्लोरोफार्म दिया जाता है, तो दुख का केंद्र आच्छादित हो जाता है। इसीलिए फिर आपका हाथ-पैर भी काटा जाए तो आपको पता नहीं चलता। आपको कोई मार भी डाले तो पता नहीं चलता।
ये सारे केंद्र यांत्रिक हैं। और आप जानकर हैरान होंगे कि ये नई खोजें आदमी को बड़ी खतरनाक स्थिति में ले जाएंगी।
देलगादो ने रेडियो के द्वारा दूर से लोगों के मन को संचालित करने के प्रयोग किए हैं। तो उसने एक सांड को, उसके मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड डाल दिए... और आप जानकर चकित होंगे कि आपके मस्तिष्क के भीतर अगर कोई चीज डाल दी जाए तो आपको पता नहीं चलेगा। वहां कोई संवेदना नहीं है। अगर आपके ब्रेन की सर्जरी की जाए और वहां कोई चीज छोड़ दी जाए--लोहे का एक टुकड़ा--तो आपको कभी पता नहीं चलेगा कि वहां लोहे का टुकड़ा पड़ा है। क्योंकि आपके मस्तिष्क में संवेदन अनुभव करने वाले कोई स्नायु नहीं हैं।
यह बड़ी हैरानी की बात है कि मस्तिष्क सब कुछ अनुभव करता है, लेकिन भीतर उसके पास कोई स्नायु नहीं हैं। इसलिए तो आपको मस्तिष्क के भीतर क्या चल रहा है, उसका पता नहीं चलता। बहुत बड़ा काम चल रहा है। बड़ी फैक्ट्री है। कोई सात करोड़ स्नायु हैं। चौबीस घंटे वहां विद्युत की तरह भाग-दौड़ चल रही है। आपको पता नहीं चलता है।

एक सांड के मस्तिष्क में देलगादो ने एक इलेक्ट्रोड रख दिया और उस इलेक्ट्रोड का संबंध उसके रेडियो से है। और वह उस रेडियो के द्वारा उस सांड को संचालित करने लगा। जब वह रेडियो में उस बटन को दबाएगा जिससे सांड को क्रोध आना चाहिए, तो सांड एकदम फुफकार मारकर क्रोध से भर जाएगा। बीच में तार भी नहीं जुड़ा है, वायरलेस से संबंधित है। हजारों मील दूर भी बैठा हो देलगादो तो वहां से वह सांड को--सांड माउंट आबू में हो और देलगादो अमरीका में--तो वहां से वह उसको क्रोधित कर सकता है। सिर्फ बटन दबाने की बात है कि वह क्रोध में आ जाएगा; फुफकार मारेगा और जो भी आसपास होगा, हमला कर देगा।
उसने जब अपने प्रयोग का प्रदर्शन किया यूरोप में--स्पेन में--तो लोग चकित हो गए। लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए थे। सांड फुफकार मारकर भागा, क्योंकि देलगादो भी था वहां मैदान में। वह हाथ में अपना रेडियो लिए खड़ा हुआ है। वह ठीक उसके पास आ गया, एकदम घबड़ाहट का क्षण था, कि वह अपने सींग घुसेड़ देगा उसके पेट में, तभी उसने बटन दबाई। सांड वहीं शांत हो गया, एक फीट दूरी पर। खड़ा हो गया, जैसे एकदम ध्यान में चला गया!
यह इतनी खतरनाक स्थिति है कि इसका आज नहीं कल राजनीतिज्ञ उपयोग करेंगे। बच्चों को अस्पताल में पैदा होने के साथ ही इलेक्ट्रोड डाले जा सकते हैं, जिनका उनको कभी पता नहीं चलेगा। सिर्फ दिल्ली से बटन दबाने की जरूरत है कि सब लोग कहेंगे--झंडा ऊंचा रहे हमारा!
जरूर तानाशाही हुकूमतें इसका उपयोग करेंगी। कि मुल्क भूखा मर रहा हो
तो भी कोई फिक्र नहीं। लेकिन मुल्क के अगर सुख के संवेदन को संचालित किया जा सके, तो भूखे लोग भी आनंद से भर जाएंगे। कितने ही आप सुखी हों, अगर आपके दुख के केंद्र को संचालित किया जा सके, आप तत्क्षण दुखी हो जाएंगे।
तो सुख-दुख भी आपकी आत्मा की खबर नहीं देते। सिर्फ आपके यांत्रिक मस्तिष्क की खबर देते हैं।
सिर्फ एक ही संभावना है जिससे आदमी यंत्रवत नहीं है, और सभी स्थितियों में हम यंत्रवत हैं। शरीर है भी यंत्र, लेकिन उसके भीतर जो छिपा है, वह यंत्र नहीं है। शरीर है भी एक बहुत कांप्लिकेटेड, बहुत सूक्ष्म नाजुक यंत्र। मालिक भीतर छिपा है।
नचिकेता पूछता है कि यह मेरा तीसरा वरदान है कि मैं जानना चाहता हूं
कि जब यह सारा यंत्र-शरीर गिर जाएगा, तब भी मैं बचता हूं या नहीं? संशय है बहुत, क्योंकि कुछ कहते हैं कि कोई बचता है पीछे; और कुछ कहते हैं, कोई भी नहीं बचता।
यमराज को विचार हुआ कि अनधिकारी के प्रति आत्मतत्व का उपदेश करना हानिकर होता है।
यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। अनधिकारी के प्रति, अपात्र के प्रति आत्मतत्व का उपदेश हानिकर होता है। असल में जो अनधिकारी है, वह सत्य का उपयोग भी हानि के लिए ही करेगा। जो अधिकारी है वह असत्य का उपयोग भी कल्याण के लिए करेगा।
आपको जो शिक्षा दी जाती है वह शिक्षा मूल्यवान नहीं है, आपका अधिकारी
और अनधिकारी होना मूल्यवान है। उदाहरण के लिए, अनधिकारियों ने सभी शिक्षाओं का दुरुपयोग किया है। इस देश में हमने पुनर्जन्म की शिक्षा दी। उनका प्रयोजन था कि तुम जिस सुख की तलाश कर रहे हो, वह व्यर्थ है। तुम बहुत बार उसकी तलाश कर चुके हो, और बहुत बार तुम्हें वह सुख मिल भी चुका है, फिर भी तुमने कुछ नहीं पाया। न-मालूम कितनी बार तुम स्त्रियों से प्रेम जुटा चुके हो, पुरुषों से प्रेम बांध चुके हो। न-मालूम कितने महल तुमने बनाए, न-मालूम कितनी धन-संपत्तियां इकट्ठी की हैं, और हर बार तुम दुखी मरे हो। और वही तुम फिर कर रहे हो!
यह स्मरण आ जाए कि यही मैं बहुत बार कर चुका और कुछ भी न पाया, और यही मैं फिर कर रहा हूं, तो हाथ रुक जाएंगे।
लेकिन अनधिकारियों ने क्या किया? उन्होंने कहा कि जब बहुत जन्म हैं,
तो जल्दी क्या है? आत्मतत्व को खोज लेंगे कभी भी। भोग तो क्षणभंगुर हैं, अगर न खोज पाए अभी, तो खो जाएंगे। यह आत्मतत्व तो शाश्वत है, मिटता नहीं, बार-बार जन्म लेता है। इस जन्म में न मिली समाधि तो अगले जन्म में मिल

जाएगी। जल्दी जरा भी नहीं है। अनधिकारी ने जो अर्थ निकाला... । अधिकारी ने कहा था कि तुम ऊब जाना, अनधिकारी ने सोचा कि जल्दी नहीं है!
इसलिए आप हैरान होंगे कि पूरब के मुल्कों में टाइम कांशसनेस नहीं है; समय की कोई प्रतीति नहीं है। एक आदमी आपसे कहता है कि मैं पांच बजे आऊंगा। वह दस बजे रात तक न आए! समय का कोई बोध नहीं है, क्योंकि समय अनंत है। बोध तो तब होता है, जब चीजें कम होती हैं। गरीब को धन का बोध होता है। एक पैसा खो जाए तो पता चलता है, क्योंकि इतना कम है। कुबेर को क्या बोध होगा, एक पैसा खो जाए तो कुछ भी नहीं खोता। करोड़ भी खो जाएं तो भी कुछ नहीं खोता, क्योंकि अनंत धनराशि है।
पूरब के मुल्कों में समय की धारणा नहीं है। इसलिए पूरब के मुल्क घड़ी
की ईजाद न कर सके। वह पश्चिम को करनी पड़ी। पश्चिम में समय का बोध है। समय भागा जा रहा है। और समय थोड़ा है। क्योंकि जीसस और मुहम्मद ने जो शिक्षा दी, और मो.जेज ने, वह यह थी कि एक ही जन्म है।
अब यह बड़े मजे की बात है। उन्होंने भी शिक्षा इन्हीं अनधिकारियों को देखकर दी, क्योंकि पूरब में गलती हो चुकी थी। पूरब भूल कर चुका था। अनंत जन्मों की बात करके नासमझ बड़े मजे में हो गए थे। तो पश्चिम में... पश्चिम के धर्म बाद में पैदा हुए पूरब के धर्मों से, इसलिए पूरब में जो भूल हो गई थी उससे उन्होंने बचना चाहा। लेकिन उन्हें पता नहीं कि अनधिकारी बड़ा कुशल है। आप उसे बचा ही नहीं सकते। अगर खाई से बचाएंगे, वह कुएं में कूद पड़ेगा। तो जीसस, मुहम्मद और मो.जेज ने कहा कि एक ही जन्म है, यह पुनर्जन्म व्यर्थ है, गलत है यह बात। यह बात गलत नहीं है। लेकिन पूरब के अनधिकारी ने जो किया था उसका परिणाम यह था, कि यह खतरा पश्चिम में न हो जाए। जीसस ने जोर दियाः एक ही जन्म है। इसलिए तुम्हें जो भी करना है--ध्यान, प्रार्थना, पूजा, जीवन का रूपांतरण--अभी कर लो, आगे समय नहीं है। इसे तुम पोस्टपोन मत करो। इसे तुम स्थगित मत करो। एक-एक क्षण कीमती है। क्योंकि दुबारा नहीं मिलेगा। समय की संपदा सीमित है।
अनधिकारी ने सुना, उसने कहा, अगर समय की संपदा इतनी सीमित है तो जिस आत्मा का हमें कोई पता नहीं, और जिस परमात्मा की सिर्फ बातचीत सुनते हैं, जिसका हमें कोई अनुभव नहीं, उस खाली कल्पना की बात के लिए हम इस वास्तविक जगत को छोड़ दें! और एक ही जन्म है! और एक दफा छूटा तो सदा के लिए छूटा!
तो पश्चिम ने कहा कि हाथ की आधी रोटी सपनों की पूरी रोटी से बेहतर है।
वे दूर के सपने पता नहीं हों या न हों, और जीवन दुबारा नहीं है। इसलिए भोग लो। इसलिए सारा पश्चिम जीसस, मो.जेज, और मुहम्मद की शिक्षाओं का जो फायदा उठाया, वह यह है कि भोगो, क्योंकि समय बहुत कम है। जितने जल्दी भोग लो, जितने ज्यादा भोग लो। और मृत्यु के बाद का किसको पता है! इसलिए उस अंधेरे की बात के लिए, जो रोशनी में मिल रहा है उसे छोड़ना उचित नहीं है।
इसलिए पश्चिम में--बुद्ध, कृष्ण, महावीर की शिक्षाओं से जो भूल भारत में हुई थी--ठीक वही भूल, ठीक उलटी शिक्षा जीसस ने और मुहम्मद ने और मो.जेज ने दी, पश्चिम में हुई। पूरब भोगता है इसलिए कि बहुत जन्म हैं, जल्दी क्या है! पश्चिम भोगता है इसलिए कि इतना कम समय है कि भोग छोड़ा नहीं जा सकता! और बाकी बातें इतनी अंधेरे में हैं कि उनका कोई भरोसा नहीं है।
बड़े मजे की बात है--शिक्षा कोई भी हो, अनधिकारी हमेशा हानि ही उठाता है।
यम सोचने लगा कि नचिकेता अभी इतना छोटा है, उम्र इसकी कम है, नासमझ है-- निर्दोष है, शुद्ध है, लेकिन अनुभव नहीं है। इस अनधिकारी को मैं आत्मतत्व की बात कहूं, तो कहीं कोई खतरा न हो, कहीं यह कोई अपने मतलब न निकाल ले। बहुत से ज्ञानी चुप रह गए हैं, आपके डर से! इसलिए नहीं कि वे जो कहना चाहते थे वह बिल्कुल कहा नहीं जा सकता। कहना कठिन है, लेकिन कहा जा सकता है। लेकिन आपके डर से! क्योंकि आपसे कुछ भी कहो, आप उससे वही निकाल लेंगे जो नर्क की तरफ ले जाता है। बहुत ज्ञानी चुप रह गए। लेकिन उनकी चुप्पी से कोई फर्क नहीं पड़ता, आप उनकी चुप्पी से भी वह मतलब निकाल लेते हैं, जो उनका कभी नहीं था। इसलिए बहुत ज्ञानी बोले कि कहीं चुप्पी से आप कुछ मतलब न निकाल लो, जो और भी खतरनाक होगा।

बुद्ध चुप रह गए, बहुत से सवालों के जवाब नहीं दिए। सिर्फ इसलिए कि उन सवालों के जवाब अनधिकारियों को बड़े उपद्रव में ले जाएंगे। बुद्ध के मरते ही बुद्ध के संप्रदाय पच्चीस हो गए। क्योंकि अलग-अलग अनधिकारियों ने चुप्पी का अलग-अलग मतलब निकाला। अगर बुद्ध कुछ बोले होते तो भी ठीक था। अब तो कुछ था ही नहीं, बुद्ध चुप क्यों रहे, इसका चिंतन करना शुरू किया। किसी ने कहा कि बुद्ध इसलिए चुप रहे कि आत्मा के संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता। किसी ने कहा, बुद्ध इसलिए चुप रहे कि आत्मा है ही नहीं, बोलना क्या है!
आप मौन के भी तो अर्थ निकालेंगे ही। तो कुछ ज्ञानी इस डर से कि आप मौन
से कुछ गलत अर्थ न निकालें, बोलते रहे। आप बोलने से भी गलत अर्थ निकाल लेते हैं। ज्ञानी की बड़ी मौत है। वह जो भी कहेगा... !
यम सोचने लगा कि इस नचिकेता को मैं कहूं या न कहूं! पहले उसने टालने की कोशिश की।
कोई भी गुरु यही कोशिश करेगा। और जो गुरु टाले न, समझना कि अभी गुरु के योग्य नहीं है। टालने की कोशिश करेगा, क्योंकि अगर तुम राजी हो जाओ छोटी चीजों से तो वह खबर देती है कि तुम अपात्र थे। तुमने मांगा हीरा, तुम मांगते थे कोहनूर, और एक कंकड़ उठाकर दे दे गुरु, और तुम उससे राजी हो जाओ, समझ लो कि यह कोहनूर है, तो इसका अर्थ यह हुआ कि कोहनूर के तुम पात्र न थे और देना भूल हो जाती।
जो कंकड़ को कोहनूर समझ ले, वह किसी भी दिन कोहनूर को कंकड़ समझ सकता है। उसमें जरा भी भेद नहीं है। उसके पास बोध भी नहीं है, परख भी नहीं है, कसौटी भी नहीं है। कशिश... न, उसके पास कुछ भी नहीं है।
तो यम नचिकेता से कहने लगा--हे नचिकेता! इस विषय में पहले देवताओं ने
भी संदेह किया था, परंतु उनकी भी समझ में नहीं आया। क्योंकि यह विषय बड़ा सूक्ष्म है और सहज ही समझ में आने वाला नहीं है। इसलिए तू दूसरा वर मांग ले, मुझ पर दबाव मत डाल। इस आत्मज्ञान संबंधी वर को तू छोड़ दे।
बहुत बातें महत्वपूर्ण कही हैं। एक, कि देवताओं तक को इसमें संदेह है। जो स्वर्ग में बसे हैं, जो सुख में जी रहे हैं प्रतिपल, वे तक संदिग्ध हैं। तो तू तो पृथ्वी पर रहने वाला है, तू इस उलझन में मत पड़। जो सब तरह शुभ हो गए हैं, जिन्होंने सब शुभ कर्मों का संचय कर लिया है, वे भी संदिग्ध हैं--देवता भी संदिग्ध हैं, उन्हें भी पक्का पता नहीं है--तो तू इस चिंता में मत पड़।
बुद्ध को ज्ञान हुआ, तो कहते हैं, खुद ब्रह्मा बुद्ध के चरणों में आया,
और उसने कहा कि मुझे भी बताएं। माना कि मैंने दुनिया को बनाया है, लेकिन मुझे भी यह पता नहीं कि जब सब समाप्त हो जाता है, तो क्या बचता है? तो ब्रह्मा भी एक बड़ा इंजीनियर है, बड़ा शक्तिशाली है, संसार को बनाता है, लेकिन वह भी पूछता है कि प्रलय के बाद कुछ बचता है या नहीं? और मेरे भीतर जो छिपा है वह अमरत्व है या मरणधर्मा है?
महावीर के जीवन में कथाएं हैं--कि महावीर को सुनने वाले बहुत तरह के लोग थे। उनमें मनुष्य थे, उनमें देवता थे, उनमें पशु-पक्षी थे। देवता महावीर को सुनने किसलिए आते होंगे? देवता को तो कम से कम पता होना चाहिए। लेकिन देवता की हमारी धारणा समझ लें।
नर्क है उन लोगों का जिन्होंने जीवन में मूर्च्छा से ही सब कुछ किया। जिन्होंने जीवन में पाप ही पाप किया, जिन्होंने दूसरे को दुख पहुंचाने में ही अपना सुख माना, नर्क है उनका। स्वर्ग है उनका, जिन्होंने दूसरे को सुख पहुंचाने में ही अपना सुख समझा। जो पुण्य में जीए।
लेकिन ध्यान रहे, नर्क और स्वर्ग में एक बात समान हैः दोनों का ध्यान दूसरे पर है। दूसरे को दुख पहुंचाने में जिसने अपना सुख समझा, उसका है नर्क। दूसरे को सुख पहुंचाने में जिसने अपना सुख समझा, उसका है स्वर्ग। लेकिन दोनों का ध्यान दूसरे पर है। देवता भी उतने ही भ्रमित हैं, जितने नारकीय व्यक्ति। दूसरे पर ही नजर है।
ज्ञानी का अर्थ है, वह जिसकी नजर दूसरे से हट गई। न जो दूसरे को दुख पहुंचाने में उत्सुक है और न दूसरे को सुख पहुंचाने में उत्सुक है। जो अपने को जगाने में उत्सुक है।

इसलिए हमारे पास तीन शब्द हैं--नर्क, स्वर्ग और मोक्ष।
मोक्ष स्वर्ग का नाम नहीं है। मोक्ष वह है जहां व्यक्ति दूसरे से पूरी तरह मुक्त हो गया, जहां व्यक्ति स्वयं में पूरी तरह ठहर गया, स्वयं सिद्ध हो गया। जहां व्यक्ति ने स्वयं के होने की पूर्णता पा ली और जान ली, वहां व्यक्ति मुक्त है।
देवता भी मुक्त नहीं हैं। नर्क में जो बंधे हैं, वे दुख से बंधे हैं, उनकी जंजीरें लोहे की हैं। स्वर्ग में जो बंधे हैं, वे पुण्य से बंधे हैं, उनकी जंजीरें सोने की हैं। पर जंजीरें दोनों की हैं।
देवता भी इस संबंध में संदिग्ध हैं, यम ने नचिकेता को कहा, और यह विषय बड़ा सूक्ष्म है, सहज ही समझ में आने वाला नहीं है।
सच तो यह है कि समझ में आने वाला ही नहीं है। और जब तक समझ रहती है तब
तक समझ में नहीं आता। समझ जब छूटती है, सोच-विचार जब छूटता है, जब बुद्धि का भरोसा चला जाता है, तब समझ में आता है। यही उलझन है। और यही पात्रता- अपात्रता के बीच भेद-रेखा है। जब तक आप सोचते हैं, जब तक आप विचारते हैं, जब तक आप तर्क से चलते हैं, जब तक आप बुद्धि को परम मानते हैं, तब तक मृत्यु के पार क्या है वह समझ में न आ सकेगा।
बुद्धि की सीमा-रेखा पदार्थ है। बुद्धि जान सकती है आब्जेक्ट को, विषय को। बुद्धि नहीं जान सकती सब्जेक्ट को, विषयी को। बुद्धि देखती है बाहर, भीतर नहीं देख सकती। आप चश्मा लगाते हैं तो बाहर देखने के काम आता है, सपने में कोई चश्मा लगाने की जरूरत नहीं पड़ती। भीतर देखने के लिए चश्मा काम नहीं आता।
बुद्धि ठीक बाहर देखने की व्यवस्था है। मुझे आपको देखना है, तो मैं बुद्धि से देखूंगा। मुझे संसार की खोज करनी है, तो बुद्धि से करनी पड़ेगी। इसलिए विज्ञान बुद्धि-निर्भर है। लेकिन मुझे स्वयं को देखना है तो बुद्धि की कोई भी जरूरत नहीं है। इसलिए धर्म बुद्धिमुक्त है।
धर्म है बुद्धि के पार जाना, विज्ञान है बुद्धि के साथ बुद्धि में जाना। इसलिए धर्म और विज्ञान एक-दूसरे की तरफ विपरीत खड़े हुए हैं।
विज्ञान धर्म की बात नहीं समझ पाता और धर्म विज्ञान की बात नहीं समझ पाता। यह स्वाभाविक है। क्योंकि धर्म का जो साधन है, वह है बुद्धि-अतिक्रमण। और विज्ञान का जो साधन है, वह है बुद्धि की प्रक्रिया। उनकी मेथडॉलॉजी, उनकी जो पद्धति है, वह इतनी विपरीत है कि दोनों की भाषाएं बेबूझ हो जाती हैं। यम कहता है कि बहुत कठिन है यह बात, अति सूक्ष्म है। सहज समझ में आने वाली नहीं है। असहज हो सकें, तो समझ में आ सकती है। बुद्धि की प्रक्रिया सहज है। बुद्धि की प्रक्रिया को छोड़कर ध्यान में लीन हो जाना बड़ा असहज है-- बुद्धि को जो लोग जी रहे हैं उनके लिए। एक बार जो ध्यान में प्रवेश कर जाता है, उसके लिए तो ध्यान सहज हो जाता है; उसके लिए बुद्धि असहज हो जाती है। लेकिन जब तक हम बुद्धि में जीते हैं, तब तक बड़ी कठिन बात है ध्यान में प्रवेश।
यम कहता है कि सूक्ष्म है, सहज समझ में आने वाली बात नहीं, इसलिए तू दूसरा वर मांग ले। मुझ पर दबाव मत डाल। इस आत्मज्ञान संबंधी वर को छोड़ दे। लेकिन नचिकेता इस कठिनाई को सुनकर घबड़ाया नहीं। न उसका उत्साह मंद हुआ। वरन उसने और भी दृढ़ता से कहा कि हे यमराज! आपने जो यह कहा कि सचमुच इस विषय पर देवताओं ने भी विचार किया, परंतु वे भी निर्णय नहीं कर पाए और यह सरलता से जानने योग्य भी नहीं है। इतना ही नहीं, इसके सिवाय इस विषय का कहने वाला भी आपके जैसा दूसरा नहीं मिल सकेगा। इसलिए मेरी समझ में तो इसके समान दूसरा कोई वर नहीं है।
निश्चित ही मृत्यु के अतिरिक्त और कौन बता सकेगा कि मृत्यु के पार कुछ बचता है या नहीं? मृत्यु ही पूछने योग्य है। क्योंकि वह राज उसी को पता है। और जो मृत्यु से पूछ लेता है, उसको ही पता चलता है।
इसलिए मैंने कहा, जब तक आप मरने की कला न सीख जाएं, तब तक आपको पता नहीं
चल सकता कि मृत्यु के पार कुछ बचता है या नहीं। मरने की कला का अर्थ हैः यम के सामने खड़ा हो जाना। सीधा उसी से पूछ लेना, जो दरवाजे पर खड़ा है, जिसके पास से होकर सभी को गुजरना पड़ा है, बहुत-बहुत बार। लेकिन मूर्च्छित, लोग गुजर जाते हैं। होश से आप गुजर जाएं तो मृत्यु से प्रश्न पूछा जा सकता है।

नचिकेता और भी दृढ़ता से पूछता है कि जिसे देवता भी नहीं जान सके और जो इतना कठिन है, तब तो मैं छोडूंगा ही नहीं। क्योंकि आप जैसा फिर बताने वाला मैं कहां पाऊंगा? फिर मुझे कौन बता सकेगा? देवता बता नहीं सकते--खुद संदिग्ध हैं। बुद्धि से समझ में आने वाला नहीं है--बुद्धि मेरे पास है, लेकिन उससे समझ में आने वाला नहीं है, इसलिए वह खोज व्यर्थ है। और आप जैसा कोई बताने वाला दुबारा मैं न पा सकूंगा, इसलिए यह वर मैं छोड़ नहीं सकता। नचिकेता घबड़ाया नहीं। निश्चय पर ज्यों का त्यों दृढ़ रहा, और एक परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। यम ने देखा कि व्यक्ति संकल्प का है। सिर्फ कठिनाई से भाग जाने वाला नहीं है। टिक सकता है। आग में उतरने की तैयारी है। तो उसने दूसरी परीक्षा का आयोजन किया। उसने विभिन्न प्रकार के प्रलोभन रखे।
उसने कहा, सैकड़ों वर्षों की आयु वाले बेटे और पोतों को, तथा बहुत से गौ आदि पशुओं को एवं हाथी, स्वर्ण और घोड़ों को मांग ले। भूमि के बड़े विस्तार वाले साम्राज्य को ले ले। तू स्वयं भी जितने वर्ष तक जीना चाहे जी।
हे नचिकेता! धन, संपत्ति और अनंतकाल तक जीने के साधनों को यदि तू इस आत्मज्ञान विषयक वरदान के समान वर मांग ले, तो तू पृथ्वीलोक में बड़े भारी सम्राट की स्थिति को उपलब्ध हो जाएगा। मैं तुझे संपूर्ण भोगों से अति उत्तम भोगों को भोगने वाला बना देता हूं।
यह समझने जैसा है। जो व्यक्ति भी ध्यान में प्रवेश करते हैं, वह क्षण आता है जब उनकी भोगने की क्षमता इस संसार में सर्वाधिक तीव्र हो जाती है। यह कथा ही नहीं है। ध्यानी अगर संभोग करे, तो जैसा रस पा सकता है वैसा गैर-ध्यानी कभी नहीं पा सकता। क्योंकि ध्यानी की सेंसिटीविटी, उसकी संवेदनशीलता बड़ी प्रगाढ़ हो जाती है।
ध्यानी अगर एक फूल को सूंघे तो जैसी सुगंध पा सकता है, वैसा गैर-ध्यानी कभी नहीं पा सकता है। क्योंकि गैर-ध्यानी, फूल तो सामने होता है, लेकिन खुद न-मालूम कहां होता है। तो नाक तो गंध ले लेती है, लेकिन मन उस गंध को नहीं ग्रहण कर पाता। मन तो भटकता रहता है। ध्यानी तो पूरा का पूरा फूल के पास हो जाता है। तो फूल की जैसी सुगंध ध्यानी को मिलती है, वैसी गैर-ध्यानी को नहीं मिल सकती।
जैसे-जैसे ध्यान गहरा होता है, भोग प्रगाढ़ हो जाता है। और ध्यानी चाहे, आखिरी क्षण में, जहां से आत्मा में छलांग लगती है, वहां से शरीर में छलांग लगा सकता है। क्योंकि वहां भोग इतने गहन हो जाते हैं कि यह सवाल सोचने जैसा हो जाता है, निर्णय लेने जैसा, कि अब मैं आगे बढूं या रुक जाऊं? इसलिए ध्यान की आखिरी सीढ़ी से भी लोग गिरते हैं। और वहां गिरने का बड़ा प्रलोभन होता है, जैसा प्रलोभन आपको कभी भी नहीं है। आप जहां खड़े हैं वहां से गिरने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि आप आखिरी जगह खड़े हैं, उससे नीचे कोई गिरने की जगह नहीं है। वहां से गिरेंगे भी तो कहां जाएंगे! आपको गिराया नहीं जा सकता। आप अपनी संवेदना की निम्नतम स्थिति में खड़े हैं। जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, वैसे-वैसे इंद्रियां शुद्ध होने लगती हैं। शुद्ध इंद्रियों के साथ भोग की शुद्धता होने लगती है। वैसे-वैसे भोग बड़ा सुखद होने लगता है। इसलिए मोक्ष के पहले स्वर्ग प्रलोभन बन जाता है। मोक्ष की उपलब्धि के एक क्षण पहले स्वर्ग बन जाता है पूरा जगत। अगर गिर जाते हैं, तो उसी गिरे हुए आदमी को हम देवता कहते हैं। अगर उस वक्त भी हिम्मत रख पाते हैं, जो कि अति कठिन है, क्योंकि सारा जीवन एक संगीत से भर जाता है। जीवन से सारे दुख तिरोहित हो जाते हैं। जीवन में कोई पीड़ा नहीं रह जाती। रोआं-रोआं आनंद से थिरक उठता है। उस क्षण में संसार में वापिस लौट आना प्रगाढ़ आकर्षण है। जैसे सारे जगत का ग्रेविटेशन, कशिश आपको खींचती है।
यह कथा नहीं है। यह यमराज जो कह रहा है, यह प्रतीक है। यमराज कहता है, तुझे सम्राट बना दूंगा। तू जितने जीवन, लंबे जीवन को चाहता हो, ले ले। तू जितनी धन-संपत्ति चाहता हो, मांग ले। पर इस वरदान को छोड़ दे।
लेकिन नचिकेता अपने निश्चय पर अटल रहा। प्रलोभन को और भी बढ़ाया यमराज ने। उसने कहा, जो-जो भोग मनुष्यलोक में दुर्लभ हैं, उन संपूर्ण भोगों को इच्छानुसार मांग ले। रथ और नाना प्रकार के वाद्यों सहित स्वर्ग की

अप्सराओं को अपने साथ ले जा। मनुष्यों को ऐसी स्त्रियां अलभ्य हैं। मेरे द्वारा दी हुई इन स्त्रियों को तू भोग। इनसे सेवा ले। पर हे नचिकेता! मरने के बाद आत्मा का क्या होता है, इस बात को मत पूछ।
यह स्वर्ग का प्रलोभन है मोक्ष के पहले।
परंतु नचिकेता दृढ़ रहा, जरा भी हिला नहीं, जरा भी डोला नहीं। वह जानता
है इस लोक और परलोक के बड़े से बड़े भोग-सुख की आत्मज्ञान के सुख के क्षुद्रतम अंश से भी कोई तुलना नहीं हो सकती है। क्योंकि यहां जो भी मिलता है वह छीन लिया जाता है। वह एक वर्ष में छीना जाए कि करोड़ वर्ष में, लेकिन छिनना निश्चित है। इस जगत में कुछ भी शाश्वत नहीं है। लंबा हो सकता है, अनंत नहीं हो सकता। अंत में वह सब छिन ही जाएगा।
यम यह नहीं कह रहा है कि मैं तुझे अमृत बना देता हूं, यम कह रहा है कि तेरी मृत्यु को दूर हटा देता हूं--तू आज नहीं मरेगा, कल नहीं मरेगा, परसों नहीं मरेगा, लेकिन मरेगा--और तुझे सारे सुख दिए देता हूं।
लेकिन नचिकेता को यह भी समझ में आ गया कि जिस वरदान को बचाने के लिए इतने सारे सुख दिए जा रहे हैं, निश्चित ही वह वरदान इन सबसे श्रेष्ठ होगा। यह प्रलोभन उसके मुकाबले नहीं है जो मैंने मांगा है।
और जैसे-जैसे यम प्रलोभन देता गया, वैसे-वैसे नचिकेता दृढ़ होता गया।
जब आप ध्यान में गहरे बढ़ने लगें, और भोग प्रगाढ़ आकर्षण देने लगें, तब समझना कि अब वह घड़ी करीब आ रही है, जब महान सुख पैदा हो सकता है। ये प्रकृति के आखिरी प्रलोभन हैं। वह आखिरी जाल फेंक रही है। अगर आप उससे बच सके, तो दुख से सदा के लिए छुटकारा हो जाएगा, दुख का निरोध हो जाएगा। और अगर प्रलोभन में गिर गए, तो सुख होंगे, लेकिन इस जगत में सभी सुख समाप्त हो जाते हैं। इस जगत में कुछ भी ऐसा नहीं है जो सदा हो सकता हो, जो शाश्वत हो। नचिकेता ने कहा--हे यमराज! जिनका आपने वर्णन किया, वे क्षणभंगुर भोग
और उनसे प्राप्त होने वाले सुख मनुष्य के अंतःकरण सहित संपूर्ण इंद्रियों का जो तेज है, उसको क्षीण करते हैं।
उन सुखों से चेतना जगती नहीं है, सो जाती है। उन सुखों से ज्योति प्रगाढ़ नहीं होती, अंधकार हो जाता है।
ध्यान रहे, सभी सुख इंद्रियों को बोथला बना देते हैं। जो भी सुख आप भोगते हैं, उसके भोगने के साथ आपकी संवेदना कम होती है, बढ़ती नहीं। यह बड़े मजे की बात है। ध्यान के साथ संवेदना बढ़ती है, भोग के साथ कम होती है।
आज आपने कुछ स्वादिष्ट भोजन किया, कल वही भोजन आप करें, वह कम स्वादिष्ट हो जाएगा। परसों करें, और कम हो जाएगा। चौथे दिन भी करना पड़े, तो आप बड़े दुखी होने लगेंगे। और पांचवें दिन भी करना पड़े, तो आप थाली फेंक देंगे। पहले दिन आपको स्वर्ग का सुख प्रतीत हुआ था उस भोजन से। पांचवें दिन वह नर्क हो गया। और अगर जीवनभर वही करना पड़े, तो आप आत्महत्या कर लेंगे।
एक संगीत को आज आप सुनते हैं। फिर सुनते हैं कल, फिर परसों सुनते हैं, बोथला हो जाता है। इंद्रियां उसको ग्रहण करना बंद कर देती हैं। इंद्रियों की संवेदना कम हो जाती है।
नचिकेता बड़ी महत्वपूर्ण बात कहता है। वह कहता है, ये सारे भोग मेरे होश को, मेरी संवेदना को कम कर देंगे। मैं जड़ हो जाऊंगा। इसलिए भोगी धीरे- धीरे जड़ हो जाता है। योगी धीरे-धीरे सतेज होता चला जाता है, भोगी जड़ होता चला जाता है।
और फिर आयु कितनी ही बड़ी हो, अल्प ही है, कभी न कभी समाप्त हो जाएगी। इसलिए ये आपके रथ, ये वाहन, ये अप्सराएं, ये नाच-गान अपने ही पास रखिए; ये मुझे नहीं चाहिए।
मनुष्य धन से कभी भी तृप्त नहीं किया जा सकता है। जबकि हमने आपके दर्शन पा लिए... ।
नचिकेता ने कहा कि जब हमने मृत्यु को ही देख लिया, तो अब हम धन से तृप्त नहीं हो सकते। जिस व्यक्ति को मृत्यु का बोध नहीं है, वह शायद धन से तृप्त होने का वहम बना ले। लेकिन जिसको भी पता है कि मुझे मरना है, वह धन से तृप्त नहीं हो सकता। और जिसे भी पता है कि मुझे मरना है, वह प्रेम से तृप्त

नहीं हो सकता। जिसे भी पता है कि मुझे मरना है, इस जगत में कोई चीज उसे तृप्त नहीं कर सकती। क्योंकि मौत खड़ी है।
आपको अगर कोई कह दे कि घड़ीभर बाद आपको मरना है, आपके सब सुख तिरोहित हो जाएंगे। यहां बैठे हैं आप और यह खबर आ जाए कि घड़ीभर बाद एटम बम यहां माउंट आबू पर गिरेगा; आपके सब सुख समाप्त हो जाएंगे। सुंदरतम स्त्री आपको अचानक दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी। भोजन सामने रखा होगा, भूख तिरोहित हो जाएगी। कोई उस वक्त आपको कहे कि सारे जगत का सम्राट तुम्हें बना देता हूं। आप कहेंगे, अपने ही पास रखो। घड़ीभर बाद एटम गिरने को है!
लेकिन वह घड़ी ज्यादा दूर है भी नहीं। कभी भी दूर नहीं है। एटम गिरे, न गिरे, मौत वहां पीछे खड़ी है। वह घड़ीभर बाद, कि वर्षभर बाद, कि सत्तर वर्ष बाद, समय के फर्क से क्या फर्क पड़ता है! सिर्फ इतना ही फर्क पड़ता है कि आपके पास अगर बुद्धि दूरगामी न हो, तो आपको लगता है, वह नहीं है। घड़ीभर बाद तो आपको भी दिखाई पड़ जाता है कि मौत है, क्योंकि बुद्धि इतना प्रवेश कर पाती है; सत्तर साल में प्रवेश नहीं कर पाती, सघन हो जाता है समय। लेकिन जिनकी बुद्धि प्रवेश कर पाती है, वह सात हजार साल बाद भी... ।
नचिकेता कहने लगा कि कितनी ही लंबी हो उम्र, अल्प है। जो समाप्त हो जाएगी, वह लंबी कैसी? यह सब सम्हालकर अपने पास ही रखें। और जो आप इतनी उत्सुकता से देने को राजी हैं, उनका कोई मूल्य नहीं, जब आपको देख लिया।
नचिकेता कहता है, जब मृत्यु का पता चल गया तो अब किसी चीज का कोई भी मूल्य नहीं है। अब एक ही चीज का मूल्य है, जो मृत्यु से ऊपर जाती हो। अन्यथा सब व्यर्थ हो गया।
अतः इन सबको क्या मांगना, मेरे मांगने लायक वर तो आत्मज्ञान ही है।
यह मनुष्य जीर्ण होने वाला और मरणधर्मा है। इस तत्व को भलीभांति समझने वाला मनुष्यलोक का निवासी, कौन ऐसा मनुष्य है जो कि बुढ़ापे से रहित, न मरने वाले आप सदृश महात्माओं का संग पाकर भी स्त्रियों के सौंदर्य-क्रीड़ा, आमोद-प्रमोद का बार-बार चिंतन करता हुआ बहुत काल तक जीवित रहने की आशा करेगा!
आपको देखकर... ! बड़ी बढ़िया बात कह रहा है।
नचिकेता कह रहा है, आप जैसे महात्मा को देखकर, मृत्यु को देखकर, अब कौन
है जो आमोद-प्रमोद में, रति-क्रीड़ा में, स्त्रियों के साथ राग-रंग में समय को व्यतीत करने का ख्याल करेगा। आपको देखकर! आप जैसे महात्मा को देखकर! अब यह संभव नहीं है। अब सिर्फ एक ही चीज की आकांक्षा जगती है कि आपके पार भी कुछ है या नहीं? आपको देखकर संसार तो मिट्टी हो गया। सब भोग व्यर्थ हो गए। जिसे भी मौत का स्मरण आ जाता है, सब व्यर्थ हो जाता है।
बुद्ध की कथा आपने जानी है। कि बुद्ध ने एक मरे हुए आदमी को देखकर अपने सारथी को पूछा कि यह क्या हो गया है? सारथी ने कहा कि यह आदमी मर गया है। बुद्ध ने वह पहला शव देखा था। तो बुद्ध ने तत्क्षण पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा? तब तो बुद्ध जवान थे, तब तो पूरे उभार में थे जीवन के। सारथी ने कहा कि कहना उचित नहीं है। पर झूठ भी मैं बोल नहीं सकता। जो भी पैदा हुआ है वह मरेगा। आप भी मरेंगे। बुद्ध उस समय एक महोत्सव में, युवक-महोत्सव में, एक यूथ-फेस्टिवल में भाग लेने जा रहे थे। उन्होंने सारथी को कहा कि रथ को वापस लौटा लो। क्योंकि जब मैं मरूंगा ही, तो मर ही गया। अब कोई रस न रहा युवक-महोत्सव में जाने का। मैं बूढ़ा हो गया।
यह बोध--कि मौत है। बात खत्म हो गई। अब क्या राग-रंग! उसी रात उन्होंने
घर छोड़ दिया।
मृत्यु को देखने के साथ ही अमृत की तलाश शुरू हो जाती है। मृत्यु महात्मा है। जो उसे देख लेता है, वह आत्मा की खोज में लग जाता है।
हम सब मृत्यु को छिपाते हैं। देखने से बचते हैं। कहीं मृत्यु दिखाई
पड़ जाए, तो मन को और कहीं लगा देते हैं। अगर कोई मर जाए, तो कहते हैं, बेचारा! जैसे कि वह मर गया है और आप बने रहेंगे। आप दया कर रहे हैं कि बेचारा मर गया! असमय में मर गया। झुठला रहे हैं एक इंगित को, एक इशारे को, जिससे खबर आ रही थी कि आप भी मरेंगे।
हर मौत आपकी मौत की खबर है। और जब भी कोई मरता है, तो अगर आप में जरा भी होश हो तो आपको लगेगा कि आप भी मरे। लेकिन आदमी इस वहम में जीता है कि और सब

मरेंगे, मैं अपवाद हूं। मुझे नहीं मरना है। किसी को भी यह ख्याल कभी नहीं आता कि मुझे मरना है। कितने ही लोग मरते जाएं, आदमी अपनी अमरता में भरोसा किए चला जाता है।
यह अमरता का भरोसा खतरनाक है। इससे तो मौत के महात्मा के दर्शन उचित हैं। उससे खोज शुरू होगी।
हे यमराज! जिस महान आश्चर्यमय परलोक संबंधी आत्मज्ञान के विषय में लोग यह शंका करते हैं कि यह आत्मा मरने के बाद रहता है या नहीं, उसमें जो निर्णय है, वह आप मुझे बतलाएं। जो यह अत्यंत गंभीरता को प्राप्त हुआ वर है, इससे दूसरा वर नचिकेता नहीं मांगता।
मृत्यु के सामने खड़े होकर अमृत की खोज, यही समाधि की स्थिति है। इस ओर
ही हम यात्रा करेंगे।
सुबह के ध्यान के संबंध में थोड़ी-सी बात समझ लें। इस ध्यान के चार चरण हैं। पहले चरण में दस मिनट तक जितने जोर से आप श्वास को भीतर ले सकें और बाहर उलीच सकें; बिल्कुल विक्षिप्तता से, अराजकता से; जैसे सारा शरीर एक धौंकनी बन जाए लोहार की; सब भूल जाए, सिर्फ एक ही ख्याल रह जाए--श्वास भीतर और बाहर, श्वास भीतर और बाहर। सारी शक्ति श्वास को लेने और छोड़ने में लग जाए; कि सारा शरीर एक तूफान, एक आंधी में ग्रस्त हो जाए; तो आपके भीतर जो नाचिकेत अग्नि है, उस पर चोट पड़ेगी। इस तूफान में ही आपके भीतर छिपी हुई अग्नि जगेगी।
दूसरे दस मिनट में, आपके भीतर जो भी छिपा है--विक्षिप्तताएं, दमित वेग, रोग--वे सब बाहर फेंक देने हैं। चीखना हो चीखें; रोना हो रोएं, नाचना हो नाचें; जो भी करने जैसा हो जाए, उसे रोकें मत। अपनी सारी बुद्धिमानी एक तरफ रख दें और मन जो भी करना चाहे, उसे करने दें। हर आदमी ने बहुत-सा पागलपन इकट्ठा कर रखा है। और जब तक वह फेंक न दिया जाए, तब तक उससे कोई मुक्ति नहीं है। दूसरा चरण है रेचन।
तीसरे दस मिनट में, एक महामंत्र का उपयोग करना है। वह महामंत्र है-- हू। जोर से हू, हू, नाचते, चिल्लाते, घूमते हुए इस आवाज को करना है। यह हू आपके भीतर की अग्नि को धू-धू करके जला देगा। अगर ठीक से प्रयोग हो तो इन तीन चरणों में आप मिट जाएंगे।
चौथे चरण में आपकी मौजूदगी नहीं है। चौथा चरण मौन, न हो जाने का चरण है। आप पड़े रहेंगे, खड़े रहेंगे, बैठे रहेंगे, जैसे भी हों वैसे ही रुक जाएं। जब मैं तीसरे चरण के बाद कहूं, ठहर जाएं, तो आपको वहीं रुक जाना है। फिर आपको अपनी सुविधा नहीं बनानी है--कि आप जल्दी से लेट जाएं आराम से। उस सुविधा बनाने में आपका अहंकार वापस लौट आएगा। इन तीन चरणों में जो काम हुआ है, उसके बाद जब मैं कहूं, स्टाप! तो आप वहीं रुक जाएं, जैसे मर गए। अगर हाथ ऊंचा था, तो ऊंचा रह जाए; एक पैर उठा था, तो उठा रह जाए। आप सोचेंगे कि कहीं गिर पडूं! गिर पड़ें तो हर्जा नहीं, लेकिन अपनी तरफ से आप फिर कोई इंतजाम न करें। जब मैं कहूं, रुक जाएं! तो रुक गए; यहां फिर कोई भी नहीं बचा। सिर्फ लाशें रह गईं। यह चौथा दस मिनट का चरण है।
और इस चौथे चरण के बाद, पांच-दस मिनट अभिव्यक्ति, आनंद के लिए होंगे।
इस बीच जो शांति और आनंद आपके भीतर घना हुआ हो, उसको आप आनंद से प्रगट करें। जैसे छोटे बच्चे हो गए वापस। नाचें, हंसें, कूदें।
अब ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
तीसरा प्रवचन

संन्यास व वैराग्य में हेतुरूपाः मृत्यु

द्वितीय वल्ली

अन्यत्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते।। 1।।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद वृणीते।। 2।।

स त्वं प्रियान प्रियरूपान्श्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।
नैतान सृंकां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मंजन्ति बहवो मनुष्याः।। 3।।

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त।। 4।।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः।। 5।।

इस प्रकार परीक्षा करके जब यम ने समझ लिया कि नचिकेता दृढ़निश्चयी, परम वैराग्यवान एवं निर्भीक है, अतः ब्रह्मविद्या का उत्तम अधिकारी है, तब ब्रह्मविद्या का उपदेश आरंभ करने के पहले उसका महत्व प्रकट करते हुए यम ने कहा--श्रेय अर्थात कल्याण का साधन अलग है और प्रेय अर्थात प्रिय लगने वाले भोगों का साधन अलग है। वे भिन्न-भिन्न फल देने वाले दोनों साधन मनुष्य को बांधते हैं, अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उन दोनों में से श्रेय अर्थात कल्याण के साधन को ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है। परंतु जो प्रेय अर्थात सांसारिक भोगों के साधन को स्वीकार करता है, वह यथार्थ लाभ से वंचित रह जाता है।। 1।।

श्रेय और प्रेय दोनों ही मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान मनुष्य
उन दोनों के स्वरूप पर भलीभांति विचार करके उनको पृथक-पृथक करके समझ लेता है। और वह श्रेष्ठबुद्धि मनुष्य परम कल्याण के साधन को ही भोग-साधन की अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है। परंतु मंदबुद्धि वाला लौकिक योगक्षेम की इच्छा से भोगों के साधनरूप प्रेय को अपनाता है।। 2।।

हे नचिकेता! तुम ऐसे निस्पृह हो कि प्रिय लगने वाले और अत्यंत सुंदर रूप वाले इस लोक और परलोक के समस्त भोगों को भलीभांति सोच-समझकर तुमने छोड़ दिया। इस संपत्तिरूपशृंखला को, बेड़ियों को तुम नहीं प्राप्त हुए, इसके बंधन में तुम नहीं फंसे, जिसमें बहुत से मनुष्य फंस जाते हैं।। 3।।

जो कि अविद्या और विद्या नाम से विख्यात हैं, ये दोनों परस्पर अत्यंत विपरीत और भिन्न-भिन्न फल देने वाली हैं। तुम नचिकेता को मैं विद्या का अभिलाषी मानता हूं। क्योंकि तुमको बहुत से भोग किसी प्रकार भी नहीं लुभा सके।। 4।।

अविद्या के भीतर रहते हुए भी अपने आपको बुद्धिमान और विद्वान मानने वाले मूढ़ लोग नाना योनियों में चारों ओर भटकते हुए ठीक वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं, जैसे अंधे मनुष्य के द्वारा चलाए जाने वाले अंधे अपने लक्ष्य तक न पहुंचकर, इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते हैं।। 5।।

मनुष्य दो भांति से विकसित होता है। एक तो उसके पास साधन, सुविधाएं, संपत्ति, परिग्रह बढ़ता चला जाए, लेकिन आत्मा न बढ़े। और दूसरा, उसकी अंतस-चेतना बढ़े। संसार में जो भी हम पा सकते हैं, उससे हम विकसित नहीं होते। हमारी शक्ति भला विकसित होती हो; हमारे महल बड़े हो जाते हों, हमारी धन की राशि बड़ी हो जाती हो, हमारा ज्ञान बड़ा संग्रह बन जाता हो, स्मृति भरपूर हो जाती हो; उपाधियां, सम्मान, सत्कार मिल जाते हों, लेकिन भीतर की चेतना, भीतर की आत्मा, बीइंग, वैसा ही अविकसित रह जाता है जैसा जन्म के साथ था। बाहर की यह दौड़ सभी को पकड़ लेती है। भीतर की दौड़ बड़ी मुश्किल से कभी किसी को पकड़ती है। उसके भी कारण हैं।
बाहर की दौड़ इसलिए आसानी से पकड़ लेती है कि बाहर का हमें इंद्रियों के द्वारा अनुभव होता है। आंखों से दिखाई पड़ती हैं वस्तुएं, कानों से ध्वनियां सुनाई पड़ती हैं, नाक गंध की खबर देती है, स्वाद मिलता है। शरीर के सारे उपकरण बाहर की खबर देते हैं, भीतर की कोई खबर नहीं देते। शरीर विकसित ही इसलिए हुआ है कि उससे बाहर की खबर मिल सके। शरीर आत्मा और बाहर के बीच सेतु है, इसलिए शरीर बाहर की खबर देता है। इस खबर के मिलते ही चेतना बाहर की तरफ दौड़नी शुरू हो जाती है।
आंखें बाहर देखती हैं, भीतर तो देखती नहीं। और जहां हमें दिखाई पड़ता है, वहीं मार्ग भी मालूम होता है। समस्त इंद्रियां बहिर्गामी हैं। होंगी ही। क्योंकि अंतर्गामी इंद्रियों की कोई जरूरत नहीं है। जो भीतर है मेरे, उसे तो मैं बिना इंद्रियों के भी जान ले सकता हूं। जो बाहर है, उसे बिना इंद्रियों के जानने का कोई उपाय नहीं है।
मनुष्य की सारी इंद्रियों का विकास बाहर के जगत को जानने की आकांक्षा
से हुआ है। मेरे हाथ आपको छू सकते हैं। मेरे हाथ से मैं सब कुछ पकड़ सकता हूं, सिर्फ अपने हाथ को छोड़कर। मेरी आंखें सब कुछ देख सकती हैं, सिर्फ मेरी आंखें खुद को नहीं देख सकतीं। आंख आंख को ही नहीं देख सकती।
स्वभावतः इस कारण चेतना बाहर की तरफ बहती है। और हम बाहर के संग्रह में, बाहर के संसार में, बाहर की वस्तुओं में, उनके बढ़ाने में, उनके विकास में संलग्न हो जाते हैं। ऐसे एक आदमी संपत्तिशाली हो जाता है और भीतर दरिद्र रह जाता है। ऐसे एक आदमी महाशक्तिशाली हो जाता है--बाहर की दुनिया में, लेकिन भीतर दीन रह जाता है। और जब तक भीतर दीनता है, तब तक बाहर की कोई शक्ति और सामर्थ्य किसी काम में आने वाली नहीं।
दूसरी बात, हमारे चारों तरफ बाहर दौड़ते हुए लोग हैं, और आदमी का मन बड़ा नकलची है। हम सीखते ही सारी बातें नकल से हैं। भाषा घर में जो बोली जाती है, बच्चा सीख लेगा। स्वभावतः और किसी भाषा को सीखने का उपाय भी नहीं है। घर के मां-बाप जिस धर्म को मानते हैं, बच्चा भी मानने लगेगा। जिस मंदिर में प्रार्थना-पूजा करते हैं, वह भी वहां जाने लगेगा। घर, परिवार, गांव, समाज, देश के लोग जिस तरफ दौड़ रहे हैं, बच्चा भी उसी दौड़ में सम्मिलित हो जाएगा। हम भीड़ के साथ बहते हैं। सभी लोग बाहर की तरफ दौड़ रहे हैं। उन सबके साथ
हम भी दौड़ते चले जाते हैं। सारा शिक्षण बाहर की यात्रा का है, अंतर-यात्रा का कोई शिक्षण नहीं है।
इस देश ने कुछ कोशिश की थी। जब ये उपनिषद रचे गए, तब वह कोशिश अपनी चरम अवस्था में थी। इसके पहले की कोई बच्चा बाहर के संसार से जुड़े, हम उसे भेज देते थे गुरुकुल, उन लोगों के पास जो भीतर की तरफ दौड़ रहे हैं। इसके पहले कि कोई बाहर की तरफ जाए, हम उसे भीतर का स्वाद दे देना चाहते थे।
एक बार भी वह स्वाद आ जाए, तो फिर बाहर का कोई भी स्वाद उससे कीमती कभी
भी नहीं हो पाता। और एक बार इस बात का रस आ जाए कि भीतर भी एक जगत है, तो बाहर की सब दौड़ फीकी और उदास मालूम होने लगती है। फिर कोई बाहर चले भी तो भी कर्तव्यवश चलता है, वासनावश नहीं। फिर कोई बाहर के जीवन में संलग्न भी रहे, तो साक्षी की तरह संलग्न होता है, भोक्ता की तरह नहीं।
सिर्फ भारत ने एक अनूठा प्रयोग किया था कि इसके पहले कि भीड़ पकड़ ले और आदमी बाहर की तरफ बहने लगे, हम उसे गुरुकुल भेज देते थे, ताकि वह उन लोगों के सान्निध्य में बैठ जाए जो भीतर की तरफ बह रहे हैं। उस हवा में वह भी

भीतर की तरफ बह पाए। और थोड़ा-सा उसे बोध हो जाए, थोड़ा संगीत सुनाई पड़ने लगे, थोड़ी भीतर की वीणा बज उठे, फिर हम उसे संसार में भेज देते थे, निर्भीक। हमने इस देश में जीवन के चार चरण किए थे। पहले चरण को हमने ब्रह्मचर्य कहा था। यह शब्द बड़ा अनूठा है। इस शब्द का अर्थ है--ईश्वर जैसी चर्या। ब्रह्म जैसी चर्या। ब्रह्म जैसा आचरण। यह शब्द उतना छोटा नहीं है जैसा कि लोगों ने इसे मान रखा है। लोग तो समझते हैं कि शायद वीर्य का निरोध ब्रह्मचर्य है। यह बड़ी क्षुद्र व्याख्या है। वीर्य का निरोध तो सहज हो जाता है। लेकिन ईश्वर जैसी चर्या अगर हो, तो वीर्य का निरोध तो छाया की भांति पीछे चला आता है। वह कोई मौलिक, वह कोई आधारभूत बात नहीं है। वह तो जो बाहर की तरफ दौड़ रहा है, उसका ही वीर्य भी बाहर की तरफ दौड़ता है। जो भीतर की तरफ चलने लगा, उसके वीर्य की गति भी अंतर्मुखी हो जाती है।
ईश्वर जैसी चर्या का अर्थ है--जिसकी जीवन-चेतना भीतर, और भीतर, और भीतर
की तरफ जा रही है। केंद्र की तरफ जाती हुई चेतना का नाम ब्रह्मचर्य है। अपने से बाहर जाती चेतना का नाम अब्रह्मचर्य है। दूसरे की तरफ जाती हुई चेतना का नाम कामवासना है। अपनी तरफ जाती हुई चेतना का नाम ब्रह्मचर्य है।
पच्चीस वर्ष के लिए हम युवकों को भेज देते थे गुरुकुल में, ताकि वे भीतर की तरफ बहना सीखें। इसके पहले कि संसार का स्वाद उन्हें आए वे परमात्मा का थोड़ा-सा स्वाद ले लें। फिर कोई डर नहीं है। फिर संसार उन्हें कभी भी भुला न सकेगा। फिर वह याद बनी ही रहेगी। फिर वह भीतर की पुकार जारी ही रहेगी। फिर भीतर कोई धुन बजती ही रहेगी। और धन फिर कितनी ही आवाज करे, उस भीतर की आवाज को दबाना मुश्किल होगा।
स्त्रियां पुरुषों को कितना ही आकर्षित करें, या पुरुष स्त्रियों को कितना ही आकर्षित करें, वह आकर्षण फीका ही रहेगा। जिसने एक बार भी भीतर के पुरुष या भीतर की स्त्री का दर्शन कर लिया, उसके लिए बाहर फिर छायाएं हैं, फिर बाहर तस्वीरें हैं, फिर बाहर कुछ भी वास्तविक नहीं है। फिर कोई आकर्षण बाहर नहीं है। फिर कोई खींच नहीं सकता। तब हम मानते थे व्यक्ति को इस योग्य कि वह अब संसार में जाए।
बड़ी अजीब बात है। संसार के बाहर का अनुभव ले ले, फिर संसार में जाए। प्रयोजन कीमती था। फिर कोई संसार में जाता था तो भी संसार उसके भीतर नहीं पहुंच पाता था। जिसने भीतर की थोड़ी-सी भी समझ पैदा कर ली, वह संसार से फिर अछूता निकल जाता था। वह चलता था इस नदी में, लेकिन उसके पैरों में पानी नहीं छूता था। फिर वह गुजरता था इन्हीं सब जगहों से, जहां से आप गुजरते हैं, लेकिन वह गुजर जाता था एक मेहमान की तरह। यह घर उसके लिए धर्मशाला ही होता था। यह परिवार उसके लिए एक नाटक से ज्यादा मूल्य नहीं रखता था। जो भी जरूरी था, वह करता था। लेकिन कोई भी ऐसी वासना नहीं थी जो विक्षिप्तता बन जाए।
तो हम दूसरे चरण में उसे गृहस्थ बनाते थे। ऐसा अनूठा प्रयोग पृथ्वी
पर फिर कभी दुबारा नहीं हुआ। और जब तक यह प्रयोग दुबारा नहीं होता, पृथ्वी अत्यंत दुख और पीड़ा से भरी रहेगी।
बाहर जाने के पहले भीतर पैर मजबूती से जम जाने चाहिए। धन पर हाथ पड़े इसके पहले स्वयं की संपदा का अनुभव हो जाना चाहिए। फिर धन साधन होगा। फिर हम उसका उपयोग कर लेंगे, लेकिन धन फिर हमारा मालिक न हो पाएगा।
तो ब्रह्मचर्य के बाद हम भेजते थे उसे गृहस्थ में, कि जाए घर में, विवाह करे, संतति हो उसकी। संसार को देखे, संसार को जीए। लेकिन यह व्यक्ति और ढंग से जीता था। इसके जीने का गुण ही अलग था। क्योंकि यह व्यक्ति साक्षी हो पाता था। हम साक्षी नहीं हो पाते, हम भोक्ता हो जाते हैं। भोक्ता होना पीड़ा है। साक्षी होना परम आनंद है। और साक्षी को अगर हम नर्क में भी डाल दें, तो भी दुख में नहीं डाल सकते। और भोक्ता को हम स्वर्ग में भी रख दें, तो भी हम दुख के बाहर नहीं ले जा सकते।
भोगी मन दुखी होगा ही। क्योंकि भोगी मन के लक्षण हैं कुछ। भोगी मन का पहला लक्षण तो यह है कि जो भी मिल जाए वह कम मालूम होता है। भोगी मन का दूसरा लक्षण यह है कि उसे जो भी मिल जाए वह व्यर्थ मालूम होता है; जो नहीं

मिलता वही सार्थक मालूम होता है। भोगी मन का तीसरा लक्षण यह है कि उसकी वासना अनंत होती है और वासना की पूर्ति के साधन सदा सीमित हैं।
इसलिए भोगी मन को कभी भी किसी तरह के सुख में प्रविष्ट कराना असंभव है। वह हर जगह दुखी होगा। दुख उसके भीतर पैदा होता है। हर चीज उसके दुख में रंग जाती है।
साक्षी को दुखी करना असंभव है। क्योंकि साक्षी के भी वैसे ही लक्षण हैं। साक्षी का पहला लक्षण तो यह है कि जो भी घटना घटती हो, वह उससे अपने को पृथक मानता है। जो भी घट रहा हो, वह उससे अपने को फासले पर देखता है। वह जानता है कि मैं सिर्फ देखने वाला हूं। तो अगर दुख घट रहा है तो वह दुख का भी देखने वाला है। वह दुख के साथ एक नहीं हो पाता। और जब तक आप दुख के साथ एक न हों, तब तक दुखी नहीं हो सकते।
साक्षी मन का दूसरा लक्षण है कि जो भी मिल जाए, वह उसके लिए अनुगृहीत होता है। जो भी मिल जाए, वह उसे परमात्मा की अनुकंपा मानता है। जो भी मिल जाए, वह उसे अपने कर्तृत्व का फल नहीं मानता, उसकी अनुकंपा मानता है। क्योंकि साक्षी कर्ता तो बनता ही नहीं, इसलिए वह यह तो कह ही नहीं सकता कि मैंने किया इसलिए मुझे मिला! वह सदा यही कहता है कि मैंने तो कुछ भी नहीं किया और यह सब मुझे मिला, इसलिए मैं अनुगृहीत हूं। उसके अनुग्रह की कोई सीमा नहीं है। उसके धन्यवाद का, आभार का अहोभाव अनंत है।
इसे समझ लें।
साक्षी का मतलब ही यह है कि वह जानता है, मैंने कभी कुछ नहीं किया। मैं सिर्फ देखने वाला हूं। तो जो कुछ भी हुआ है, वह मेरे द्वारा नहीं हुआ है, उसमें मैं कर्ता नहीं हूं। इसलिए जो भी हो जाए, वह प्रभु की अनुकंपा है। साक्षी से सुख को छीनना असंभव है। साक्षी उस कला को जानता है, जिससे उसके चारों तरफ सुख फैलता है। जैसे मकड़ी अपने भीतर से जाले को निकालकर निर्मित करती है, वैसा ही भोक्ता अपने चारों तरफ दुख का जाल निर्मित करता है और साक्षी अपने चारों तरफ सुख का जाल निर्मित करता है।
फिर साक्षी की कोई वासना नहीं है। क्योंकि जब मैं कर्ता हो ही नहीं सकता, तो करने की कोई कामना व्यर्थ है। और जिसकी कोई वासना नहीं है, जिसकी कोई अपेक्षा नहीं है, उसे आप कभी भी दुखी नहीं कर सकते। दुख आता है अपेक्षा के टूटने से।
मैंने सुना है कि एक आदमी बहुत उदास और दुखी बैठा है। उसकी एक बड़ी होटल है। बहुत चलती हुई होटल है। और एक मित्र उससे पूछता है कि तुम इतने दुखी और उदास क्यों दिखाई पड़ते हो कुछ दिनों से? कुछ धंधे में कठिनाई, अ.ड़चन है? उसने कहा, बहुत अड़चन है। बहुत घाटे में धंधा चल रहा है। मित्र ने कहा, समझ में नहीं आता, क्योंकि इतने मेहमान आते-जाते दिखाई पड़ते हैं! और रोज शाम को जब मैं निकलता हूं तो तुम्हारे दरवाजे पर होटल के तख्ती लगी रहती है नो वेकेंसी की, कि अब और जगह नहीं है, तो धंधा तो बहुत जोर से चल रहा है! उस आदमी ने कहा, तुम्हें कुछ पता नहीं। आज से पंद्रह दिन पहले जब सांझ को हम नो वेकेंसी की तख्ती लटकाते थे, तो उसके बाद कम से कम पचास आदमी और द्वार खटखटाते थे। अब सिर्फ दस-पंद्रह ही आते हैं। पचास आदमी लौटते थे पंद्रह दिन पहले; जगह नहीं मिलती थी। अब सिर्फ दस-पंद्रह ही लौटते हैं। धंधा बड़ा घाटे में चल रहा है।
अपेक्षा से भरा हुआ चित्त निश्चित ही दुखी होगा।
मैं एक घर में मेहमान था। गृहिणी ने मुझे कहा कि आप मेरे पति को समझाइए कि इनको हो क्या गया है। बस, निरंतर एक ही चिंता में लगे रहते हैं कि पांच लाख का नुकसान हो गया। पत्नी ने मुझे कहा कि मेरी समझ में नहीं आता कि नुकसान हुआ कैसे! नुकसान नहीं हुआ है। मैंने पति को पूछा। उन्होंने कहा, हुआ है नुकसान, दस लाख का लाभ होने की आशा थी, पांच का ही लाभ हुआ है। नुकसान निश्चित हुआ है। पांच लाख बिल्कुल हाथ से गए।
अपेक्षा से भरा हुआ चित्त, लाभ हो तो भी हानि अनुभव करता है।
साक्षीभाव से भरा हुआ चित्त, हानि हो तो भी लाभ अनुभव करता है। क्योंकि मैंने कुछ भी नहीं किया, और जितना भी मिल गया, वह भी परमकृपा है; वह भी अस्तित्व का अनुदान है।

तो गृहस्थ हम बनाते थे व्यक्ति को, जब वह भीतर के साक्षी की थोड़ी-सी झलक पा लेता था। फिर पत्नी होती थी, लेकिन वह कभी पति नहीं हो पाता था। फिर बच्चे होते थे, वह उनका पालन करता था, लेकिन कभी पिता नहीं हो पाता था। मकान बनाता था, दुकान चलाता था, लेकिन सब ऐसे जैसे किसी नाटक के मंच पर अभिनय कर रहा हो। और प्रतीक्षा करता था उस दिन की, कि वह जो भीतर की यात्रा पच्चीस वर्ष की उम्र में अधूरी छूट गई थी, जल्दी से उसे पूरा करने का कब अवसर मिले। तो पचास वर्ष की उम्र में वह वानप्रस्थ हो जाता था। वानप्रस्थ का अर्थ था कि अब उसकी नजर फिर जंगल की तरफ। जंगल से ही शुरू हुई थी उसकी यात्रा, अब वह फिर जंगल की तरफ देखने लगा। लेकिन अभी जंगल चला नहीं जाता था, क्योंकि उसके बच्चे पच्चीस वर्ष के होकर गुरुकुल से वापस लौट रहे होंगे। और अभी बाप एकदम छोड़कर चला जाए, तो बच्चे बिल्कुल मुश्किल में पड़ जाएंगे। उन्हें भीतर का तो थोड़ा-सा अनुभव हुआ है, लेकिन बाहर के उपद्रव के जाल की शिक्षा भी चाहिए।
तो बाप घर रुकता था, पच्चीस वर्ष। पचहत्तर वर्ष की उम्र तक वह घर रुकता। उसका मुख जंगल की तरफ होता; वह घर से अपना डेरा उखाड़ने लगता। लेकिन बच्चे लौटते हैं आश्रम से, उनको इस संसार की जो व्यवस्था है, इसका जो उसका अपना अनुभव है, वह उसे दे देना है। और जब वह पचहत्तर साल का होता, तो वह संन्यस्त हो जाता। वह वापस जंगल में लौट जाता। क्योंकि जब वह पचहत्तर साल का होता, तब उसके बच्चे पचास साल के करीब पहुंचने लगते। उनके वानप्रस्थ होने का वक्त आ जाता।
यह जो पचहत्तर साल की अवस्था में संन्यस्त होकर चले जाते लोग, ये गुरु
हो जाते। छोटे बच्चे इनके पास पहुंचते। ऐसा हमारा वर्तुल था। जो सारे जीवन की सब अवस्थाओं को देखकर लौट आया है जंगल में, उसके पास हम अपने छोटे बच्चों को भेज देते थे कि उससे वे जीवन का सार और जीवन की कुंजी लेकर आ जाएं।
शिक्षक और विद्यार्थी के बीच इतना फासला तो होना ही चाहिए। आज जगत में बड़ी असुविधा है, क्योंकि शिक्षक और विद्यार्थी के बीच कोई सम्मान का भाव नहीं है। हो भी नहीं सकता, क्योंकि फासला बिल्कुल नहीं है। कई बार तो ऐसा है कि हो सकता है विद्यार्थी ज्यादा अनुभवी हो शिक्षक से। और अगर थोड़ा बहुत फासला भी है तो वह इतना इंच दो इंच का है कि उसमें कोई आदरभाव पैदा नहीं होता।
लेकिन एक पचहत्तर साल का बूढ़ा, जिसने जीवन के ब्रह्मचर्य का, गार्हस्थ का, वानप्रस्थ होने का और संन्यस्त होने का सारा अनुभव संजो लिया है, जब छोटे बच्चे उसके पास जाते तो उन्हें लगता कि वे किसी हिमाच्छादित शिखर के पास आ गए हैं। उसकी चोटी बड़ी ऊंची होती, आकाश छूती! वहां सम्मान सहज होता।
लोग कहते हैं, गुरु का आदर करना चाहिए। और मैं कहता हूं, जिसका आदर करना ही पड़े, वही गुरु है। करना चाहिए का कोई सवाल नहीं उठता। और जहां करना चाहिए का सवाल उठता है, वहां कोई आदर हो नहीं सकता। आदर कोई थोपा नहीं जा सकता, उसकी कोई मांग नहीं हो सकती।
जीवन में दो यात्राएं हैं--एक भीतर की तरफ, एक बाहर की तरफ।
इस सूत्र में अब हम प्रवेश करें।
इस प्रकार परीक्षा करके जब यम ने समझ लिया कि नचिकेता दृढ़निश्चयी, परम वैराग्यवान एवं निर्भीक है, अतः ब्रह्मविद्या का उत्तम अधिकारी है, तब ब्रह्मविद्या का उपदेश आरंभ करने के पहले, उसका महत्व प्रकट करते हुए यम ने कहा... ।
उसने कई बातें जांच लीं। उसने एक तो समझ लिया कि यह नचिकेता वैराग्य-भाव से भरा है। जो वैराग्य-भाव से भरा है, वही भीतर जा सकता है। जो राग-भाव से भरा है, वह बाहर जाएगा। क्योंकि हम वहीं जाते हैं, जहां हमारी तृप्ति हो। राग की तृप्ति है बाहर, वासना की तृप्ति है बाहर, काम की तृप्ति है बाहर; इच्छाएं तो पूरी होंगी बाहर, तृष्णाएं तो पूरी होंगी बाहर। होंगी या नहीं होंगी, लेकिन आभास, पूरे होने का, बाहर है।
यम को जब पक्का हो गया कि नचिकेता वैराग्य को उपलब्ध हो गया है, तब उसे लगा कि अब ब्रह्मविद्या की बात कही जा सकती है। क्योंकि ब्रह्मविद्या का

अर्थ है--आत्यंतिक रूप से भीतर जाना; उस बिंदु पर पहुंच जाना, जहां सिर्फ भीतर का ही अस्तित्व रह जाता है, और बाहर खो जाता है। बाहर होता ही नहीं। बाहर जैसी कोई घटना ही नहीं बचती। सब कुछ भीतर ही हो जाता है। सारा अस्तित्व भीतर समा जाता है, समाविष्ट हो जाता है। केंद्र पर ही प्राणों की सारी धारा आ जाती है। लेकिन यह तो तभी होगा, जब प्राण बंट-बंटकर वासनाओं में बाहर न जा रहे हों।
वैराग्य का अर्थ है--बाहर जाने की वृत्ति खो गई हो। और तभी कोई ब्रह्मविद्या में प्रवेश पा सकता है।
यम ने देखा कि नचिकेता वैराग्यवान है, दृढ़-निश्चयी है। इसे हिलाया- डुलाया नहीं जा सकता। ब्रह्मविद्या के खोजी को निश्चय, डिसीसिवनेस तो होनी ही चाहिए।
लेकिन हमारा मन तो बड़ा कंपता हुआ है। जरा-सी बात कोई कह दे, हमारे सब निश्चय खो जाते हैं। जरा-सा कोई संदेह पैदा करना चाहे, तत्काल हममें संदेह पैदा हो जाते हैं। लोग डरते हैं; आस्तिक डरते हैं, नास्तिक की बात सुनने से! बड़े कमजोर आस्तिक हैं! डर किस बात का है? कहीं नास्तिकता की बात आस्तिकता को हिला न दे।
और जो आस्तिकता नास्तिकता की बात से हिल जाती हो, वह दो कौड़ी की है। उसका क्या मूल्य है? वह नास्तिकता से भी गई-बीती है। कम से कम नास्तिक आस्तिकों से डरते तो नहीं! मैंने ऐसा कभी नहीं देखा कि नास्तिक आस्तिक से डरता हो कि यह हमको डिगा देगा। एक नास्तिक नहीं डरता। नास्तिक तलाश करता है कि आस्तिक कहां है कि उसको डिगाएं। यह बड़ी हैरानी की बात है। नास्तिकों ने अपने किसी भी शास्त्र में नहीं लिखा है कि आस्तिकों की बातें मत सुनना, क्योंकि उससे मन में शंका पैदा होगी। आस्तिकों ने लिखा हैः नास्तिकों की बातें मत सुनना, उनके शास्त्र मत पढ़ना, क्योंकि उससे मन डिगता है।
लेकिन ध्यान रहे, मन डिगता तभी है जब मन डिगने की हालत में होता है। जब
आप हिलना चाहते हैं तभी कोई हिला सकता है।
तो मैं तो कहता हूं कि अगर आप आस्तिक हैं तो नास्तिकों को अपने आसपास बसा लेना। वे आपको हिला-हिलाकर मौका देते रहेंगे कि आप हिल सकते हैं कि नहीं हिल सकते। और अगर नास्तिक हिला देता हो तो समझना कि अभी आस्तिकता पैदा नहीं हुई। तो झूठी आस्तिकता अपने ऊपर थोपे मत रहना।
लेकिन मुझे ऐसा लगता है... इसीलिए दुनिया में इतने आस्तिक मालूम होते हैं, झूठे ही होंगे, नहीं तो जमीन बदल जाए। जमीन पर कितने आदमी आस्तिक हैं! सौ में कभी एकाध नास्तिक होता है। निन्यानबे तो आस्तिक ही होते हैं। ये निन्यानबे आस्तिक इस जमीन को धार्मिक नहीं बना पाते और एक नास्तिक इस जमीन को अधार्मिक बनाए हुए है। आश्चर्य है! ये निन्यानबे आस्तिक झूठे हैं। इनके भीतर कोई आस्था नहीं है। ऊपर-ऊपर से थोपकर इन्होंने अपने को सम्हाल रखा है। और ये भयभीत हैं।
भय तभी होता है जब स्वयं के भीतर संदेह हो। कोई आपको संदिग्ध नहीं कर सकता। लेकिन आप संदिग्ध हैं ही। सिर्फ ऊपर से आपने एक आवरण बना लिया है दृढ़ निश्चय का। इसलिए जब भी कोई संदेह की बात करता है, तो आपके भीतर के संदेह तरंगें लेने लगते हैं। वे भीतर छिपे हैं।
जो भीतर छिपा है, वही आपमें पैदा किया जा सकता है। इसे आप एक परम सिद्धांत समझ लें। जो आपके भीतर नहीं है, उसे कोई भी पैदा नहीं कर सकता। अगर आपके भीतर संदेह है, तो कोई भी संदेह पैदा कर सकता है। अगर आपके भीतर श्रद्धा है, तो ही कोई आपके भीतर श्रद्धा पैदा कर सकता है। जो आपके भीतर नहीं है, उसे भीतर जन्माने का कोई उपाय नहीं है।
यम ने बड़ी कोशिश की हिलाने की। इस छोटे-से बच्चे के साथ यम थोड़ा ज्यादती करता हुआ मालूम पड़ता है। यह निर्दोष बच्चे को वह प्रलोभन दे रहा है! अगर सोचें तो थोड़ा हमें लगेगा कि यम थोड़ी ज्यादती कर रहा है। इस निर्दोष बच्चे की जिसकी उम्र पांच साल, सात साल, इतनी कुछ रही होगी, उससे यह कहना कि तुझे हम स्वर्ग की अप्सराएं देते हैं! थोड़ा ज्यादा मालूम पड़ता है। इस भोले बच्चे को विकृत करने की पूरी कोशिश कर रहा है यम। इस छोटे-से बच्चे को कहना कि तुझे हम सम्राट बना देते हैं सारे संसार का, कि तुझे जो

चाहिए ले। तू जो मांगे, हम देते हैं। छोटे बच्चे तो खिलौनों के प्रलोभन में आ जाते हैं। सारे संसार का साम्राज्य देने का जहां प्रलोभन दिया जा रहा हो, वहां कहना चाहिए कि यम थोड़ा कठोर परीक्षा ले रहा है। बूढ़े-बूढ़े भी खिलौनों में उलझ जाते हैं।
एक युवक मेरे पास आया। ऐसे ही मैंने उससे पूछा कि तुम्हारे पिता भी कभी यहां आते हैं? उसने कहा कि नहीं, मेरे पिता को फुर्सत ही नहीं है। वे अपनी कार ही साफ करते रहते हैं! चलाते भी नहीं, कि खराब न हो जाए! सुधार करवाते रहते हैं। कभी यह बदलेंगे, कभी वह बदलेंगे! कभी नया कुछ साज-सामान डालेंगे; सजाएंगे। और दिनभर वे कार में ही लगे हुए हैं। उनको फुर्सत नहीं। मेरी मां आना चाहती है, उस युवक ने कहा, लेकिन पिताजी घर में रहते हैं चौबीस घंटे तो वह भी नहीं आ सकती।
कार खिलौना हो गई। साधन न रही, कि उससे कहीं पहुंचना है। पहुंचने का
तो कोई सवाल ही नहीं है। निकालते तो हैं नहीं, कि खराब न हो जाए। लेकिन रखे- रखे भी चीजें खराब तो होती ही हैं, तो फिर उसको लीपापोती करके ठीक करते रहते हैं।
छोटे बच्चे अपने खिलौनों से खेल रहे हों, यह समझ में आता है। लेकिन बड़े बच्चे भी खिलौनों से ही खेलते रहते हैं। आप भी सोचें कि आप अपनी चीजों की कितनी चिंता करते हैं? सारा जीवन चीजों की चिंता में व्यतीत हो जाता है।
इस छोटे-से बच्चे को यह कहना कि तुझे सारे संसार का साम्राज्य दिए देता हूं। इस छोटे-से बच्चे को यह कहना कि तुझे जितना जीना हो तू जी! जितनी लंबी उम्र चाहिए! तेरे बेटे हजारों वर्ष के हों, तेरे पोते हजारों वर्ष के हों, ऐसी लंबी तेरी जीवन-यात्रा हो!
ध्यान रहे, बच्चे को मृत्यु का कोई बोध नहीं होता। मृत्यु का बोध तो बूढ़ों तक को मुश्किल से हो पाता है। क्योंकि जिसको मृत्यु का बोध हो जाए, वह संन्यस्त हो जाएगा। मृत्यु संन्यास लाती है, वैराग्य लाती है। मरते दम तक आदमी जीना चाहता है। अगर मरती हुई आखिरी श्वास टूट रही हो, तब भी आप किसी को कह दें कि अब बस तुम मरने वाले हो, तो वह आपको दुश्मन की तरह देखता है।
मैंने सुना है, एक युवक ज्योतिष का अध्ययन करके लौटा। उसका पिता पुराना अनुभवी ज्योतिषी था। उसने अपने बेटे से कहा कि जल्दी मत करना। क्योंकि यह ज्योतिष बड़ी गहरी कला है। इसमें सत्य कहना आवश्यक नहीं है। इसमें सत्य कहने से बचना पड़ता है। और इसमें सत्य भी कहना हो तो ऐसे ढंग से कहना होता है कि उसका पता न चल पाए। इसमें असत्य भी बोलने पड़ते हैं। यह बड़ी मीठी कला है। इसमें सिर्फ शास्त्र के ज्ञान से कुछ न होगा। तू ठहर। हर किसी को ज्योतिष का ज्ञान मत दिखाने लगना।
लेकिन उस युवक ने कहा, कि मैं काशी से लौटा हूं, और सब ज्ञान पूरा पा लिया हूं, और अब रुकना मुझसे नहीं हो सकता। मैं जाता हूं सम्राट के पास। और जितना मैं जानता हूं उससे मैं घोषणा कर सकता हूं कि क्या होने वाला है। उसने कहा, तेरी मर्जी। मैं भी पीछे आता हूं।
बाप ने कहा कि पहले मैं सम्राट को कुछ कहूं, उसका हाथ देखूं, फिर तू देखना। बाप ने हाथ देखा, और उसने कहा कि साम्राज्य और बढ़ेगा; तेरे जीवन में सूर्योदय होने के करीब है। युवक थोड़ा हैरान हुआ, क्योंकि रेखाएं कुछ और कहती हैं, यह आदमी मरने के करीब है।
बाप को सम्राट ने सम्मानित किया, धन दिया, कीमती वस्तुएं भेंट कीं। बेटे ने हाथ देखकर कहा कि एक बात भर निश्चित है कि तुम सात दिन से ज्यादा नहीं जीओगे। सम्राट ने उसे पकड़वाकर कोड़े लगवाए। बाप खड़ा देखता हंसता रहा। पिटे हुए लड़के को लेकर घर लौटा। उससे कहा कि देख, शास्त्र में जो लिखा है वह समझदारों के लिए है। समझदार कहां हैं लेकिन! वह मुझे भी दिख रहा था कि सात दिन में मरेगा, लेकिन उसके पहले अपने को मरना हो तो इसकी घोषणा करनी है। सत्य कहना काफी नहीं है। वह क्या चाहता है? उसकी वासना क्या है? उसकी हाथ की रेखा से ज्यादा उसकी इच्छाओं की रेखाओं को पहचानना जरूरी है।

इसलिए जब आप ज्योतिषी के पास जाते हैं, तो वह आपकी इच्छाओं की रेखाएं पहचानता है। वह कोशिश करता है, वासनाएं कहां दौड़ रही हैं, उनमें जितनी दूर तक सहयोग दे सके, देता है।
मरते दम तक भी आदमी यह सुनना नहीं चाहता है कि वह मर रहा है, या मरने वाला है।
यह छोटा-सा बच्चा जो अभी जीवन को जाना भी नहीं, इसे लंबे जीवन का प्रलोभन देना, थोड़ा ज्यादा है! लेकिन यम ने अतिशयोक्ति की है, ताकि अगर यह बच्चा हिल सकता हो तो हिल ही जाए। और ध्यान रहे, मृत्यु के सामने हम सब छोटे बच्चे ही हैं। और जीवन के अंत तक प्रलोभन हमें हिलाता है। संशय हमें डांवाडोल करते हैं। कोई भी हमें दिक्कत में डाल सकता है। कोई भी! कोई मृत्यु जैसे सबल महात्मा का होना जरूरी नहीं है; कोई भी!
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम ध्यान करते हैं, और बड़ा आनंद आना शुरू हुआ था कि एक आदमी ने कहा कि यह तुम क्या कर रहे हो? यह कोई ध्यान है! बस संशय पैदा हो गया। तुम्हें आनंद आ रहा था, इतनी जल्दी संशय कैसे पैदा हो गया! कम से कम इतना तो देखो कि इस संशय से कुछ आनंद आ रहा है? तो जिससे आनंद आ रहा था, उस दिशा में चलो। क्योंकि अंततः अगर कोई व्यक्ति आनंद को ही खोजता चला जाए तो परमात्मा तक पहुंच जाता है।
इसलिए हमने परमात्मा की व्याख्या में सच्चिदानंद, उसे आनंद की आखिरी अवस्था कहा है। अगर कोई इतनी ही जांच-परख करता रहे अपने यंत्र की कि जहां मुझे आनंद आ रहा है वहीं मैं चलता चला जाऊं, तो भी आदमी कितना ही भटके, सदा के लिए भटका हुआ नहीं रहेगा।
लेकिन आनंद आ रहा हो, तो भी कोई भी आपको डांवाडोल कर सकता है। भीतर संदेह बैठा ही हुआ है, बाहर के लोग सिर्फ उसे इशारा करके निकाल देते हैं, प्रगट कर देते हैं। आप खुद ही डरे हुए हैं, कि पता नहीं मैं क्या कर रहा हूं! पता नहीं यह पागलपन तो नहीं है! आपका भय ही आपका संदेह बन जाता है; दूसरे तो केवल निमित्त हैं।
यम ने पूरी कोशिश की, लेकिन पाया कि इस नचिकेता को हिलाने-डुलाने का कोई भी उपाय नहीं है। दृढ़निश्चयी है। परम वैराग्यवान है। निर्भीक है। अतः ब्रह्मविद्या का उत्तम अधिकारी है।
तो ये तीन बातें अधिकारी बनाती हैं--कि वैराग्य हो, कि चेतना भीतर की तरफ चलने को राजी हो; कि निश्चय हो, कि जो हम करना चाहें उसे पूरे प्राणों से कर सकें; कि अभय हो, कि भय हमें डांवाडोल न करे।
ध्यान रहे, जब तक भय होता है, तब तक प्रलोभन भी होता है। भय और लोभ एक
ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो आदमी भयभीत है, उसे फौरन लोभ में डाला जा सकता है। जो आदमी लोभी है, उसे भयभीत किया जा सकता है। ध्यान रहे, दोनों साथ जुड़े हैं। अक्सर लोग कोशिश करते हैं निर्भय होने की, लेकिन उन्हें पता नहीं, जब तक लोभ है, तब तक वे निर्भय नहीं हो सकते। क्योंकि लोभ भय का मूल है। जब तक आप कुछ मांगते हैं, तब तक आप डरेंगे।
मैंने सुना है कि च्वांग्त्से, चीन का एक बहुत रहस्यवादी संत, एक सम्राट का वजीर था। फिर उसने वजीर के पद को छोड़ दिया और संन्यस्त हो गया। फिर वह जंगल में एक वृक्ष के नीचे निवास करने लगा। सम्राट शिकार को आया था, तो उसके मित्रों ने कहा कि आपका पुराना वजीर च्वांग्त्से यहां पास में ही एक वृक्ष के नीचे रहता है। अगर आपकी जिज्ञासा हो तो हम देखते चलें। सम्राट ने कहा, जरूर! देखने जैसा होगा। क्या हुआ च्वांग्त्से का? संन्यस्त होकर वह कैसा हो गया है? वजीर था सम्राट का पुराना। सम्राट परिचित भी था भलीभांति। और वजीर बड़ा सुसंस्कृत था।
सम्राट आया, उतरकर खड़ा हुआ। च्वांग्त्से पैर फैलाए बैठा था, अपनी खंजड़ी बजा रहा था। पैर फैलाए ही रहा। यह बड़ी अशोभन बात थी। सम्राट सामने खड़ा हो और आप पैर फैलाए बैठे हों! तो सम्राट ने कहा कि च्वांग्त्से, संन्यास ठीक है, लेकिन संस्कार तो मत छोड़ो। ये पैर क्यों फैले हुए हैं? तो च्वांग्त्से ने कहा, जिस दिन लोभ छूट गया, उस दिन भय भी छूट गया। न तुमसे कुछ चाहना है, न तुमसे कुछ डर है। संस्कार के कारण पैर नहीं मुड़ते थे, लोभ के कारण मुड़ते थे। डरता था। तुम कुछ छीन सकते थे। तुम जो छीन सकते थे, मैं खुद ही छोड़ आया। अब तुम्हारा कोई भय नहीं। अब तुम समझ रहे हो कि तुम

सम्राट हो, मेरे लिए जैसे और लोग इस राह से गुजरते हैं, वैसे ही तुम हो। तुम सम्राट थे कभी; वह मेरे लोभ के कारण थे। क्योंकि तुमसे कुछ ज्यादा मिल सकता था, जो किसी और से नहीं मिल सकता था। अब? अब तुम वैसे ही राह से गुजरने वाले एक राहगीर हो, जैसे और हैं। और पैर अब क्या मोड़ें, अब कोई भय न रहा। जैसे ही लोभ जाता है, वैसे ही भय चला जाता है।
तो जब यम ने देखा कि इतने लोभ भी इस नचिकेता को प्रलोभित नहीं करते, स्वभावतः यह निर्भीक है। इसके पास कोई भय नहीं है। यह अभय को उपलब्ध हुआ है। यह ब्रह्मविद्या का अधिकारी है।
तो यम ने कहा--श्रेय अर्थात कल्याण का साधन अलग है और प्रेय अर्थात प्रिय लगने वाले भोगों का साधन अलग है। वे भिन्न-भिन्न फल देने वाले दोनों साधन मनुष्य को बांधते हैं, अपनी-अपनी ओर आकर्षित करते हैं। उन दोनों में से श्रेय अर्थात कल्याण के साधन को ग्रहण करने वाले का कल्याण होता है। परंतु जो प्रेय अर्थात सांसारिक भोगों के साधन को स्वीकार करता है, वह यथार्थ लाभ से वंचित रह जाता है।
श्रेय और प्रेय दोनों ही मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान मनुष्य
उन दोनों के स्वरूप पर भलीभांति विचार करके उनको पृथक-पृथक करके समझ लेता है। और वह श्रेष्ठबुद्धि मनुष्य परम कल्याण के साधन को ही भोग-साधन की अपेक्षा श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है। परंतु मंदबुद्धि वाला लौकिक योगक्षेम की इच्छा से भोगों के साधनरूप प्रेय को अपनाता है।
ये दो शब्द बड़े कीमती हैं--श्रेय और प्रेय। श्रेय से अर्थ है--वह जो श्रेष्ठ है, वह जो सत्य है, वह जो परम आत्यंतिक है, शुभ है, शिव है। और प्रेय से अर्थ है--वह जो प्यारा है, प्रिय है; चित्त को प्रसन्न करता है, चित्त को रंजित करता है; जो किसी काम को किसी वासना को तृप्त करने का आश्वासन देता है।
प्रेय का अर्थ है--वासना जिससे प्रफुल्लित होती है। और श्रेय का अर्थ है--आत्मा जिससे प्रफुल्लित होती है। प्रेय का अर्थ है, मन को लगता है कि इससे आनंद आएगा। लेकिन आता कभी भी नहीं। क्योंकि लगने से कुछ संबंध नहीं है।
आपको भला लगता हो कि रेत से तेल निकल आएगा, लेकिन लगने से कुछ अर्थ नहीं है। रेगिस्तान में आपको भला लगता हो कि वह दूर जो दिखाई पड़ता है मरूद्यान वह वास्तविक है, लेकिन आपके दिखाई पड़ने से कुछ वास्तविकता का संबंध नहीं है। आप जब पास जाते हैं तो पाते हैंः सब किरणों का खेल था। वहां कोई मरूद्यान नहीं है। वह केवल मृग-मरीचिका थी। जो आपको दिखाई पड़ता है, वह जरूरी रूप से हो, ऐसा नहीं है।
प्रेय से अर्थ है--जो आपको दिखाई पड़ता है कि तृप्ति देगा, लेकिन जब आप पाते हैं तो तृप्ति देता नहीं। एक आदमी सोचता है कि यह स्त्री मिल जाए; या यह पुरुष मिल जाए। जब तक नहीं मिलता, तब तक लगता है कि सारे स्वप्न उसी के इर्द-गिर्द घूमते हैं। लेकिन मिल जाने पर मृग-मरीचिका हाथ लगती है। कोई भी प्रेम सफल नहीं होता। और अगर प्रेमी रहना हो, सदा प्रेमी बने रहना हो, तो प्रेयसी की निकटता न मिले यह जरूरी है।
रवींद्रनाथ ने एक उपन्यास लिखा--और रवींद्रनाथ ने बड़े अनुभव से यह बात कही है--उस उपन्यास में जो पात्र है, वह एक युवती के प्रेम में है। और वह युवती से कहता है कि विवाह हम न करें। क्योंकि विवाह सदा ही प्रेम को तोड़ देता है। युवती की समझ में बात नहीं आती। आ भी नहीं सकती। क्योंकि प्रेम है, इसलिए विवाह करें--यह समझ में आता है। वह युवक कहता है, विवाह भी हम कर लें, तो तू झील के उस पार रहना और मैं इस पार। कभी-कभी हम मिल लिया करेंगे--आकस्मिक, अनायास। या कभी निमंत्रण देकर मैं तेरे घर आऊंगा, या तू मेरे घर आ जाना। लेकिन हम साथ-साथ न रहें। वह युवती कहती है, तुम पागल हो! विवाह हम करते ही इसलिए हैं कि साथ-साथ रहें। चौबीस घंटे साथ रहें। वह युवक कहता है, तो प्रेम मर जाएगा।
रवींद्रनाथ ने बड़े अनुभव से यह कथा लिखी है। हजारों-हजारों प्रेम की कथा यही है। मजनूं अब भी लैला को प्रेम करता होगा, कहीं भी हो, क्योंकि लैला उसको मिली नहीं। मिल जाती तो उसका सदा के लिए छुटकारा हो जाता।

एक मृग-मरीचिका है। प्रेय से अर्थ है--वे वस्तुएं, वे व्यक्ति, वे संबंध, दूर से पता चलता है कि बड़ा आनंद होगा, जैसे-जैसे पास आते हैं, आनंद खो जाता है और दुख घना हो जाता है।
ठीक इससे उलटी स्थिति श्रेय की है। प्रेय में प्रारंभ में तो लगता है सुख और पीछे आता है दुख। श्रेय में पहले तो लगता है दुख और पीछे आता है सुख। इसलिए श्रेय शुरू में तपश्चर्या है। वह कष्ट का अपने हाथ से, स्वेच्छा से वरण है। इसलिए श्रेय का साधक तपश्चर्या में लगेगा ही।
यह बड़े मजे की बात है कि जहां पहले सुख दिखाई पड़ता है, वहां पीछे दुख हाथ आता है। यह हम सबका अनुभव है। हम सबको थोड़े-बहुत अनुभव हैं कि जहां- जहां सुख दिखाई पड़ा, वहां-वहां दुख पाया। लेकिन उससे हमने कुछ सीखा नहीं। उससे हमने यह जीवन का नियम न सीखा कि सुख का पहले दिखाई पड़ना खतरनाक है। वह असल में प्रलोभन है।
वह सुख का पहले दिखाई पड़ना वैसे ही है जैसे हम कड़वी दवा पिलानी हो किसी को तो ऊपर से शक्कर चढ़ा देते हैं। हर कड़वी गोली के ऊपर शक्कर चढ़ी होती है। मछली को पकड़ना हो तो कांटे में आटा लगा देते हैं। कौन आटा डालकर बैठता है नदी के किनारे मछलियों को खिलाने! कांटा डालकर बैठते हैं लोग। लेकिन मछली कांटे को पकड़ेगी नहीं। मछली आटे को पकड़ना चाहती है। तो सीधी बात है, सीधा गणित है, कि आंटे को ऊपर और कांटे को भीतर कर लो।
हम सब पूरे जीवन यही कर रहे हैं। इसे थोड़ा समझें। क्योंकि जीवन के गहरे मनस-शास्त्र से संबंधित यह बात है। अभी पश्चिम में बहुत खोजबीन चलती है, क्योंकि पश्चिम ने एक बड़ी भूल कर ली। वह भूल यह कर ली कि उसने प्रेम के ऊपर विवाह को आधारित कर लिया। इसके पहले विवाह आयोजित होते थे, अरेंज्ड होते थे। लड़के और लड़की का कोई संबंध ही नहीं था, जैसे उनका विवाह ही नहीं हो रहा है। यह मां-बाप का मामला था। पंडित-पुरोहित कुंडली मिलाते, हिसाब बिठाते। माता-पिता कुल की जांच-पड़ताल करते और विवाह करते। लड़के और लड़की का कोई लेना-देना नहीं था। विवाह दो परिवार करते थे। प्रेम का कोई सवाल नहीं था।
पश्चिम ने एक नया प्रयोग करने की कोशिश की पिछले दो-तीन सौ सालों में।
और उसने कहा कि आयोजित विवाह भी कोई विवाह है! प्रेम से विवाह होना चाहिए। बात बड़ी कीमती थी। लेकिन प्रेम का विवाह टूट रहा है। तलाक रोज बढ़ते चले जाते हैं। अमरीका में सौ विवाह में से पचास के तलाक हो जाते हैं। और जो पचास के नहीं होते, वह आप यह मत समझना कि वे बड़े सुख में रह रहे हैं। वे सिर्फ तलाक की हिम्मत नहीं जुटा पाते। कुछ अड़चनें हैं।
सिर्फ कहानियों में या फिल्मों में, खासकर भारतीय फिल्मों में, विवाह
पर सब खत्म हो जाता है, उसके बाद दोनों सुख से रहने लगे! कोई कभी नहीं रहता। कि राजा-रानी का विवाह हो गया और उसके बाद वे दोनों सुख से रहने लगे, इस पर कहानी खत्म हो जाती है। असल में कहानी यहीं से शुरू होती है। सारा उपद्रव यहां से शुरू होता है। इसके पहले तो प्राथमिक भूमिका थी, आटा था। कांटा तो यहां से शुरू होता है, जहां से दो व्यक्ति साथ होते हैं।
पश्चिम में विवाह टूट रहा है। क्योंकि विवाह को प्रेम के आधार पर खड़ा किया जा रहा है। प्रेम के आधार पर विवाह खड़ा होगा, तो टूटेगा। कारण हैं उसके। क्योंकि जब भी दो व्यक्ति एक-दूसरे के प्रेम में पड़ते हैं, तो दोनों ही अपने भीतर जो श्रेष्ठ है वह दिखलाते हैं और जो निकृष्ट है उसको छिपाते हैं।
अगर आप किसी के प्रेम में पड़ जाएं--आप पुरुष हैं या स्त्री हैं--तो जिससे आप प्रेम में पड़ जाते हैं, उसको आप अपना सुंदरतम चेहरा दिखलाते हैं। वह आपकी वास्तविकता नहीं है। वह आपका पूरा होना नहीं है, एक पहलू हो सकता है। और यह भी हो सकता है कि पहलू भी न हो, वह सिर्फ दिखावा हो। लेकिन कभी- कभी बीच पर मिले, कभी बगीचे में मिले, कभी चांद-तारों के नीचे मिले, तो यह चेहरा दिखाया जा सकता है। लेकिन जब चौबीस घंटे साथ रहेंगे, तो वह जो असली आदमी है, वह प्रगट होना शुरू होगा। वह असली आदमी नरक है। तो वे जो बातें चांद-तारों के नीचे हुई थीं, वे सब टूट जाती हैं।

जब दो व्यक्ति करीब आते हैं, उनकी असलियत जाहिर होती है। दोनों के नरक प्रगट हो जाते हैं। और दोनों ने जो चेहरे दिखाए थे वे हट जाते हैं, क्योंकि उनको चौबीस घंटे ओढ़े रहना आसान नहीं है।
मैं यह कह रहा हूं कि दो प्रेमी भी आटा दिखलाते हैं और कांटे को छिपा लेते हैं। इसलिए सब विवाह जो प्रेम पर खड़े होते हैं, टूट जाते हैं। तब तक प्रेम पर विवाह खड़े नहीं हो सकते, जब तक हम कांटे को दिखलाने की हिम्मत न जुटाएं। दो प्रेमियों को चाहिए कि विवाह के पहले अपने नरक को पूरा प्र्रगट कर दें। अगर दोनों एक-दूसरे के नरक से राजी हों, तो विवाह होना चाहिए। फिर तलाक नहीं होगा। क्योंकि तलाक का सारा कारण पहले ही समाप्त हो गया।
लेकिन दोनों अपना स्वर्ग दिखलाते हैं। दोनों दिखलाते हैं अपने स्वप्नों का जाल। जितने-जितने करीब आते हैं, स्वप्न खो जाते हैं। जैसे इंद्रधनुष के पास जाएंगे, इंद्रधनुष खो जाएगा। वह सिर्फ दूर से ही दिखाई पड़ता है; पास जाने की भूल मत करना।
जीवन में सब तरफ ऐसा है। न केवल ऐसा पति-पत्नी के बीच है, मित्रों के बीच, गुरु-शिष्यों के बीच, नेताओं-अनुयायिओं के बीच, सब तरफ जहां भी संबंध हैं, वहां आटा है। थोड़ी ही देर में आटे की पर्त को तोड़कर कांटा निकल आता है, क्योंकि कांटा वास्तविक है और आटा ऊपर-ऊपर है, वह केवल पर्त है।
प्रेय हम उसे कहते रहे हैं, जिसमें पहले तो झलक मिले कि सुख मिलेगा और पीछे दुख मिले। प्रेय का हमें अनुभव है। श्रेय ठीक इससे उलटा है। और अगर यह हो सकता है कि पहले सुख की झलक और पीछे दुख हाथ आता हो, तो इससे उलटा भी हो सकता है कि पहले दुख और पीछे सुख हाथ आता हो।
हमने इस आधार पर एक अलग जीवन निर्मित करने की कोशिश की थी। इस देश में
हम बच्चों के जीवन का प्रारंभ अत्यंत कठोर दुख और तप से शुरू करवाते थे। जंगल में भेज देना गुरुकुल में बच्चों को, कष्टपूर्ण था। न वहां सुविधाएं थीं सभ्यता की, न साधन थे। वहां ठीक जंगल में सारी कठिनाइयों और कठोरताओं के बीच बच्चे को बड़ा होना पड़ता था। कठोर गुरु वहां थे। श्रम भी करना होता, लकड़ी काटनी होती, गाएं चरानी होतीं, घास काटना पड़ता। छोटे बच्चे सारी मेहनत करते, तब कहीं छोटी-मोटी शिक्षा उन्हें मिलती। पच्चीस साल इस तपश्चर्या के बाद जब वे जीवन में आते, तो अगर उन्हें रूखी रोटी भी मिल जाती तो सुखद मालूम होती थी।
भारत सुखी था बहुत दिनों तक, उसका कारण यह नहीं था कि भारत के पास सब कुछ था। उसका कारण था कि भारत की शिक्षा दुख से शुरू होती थी। आज शिक्षा सुख से शुरू होती है; पूरा मुल्क दुखी है, पूरी जमीन दुखी है। विद्यार्थी को जो सुविधा यूनिवर्सिटी में और हास्टल में मिलती है, वह उसका बाप घर पर नहीं दे सकता। और जब यूनिवर्सिटी की सारी सुख-सुविधाओं को लेकर बच्चा वापस लौटेगा, विवाह करेगा, और एक सौ रुपये की नौकरी पर लगेगा, और सारे तरह के कष्ट आने शुरू होंगे, जीवन एक महादुख हो जाएगा।
असल में जो चीजें भी सुख से शुरू होती हैं, वे दुख पर समाप्त होती हैं।
और जो चीजें भी दुख से शुरू होती हैं, वे सुख पर समाप्त हो सकती हैं। दुख की शिक्षा प्राथमिक चरण होना चाहिए, तो जीवन के अंत में संतोष संभव है। लेकिन सभी मां-बाप सोचते हैं कि बच्चों को सुख दो। बेचारे बच्चे! इन्हें तो कम से कम सुख दो। वे इनके जीवनभर के दुख का आयोजन कर रहे हैं।
तपश्चर्या का अर्थ है--दुख को स्वेच्छा से वरण करना। श्रेय का प्रयोजन है प्रेय से उलटाः दुख को पहले वरण लो। दुख से भागो मत, छिपाओ मत। दुख से डरो मत, बल्कि दुख को जीओ। ताकि दुख का दंश निकल जाए। और तुम इतने अभ्यस्त हो जाओ दुख के कि दुख तुम्हें दुख न दे सके। उसके बाद जीवन में महासुख का अवतरण है।
इसलिए कर्तव्य दुख देता है, नैतिकता दुख देती है। शुभ करने में दुख होता है, अशुभ करने में बड़ा प्रलोभन मिलता है। अगर लाख रुपये पड़े हैं, तो सामने दोनों सवाल उठ जाते हैं। एक मन कहता है, उठा लो। क्योंकि लाख के पीछे बड़े सुख की संभावना है। बहुत महल खड़े होने का उपाय है। और एक मन कहता है, छोड़ दो। लेकिन छोड़ने में दुख है। अगर आप उठा लेते हैं और चोरी को चुन लेते

हैं, तो आपने प्रेय को तो चुन लिया, लेकिन साथ ही आपका पूरा जीवन दुख से भर जाएगा।
लेकिन अगर आप छोड़ देते हैं, हिम्मत से, साहस से हट जाते हैं उन लाख रुपयों पर लात मारकर, तो आपने दुख को चुना। क्योंकि लाख के सुख की जो आशा थी, वह समाप्त हो गई। लेकिन इस दुख के चुनाव में आप श्रेय को चुन रहे हैं, अचौर्य को चुन रहे हैं। और यह अचौर्य आपको महासुख की तरफ ले जाएगा।
चोरी ने कभी किसी को सुखी नहीं बनाया है। चोर कितना ही इकट्ठा कर ले, चोर ही होगा, दुखी ही होगा। उसकी आत्मा दबी ही होगी। उसकी आत्मा का फूल खिल नहीं सकता है।
श्रेय का अर्थ है, दुख को चुनना, शुभ के लिए। चाहे स्पष्ट रूप से पीड़ा में गुजरना पड़े, संताप भोगना पड़े, असुविधा झेलनी पड़े, कष्ट भाग्य बन जाए, लेकिन श्रेय के लिए, शुभ के लिए, शिव के लिए उस कष्ट को जो स्वीकार कर लेता है, उसकी आत्मा विकसित होती है। उसकी आत्मा इंटीग्रेटेड, अखंड हो जाती है। उसकी आत्मा एक हो जाती है। यह कष्टों का स्वेच्छा से वरण अग्नि बन जाता है। और उसकी आत्मा इस अग्नि में निखरकर शुद्ध हो जाती है।
लेकिन जो छोटे-छोटे क्षुद्र सुखों को चुन लेता है, धीरे-धीरे पाता है
कि सारी आत्मा खंडित हो गई। वासनाएं, उनकी दौड़, उनकी साधन-सामग्री इकट्ठी होती चली जाती है, भीतर का आदमी खोता चला जाता है।
नचिकेता के सामने दोनों ही सवाल हैं। यम ने उसे कहा कि श्रेय और प्रेय
दो मार्ग हैं।
हे नचिकेता! तुम ऐसे निस्पृह हो कि प्रिय लगने वाले और अत्यंत सुंदर रूप वाले इस लोक और परलोक के समस्त भोगों को भलीभांति सोच-समझकर तुमने छोड़ दिया। इस संपत्तिरूपशृंखला को, बेड़ियों को तुम नहीं प्राप्त हुए। इसके बंधन में तुम नहीं फंसे, जिसमें बहुत से मनुष्य फंस जाते हैं।
जो कि अविद्या और विद्या के नाम से विख्यात हैं... ।
ये दो शब्द और भी समझने जैसे हैं।
अविद्या का अर्थ अज्ञान नहीं होता, जैसा कि शब्दकोशों में लिखा है।
विद्या का अर्थ भी सिर्फ ज्ञान नहीं होता, जैसा कि शब्दकोशों में अंकित है। अविद्या का अर्थ होता है, ऐसा ज्ञान जिससे प्रेय मिले। और विद्या का अर्थ होता है, ऐसा ज्ञान जिससे श्रेय मिले। अविद्या भी ज्ञान है, विद्या भी ज्ञान है। अविद्या उस ज्ञान का नाम है जिससे प्रेय मिलता है।
चोर का भी कुछ ज्ञान है। कोई योगी का ही ज्ञान है ऐसा नहीं है, भोगी का
भी कुछ ज्ञान है। बुरे आदमी की भी कुछ व्यवस्था है, कुशलता है, कारीगरी है। बुरे आदमी की भी कला है।
जिससे प्रेय मिलता है, उस ज्ञान का नाम अविद्या है। इसे अगर समझें तो बड़ी मुश्किल होगी। इसका मतलब होगा कि सारा विज्ञान अविद्या है--पूरी साइंटिफिक नॉलेज। क्योंकि उससे प्रेय मिलता है, श्रेय नहीं मिलता। ज्यादा से ज्यादा प्रिय वस्तुएं मिलती हैं, लेकिन आत्मा तो नहीं मिलती। विज्ञान अविद्या का हिस्सा है। विद्या हम उसे कहते हैं जिससे आत्मा मिलती है। विद्या हम उसे कहते हैं जिससे व्यक्ति प्रिय का मोह छोड़ देता है; शुभ की खोज करता है, सत्य की खोज करता है। वह जो प्रिय की मिठास है, उसका त्याग करता है, और चाहे कड़वा जहर ही क्यों न हो सत्य, उसको पीने की तैयारी करता है। उस तैयारी से ही नवजीवन उपलब्ध होता है।
यम ने कहा कि ये दो हैं। और नचिकेता! तूने बड़ी हिम्मत की। तू बड़ा वैराग्यवान साबित हुआ। तू इसशृंखला में न फंसा, इस बेड़ी में न उलझा, जो कि अधिक लोगों को बांध लेती है--प्रिय की, प्रेय की।
अविद्या और विद्या दोनों परस्पर अत्यंत विपरीत और भिन्न-भिन्न फल देने वाली हैं। तुम नचिकेता को मैं विद्या का अभिलाषी मानता हूं। क्योंकि तुमको बहुत से भोग किसी प्रकार भी लुभा न सके।
तुम उस तत्व की खोज में हो, उस ज्ञान की, उस बोध की, उस ध्यान की, उस योग की, उस कीमिया की खोज में हो, जिससे व्यक्ति परम श्रेय को, परम परमात्मा को उपलब्ध हो जाता है। तुम प्रिय की तलाश नहीं कर रहे। क्योंकि मैंने तुम्हें सब प्रलोभन दिए, तुम उनसे अछूते बाहर आ गए, अस्पर्शित। कोई भी तुम्हारे मन को डांवाडोल न कर पाया।

अविद्या के भीतर रहते हुए भी अपने आपको बुद्धिमान और विद्वान मानने वाले मूढ़ लोग नाना योनियों में चारों ओर भटकते हुए ठीक वैसे ही ठोकरें खाते रहते हैं, जैसे अंधे मनुष्य के द्वारा चलाए जाने वाले अंधे अपने लक्ष्य तक न पहुंचकर, इधर-उधर भटकते और कष्ट भोगते हैं।
बड़ी अदभुत बात यम ने कही। यम ने कहा कि बहुत हैं जो बुद्धिमान हैं, पंडित हैं, जो अपने को ज्ञानी मानते हैं, लेकिन उनका सारा ज्ञान अविद्या का है।
हमारे विद्यालय, विश्वविद्यालय अभी तक भी विद्यालय नहीं हैं इस अर्थों में, अविद्यालय हैं। क्योंकि वहां जो भी सिखाया जा रहा है, उससे प्रेय की उपलब्धि होती है--वह भी नहीं हो पा रही है! उसका भी सिर्फ आश्वासन मिलता है। वे आश्वासन भी पूरे नहीं हो पाते। अगर हम उपनिषद के ऋषियों से पूछें, तो हमारे विद्यालय को वे कहेंगे कि गलत नाम दिया तुमने, अविद्यालय कहो। विद्यालय तो वह है जहां व्यक्ति को स्वयं को पाने की, सत्य को पाने की--आजीविका पाने की नहीं, जीवन को पाने की कला सिखाई जाती है।
कहता है यम, तुम अभिलाषी हो विद्या के। क्योंकि तुम वैराग्यवान, दृढ़निश्चयी, निर्भीक; तुम डांवाडोल नहीं होते; वासना के झोंके, आंधियां तुम्हारे चित्त की लौ को कंपा नहीं पातीं। तुम तैयार हो, तुम पात्र हो, मैं तुमसे विद्या कहूंगा।
आप भी जानते हैं बहुत कुछ। वह विद्या नहीं है। एक इंजीनियर है, एक डॉक्टर है, एक प्रोफेसर है, एक दुकानदार है, एक बढ़ई है, एक कारीगर है; एक कलाकार है, चित्रकार है, मूर्तिकार है; वे जो भी जानते हैं, विद्या नहीं है। वे जो भी जानते हैं, उससे प्रेय को पाया जा सकता है, उससे श्रेय को पाने का कोई उपाय नहीं है।
तो जब तक कोई व्यक्ति श्रेय को पाने की कला न जान ले, तब तक विद्यावान नहीं है। और श्रेय की कला को बिना जाने जो अपने को बुद्धिमान मानता हो, यम कह रहा है नचिकेता से कि वे बुद्धिमान मूढ़ हैं। और वे बुद्धिमान अपने को ही नहीं भटकाते, वे बहुतों को अपने साथ भटकाते हैं। जैसे अंधा दूसरे अंधों को ले चले और कहे कि मैं तुम्हें रास्ता दिखाऊंगा। वह खुद भी भटकेगा अनंत जन्मों तक, और बहुतों को भटकाएगा भी।
लेकिन यह मजे की बात है, और थोड़ी समझ लेने जैसी है। अंधे का भी मन दूसरों को मार्ग दिखाने का तो होता है। क्योंकि मार्ग दिखाने में अहंकार की बड़ी तृप्ति है। मार्ग पता न भी हो, तो भी।
जिब्रान ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। लिखा है कि एक गुरु था और वह गांव-गांव जाता और लोगों से कहता कि मुझे परमात्मा के घर का पता है। जिन्हें भी पहुंचना हो उस परम स्थान तक, आएं मेरे पीछे। लेकिन ध्यान रहे, फिर मेरे पीछे ही चलना होगा संकल्पपूर्वक। फिर बीच से लौटना मत, डांवाडोल मत होना। रास्ता कठिन है, यात्रा लंबी है। प्रलोभन भी देता और फिर काफी भय भी बता देता कि दुर्गम मार्ग है। और जाना बहुत मुश्किल है। कभी लाखों में कोई एक पहुंच पाता है। लेकिन अगर कोई हो सच्चा पहुंचने वाला, आ जाए मेरे पीछे, मैं उसे ले चलूंगा।
लोग कहते कि अभी तो सुविधा नहीं है, लेकिन आकांक्षा है। कभी जब समय होगा, सुविधा होगी, संसार की उलझन से जरा छूटेंगे, तो आपके चरणों में आएंगे। उसकी हिम्मत बढ़ती चली गई, क्योंकि कोई कभी पीछे चलने को राजी न होता था। तो वह और दावे करने लगा कि अभी पहुंचा सकता हूं, कोई चलने भर को राजी हो; लेकिन मार्ग बहुत दुर्गम है।
लेकिन एक गांव में एक पागल आदमी मिल गया। उसने कहा, अब देर नहीं करनी है। मैं तैयार हूं। गुरु थोड़ा डरा। उसे पहली दफे ख्याल आया कि कहां ले जाऊंगा! यह तो भूल ही गया था वह। क्योंकि कहीं ले जाने का कभी कोई सवाल न उठा था। फिर भी उसने सोचा--उसने डरवाने की कोशिश की कि मार्ग बहुत दुर्गम है। यात्रा लंबी है। उस आदमी ने कहा, बातचीत बंद, समय खोना व्यर्थ है, हम चलें। इतना समय क्यों गंवाएं? जब चलना ही है तो चलना ही है। गुरु ने कहा, बीच से छोड़कर मत जाना। उस खोजी ने कहा, मैं नहीं जाने वाला। आप भर बीच में मत छोड़ देना। मैं अब जाने ही वाला नहीं हूं कहीं। जहां आप होंगे, मैं आपकी छाया हूं। गुरु बहुत घबड़ाया। लेकिन सोचा कि इतनी हिम्मत कितने दिन तक!

एक वर्ष बीता, वह आदमी उसके पीछे ही लगा रहा। गुरु की हालत खराब होने लगी! वह अब दूसरे गांव में भी जाता तो इतनी हिम्मत से न कह पाता, क्योंकि वह आदमी पीछे खड़ा है! वह कहता, एक साल से तो मैं पीछे चल रहा हूं। अभी कहीं पहुंचे नहीं। यहीं गांव-गांव घूमते हैं! तो उसकी हिम्मत टूटने लगी। उसने बड़ी कोशिश की कि किसी तरह से इस आदमी को भगा दे, हटा दे, इससे छूट जाए। मगर वह बड़ा पक्का खोजी था। वह नचिकेता जैसा रहा होगा। वह बिल्कुल पीछे ही लग गया। छः साल बीत गए। उस आदमी ने यह भी नहीं पूछा कि अभी तक नहीं पहुंचे! उसने कहा, मार्ग दुर्गम है, कभी तो पहुंचेंगे; लेकिन मैं पीछे रहूंगा।
एक दिन गुरु ने उसके हाथ जोड़े और कहा कि देख, तेरे कारण मैं भी मार्ग भूल गया! मुझे पता था। तू कृपा कर, और मुझे छोड़।
अंधों को भी मार्गदर्शन करने का ख्याल तो आता है। और उसके कारण हैं। अंधा अगर दो आदमी पा जाए--अंधे ही सही--जो उसके पीछे चलते हों, तो अंधे को लगने लगता है कि मेरे पास आंखें हैं। दो आदमी मेरे पीछे चलते हैं, तो अंधे तो नहीं हो सकते! तो जितनी भीड़ बढ़ती जाती है गुरुओं के पीछे, उतना गुरु को पक्का भरोसा होने लगता है कि जरूर मैं कहीं जा रहा हूं।
अनुयायी की बड़ी जरूरत है गुरु को। उसकी वजह से ही उसे पक्का भरोसा होता है कि मैं भी हूं। और मेरे पास आंखें हैं।
सौ में निन्यानबे गुरु इस भांति... खुद अंधे अंधों को लिए चलते हैं। लेकिन बड़ी कठिनाई है। अंधे आदमी की बड़ी मुसीबत है। वह तौले भी तो कैसे तौले कि जो मुझे ले जा रहा है, वह अंधा है या नहीं? अंधा आदमी कैसे पता लगाए कि जो मुझे ले जा रहा है, वह अंधा है या नहीं? अगर खुद आंखें होतीं, तो देख लेता। आंखें तो नहीं हैं।
इसलिए शिष्य की बड़ी मजबूरी है। वह टटोलता फिरता है--एक गुरु से दूसरे गुरु, तीसरे गुरु के पास। कैसे वह पक्का पता लगाए?
लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि जिस आदमी की मैंने यह कहानी कही, अगर गुरु
को आप इतने जोर से पकड़ लें, तो अगर वह अंधा है तो खुद ही हाथ जोड़कर कहेगा कि मेरे पास आंखें नहीं हैं, अब आप कहीं और जाएं।
और एक बात ध्यान रहे कि भटकना तो पड़ेगा। सीधा-सीधा आपको गुरु मिल जाए,
यह असंभव है। करीब-करीब असंभव है। भटकना पड़ेगा। लेकिन अगर आप साहस से, निर्भीकता से, और आखिरी शब्द ख्याल रखें--वैराग्य के भाव से चलते रहें, तो अंधा गुरु आपको ज्यादा देर तक धोखा नहीं दे पाएगा। क्योंकि अंधा गुरु आपको लुभा पाता है, क्योंकि आपके भीतर वासना है, वैराग्य नहीं है।
तो कोई ताबीज देता है, कोई राख गिराता है, कोई चमत्कार दिखाता है, उससे
आप प्रभावित होते हैं। आपकी वासना, आपका लोभ--आपको लगता है कि जिस आदमी के हाथ में आकाश से ताबीज आ जाता है, तो यह क्या नहीं कर सकता। तो मेरी इच्छाएं भी पूरी करवा सकता है। जो चमत्कारी है उससे मेरी बीमारी दूर होगी, बेटा पैदा हो जाएगा, कि धन मिलेगा, कि अदालत में मुकदमा जीत जाऊंगा। वासनाओं को प्रलोभन मिलता है।
जो गुरु भी आपकी वासनाओं को किसी तरह तृप्त कर रहा है, जान लेना कि वह अंधा है, और अंधों को प्रलोभित करने की कला उसे पता है। जो गुरु आपकी वासनाओं को प्रलोभित नहीं कर रहा है, बल्कि आपको उस तरफ ले जा रहा है जहां परम वैराग्य है, जहां परम मृत्यु है; जहां जीवन का सारा उपद्रव छूट जाता है, बाहर की दौड़ खो जाती है, और भीतर का शून्य प्रगट होता है; अगर कोई गुरु आपको शून्यता की तरफ ले जा रहा है, जहां आपको कोई दूसरा आश्वासन नहीं है कि आपको धन मिलेगा, पद मिलेगा, प्रतिष्ठा मिलेगी, यश मिलेगा, कि आप चुनाव जीत जाओगे... ।
दिल्ली में एक ऐसा नेता नहीं है जिसका कोई गुरु न हो। क्योंकि वे गुरु चुनाव ही जितवाते हैं! और जैसे ही कोई नेता हारता है चुनाव में, अगर इसके पहले गुरुओं के पास न गया हो, तो फौरन पहुंच जाता है। जो लोग दिल्ली में पदों से हटते हैं, तो तत्क्षण आप उनको कहीं न कहीं ऋषियों के आश्रम में पाएंगे। बैठे हैं सत्संग में! पर वे सत्संग में तभी तक रहते हैं, जब तक चुनाव फिर नहीं जीत जाते।

गुरु-कृपा की तलाश चल रही है! और प्रलोभन देने वाले लोग हैं, जो कह रहे हैं, सब कुछ हो जाएगा; सब कुछ मिलेगा, बस तुम समर्पण करो। गुरु-चरणों में आ जाओ, सब मिलेगा।
वासना से भरे हुए लोग अंधों के द्वारा आकर्षित कर लिए जाते हैं। फिर जैसा यम कहता है--अंधों के पीछे चलते हुए लोग! जैसे नेता खुद गड्ढे में गिरता है और बाकी अंधे भी गड्ढे में गिरते हैं। नानक ने कहा है--अंधा अंधा ठेलिया। वे अंधे अंधों को लिए जा रहे हैं।
लेकिन यम ने कहा, नचिकेता! तुझे कोई अंधा नहीं ले जा सकता। तेरा गुरु होने के लिए, गुरु ही कोई हो, तो ही उपाय है। क्योंकि तुझे प्रलोभित नहीं किया जा सकता। जहां लोभ मर गया, वहां आपको कोई भी भटका नहीं सकता। सिर्फ लोभ भटकाता है। इसलिए आप गुरु की तलाश उतनी न करें, जितना लोभ को छोड़ने की तलाश करें। जिस दिन लोभ नहीं होगा, उस दिन गुरु से मिलन हो जाएगा। जिस दिन आपके भीतर लोभ न होगा, उस दिन कोई भी गलत आदमी आपको मार्ग-दिशा नहीं दे सकता। तब जो ठीक है, उससे सत्संग हो जाता है।
रात्रि के ध्यान के संबंध में दो बातें समझ लें।
रात्रि का ध्यान त्राटक का प्रयोग है। लेकिन बहुत अनूठा और बहुत शक्तिशाली। पहले चरण में पंद्रह मिनट तक आप एकटक मेरी ओर देखेंगे। (... बैठे रहें, पहले समझ लें।...) एकटक मेरी ओर देखेंगे। आंख झपकनी नहीं है। पलक गिरने नहीं देना है, चाहे आंसू बहने लगें। पूरी तरह आंख मेरी तरफ लगाए रखें। दोनों हाथ ध्यान करते वक्त ऊंचे उठा लेने हैं और खड़े होकर ध्यान करना है। मैं अपने हाथ से आपको इशारा करूंगा। जब मैं हाथ से आपको इशारा करूं तो आपको अपनी पूरी शक्ति से कूदना है, ताकि आपके भीतर जो छिपी हुई ऊर्जा है, वह सक्रिय हो जाए। आंख मेरी तरफ लगाए रखनी है, ताकि मुझसे जोड़ बन जाए, ताकि मुझसे संबंध और सेतु निर्मित हो जाए। और उछलते रहना है, और दोनों हाथ आकाश की तरफ ऊपर उठाए रखने हैं। और हू, हू, हू, का महामंत्र बोलना है। यह हू का महामंत्र आपके भीतर चोट करेगा। मेरा हाथ का इशारा आपको गति देगा। और मेरी तरफ आपकी आंख का जुड़ा होना एक गहन संबंध निर्मित करेगा। अगर यह प्रयोग ठीक से किया, तो पंद्रह मिनट में आप किसी और लोक में छलांग लगा रहे होंगे। पंद्रह मिनट के बाद मैं रुक जाने को कहूंगा। जो जैसा हो, उसे वहीं आंख बंद करके रुक जाना है, मुर्दे की भांति। पंद्रह मिनट इस मौन, शून्य, शांति में खड़े रहना, या गिर गए हों तो गिरे रहना।
बाद में अभिव्यक्ति का पंद्रह मिनट का समय होगा। तब पूरे दिनभर के आनंद को, प्रभु के प्रति अनुकंपा को, अनुग्रह को नाचकर, गाकर प्रगट कर देना है। और ध्यान रहे, आनंद को जितना प्रगट किया जाए, उतना ही बढ़ता चला जाता है। तो कंजूसी न करें। और डरें न कि कोई क्या कहेगा! छोटे बच्चों की तरह आनंद को प्रगट करें।

कठोपनिषद
चौथा प्रवचन

नास्तिक का सत्य, आस्तिक का असत्यः मृत्यु

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।। 6।।

श्रवणायपि बहुभिर्यो न लभ्यःशृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।।
7।।

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्।। 8।।

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृक नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा।।
9।।

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।। 10।।

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः।। 11।।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।। 12।।

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये।। 13।।

इस प्रकार संपत्ति के मोह से मोहित निरंतर प्रमाद करने वाले अज्ञानी
को परलोक नहीं सूझता। (वह समझता है) कि यह प्रत्यक्ष दिखने वाला लोक ही सत्य है, इसके सिवा दूसरा (स्वर्ग-नर्क आदि लोक) कुछ भी नहीं है। इस प्रकार मानने वाला अभिमानी मनुष्य बार-बार मुझ यमराज के वश में आता है।। 6।।

जो (आत्मतत्व) बहुतों को तो सुनने के लिए भी नहीं मिलता, जिसको बहुत से लोग सुनकर भी नहीं समझ सकते, ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय है (बड़ा दुर्लभ है)। उसे प्राप्त करने वाला भी बड़ा कुशल कोई एक ही होता है। और जिसे तत्व की उपलब्धि हो गई है, ऐसे ज्ञानी महापुरुष के द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ आत्मतत्व का ज्ञाता भी आश्चर्यमय है, (परम दुर्लभ है)।। 7।।

अल्पज्ञ मनुष्य के द्वारा बतलाए जाने पर, (और उनके अनुसार) बहुत प्रकार से चिंतन किए जाने पर भी यह आत्मतत्व सहज ही समझ में आ जाए, ऐसा नहीं है। किसी दूसरे ज्ञानीपुरुष के द्वारा उपदेश न किए जाने पर इस विषय में मनुष्य का प्रवेश नहीं होता, क्योंकि यह अत्यंत सूक्ष्म वस्तु से भी अधिक सूक्ष्म है; (इसलिए) तर्क से अतीत है।। 8।।

हे प्रियतम! जिसको तुमने पाया है, यह बुद्धि तर्क से नहीं मिल सकती।
यह तो दूसरे के द्वारा कही हुई ही आत्मज्ञान में निमित्त होती है। सचमुच

ही तुम उत्तम धैर्य वाले हो। हे नचिकेता! (हम चाहते हैं कि) तुम्हारे जैसे ही पूछने वाले हमें मिला करें।। 9।।

मैं जानता हूं कि कर्मफलरूप निधि अनित्य है। अनित्य (विनाशशील) वस्तुओं से वह नित्य (परमात्मा) नहीं मिल सकता, इसलिए मेरे द्वारा (कर्तव्यबुद्धि से) अनित्य पदार्थों के द्वारा नाचिकेत नामक अग्नि का चयन किया गया (अनित्य भोगों की प्राप्ति के लिए नहीं)। (अतः उस निष्कामभाव की अपूर्व शक्ति से मैं) नित्य (परमात्मा) को प्राप्त हो गया हूं।। 10।।

हे नचिकेता! जिसमें सब प्रकार के भोग मिल सकते हैं; जो जगत का आधार, यज्ञ का चिरस्थाई फल, निर्भयता की अवधि (और) स्तुति करने योग्य एवं महत्वपूर्ण है (तथा) वेदों में जिसके गुण नाना प्रकार से गाए गए हैं (और) जो दीर्घकाल तक की स्थिति से संपन्न है, ऐसे स्वर्गलोक को देखकर भी तुमने धैर्यपूर्वक उसका त्याग कर दिया, इसलिए (मैं समझता हूं कि तुम) बहुत ही बुद्धिमान हो।। 11।।

जो योगमाया के पर्दे में छिपा हुआ, सर्वव्यापी, सबके हृदयरूप गुहा में स्थित, संसाररूप गहन वन में रहने वाला सनातन है, ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्मदेव को शुद्ध बुद्धियुक्त साधक अध्यात्मयोग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता है।। 12।।

मनुष्य (जब) इस धर्ममय (उपदेश) को सुनकर, भलीभांति ग्रहण करके (और) उस
पर विवेकपूर्वक विचार करके इस सूक्ष्म आत्मतत्व को जानकर (अनुभव कर लेता है, तब) वह आनंदस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को पाकर आनंद में ही मग्न हो जाता है। तुम नचिकेता के लिए (मैं) परमधाम का द्वार खुला हुआ मानता हूं।।
13।।

सूत्र में प्रवेश के पहले थोड़ी प्रारंभिक बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात, हमें वही दिखता है जो हमारी वासना में छिपा होता है। जो मौजूद है, जरूरी नहीं कि हमें दिखे। हमारी आंख उसी को देख लेती है, जिसे हमारी वासना चाहती है। देखने में भी चुनाव है, सुनने में भी चुनाव है। हम वही सुन लेते हैं जो सुनना चाहते हैं। जो हम नहीं सुनना चाहते हैं, वह हमारे कानों से चूक जाता है। और जो हम नहीं देखना चाहते, उसे हमारी आंखें नहीं देख पातीं। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति अपने ही जगत में रहता है, अपने ही वासना के जगत में।
यहां इतने लोग हैं, मैं जो बोल रहा हूं, इसके उतने ही अर्थ हो जाएंगे जितने लोग यहां हैं। प्रत्येक वही सुन लेगा जो सुनना चाहता है। चुन लेगा, मतलब की बात निकाल लेगा। गैर-मतलब की बात अलग कर देगा। या ऐसे अर्थ निकाल लेगा जो उसकी वासना के अनुकूल हों।
जगत में हमें वही दिखाई पड़ता है जो हमने अपनी वासना में छिपा रखा है। लोग पूछते हैं, परमात्मा कहां है? यह पूछना ही गलत है। असली सवाल यह है कि परमात्मा को पाने की वासना कहां है? और जब तक परमात्मा को पाने की वासना न हो, वह गहन प्यास न हो, तब तक वह दिखाई नहीं पड़ेगा। नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए नहीं कि वह नहीं है, बल्कि इसलिए कि आपकी आंखें उसे देखना ही नहीं चाहतीं। अगर वह सामने भी हो तो आप बच जाएंगे। अगर वह आपके द्वार पर दस्तक भी दे, तो भी आप कुछ और ही अर्थ निकाल लेंगे। आप उसे पहचान न पाएंगे।
नदी बह रही हो लेकिन प्यास न हो, तो नदी दिखाई नहीं पड़ेगी। प्यास हो तो दिखाई पड़ती है। और जिस चीज की प्यास हो, वह दिखाई पड़नी शुरू हो जाती है। और इतनी जटिल है यह घटना कि बहुत बार प्यास अगर बहुत प्रबल हो, तो जो नहीं है वह भी दिखाई पड़ सकता है। और प्यास क्षीण हो, तो जो है वह भी दिखाई नहीं पड़ेगा।

हम अपनी वासना के जगत में जीते हैं। और उस वासना के फैलाव से हम चीजों
को देखते और पहचानते हैं। पूरब का योग तो इस सत्य को बहुत दिनों से जानता रहा है। लेकिन पश्चिम के मनसविद अब इस सत्य को स्वीकार करते हैं।
पश्चिम में विगत पचास वर्षों में मनोविज्ञान ने जो खोजें की हैं, उनमें एक खोज यह है कि सौ में से केवल दो प्रतिशत चीजें हमें दिखाई पड़ती हैं। सौ घटनाएं घटती हैं, तो उसमें से दो हमें दिखाई पड़ती हैं। अट्ठान्नबे से हम चूक जाते हैं। हमारी आंख चुन रही है, कान चुन रहे हैं, हाथ चुन रहे हैं, मन चुन रहा है।
तो जो हम जानते हैं, वह हमारी च्वाइस है, हमारा चुनाव है। हम वही नहीं जानते जो मौजूद है। और अगर हमारा चुनाव बहुत गहन हो, तो हम उस जगत का निर्माण कर लेंगे अपने आसपास, कल्पनालोक का, जो है ही नहीं। पागलखानों में बंद लोगों ने क्या किया है? उन्होंने एक जगत निर्माण कर लिया है, जो कहीं भी नहीं है। लेकिन उनके मन के लिए है।
पागलखाने में जाएं, अकेला आदमी बात कर रहा है किसी से। वह जिससे बात
कर रहा है वह आपके लिए नहीं है, उसके लिए पूरी तरह है। वह जवाब भी पा रहा है, वह झगड़ भी सकता है। और उसके लिए उस व्यक्ति की मौजूदगी में जरा भी संदेह नहीं है। वह व्यक्ति उसने खुद ही निर्मित किया है। किसी प्रबल कामना के वश में, वह कल्पना प्रगाढ़ हो गई है।
तो इस जगत में दो घटनाएं घट रही हैं। लोग उन चीजों को देख रहे हैं, जो नहीं हैं। और उन चीजों को चूक रहे हैं, जो हैं। यह पहली बात समझ लेनी जरूरी है।
अगर आपको परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, तो इससे केवल एक ही बात पता चलती
है कि उसकी प्यास आपके भीतर नहीं है। अन्यथा परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। और जिस दिन प्यास होगी, उस दिन सब चीजें क्षीण पड़ जाएंगी। और सभी चीजें पारदर्शी हो जाएंगी। और उनके भीतर परमात्मा का ही दर्शन शुरू हो जाएगा। वृक्ष तब भी दिखाई पड़ेगा, लेकिन बस परमात्मा का एक आकार। आकाश में बदलियां तब भी बहेंगी, चलेंगी, लेकिन बस परमात्मा का एक रूप। चारों तरफ व्यक्ति भी होंगे--पत्नी होगी, पति होंगे, बच्चे होंगे, मित्र होंगे--लेकिन बस परमात्मा की अनेक छबियां हैं, उसके प्रतिबिंब। वह प्रमुख हो जाएगा। वह केंद्र पर हो जाएगा। और सभी उसकी छायाएं हो जाएंगी। सभी उसकी प्रतिलिपियां हो जाएंगी। वही दिखाई पड़ेगा, शेष सब गौण होता चला जाएगा। और इस घटना की सूचना के लिए ही शंकर जैसे ज्ञानियों ने जगत को माया कहा है। जिस दिन परमात्मा सत्य होता है, उस दिन जगत माया हो जाता है। लेकिन जब तक जगत सत्य है, तब तक परमात्मा माया है। और जिनके लिए जगत बहुत सत्य है, वे पूछते हैं, परमात्मा कहां है? उन्हें ख्याल भी नहीं आता कि उनके देखने का ढंग, उनके जीने का ढंग, उनकी आंखें, उनके विचार की पद्धति, मनोवैज्ञानिक जिसे गेस्टॉल्ट कहते हैं... । यह गेस्टॉल्ट की धारणा थोड़ी समझ लेने जैसी है।
जर्मनी में एक मनोवैज्ञानिकों का स्कूल पैदा हुआ है, गेस्टॉल्ट साइकोलॉजी। आप आकाश की तरफ देखें, आकाश में बादल चल रहे हों, फिर हर आदमी सोचे कि उसे क्या दिखाई पड़ता है बादलों में। वहां कोई भी नहीं है। लेकिन किसी को कृष्ण बांसुरी बजाते हुए दिखाई पड़ सकते हैं। वह गेस्टॉल्ट है। वह उस आदमी के भीतर छिपा है, जो वह बादलों पर आरोपित कर रहा है। किसी को कोई फिल्म अभिनेत्री दिखाई पड़ सकती है। वहां सिर्फ बादल हैं। किसी को हाथी- घोड़े--छोटे बच्चों को हाथी-घोड़े दिखाई पड़ सकते हैं, राक्षस लड़ते हुए दिखाई पड़ सकते हैं, परियां उड़ती हुई दिखाई पड़ सकती हैं। और हर आदमी को अलग-अलग चीजें उन्हीं बादलों में दिखाई पड़ जाएंगी। हर आदमी अपने भीतर से प्रोजेक्ट कर रहा है। बादल तो परदे का काम कर रहे हैं, और हर आदमी भीतर से अपनी कल्पना को आरोपित कर रहा है।
यह जो कल्पना का आरोपण है, यह हमने अपने चारों तरफ किया हुआ है। कोई व्यक्ति आपको बहुत सुंदर दिखाई पड़ता है, और दूसरा कोई भी राजी नहीं होता कि वह व्यक्ति सुंदर है। पर आपके लिए सुंदर है। और कोई व्यक्ति आपको बहुत घृणित मालूम होता है, लेकिन किसी के लिए बहुत प्यारा है।

तो हम वस्तुओं के, तथ्यों के जगत में नहीं जीते हैं, हम कल्पनाओं के जगत में जीते हैं। और हम अपनी कल्पनाओं से अपने चारों तरफ एक संसार निर्मित कर लेते हैं; वही संसार हमें घेरे रहता है। हम उसी के अनुसार चलते, उठते, बैठते, सोचते हैं। ऐसे अलग-अलग संसारों में घिरे हुए लोग पूछते हैं, परमात्मा कहां है? और उनके भीतर परमात्मा को पैदा करने का कोई भाव नहीं है।
ध्यान रहे, परमात्मा उस दिन होगा, जिस दिन उसकी प्यास गहन होगी। उस दिन क्षणभर भी देर न लगेगी। उस दिन वही प्रगट हो जाएगा और शेष सब माया हो जाएगी; शेष सब भ्रम हो जाएगा।
हम वही देख लेते हैं जो हम देखने के लिए आतुर हैं। तुम्हारी आतुरता परमात्मा का निर्माण करेगी; निर्माण कहना ठीक नहीं है--आविष्कार। वह छिपा है, उसे खोज लेगी।
परमात्मा आविष्कार है। वह मौजूद नहीं है कि तुम्हें मिल जाए। जब तक
कि तुम उसे पाने को तैयार न हो जाओ, तब तक वह गैर-मौजूद है; तब तक वह सुनाई नहीं पड़ेगा; तब तक वह दिखाई नहीं पड़ेगा; तब तक उसका कोई स्पर्श नहीं होगा। यद्यपि सभी स्पर्श उसी के हैं। और सभी दर्शन उसी के हैं। और सभी ध्वनियां उसी की हैं। लेकिन यह पहचानने के लिए तुम्हारी गहन आतुरता और परम धैर्य अपेक्षित है।
अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।
यम ने कहा नचिकेता को--संपत्ति के मोह से निरंतर प्रमाद करने वाले अज्ञानी को परलोक नहीं सूझता।
सूझ नहीं सकता। जिसको धन में अर्थ दिखाई पड़ रहा है, उसे आत्मा में कोई अर्थ दिखाई नहीं पड़ सकता। ये विपरीत अर्थ हैं। जिसको धन बहुत मूल्यवान मालूम पड़ता है, उसके लिए आत्मा मूल्यवान मालूम नहीं पड़ सकती है। जिसे संसार की, यश की, अभिमान की, अहंकार की यात्रा बहुत मूल्यवान मालूम पड़ती है, उसके लिए ध्यान व्यर्थ मालूम पड़ेगा। क्योंकि ध्यान की यात्रा बिल्कुल विपरीत है। वह गणित बिल्कुल दूसरा है।
जहां अहंकार में दूसरों के ऊपर मुझे छा जाना है, वहां ध्यान में मुझे
इस भांति मिट जाना है कि मेरे होने का भी पता न चले। जहां अहंकार में मुझे वस्तुएं और वस्तुओं से मिलने वाली शक्ति को संगृहीत करना है--और उस संग्रह में मुझे तनाव से और चिंता और बेचैनी से भर जाना पड़ेगा; अशांति मेरा भाग्य होगा--वहां ध्यान में मुझे सारी चिंताओं को, सारे तनावों को, सारी अशांति को छोड़कर इस भांति शांत हो जाना है कि जैसे मैं हूं ही नहीं, जैसे मेरी मौजूदगी समाप्त हो गई। न-होने की तरह होना हो जाए। यात्राएं विपरीत हैं। तो जिसे अभी बाहर की यात्रा सार्थक मालूम पड़ रही है, उसे परलोक में कोई भी अर्थ मालूम नहीं पड़ेगा। अर्थ देखने की उसकी तैयारी नहीं है। और वह विपरीत अर्थ देख रहा है। आपने अगर बच्चों की किताबों में कभी ख्याल किया हो--और आप भी कभी बच्चे रहे होंगे, तो जरूर कहीं न कहीं किसी पत्रिका या किसी पुस्तक में आपने वे चित्र देखे होंगे--एक ही चित्र में दो प्रतीक होते हैं। एक बूढ़ी है और एक जवान औरत है, एक ही चित्र की रेखाओं में। लेकिन एक बड़ा मजा है कि अगर आपको बूढ़ी दिखाई पड़नी शुरू हो जाए, तो फिर आपको जवान औरत दिखाई पड़नी नहीं संभव होगी। क्योंकि वह बूढ़ी का जो आकार है, वह आपकी आंखों को पकड़ लेगा। और उसके कारण आप उसी चित्र में उन्हीं रेखाओं में छिपी हुई जवान सूरत को नहीं पकड़ पाएंगे। और जिसको पहले जवान औरत दिखाई पड़ जाए, उसे बूढ़ी दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाएगी।
लेकिन अगर आप थोड़ी देर देखते ही रहें, तो आंखें भी परिवर्तनशील हैं--
इस जगत में कुछ भी थिर नहीं है--अगर आप थोड़ी देर देखते रहें, तो जवान औरत खो जाएगी और बूढ़ी दिखाई पड़ने लगेगी। या पहले आपको बूढ़ी दिखाई पड़ रही थी, तो वह खो जाएगी और जवान दिखाई पड़ने लगेगी। लेकिन एक नियम बहुत अदभुत है। दोनों एक साथ नहीं देखी जा सकतीं।
आप दोनों देख सकते हैं, लेकिन एक के बाद एक। और आपने दोनों देख लीं और आपको पता है कि इस चित्र में दोनों छिपी हैं, फिर भी आप दोनों को एक साथ नहीं देख सकते हैं। क्योंकि जब आप एक को देखते हैं, तो उस एक को देखने के चुनाव में दूसरे की रेखाएं खो जाती हैं। जब आप दूसरे को देखते हैं, तो उस

चुनाव में पहले की रेखाएं खो जाती हैं। और आपको पता है कि दूसरा रूप भी छिपा है। लेकिन फिर भी दोनों को एक साथ देखने का कोई उपाय नहीं है।
जिस व्यक्ति में आप मित्र को देखते हैं, उसमें शत्रु को देखने का कोई उपाय नहीं। हालांकि कल आप उसमें शत्रु देख सकते हैं, लेकिन तब मित्र को देखने का कोई उपाय नहीं रह जाएगा। और आप एक ही आदमी में सुबह मित्र और सांझ शत्रु देख सकते हैं। और आपको यह बात पता भी चल गई कि इसमें दोनों छिपे हैं, लेकिन किसी भी एक क्षण में आप दोनों को एक साथ नहीं देख सकते हैं। सुबह आप पत्नी से लड़ लिए हैं, और लगा है कि दुश्मन है, जहर है। और सांझ फिर प्रेम वापस लौट आया है। तब आप बिल्कुल भूल जाते हैं कि जहर है और दुश्मन, तब अमृत हो जाती है। कल सुबह फिर जहर हो जाएगी। दोनों को एक साथ देखना बिल्कुल असंभव है।
एक को ही देख पाते हैं। विपरीत को एक साथ देखना असंभव है। परलोक भी इस लोक में ही छिपा है। परमात्मा भी पदार्थ में मौजूद है। कण-कण में उसकी उपस्थिति है। लेकिन जब तक हम पदार्थ से मोहाविष्ट हैं, जब तक हमने एक चित्र को पकड़ रखा है, तब तक दूसरा चित्र हमारी आंख में उभरकर नहीं आएगा। और ऐसा आपके ही साथ है, ऐसा नहीं है; ज्ञानियों के साथ भी वही तकलीफ है। जब उनको ब्रह्म दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है तो संसार नहीं दिखाई पड़ता। वह दिखाई पड़ ही नहीं सकता। इसलिए वे कहते हैं, माया है। हमें भी दिक्कत होती है। शंकर जब कहते हैं कि संसार माया है, तो हमें लगता है यह सिद्धांत की ही बात होगी। क्योंकि शंकर के पैर पर भी हम पत्थर पटक दें, तो खून निकलता है। शंकर भी पैर खींच लेंगे, पत्थर गिर रहा हो तो। शंकर को भी भूख लगती है, प्यास लगती है, पानी पीना पड़ता है। परमात्मा पीने से काम नहीं चलता। भोजन करना पड़ता है, परमात्मा के खाने से काम नहीं चलता।
तो हमें दिक्कत होती है देखकर कि यह आदमी कहता है, सब झूठ है, तो फिर इस झूठ का उपयोग क्यों कर रहा है? फिर इस झूठ के साथ खड़ा क्यों है? और अगर संसार असत्य है, तो किसको समझा रहा है? वहां कोई है ही नहीं समझने वाला। हमारी भी तकलीफ है। हमें संसार वास्तविक दिखाई पड़ रहा है, परमात्मा वास्तविक दिखाई नहीं पड़ रहा है। शंकर की भी तकलीफ है। उन्हें परमात्मा वास्तविक दिखाई पड़ रहा है, संसार खो गया। जब हम पत्थर पटक रहे हैं, तो शंकर को परमात्मा ही गिरता हुआ मालूम पड़ रहा है। लेकिन हमें बड़ी अड़चन है। और जब शंकर पैर को हटा रहे हैं, तो पत्थर से बचने के लिए नहीं हटा रहे हैं; पत्थर में जो परमात्मा गिर रहा है, उससे ही बचने को हटा रहे हैं।
एक बहुत पुरानी बौद्ध कथा है।
एक बौद्ध भिक्षु ने अपने शिष्य को कहा कि सभी जगह एक का ही निवास है।
उस युवक को बात जमी, तर्क से पकड़ में आई। गुरु प्रभावी था। सम्मोहित था युवक उससे। उसने उसकी बात मान ली।
उसी दिन वह जा रहा था मार्ग से और एक हाथी पागल हो गया। और महावत ने चिल्लाया कि हट जाओ। लेकिन उस युवक ने कहा कि जब एक ही है सब, तो पागल हाथी में भी वही ब्रह्म विराजमान है। वह नहीं हटा। हाथी पागल था। पागल हाथी को तत्वज्ञान का कोई भी पता नहीं। पागल हाथी को दर्शनशास्त्र का कोई अध्ययन नहीं। और पागल हाथी को यह भी पता नहीं कि तुम किसी ज्ञानी के शिष्य हो। उसने उठाया उस आदमी को सूंड में, और उठाकर रास्ते के किनारे फेंक दिया। हड्डी-पसली टूट गई।
पिटा-कुटा, रोता हुआ वापस गुरु के पास आया। और कहा कि यह तुमने क्या सिखाया मुझे? वह तुम्हारे ब्रह्म ने जरा भी मेरी चिंता न की! उसके गुरु ने कहा कि हाथी-ब्रह्म पागल था। लेकिन वह महावत का ब्रह्म चिल्ला रहा था, उसको तुमने क्यों न सुना, कि हट जाओ! और तुमने अपने भीतर के ब्रह्म की आवाज क्यों न सुनी, जो कह रहा था कि हट जाओ!
हमें कठिन है। क्योंकि एक जगत जिनको दिखाई पड़ रहा है, उन्हें दूसरे जगत की भाषा को समझना बड़ा कठिन है। और गलत समझने की संभावना हमेशा ज्यादा है।
शंकर के लिए परमात्मा ही गिर रहा है पत्थर में, और परमात्मा ही हट रहा है। चोट लग रही है तो भी परमात्मा को लग रही है, और जिससे लग रही है वह भी परमात्मा है। जैसे हमारे लिए सब पदार्थ है, पत्थर पदार्थ है और पैर भी

पदार्थ है, पदार्थ पदार्थ को चोट पहुंचा रहा है, वैसे शंकर को दोनों परमात्मा है। वहां पदार्थ खो गया है। परमात्मा परमात्मा को चोट पहुंचा रहा है। और अगर पदार्थ पदार्थ को चोट पहुंचा सकता है, तो कोई कारण नहीं है कि परमात्मा परमात्मा को चोट क्यों न पहुंचा सके!
सारी व्याख्या बदल गई। सब जगह जहां पदार्थ था, वहां परमात्मा हो गया। पदार्थ का नाम खो गया और परमात्मा का नाम शेष रह गया।
अज्ञानी की दिक्कत और ज्ञानी की दिक्कत में बहुत फर्क नहीं है। दिक्कत तो एक ही है। अज्ञानी की आंखें जकड़ी हुई हैं संसार से, उसे परलोक नहीं दिखाई पड़ता, परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता। ज्ञानी की आंखें रुक जाती हैं परलोक पर, परमात्मा पर, उसे संसार दिखाई नहीं पड़ता।
इसलिए संसारी कहता है कि परमात्मा असत्य है। नास्तिक की यही घोषणा है। नास्तिक परम संसारी है। वह ब्रह्मज्ञानी का ठीक विपरीत है। वह कह रहा है, परमात्मा असत्य है, माया है।
ब्रह्मज्ञानी ठीक नास्तिक के विपरीत है। वह कह रहा है, संसार माया है, परमात्मा सत्य है। और सत्य एक ही हो सकता है। क्योंकि एक ही दिखाई पड़ सकता है।
यह यम ने नचिकेता को कहा--संपत्ति के मोह से मोहित निरंतर प्रमाद करने वाले अज्ञानी को परलोक नहीं सूझता। वह समझता है कि यह प्रत्यक्ष दिखने वाला लोक ही सत्य है। इसके सिवाय दूसरा स्वर्ग-नर्क आदि लोक कुछ भी नहीं है। इस प्रकार मानने वाला अभिमानी मनुष्य बार-बार मुझ यमराज के वश में आता है।
ऐसा संसार से जो ग्रसित है, वह मृत्यु के हाथों में बार-बार पड़ता है।
वह बार-बार मरता है, बार-बार जन्मता है। क्योंकि उसकी सारी पकड़ उस पर है, जो दिखाई पड़ता है।
शरीर दिखाई पड़ता है, आत्मा तो दिखाई नहीं पड़ती। और आत्मा कभी दिखाई पड़ नहीं सकती। क्योंकि आत्मा का अर्थ ही है, देखने वाली। वह दिखाई पड़ने वाली नहीं है; वह सदा देखने वाली है। उसको दिखाई पड़ता है। लेकिन वह स्वयं दिखाई नहीं पड़ सकती। शरीर देखने वाला नहीं है, वह दिखाई पड़ता है। शरीर ऑब्जेक्ट है; वह वस्तु है, पदार्थ है, विषय है। आत्मा बोध है, ज्ञान है, जागरूकता है, चैतन्य है। द्रष्टा को देखने का कोई उपाय नहीं है।
तो हमें शरीर दिखाई पड़ता है। और जो व्यक्ति मानता है कि जो दिखाई पड़ता है, वही सत्य है, प्रत्यक्ष ही आंख के सामने जो है वही सत्य है, तो आंख के पीछे जो है, वह असत्य हो गया। लेकिन आंख बीच में है, ध्यान रहे। आंख के बाहर संसार है और आंख के भीतर परमात्मा है। लेकिन जो कहता है, प्रत्यक्ष... । प्रत्यक्ष शब्द का अर्थ हैः आंख के सामने। जिसका भरोसा आंख के सामने जो है उस पर है, उसे आंख के पीछे जो छिपा है वह दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा। और ऐसा आदमी सब चीजों पर भरोसा कर लेगा, अपने पर ही भरोसा नहीं कर पाएगा!
विज्ञान इसी भूल में पड़ा है, कि जो भी दिखाई पड़ता है वह सत्य है। लेकिन
जो नहीं दिखाई पड़ता है, जो भीतर छिपा है, जिसको सब दिखाई पड़ता है, वह असत्य है। बड़ा मजा है! विज्ञान की पूरी निष्पत्ति यह है कि विज्ञान सत्य है और वैज्ञानिक असत्य! वह जो वैज्ञानिक है, वह असत्य है। यह आश्चर्यजनक है!
हम, आइंस्टीन जो कहते हैं, उसको मानते हैं। वे जो प्रयोग करते हैं, उनको मानते हैं। आइंस्टीन टेबिल पर रखकर जो-जो जांच-पड़ताल कर लेता है, उसको मानता है। लेकिन जो जांच-पड़ताल कर रहा है, वह जो भीतर से बैठकर सारी खोज कर रहा है, उससे धीरे-धीरे संबंध विच्छिन्न हो जाता है। आंखें बाहर जकड़ जाती हैं, फिक्स्ड हो जाती हैं। फिक्सेशन की बीमारी है। रुक जाती हैं, आदत उनकी बाहर देखने की हो जाती है। और फिर आंख बंद करना भूल जाते हैं--कि भीतर भी कुछ था।
यम ने नचिकेता को कहा कि जो व्यक्ति पदार्थ को, प्रत्यक्ष को सब कुछ मानता है... । वह जो अप्रत्यक्ष है, छिपा है--गूढ़ है, सूक्ष्म है--जो है लेकिन दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि वह स्वयं देखने वाला है, इसलिए दिखाई पड़ने का कोई उपाय नहीं है... ऐसा अभिमानी मनुष्य मेरे हाथों में बार-बार पड़ता है।

मरता है केवल नास्तिक, आस्तिक मर नहीं सकता। यह सुनकर थोड़ी हैरानी होगी। क्योंकि हम आस्तिक को भी मरते देखते हैं। उसकी भी लाश को मरघट ले जाते हैं। लेकिन आस्तिक मर नहीं सकता, क्योंकि आस्तिक उसको जानता है जो देखने वाला है। उसकी कोई मृत्यु नहीं है। आस्तिक का सिर्फ शरीर मरता है, नास्तिक पूरा का पूरा मरता हुआ अनुभव करता है। मर तो वह भी नहीं सकता, लेकिन उसे लगता है, शरीर ही सब कुछ है, तो जब शरीर मिटता है तो वह सोचता है-- मैं मिटा।
मृत्यु सिर्फ नास्तिक की है। और अगर आपको मृत्यु का डर लगता हो, तो आप समझना कि आप नास्तिक हैं। आप क्या कहते हैं, इससे पता नहीं चलता। आप कितना ही चिल्लाकर कहें कि मैं आस्तिक हूं, इससे कुछ नहीं होता। आप कितना ही कहें, मेरा आत्मा में भरोसा है, श्रद्धा है परमात्मा में, इससे कुछ भी नहीं होता। आप मंदिरों में, मस्जिदों में पूजा और प्रार्थना करें, इससे कुछ भी नहीं होता। मौत अगर डराती है, तो आप नास्तिक हैं। वह ठीक-ठीक पकड़ वहां है। आस्तिक मौत से नहीं डरेगा। डर का सवाल ही नहीं है, क्योंकि मौत है ही नहीं। रामकृष्ण मरते थे, पत्नी रोने लगी। तो रामकृष्ण ने कहा कि रोना बंद कर। मौत निश्चित थी। चिकित्सकों ने कहा कि कैंसर है और बचने का कोई उपाय नहीं है। और उन दिनों तो कैंसर की कोई चिकित्सा भी न थी। तो रामकृष्ण ने कहा, तू रो मत। पर शारदा, उनकी पत्नी कहने लगी कि मैं विधवा हुई जा रही हूं, तुम मुझे छोड़े जा रहे हो, तुम मिटे जा रहे हो, और मैं रोऊं भी न! तो रामकृष्ण ने कहा, तू सधवा ही रहेगी। विधवा होने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि मैं मर नहीं सकता हूं। सिर्फ शरीर जा रहा है। अगर शरीर की ही तू पत्नी थी, अगर शरीर से ही तेरा नाता था, तो ठीक, तू रो। लेकिन अगर मुझसे तेरा कोई नाता था, तो मैं सिर्फ कपड़े बदल रहा हूं।
भारत में शायद कोई दूसरी स्त्री पति के मरने के बाद सधवा नहीं रही, शारदा रही। और जब स्त्रियां इकट्ठी हुईं और उन्होंने कहा कि चूड़ियां फोड़ डालो और वस्त्र बदल लो विधवा के, तो शारदा ने इंकार कर दिया। उसने कहा कि रामकृष्ण कह गए हैं कि वे मरेंगे नहीं। ये चूड़ियां मेरे हाथ पर रहेंगी और मैं सधवा के ही वेश में रहूंगी।
रामकृष्ण ने कहा कि मैं केवल वस्त्र बदल रहा हूं। आस्तिक के लिए मौत वस्त्र का परिवर्तन है; एक पुराने घर से, जो जराजीर्ण हो गया है, एक नए घर में यात्रा है। पुराने कपड़ों को उतारकर नए कपड़ों का पहन लेना है। या सारे कपड़ों को उतारकर बिना कपड़ों के रह जाना है।
लेकिन जो नास्तिक है, वह तो मृत्यु की पकड़ में बार-बार आएगा। मृत्यु
के कारण नहीं, अपने ही कारण। आप मृत्यु से नहीं डर रहे हैं, अपनी ही नासमझी के कारण मृत्यु से डर रहे हैं।
तो यम बड़ी महत्वपूर्ण बात कह रहा है। वह कह रहा है कि मेरी पकड़ में केवल नास्तिक ही आ पाते हैं, आस्तिक मेरी पकड़ से छूट जाते हैं। उसे पकड़ने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि आस्तिक की श्रद्धा उसमें है जो मरता ही नहीं। और नास्तिक की श्रद्धा उसमें है जो मरता है।
जो आत्मतत्व बहुतों को तो सुनने के लिए भी नहीं मिलता और जिसको बहुत
से लोग सुनकर भी समझ नहीं सकते, ऐसे इस गूढ़ आत्मतत्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय तथा बड़ा दुर्लभ है। उसे प्राप्त करने वाला भी बड़ा कुशल कोई एक ही होता है। और जिसे तत्व की उपलब्धि हो गई, ऐसे ज्ञानी महापुरुष के द्वारा शिक्षा प्राप्त किया हुआ आत्मतत्व का ज्ञाता भी आश्चर्यमय है, परम दुर्लभ है।
यम कह रहा है कि जो आत्मतत्व बहुतों को सुनने के लिए भी नहीं मिलता। ऐसा नहीं है कि सुनने के लिए नहीं मिलता। लेकिन वे सुन नहीं पाते। बुद्ध के पास से भी गुजरते हैं तो अपने को बचाकर निकल आते हैं। महावीर की भी उपस्थिति मौजूद हो तो भी उनके कानों तक वाणी नहीं पहुंच पाती है। उनके कानों पर सख्त पर्दे हैं।
जीसस ने बार-बार बाइबिल में कहा है कि जिनके पास आंखें हों वे मुझे देखें; और जिनके पास कान हों वे मुझे सुनें। आंखें और कान तो सभी के पास हैं। उनका बार-बार ऐसा दोहराने से ऐसा लगता है कि क्या वे अंधे और बहरों के

बीच बोल रहे थे निरंतर--कि जिनके पास आंखें हों वे मुझे देखें, और जिनके पास कान हों वे मुझे सुनें?
नहीं, वह आप ही जैसे आंख-कान वाले लोगों के बीच बोल रहे थे। कोई अंधे- बहरों के समूह में नहीं बोल रहे थे। पर हम सभी का समूह अंधे-बहरों का समूह है।
जीसस को देखना मुश्किल है। एक तो जीसस की देह है, वह तो सभी को दिखाई पड़ती है। और एक जीसस की आत्मा है, वह केवल उनको दिखाई पड़ती है जो परम शांत, जो परम शून्य, जो परम ध्यान में लीन होकर देखते हैं। उनके लिए जीसस का बाह्य-रूप मिट जाता है। और उनके लिए जीसस का तेजस रूप, उनका प्रज्ञा रूप, उनका ज्योतिर्मय रूप प्रगट हो जाता है। इसीलिए तो जीसस के संबंध में दोहरे मत होंगे।
एक तो अंधों का मत होगा, जिन्होंने सूली लगाई। क्योंकि उन्होंने कहा, साधारण-सा आदमी और दावा करता है कि ईश्वर का पुत्र है! जहां तक उन्हें दिखाई पड़ रहा था, उनकी बात भी गलत नहीं थी। जो उन्हें दिखाई पड़ रहा था, वहां तक उनकी बात बिल्कुल सही थी। उनको पता था कि यह जोसफ का बेटा है, मरियम का बेटा है। यह कैसे ईश्वर का पुत्र है! लेकिन जीसस जिसकी बात कर रहे थे, वह ईश्वर का पुत्र ही है। और वह कोई जीसस में समाप्त नहीं हो जाता। वह आपके भीतर भी ईश्वर का पुत्र वैसा ही मौजूद है।
एक ईसाई पादरी मुझे मिलने आए थे। वे कहने लगे कि जीसस ईश्वर का इकलौता बेटा है। मैंने उनसे कहा कि सभी ईश्वर के इकलौते बेटे हैं। उन्होंने कहा कि सभी कैसे इकलौते बेटे हो सकते हैं?
जब भी उसका अनुभव होता है, तो हर एक को ऐसा लगेगा कि मैं उसी धारा से आया हूं। वही बेटा होने का अर्थ है। मैं उसी का स्फुल्लिंग हूं। मैं उसी महाज्योति की एक किरण हूं। और जिसको भी ऐसा अनुभव होगा, वह ऐसा ही अनुभव करेगा कि मैं इकलौता हूं, मैं अकेला हूं। क्योंकि अपनी ही प्रतीति होगी, दूसरे की कोई प्रतीति नहीं होगी, उस क्षण में सब जगत मिट जाएगा। आप अकेले ही रह जाएंगे। आपका परमात्मा और आप। और आप दोनों के बीच का फासला भी गिर जाएगा। वह है महासूर्य, तो आप उसकी ही किरण हैं। और आप अकेली किरण होंगे उस अनुभव के क्षण में।
लेकिन यह जीसस का रूप सब को दिखाई नहीं पड़ा। थोड़े-से लोगों को दिखाई पड़ा। और बड़ी हैरानी की बात है कि जिनको दिखाई पड़ा, वे बेपढ़े-लिखे गंवार लोग थे। पंडितों को दिखाई नहीं पड़ा। पंडितों ने तो सूली लगवाई। पंडित, जो कि ज्ञानी थे! पंडित, जो कि शास्त्रों के ज्ञाता थे! पंडित, जो कि शास्त्रों की व्याख्या करते थे! पंडित, जो पुरोहित थे, मंदिरों के अधिकारी थे! जो बड़ा मंदिर था जेरूसलम में, उसके महापुरोहित ने भी और महापुरोहित के पुरोहितों की कौंसिल ने भी जीसस को सूली देने की सहमति दी। असल में उन्होंने ही पूरी चेष्टा की कि जीसस को सूली लगा दी जाए।
जिनको जीसस का ज्योतिर्मय रूप दिखाई पड़ा, वे थे जुलाहे, मछुवे, ग्रामीण किसान, भोले-भाले लोग; जिन्हें शब्दों का और शास्त्रों का कोई भी पता नहीं था। उनको जीसस पर भरोसा आया। वे देख सके।
ऐसा बहुत बार होता है, आपकी बुद्धि पर जितनी ज्ञान की पर्त हो, उतनी देखने की क्षमता कम हो जाती है। संसार अगर आज अधार्मिक ज्यादा है, तो इसलिए नहीं कि दुनिया में अधार्मिक लोग बढ़ गए हैं, पांडित्य बढ़ गया है। और जितना पांडित्य बढ़ जाता है, उतना परमात्मा से संबंध मुश्किल होने लगता है।
यम कह रहा है कि जो आत्मतत्व बहुतों को सुनने के लिए भी नहीं मिलता... । सुनाई भी पड़े तो भी सुनाई नहीं पड़ता। उनके कान पर भी चोट पड़ जाए तो व्यर्थ हो जाती है।
जिसको बहुत से लोग सुनकर भी समझ नहीं सकते।
सुन भी लेते हैं, लेकिन सुन लेना और समझ लेना बड़ी अलग-अलग बात है। कुछ लोग सुनने को ही समझना समझ लेते हैं। कुछ ने गीता पढ़ ली है, उन्होंने पढ़ने को ज्ञान समझ लिया है। उन्होंने गीता कंठस्थ भी कर ली हो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। समझ बड़ी और बात है।

समझ का अर्थ है, अनुभव। समझ का अर्थ है, प्रतीति; जो सुना है उसकी प्रतीति भी हो जाए। जैसा आपने सुना कि गुलाब के फूल में सुगंध है। सुन लिया, कंठस्थ कर लिया। और कोई भी पूछे आपको, नींद में उठाकर भी पूछे, तो आप कह सकते हैं कि गुलाब के फूल में सुगंध है। लेकिन कभी वह सुगंध आपके नासापुटों को न छुई; कभी वह सुगंध आपके हृदय में प्रवेश न की; कभी उस सुगंध ने आपकी श्वास को सुवासित न किया; कभी उस सुगंध का कोई अनुभव न हुआ, तो ये शब्द--कि गुलाब के फूल में सुगंध है--ज्ञान तो बन जाएंगे, समझ नहीं बन पाएंगे।
नॉलेज और अंडरस्टैंडिंग, ज्ञान और समझ। समझ बड़ी और बात है। समझ का अर्थ है कि जो सुना है, उसे अपने अनुभव से पहचान भी लिया है; उसे जी लिया। वह हमारी प्रतीति हो गई, हमारा अनुभव हो गया, हमारी अनुभूति बन गई।
ज्ञान छीना जा सकता है। ज्ञान खंडित किया जा सकता है। ज्ञान के विपरीत तर्क दिए जा सकते हैं। समझ को छीनने का कोई उपाय नहीं है। समझ को कोई तर्क खंडित नहीं करता। समझ सब तर्कों के पार उठ जाती है।
आपने आग को छूकर देखा और पाया कि हाथ जल जाते हैं। दुनिया के कितने ही पंडित आपको समझाएं कि आग ठंडी है, और तर्क दें, आप कहेंगे कि तर्क रखो सम्हालकर, क्योंकि मैंने आग को छूकर देखा है; हाथ जल जाते हैं।
आपको आपके अनुभव से कोई भी डिगा नहीं सकता। आपके ज्ञान से तो कोई भी डिगा सकता है। ज्ञान की कोई जड़ें नहीं होतीं। जंगलों में पीले रंग की अमरबेल फैल जाती है, ज्ञान वैसे ही है। उसमें कोई जड़ें नहीं होतीं। वह दूसरे वृक्षों के सहारे है। और दूसरे वृक्षों का शोषण करने लगती है। उसके अपने कोई प्राण नहीं होते हैं। भूमि से उसका कोई संबंध नहीं होता है। तो जिसको हम पांडित्य कहते हैं वह अमरबेल की तरह है। उसकी कोई जड़ें नहीं हैं। जीवन की भूमि में उसका कोई विस्तार नहीं है। अनुभव में उसका कोई प्रवेश नहीं है।
समझ वैसे है जैसे वृक्ष की जड़ें जमीन में गहरे पहुंच गईं। और जमीन के गहरे में छिपे हुए जलस्रोतों को उन्होंने खोज लिया है। और वृक्ष अपने तईं जी रहा है--दूसरे के आधार पर नहीं।
पंडित सदा दूसरे के आधार पर जीता है। वह कहता है, गीता में ऐसा लिखा है, इसलिए सच है। वह कहता है, कुरान में ऐसा लिखा है, इसलिए सच है। वह कहता है, मुहम्मद ने कहा है, इसलिए सच है। लेकिन उसके पास अपनी कोई संपदा नहीं है।
ज्ञानी कहता है, मैंने जाना है, इसलिए सच है। और अगर मेरे जानने के विपरीत कुरान, बाइबिल, गीता और वेद जाते हों, तो वे ही गलत होंगे। मेरे जानने के गलत होने का कोई उपाय नहीं है। मेरा अपना निजी अनुभव सारे शास्त्रों से श्रेष्ठ है।
इसलिए परम वेद तो भीतर छिपा है। बाहर के वेद पर तो वे ही भरोसा करते हैं, जिनको भीतर के वेद का कोई अनुभव नहीं, कोई पता नहीं। परम गुरु भीतर छिपा है। बाहर के गुरु पर भरोसा तो तभी तक है, जब तक उस परम गुरु के साथ सान्निध्य नहीं बना, सत्संग नहीं बना।
बहुत से हैं जो सुनकर भी समझ नहीं पाते। ऐसे इस गूढ़ तत्व का वर्णन करने वाला महापुरुष आश्चर्यमय है तथा बड़ा दुर्लभ है।
यम की यह बात समझ में न आएगी। क्योंकि गुरुओं की कोई कमी नहीं है। समझाने वालों का कोई अभाव नहीं है। सच तो यह है कि शिष्य कम पड़ते हैं, गुरु ज्यादा हैं। इसलिए तो गुरुओं में इतना उपद्रव चलता है। एक-दूसरे के शिष्यों की खींचातानी की कोशिश चलती है। और एक गुरु के पास पहुंच जाएं तो वह कहता है कि अब कहीं और मत जाना भूलकर भी, नहीं तो भटक जाओगे। क्योंकि शिष्य इतने कम हैं कि बड़ा द्वंद्व है और बड़ी प्रतियोगिता है। जैसे बाजार में ग्राहक कम हों और दुकानें ज्यादा हों। तो हर दुकानदार दूसरे दुकानदार के खिलाफ हो जाएगा।
सब चीजों की कमी हो गई है। शिष्यों की बड़ी कमी है। गुरु काफी संख्या में हैं। सच तो यह है कि शिष्य कोई बनना ही नहीं चाहता। असल में शिष्य बनने की झंझट में कोई नहीं पड़ता, सीधा गुरु बन जाता है।

शिष्य बनने की झंझट है बड़ी! क्योंकि शिष्य बनने का अर्थ हैः मिटना, अपने को खोना, समर्पित करना, निवेदित करना; अपने को पोंछना और मिटा देना। तभी तो कोई सीखने में समर्थ हो पाता है।
गुरु बनने में बड़ा मजा है। मिटने का कोई सवाल नहीं है, बल्कि दूसरों
को मिटाने का मजा है। गुरु अपने अहंकार को बचा सकता है। और शिष्यों का समर्पण उसके अहंकार में बढ़ती बन सकता है। जितने-जितने शिष्य बढ़ते चले जाएं... तो गुरु अपने शिष्यों की संख्या याद रखते हैं कि कितने उनके शिष्य हैं, कितने लाख तक संख्या पहुंच गई! हर आता हुआ शिष्य भोजन है अहंकार के लिए। तो गुरु तो सभी बनना चाहते हैं, शिष्य कोई भी नहीं बनना चाहता है। लेकिन जो परम शिष्यत्व से नहीं गुजरा, उसके गुरु बनने का कोई उपाय नहीं है। वह धोखा है। जिसने अपने को मिटाया नहीं, दूसरों को मिटाने में वह सहायता नहीं पहुंचा सकता है। वह हत्या कर सकता है, समर्पण नहीं। समर्पण नहीं करवा सकता। वह दूसरों को तोड़ सकता है, शून्य नहीं कर सकता।
इसलिए गुरुओं के पास अक्सर शिष्य अपंग हो जाते हैं। उनके हाथ-पैर कट जाते हैं। उनकी बुद्धि, प्रतिभा टूट जाती है। वे जड़बुद्धि हो जाते हैं, मंदबुद्धि हो जाते हैं। मूढ़ता गहन हो जाती है। लेकिन कोई परम प्रकाश की तरफ खुलाव नहीं होता।
समर्पण अपंग हो जाने का नाम नहीं है, पंगु हो जाने का नाम नहीं है। लकवा लग जाए, इसका नाम समर्पण नहीं है। लेकिन जिस गुरु का अहंकार शेष हो, वह यही कर सकता है।
गुरु का अर्थ ही है कि जो अब नहीं है। उसके ही सान्निध्य में आपका भी नहीं-होना हो सकता है। अन्यथा नहीं हो सकता।
यम ठीक ही कहते हैं। यम कहते हैं कि बहुत दुर्लभ है वह व्यक्ति, जो समझा सके उस सत्य को। दुर्लभ दो कारणों से। एक तो ऐसा व्यक्ति खोजना बहुत मुश्किल है, जो मिट गया हो। और अगर ऐसा व्यक्ति मिल भी जाए, तो ऐसे सौ व्यक्तियों में जो मिट गए हों, एक ही समर्थ होता है समझाने में कि क्या हुआ। ज्ञानी, प्रबुद्धपुरुष बहुत होते हैं। बहुत, अज्ञानियों की संख्या की तुलना में नहीं। बहुत कम होते हैं उस अर्थ में तो। करोड़ों में कभी एक व्यक्ति प्रबुद्ध हो पाता है, बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। और सैकड़ों बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्तियों में कभी कोई एक व्यक्ति गुरु हो पाता है। सभी बुद्ध गुरु नहीं होते।
जैनों ने इसकी व्याख्या बड़ी व्यवस्था से की है। सभी केवल-ज्ञानी तीर्थंकर नहीं होते हैं। तीर्थंकर वह है जो गुरु है। केवल-ज्ञान पा लेना एक बात है, लेकिन उसे दूसरे को समझा देना और भी कठिन बात है। क्योंकि शब्दों की पकड़ में नहीं आता सत्य। और जो जाना है भीतर, उसे दूसरे को जनाना, उसे दूसरे को समझाना, उसे दूसरे को भी उसकी प्रत्यभिज्ञा करा देनी, बड़ी कुशलता की बात है।
तो जिन्होंने जन्मों-जन्मों गुरु होने का संस्कार संगृहीत किया है-- जैनों की भाषा में जिन्होंने तीर्थंकर-बंध, जिन्होंने तीर्थंकर होने का बंध किया है, जन्मों-जन्मों में संस्कार किया है--समझाने की कला जिन्होंने सीखी है, जब वे समझ पाते हैं भीतर के सत्य को, तो उनमें से कोई एक दुर्लभ व्यक्ति उसे प्रकट कर पाता है।
सदियों में कभी कोई एक व्यक्ति, उस भीतर के अनुभव को शब्द दे पाता है, रूप दे पाता है, आकार दे पाता है। सदियों में कभी कोई एक व्यक्ति अपने अनुभव को शास्त्र बना पाता है।
कठिन तो है। सुबह का सूरज उगा हो, पहले तो उसको देखना ही कठिन है। क्योंकि कोई अपनी फैक्टरी जा रहा है, कोई अपने दफ्तर जा रहा है, कोई अपने बच्चों को स्कूल छोड़ने जा रहा है। सुबह के सूरज को एक तो देखना ही कठिन है। और ऐसा भी नहीं है कि आंख में पड़ जाए तो आपने देख लिया। क्योंकि अगर आपका मन कहीं और है, तो सूरज दिख भी जाए उगता हुआ, तो भी सूरज के उगने का जो सौंदर्य है, वह आपके भीतर नहीं खिल पाता। आप देखते--न देखते हुए से गुजर जाते हैं।
कभी हजारों में कोई एक आदमी रुकता है और सूरज के उगने के सौंदर्य को देखता है। कभी हजारों में एक आदमी के भीतर सूरज के उगने के साथ कोई चीज

उगती है और सूरज के उस उगते सौंदर्य का अनुभव करती है। ऐसे हजारों आदमी सूरज के उगने का अनुभव करें, तो उनमें से कोई एक ही उस चित्र का निर्माण कर पाएगा। कोई एक ही चित्रकार होगा। या कोई एक कवि होगा, जो सूरज के उगने के सौंदर्य को शब्दों में बांध ले।
लेकिन सूरज का सौंदर्य तो बहुत पार्थिव है। परमात्मा का सौंदर्य तो बहुत अपार्थिव है। उसका तो कोई चित्र बन नहीं सकता। उसकी तो कोई कविता भी निर्मित नहीं हो सकती। उसको तो आकार कैसे दिया जाए! निराकार की जब अनुभूति होती है, तो कभी लाखों अनुभवसिद्ध व्यक्तियों में कोई एक व्यक्ति गुरु हो पाता है।
तो गुरुओं की इतनी बड़ी भीड़ इसीलिए चल पाती है। चलने का कारण है। सदगुरु तो सदियों में कभी एक होता है। यह बड़े मजे की बात है। और जब भी कोई सदगुरु होगा, तो सभी तथाकथित गुरु उसके विपरीत हो जाएंगे।
जीसस पैदा होंगे, तो सभी गुरु विपरीत हो जाएंगे। महावीर पैदा होंगे, सभी गुरु विपरीत हो जाएंगे। बुद्ध पैदा होंगे, सभी गुरु विपरीत हो जाएंगे। बुद्ध के समय के सभी गुरु बुद्ध के विपरीत होंगे। क्योंकि ऐसा व्यक्ति जो सत्य की खबर ला रहा है, उन सारे लोगों का रोजी-धंधा, उपाय छीन लेगा, जो उधार जी रहे थे। जब किसी एक गुरु के विपरीत सारे गुरु हो जाएं, तो थोड़ा विचार करना।
सारे गुरु और किसी बात में सहमत नहीं होते, आपस में लड़ते हैं, लेकिन सदगुरु के विपरीत होते हैं। एक बात में वे सहमत हो जाते हैं। आपस में उनके कितने ही झगड़े हों, वे सब झगड़े छोड़ देते हैं। इस संबंध में एकदम राजी हो जाते हैं। क्योंकि यह व्यक्ति सामूहिक रूप से उनकी जड़ें काट देगा। दुर्लभ है, आश्चर्यमय है वह व्यक्ति, जो इस गूढ़ आत्मतत्व का वर्णन कर सके। और उसे प्राप्त करने वाला भी कुछ कम कुशल नहीं है।
क्योंकि जितना यह कहना कठिन है, उससे कम कठिन इसे सुनना नहीं है। और जितनी कठिनाई इसको बताने में है, उससे भी ज्यादा कठिनाई इसे सुनकर समझ लेने में है। तो कोई गुरु ही दुर्लभ होता है ऐसा नहीं, सदगुरु ही कठिन होता है ऐसा नहीं, सदशिष्य भी उतना ही दुर्लभ है। और जब कभी कोई सदशिष्य और सदगुरु का मिलन होता है, तो वहां अमृत की वर्षा हो जाती है।
इसलिए यम ने कहा कि सचमुच ही हे नचिकेता! हम चाहते हैं कि तुम्हारे जैसे पूछने वाले हमें मिला करें।
यह घड़ी नचिकेता के लिए ही परम आनंद की थी ऐसा नहीं, यह घड़ी यम के लिए भी, गुरु के लिए भी परम आनंद की थी। बुद्ध को जब कोई सारिपुत्र मिलता है, या महावीर को जब कोई गौतम मिलता है, या जीसस को जब कोई पीटर और जॉन मिलता है, तो एक अमृत की वर्षा हो जाती है।
अल्पज्ञ मनुष्य के द्वारा बतलाए जाने पर, और उनके अनुसार बहुत प्रकार
से चिंतन किए जाने पर भी यह आत्मतत्व सहज ही समझ में आ जाए, ऐसा नहीं है। किसी दूसरे ज्ञानीपुरुष के द्वारा उपदेश न किए जाने पर इस विषय में मनुष्य का प्रवेश नहीं होता, क्योंकि यह अत्यंत सूक्ष्म वस्तु से भी अति सूक्ष्म है; इसलिए तर्क से अतीत है।
इस सूत्र में बड़ी गहन बात और बहुत विचारणीय बात छिपी है। यम कह रहा है नचिकेता को कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं है। यह बड़ी विवादास्पद बात है। बड़ी परंपरा यही कहती है कि बिना गुरु के ज्ञान नहीं है। लेकिन कुछ परंपरा में अनूठे ऐसे व्यक्ति भी हुए हैं, जो कहते हैं कि गुरु से ज्ञान हो ही नहीं सकता। बुद्ध उनमें प्रथम हैं। और बुद्ध ने मरते समय भी कहा आनंद को--अप्प दीपो भव। अपने दीए खुद बनो। कोई दूसरा तुम्हें ज्ञान नहीं दे सकता।
इस सदी में कृष्णमूर्ति निरंतर इस बात की घोषणा करते रहे हैं कि गुरु ज्ञान में बाधा है; गुरु के द्वारा ज्ञान नहीं हो सकता। पिछले चालीस वर्ष निरंतर वे एक ही सूत्र के आसपास लोगों को समझाते रहे हैं कि गुरु से बचो। और सारी परंपरा--उपनिषद के ऋषि हैं, सारे चौरासी सिद्ध, संतों की बड़ी परंपरा, नानक, कबीर, दादू--सारे जगत में इस बात की घोषणा करते रहे हैं कि गुरु के बिना ज्ञान असंभव है।
और बड़े मजे की बात यह है कि दोनों सही हैं। और जो एक को सही मानेगा, वह भटक जाएगा। इन दो में से जो एक को सही मानेगा, वह भटक जाएगा, यह मैं कहता

हूं। क्योंकि ये दोनों एक साथ सही हैं। और इनमें से एक को जिसने सही माना, वह भटकेगा। जिसने पकड़ लिया जोर से कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं है, वह गुरु के पीछे भटक जाएगा। और जिसने यह पकड़ लिया कि गुरु बाधा है, वह भी भटक जाएगा।
गुरु को पकड़ना और गुरु को छोड़ना, ये दोनों एक ही सूत्र हैं। एक क्षण है
जब गुरु को पकड़ना होता है, उसके बिना कोई शुरुआत नहीं होती। और एक क्षण है जब गुरु को छोड़ना होता है, क्योंकि फिर उसके साथ कोई यात्रा नहीं होती। गुरु सीढ़ी की तरह है, जिस पर हमें चढ़ना भी होता और फिर जिसे छोड़ भी देना होता है।
लेकिन कुछ ऐसे हैं, जो कहते हैं कि सीढ़ी से ही पहुंचना होगा, सीढ़ी के बिना पहुंचना नहीं हो सकता। वे ठीक कह रहे हैं। क्योंकि सीढ़ी के बिना आप कैसे ऊपर चढ़कर जाइएगा? लेकिन वे इतना जोर डालते हैं कि सीढ़ी के बिना पहुंचना नहीं हो सकता कि सीढ़ी से ऐसा मोह बन जाता है, कि जब आप सीढ़ी के आखिरी चरण पर पहुंच जाते हैं, आखिरी सोपान पर, तो आप सीढ़ी को छोड़ते नहीं। आप कहते हैं, जिस सीढ़ी ने यहां तक पहुंचाया, उसको छोड़ने की बात ही गलत है।
तो आप सीढ़ी पर ही रह जाते हैं। और सीढ़ी पर रह जाना कोई उपलब्धि नहीं है।
सीढ़ी को जैसा पहले सोपान पर पकड़ा था, वैसा आखिरी सोपान पर छोड़ना पड़ेगा।
लेकिन कुछ हैं, जो कहते हैं कि जब सीढ़ी को छोड़ना ही पड़ेगा तो पकड़ें ही क्यों? वे नीचे ही खड़े रह जाते हैं।
सीढ़ी पकड़नी भी पड़ती है और छोड़नी भी पड़ती है। गुरु के पास भी आना होता
है और गुरु से दूर भी हटना होता है। और सदगुरु वही है, जो उसी समय तक पास रखे, जब तक सीढ़ी पर यात्रा है। और इसके पहले कि सीढ़ी को पकड़ने का मोह बनने लगे, सीढ़ी को तोड़ दे, हटा दे बीच के सेतु को।
बुद्ध ने आनंद को कहा था कि तू अपना दीया बन। यह आनंद को कहा था। आनंद,
जो कि सीढ़ी के आखिरी सोपान पर खड़ा था। इस बात को बिल्कुल भुला दिया गया है। क्योंकि बुद्ध के मरने के एक दिन बाद ही आनंद परमज्ञान को उपलब्ध हुआ; ठीक दूसरे दिन। आखिरी सीढ़ी पर खड़ा था। और वह सीढ़ी ही बाधा हो रही थी अब। तो आनंद बुद्ध से कहता है कि आपके रहते-रहते मैं मुक्त न हो पाया, और अब आप मुझे छोड़कर जा रहे हैं, मेरा क्या होगा? तो बुद्ध कहते हैं, शायद मेरे कारण ही तू मुक्त नहीं हो पा रहा है। अब मेरा हट जाना ही ठीक है। वह दूसरे दिन ही मुक्त हो गया!
महावीर के परम शिष्य गौतम के साथ भी ऐसा ही घटा। महावीर के जीते-जी गौतम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए। क्योंकि गुरु को एक तो पकड़ना मुश्किल है। और पकड़कर छोड़ना और भी मुश्किल है। पकड़ना ही मुश्किल है पहले तो। क्योंकि पकड़ने का मतलब है, अहंकार का त्याग। बड़ा कठिन है, पीड़ादायी है। अहंकार हजार उपाय खोजता है गुरु से बचने के।
कृष्णमूर्ति के पास सुनने वालों में अधिक संख्या ऐसे अहंकारियों की है, जो गुरु से बचने के लिए कोई रेशनलाइजेशन, कोई तर्क चाहते थे। उनको कृष्णमूर्ति से बड़ी तृप्ति मिली। वे सीढ़ी से बचना ही चाहते थे, क्योंकि सीढ़ी पर अपने को तोड़ना पड़ता था। कृष्णमूर्ति को सुनकर उन्हें बड़ा भरोसा आया, कि ठीक है; गुरु की कोई जरूरत नहीं है, हम काफी हैं। हम ही पहुंच जाएंगे। कृष्णमूर्ति के कारण, एक सच्ची बात के कारण भी--जो यम ने कहा है कि अज्ञानी बड़ा उपद्रव खड़ा करता है--एक सच्ची बात के कारण भी हजारों लोगों को हानि हुई है।
लेकिन कोई कृष्णमूर्ति के कारण ऐसा हुआ है, ऐसा नहीं है। नानक, कबीर
और दादू, जिन्होंने कहा--गुरु बिन ज्ञान नहीं, उनके कारण भी करोड़ों लोगों की हानि हुई है। पर उनके कारण नहीं, वे हानि लेने वाले लोग हानि पैदा कर ही लेते हैं। तुम कुछ भी करो।
तो उन्होंने गुरुओं को पकड़ लिया। उन्होंने कहा, अब हमें कुछ करने की जरूरत नहीं है। जब गुरु बिन ज्ञान नहीं है, तो गुरु के चरण पकड़ लिए। वे गुरु के चरणों में जंजीर होकर पड़ रहे। फिर उन्होंने गुरु को ऐसा कसकर पकड़ लिया कि जैसे गुरु ही अंत है।
गुरु अंत नहीं है, सिर्फ मार्ग है, सिर्फ इशारा है। जैसे मैं अपनी अंगुली दिखाऊं चांद की तरफ कि वह रहा चांद, और आप मेरी अंगुली पकड़ लें।

अंगुली चांद नहीं है। और जो अंगुली को पकड़ लिया वह चांद तक कभी भी नहीं पहुंच पाया। वह इस अंगुली को पकड़ने में उलझा रहेगा। अंगुली तो भूल जाओ।
इशारा तो हट जाने दो। चांद पर आंख चली जाए, इतना अंगुली का काम था। इसके बाद अंगुली बीच में न आए।
तो लोग गुरु को पकड़कर अटके हुए हैं।
मेरे पास एक मित्र कई वर्षों से आते हैं--वे मेहरबाबा के परम भक्त हैं। कोई तीस साल से मेहरबाबा को उन्होंने सब समर्पण किया हुआ है। बस, उसके बाद उन्होंने फिर कुछ नहीं किया। वे मुझसे कहते कि कुछ करने का सवाल ही नहीं है। अब जब बाबा की इच्छा होगी... जो उनकी मर्जी।
यह बात तो बड़ी अच्छी है। लेकिन वे मित्र शराब पीना जारी रखे, बेईमानी करना जारी रखे! सब जैसी जिंदगी थी; उसको उन्होंने वैसे ही जारी रखा। और उसको छिपाने के लिए बहाना मिल गया कि अब बाबा की मर्जी! जब गुरु पर सब छोड़ ही दिया! छोड़ा कुछ नहीं, सिर्फ इतनी बात कि गुरु को सब छोड़ दिया और यह बहाना बन गया, यह ओट बन गई। अब जो भी करना है, वह जारी रखा उन्होंने। उसमें कोई रत्तीभर फर्क नहीं किया। जीवन कहीं बदला नहीं। क्योंकि गुरु पर अगर सब छोड़ दिया, तो जीवन पूरा का पूरा बदल जाएगा। बदल ही जाना चाहिए। जीवन तो वैसा ही रहा, जैसा तब था जब अहंकार के साथ जुड़े थे, उसमें रत्तीभर फर्क न पड़ा, तो अहंकार तो गया नहीं।
निरअहंकारी ने कभी शराब पी ही नहीं है। पी नहीं सकता। क्योंकि अहंकार
को भुलाने के लिए ही शराब पीनी पड़ती है। निरअहंकारी के पास भुलाने को कुछ नहीं बचता, तो शराब का क्या सवाल है? निरअहंकारी ने कभी क्रोध नहीं किया है। क्योंकि अहंकार को चोट लगती है, तो ही क्रोध होता है।
तो मैं उन मित्र को कहता कि तुम क्रोध भी करते हो, शराब भी पीते हो, चोरी, बेईमानी, धोखा, सब करते हो, जैसे तुम थे वैसे ही हो! वे कहते, सब गुरु पर छोड़ दिया; अब जो उनकी मर्जी!
तो गुरु पर छोड़ने वाले लोग भी हैं। गुरु से बचने वाले लोग भी हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, गुरु को पकड़ना भी, और छोड़ना भी स्मरण रखना है। एक रास्ते के प्राथमिक चरण पर गुरु बहुत बड़ा सहारा है। और अंतिम घड़ी में बड़ी बाधा है। पहले चरण पर बड़ा अनिवार्य है।
वही यम कह रहा है--दूसरे ज्ञानीपुरुष के द्वारा उपदेश न किए जाने पर
इस विषय में मनुष्य का प्रवेश नहीं होता।
इसे ध्यान रखना। वह भी नहीं कह रहा है इससे ज्यादा, प्रवेश नहीं होता। इनीशिएशन दूसरे ज्ञानीपुरुष के बिना नहीं होता। लेकिन अंत हमेशा स्वयं अकेले में होता है, किसी के साथ नहीं होता।
प्राथमिक चरण पर जो पहला धक्का है, जो पहली स्फुरणा है, एक बुझे दीए के पास जले हुए दीए का आना है, और एक लपट, एक लौ की लपट और बुझे दीए का जल जाना है। फिर पहले दीए की--जिससे दीक्षा हुई--कोई जरूरत नहीं है। अब दीया अपनी ताकत से जलेगा। दीया जल उठा, अब अपनी रोशनी चलेगी। अब अपनी यात्रा शुरू हो गई।
जब तक शिष्य का दीया नहीं जल जाता, तब तक गुरु जरूरी है। और जैसे ही दीया जल जाता है, वैसे ही गुरु बिल्कुल गैरजरूरी है।
इसे हम ऐसा समझें--कि कोई भी व्यक्ति अपने को जन्म नहीं दे सकता, उसके लिए मां जरूरी है। लेकिन कोई भी व्यक्ति सदा गर्भ में नहीं रह सकता। एक आदमी तय कर ले कि अब जब मां ने ही जन्म दिया है, तो गर्भ में ही रहेंगे! तो फिर मां भी मरेगी और वह खुद भी मरेगा।
लेकिन नौ महीने तक इनीशिएशन, नौ महीने तक दीक्षा चल रही है। नौ महीने
तक मां के दीए से बेटे का दीया जल रहा है। नौ महीने तक मां की श्वास बेटे की श्वास बन रही है। नौ महीने तक मां का खून बेटे का खून बन रहा है। नौ महीने तक बेटा अलग नहीं है। वह मां की ही धड़कन है। लेकिन जैसे ही वह तैयार हो जाएगा, उसका दीया जलने के योग्य हो जाएगा, तेल जुट जाएगा, बाती आ जाएगी, जैसे ही पक्का हो जाएगा कि यंत्र पूरा हो गया और अब बेटा खुद अपने फेफड़े से श्वास ले सकता है, वैसे ही बेटे को गर्भ के बाहर आ जाना होगा।
लेकिन मां भी बेटे को गर्भ में ही रखना चाहती है, नासमझी के कारण, और बेटा भी गर्भ में रहना चाहता है। इसीलिए प्रसव में इतनी पीड़ा होती है।

नहीं तो प्रसव में पीड़ा नहीं होनी चाहिए। प्रसव में पीड़ा का कोई भी कारण नहीं है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि प्रसव की घटना इतने आनंद की घटना हो सकती है-- जितनी पीड़ा की है, उतने ही आनंद की। और फ्रांस में कुछ प्रयोग हुए हैं, काफी बड़ी मात्रा में, जिनसे सिद्ध होता है कि प्रसव से दुख तो बिल्कुल जा सकता है। तरकीब बड़ी आसान हैः मां को राजी होना चाहिए कि बच्चा बाहर जाए। वह उसे रोकती है, सिकोड़ती है। वह अपने पूरे यंत्र को खींचती है। उस खींचने और प्रकृति के धक्के में--कि बेटे को बाहर तो जाना पड़ेगा... । और बेटा भी रुकना चाहता है, क्योंकि गर्भ बड़ा शांतिदायी है, मोक्ष जैसा है। कोई चिंता नहीं, कोई काम नहीं, कोई कर्तव्य नहीं, कोई जिम्मेदारी नहीं; कोई पीड़ा, कोई दुख, कोई असुविधा नहीं।
इतना विज्ञान विकसित हुआ है, फिर भी गर्भ जैसा कंफर्टेबल, सुविधापूर्ण हम कोई स्थान बना नहीं पाए। गर्भ में बेटा ठीक वैसा ही है, जैसे विष्णु क्षीरसागर में होंगे। उससे जरा भी फर्क नहीं है। और ऐसे भी गर्भ में जिस जल में बेटा होता है, उसमें उतना ही नमक होता है जितना सागर के पानी में। ठीक सागर का पानी ही होता है गर्भ में, उसी अनुपात के केमिकल्स होते हैं उसमें।
वैज्ञानिक कहते हैं, चूंकि आदमी का पहला जन्म मछली की तरह हुआ, इसलिए
अब भी जब वह पहला जन्म लेता है तो उसे मछली की ही पूरी व्यवस्था चाहिए। इसलिए गर्भ में पूरा सागर का वातावरण होता है। इसलिए स्त्रियां मिट्टी खाने लगती हैं, नमक खाने लगती हैं। नमक की कमी पड़ जाती है शरीर में। सारा नमक गर्भ खींच लेता है। क्योंकि गर्भ में ठीक सागर के जल की स्थिति होनी चाहिए। उसमें तैरता है बच्चा। वह क्षीरसागर में ही है।
लेकिन नौ महीने के बीच वह तैयार हो जाएगा। उससे जल्दी भी अगर बाहर निकल आए, तो भी खतरनाक है। क्योंकि अधूरा होगा, और आधा मरा हुआ जीएगा। असमय में पैदा हो जाए, तो भी घातक है। वह ठीक नौ महीने पूरे करे।
बच्चा भी भीतर रहना चाहता है। इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चा
जब पैदा होता है तो जीवन का सबसे बड़ा दुख, उसको वे ट्रॉमा कहते हैं, वह घटित होता है। बच्चे को इतना बड़ा शॉक लगता है--कि जिंदगी इतनी सुखद थी और वहां से एकदम दुख में आ जाता है। खुद श्वास लेना पहला काम उसका होता है, जो कि काफी कष्टपूर्ण है। जिसने कभी श्वास न ली हो, उसे पहली श्वास लेना! और जिंदगी में अधूरा, अलग छूट जाता है--असहाय।
तो बच्चा भी भीतर रुकना चाहता है और मां भी भीतर रोकना चाहती है, और पूरी प्रकृति बाहर ठेलती है। इसलिए दुख होता है, इसलिए पीड़ा होती है, प्रसव की पीड़ा होती है।
सम्मोहन करने वाले वैज्ञानिकों ने हजारों स्त्रियों को सम्मोहित करके यह समझाया कि प्रसव में कोई पीड़ा नहीं है, यह बड़ा आनंद का कृत्य है। लेकिन तुम बच्चे को जाने दो, छोड़ दो; रिलैक्स, विश्राम की अवस्था में बच्चे को बाहर जाने दो, उसे रोको मत, सिकोड़ो मत, अपने को खोलो--और बच्चा जाए--तो पीड़ा नहीं हुई।
फ्रांस में एक अलग विधि ही विकसित हो गई, और लाखों स्त्रियां बिना पीड़ा के बच्चों को जन्म दे रही हैं। कोई पीड़ा नहीं।
और अभी नई जो खोज है, वह यह है कि यह तो पहला कदम है। जब ठीक से यह कदम आगे बढ़ जाएगा, तो स्त्री को बच्चा पैदा करने में जैसे आनंद का अनुभव हो सकता है, वैसा उसे किसी चीज में कभी भी नहीं हो सकता। क्योंकि इतने बड़े सृजन की घटना है, और नौ महीने का बोझ और नौ महीने का तनाव जब एक क्षण में मुक्त होगा, तो जो हलकापन और जो शांति तूफान के बाद भीतर आ जाएगी!
लेकिन स्त्री उससे वंचित है। और ऐसा नहीं है कि मां गर्भ में ही बच्चे
को रोकना चाहती है, बाद में भी पूरी कोशिश करती है। जब तक बहू घर में न आ जाए, तब तक वह कोशिश... ।
और इसलिए सास और बहू में जो कलह है, वह गर्भ से शुरू हो गई। यह बहू लड़के
को पूरा स्वतंत्र करने की कोशिश कर रही है। गर्भ से जो घटना शुरू हुई थी प्रसव में, यह बहू उसको पूरा कर रही है। यह उसको मां से पूरी तरह मुक्त कर रही है और मां की तरफ से सारा ध्यान अपने पर केंद्रित कर रही है। इसलिए सास

और बहू में दुश्मनी को कम करना मुश्किल है, वह गर्भ से ही उपद्रव शुरू हो गया है।
अगर कोई मां बच्चे को जन्म दे सके सहजता से, आनंद से, तो बहू से संघर्ष उसका पैदा नहीं होगा। क्योंकि वह खुश होगी कि बच्चा जितना मुक्त होता जाए, जितना स्वतंत्र होता जाए... ।
साधारण अज्ञानी मां की तरह गुरुओं की भी जमात है। वे ठीक गुरु नहीं हैं जो शिष्य को रोक लेना चाहते हैं। वे साधारण माताओं की तरह हैं। तो शिष्य का जाना दुखपूर्ण होता है--उनको भी और शिष्य को भी--और वे सब तरह के कष्ट खड़े करते हैं। सब तरह के भय, प्रलोभन खड़े करते हैं।
सच उनको कोई ज्ञान नहीं हुआ। अगर ज्ञान हो, तो गुरु का यह पहला काम है
कि जैसे ही गर्भ के दिन पूरे हो जाएं और जैसे ही बच्चा राजी हो जाए--शिष्य राजी हो जाए अपनी यात्रा पर--तो वह बुद्ध की तरह कह देः अप्प दीपो भव। तू अपना दीया अब हो जा। अब तू जा अपनी यात्रा पर। अब तू मुझे छोड़ दे; मुझे भूल जा। अब जैसे मैं था ही नहीं।
ठीक मां और ठीक गुरु गर्भ के बाद व्यक्ति को पूरी तरह स्वतंत्र करने
की कोशिश में लग जाएंगे।
गुरु के गर्भ में जाना जरूरी है। शिष्य होने का अर्थ है, गुरु के गर्भ में प्रवेश। यह कोई शरीर में प्रवेश नहीं है, लेकिन गुरु की चेतना के दायरे में प्रवेश है। और जब यह गर्भ पूरा हो जाए, तो इस गर्भ के बाहर जाने का साहस।
हे प्रियतम! जिसको तुमने पाया है, यह बुद्धि तर्क से नहीं मिल सकती।
यह तो दूसरे के द्वारा कही हुई ही आत्मज्ञान में निमित्त होती है। सचमुच ही तुम धैर्य वाले हो, उत्तम धैर्य वाले हो। हे नचिकेता! हम चाहते हैं कि तुम्हारे जैसे ही पूछने वाले हमें मिला करें।
यह जो श्रद्धा है नचिकेता की, यह श्रद्धा तर्क से उपलब्ध नहीं होती।
यह कोई कितना ही विचार करे, कितना ही सोचे, सोचने और विचार करने से सरल नहीं होता। सोचने और विचार करने से चालाक होता है, होशियार होता है, सरल नहीं होता। सरल तो कोई तभी होता है जब सोचने-विचारने से थक जाता है और समझ लेता है कि सोचने-विचारने से सिवाय विक्षिप्तता के और कुछ हाथ नहीं आता। और सारे सोचने-विचारने को उतारकर रख देता है। उस दिन कोई सरल होता है और श्रद्धा पैदा होती है।
और ध्यान रहे, अगर जगत को जानना हो तो तर्क जरूरी है। पदार्थ की खोज तर्क से होती है। और अगर परमात्मा को जानना है तो खोज श्रद्धा से होती है। ये यात्राएं विपरीत हैं। पदार्थ को जानना हो तो बाहर जाना पड़ता है। और बाहर जाने के लिए जितना विचार हो, उतना उपयोगी है। स्वयं को जानना हो तो भीतर जाना होता है, यात्रा बदल जाती है। और भीतर जाने के लिए जितना तर्क छूटता चला जाए, उतना उपयोगी है। भीतर तो सरलता ले जाएगी, बाहर जटिलता ले जाएगी।
इसलिए वैज्ञानिक का चिंतन बहुत जटिल हो जाता है। और जितनी विज्ञान की शिक्षा बढ़ती जाती है, उतनी ही लोगों के चित्त की शांति समाप्त होती चली जाती है, और उनके आत्मा से संबंध विच्छिन्न होते चले जाते हैं।
यम ने कहा कि हे प्रियतम! तुमने जो पाया है, यह बुद्धि तर्क से नहीं मिल सकती। लेकिन बुद्धि भी एक काम कर सकती है; वह ज्ञानी के द्वारा कहे हुए वचनों को समझने में निमित्त हो सकती है। बस, इतना ही उसका उपयोग हो सकता है। और जैसे ही समझ आ जाए, उसे हटा देना जरूरी है।
मैं जानता हूं कि कर्मफलरूप निधि अनित्य है। क्योंकि अनित्य विनाशशील वस्तुओं से वह नित्य परमात्मा नहीं मिल सकता, इसलिए मेरे द्वारा कर्तव्यबुद्धि से अनित्य पदार्थों के द्वारा, नाचिकेत नामक अग्नि का चयन किया गया अनित्य भोगों की प्राप्ति के लिए नहीं। अतः उस निष्कामभाव की अपूर्व शक्ति से मैं नित्य परमात्मा को प्राप्त हो गया हूं।
यम ने कहा कि मैं परमात्मा को प्राप्त हो गया हूं। एक विशेष अग्नि की प्रक्रिया से, एक विशेष अग्नि में जलकर मैं परमात्मा को प्राप्त हो गया हूं। इस अग्नि को नचिकेता के स्मरण में उसने नाचिकेत अग्नि नाम दिया है।
इस अग्नि के संबंध में दो-तीन बातें समझ लेनी चाहिए।

पहली बात, जैसा यम ने कहा, कि यह अग्नि हृदय की गुफा में छिपी है, यह आपके भीतर है। सच तो यह है कि उसी अग्नि के कारण आप जी रहे हैं। इसलिए अगर आपके शरीर का तापमान नीचे गिर जाए अट्ठान्नबे डिग्री से, तो मौत करीब आने लगती है। एक सौ दस डिग्री के पास पहुंचने लगे, तो मौत करीब आने लगती है। अट्ठानबे और एक सौ दस--बारह डिग्री के भीतर आपका तापमान बना रहे, तो ही आप शरीर में रह सकते हैं, अन्यथा आपका शरीर से संबंध छूट जाएगा।
आपके हृदय में जो अग्नि जल रही है, उसकी एक खास मात्रा इस शरीर को मिल रही है। उस खास मात्रा में ही यह शरीर जी रहा है, जीवंत है। जरा ही ठंडी हो जाए अग्नि, आप शरीर से टूटने लगे। जरा ज्यादा हो जाए, तो भी टूटने लगे। यह अग्नि आपके भीतर है।
इस अग्नि का अभी आप एक ही उपयोग जानते हैं, शरीर में जीना। इस अग्नि का
एक और उपयोग भी है, इस शरीर के पार उठना। यह अग्नि ऊर्जा है। इस ऊर्जा का वाहन बन सकता है और इससे बाहर जाया जा सकता है। यह अग्नि जैसा शरीर में लाती है, ऐसा ही शरीर के भीतर भी ले जा सकती है।
एक बात सदा स्मरण रखें, जिस रास्ते से आप आते हैं, उसी रास्ते से वापस लौटना पड़ता है। रास्ता वही होता है, सिर्फ दिशा बदल जाती है। यह अग्नि अभी शरीर की तरफ बह रही है। इस अग्नि को शरीर से आत्मा की तरफ बहाने की कला सीखनी पड़ती है।
नाचिकेत अग्नि का पहला सूत्र है कि अग्नि की धारा बदलनी है। अभी यह धारा बाहर की तरफ और नीचे की तरफ है। यह धारा ऊपर की तरफ और भीतर की तरफ होनी चाहिए, पहली बात।
दूसरी बात, इस अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए आपको श्वास लेनी पड़ रही है। इससे विज्ञान भी राजी है, क्योंकि ऑक्सीडायजेशन के बिना आप जी नहीं सकते।
एक दीया जलता है। दीया जलकर क्या कर रहा है? अग्नि है क्या? जब एक दीया
जल रहा है, तो दीया नहीं जल रहा, आसपास हवा में जो ऑक्सीजन है, अक्षजन है वह जल रही है। तूफान आ जाए, आप डर जाएं कि कहीं दीया बुझ न जाए, तो आप एक बर्तन दीए के ऊपर ढांक दें, बचाने के लिए। हो सकता था तूफान दीए को न बुझा पाता, लेकिन आपका ढंका हुआ बर्तन बहुत जल्दी बुझा देगा। क्योंकि ढंके हुए बर्तन के भीतर की थोड़ी-सी जो ऑक्सीजन है, उसके जल जाने के बाद दीया नहीं जल सकता। दीया बुझ जाएगा।
आपको चौबीस घंटे श्वास लेनी पड़ रही है। एक क्षण भी श्वास रुक जाए कि
आप समाप्त हुए। क्योंकि श्वास ऑक्सीजन को भीतर ले जाकर अग्नि को प्रज्वलित कर रही है। आपके जीवन में उतनी ही गति होगी जितनी गहरी आपकी श्वास होगी। आप उतने ही जीवंत और स्वस्थ होंगे, जितनी गहरी श्वास होगी। जितनी उथली श्वास होगी, आपका जीवन मुर्दा-मुर्दा हो जाएगा। क्योंकि अग्नि कम जल रही है।
और हम सब बहुत उथली श्वास ले रहे हैं। कुछ कारण हैं, जिनके कारण हम उथली श्वास ले रहे हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं कि जब तक मनुष्य को गहरी श्वास लेना न सिखाया जाए--योग तो बहुत सदियों से कह रहा है--तब तक आदमी पूरी तरह जी ही नहीं पाता। और जो पूरी तरह जी नहीं पाता, उसके पास इतनी ऊर्जा होती ही नहीं कि भीतर की तरफ जा सके।
इसलिए योग ने प्राणायाम की कलाएं खोजीं। प्राणायाम की कलाएं भीतर की अग्नि को ज्यादा प्रज्वलित करने की हैं, ताकि अतिरिक्त अग्नि भीतर हो, जिसको हम अंतर्यात्रा में उपयोग कर सकें। वह फ्यूल है, ईंधन है। पेट्रोल डाल देते हैं गाड़ी में, वह चलती है। पेट्रोल छिपी हुई आग है।
आप भी बिना आग के नहीं जी सकते। सारा जीवन आग से जी रहा है। ये वृक्ष हवा से ऑक्सीजन ले रहे हैं और जी रहे हैं। पशु-पक्षी ऑक्सीजन ले रहे हैं और जी रहे हैं। सारा जीवन आग है। इस आग की गति और मात्रा उतनी ही होगी, जितनी गहरी आपकी श्वास होगी।
लेकिन आदमी... बच्चे सिर्फ गहरी श्वास लेते हैं। बच्चे को सोता हुआ देखें, तो उसका पेट ऊपर उठता है और नीचे गिरता है। उसकी श्वास ठीक नाभि तक जाती है।

एक बड़े आदमी को सोया हुआ देखें, उसका सीना ऊपर उठता है और गिरता है; उसकी श्वास नाभि तक नहीं जाती। बस ऊपर-ऊपर चली जाती है। और उसके फेफड़ों में कोई तीन हजार छिद्र हैं, जिनमें कोई पांच सौ, सात सौ छिद्रों तक ऑक्सीजन पहुंचती है। बाकी ढाई हजार छिद्रों में कार्बन डाइ ऑक्साइड भरी रह जाती है। वह मृत्यु का लक्षण है। वह मरी हुई गैस है, जिसमें कोई आग नहीं रह गई। हमारे जीवन की हजारों बीमारियां उस मरी हुई गैस के कारण पैदा होती हैं। गहरी श्वास अग्नि को प्रज्वलित करती है।
तो दूसरा सूत्र समझ लें। नाचिकेत अग्नि को प्रज्वलित करना हो, तो जितनी गहरी श्वास हो उतना उपयोगी है। उतने आप भभककर जीएंगे। इसलिए हम ध्यान के इस पहले चरण में दस मिनट तक गहरी से गहरी श्वास की कोशिश करते हैं। इस कोशिश में आपकी अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। इस प्रज्वलित अग्नि को फिर भीतर ले जाया जा सकता है। नहीं तो आपके पास शक्ति ही नहीं होती कि जो आप भीतर जा सकें।
तीसरी बात, यह जो अग्नि है भीतर, यह साधारणतया बाहर की तरफ बह रही है, शरीर की तरफ बह रही है। इसे भीतर की तरफ मोड़ना है। इसको भीतर की तरफ मोड़ने में दो बाधाएं हैं। एक तो आपने जो-जो दमित किया है, सप्रेस किया है, वह पत्थरों की तरह बीच में पड़ा है, उसकी वजह से धारा पीछे नहीं जा सकती। वे पत्थर हटने जरूरी हैं। वे बीच की बाधाएं हटनी जरूरी हैं। अन्यथा उनसे टकराकर फिर बाहर आ जाती है।
इसलिए दूसरा चरण है ध्यान का, जिसमें आपको अपने मन के समस्त दबे वेग बाहर फेंक देने हैं पूरे निःसंकोच भाव से। सारी बुद्धिमत्ता छोड़कर, सब जो दबा हुआ है बाहर फेंक देना है। रोए नहीं जिंदगी से, कितनी बार रोने को दबा लिया है, वह पत्थर की तरह पड़ा हुआ है। वह हटता नहीं है। और जब तक आप रो न लेंगे भरपूर, तब तक वह बाधा हटेगी नहीं।
जिंदगी हो गई खिलखिलाकर हंसे नहीं, क्योंकि सभ्यता खिलखिलाकर हंसने नहीं देती। जब आप पूरा खिलखिलाकर हंस लेंगे, अचानक पाएंगे कि भीतर कोई अड़चन थी, वह टूटकर बिखर गई। नाचे नहीं, कूदे नहीं, क्योंकि बचपन से ही हम बच्चों को कह रहे हैं--शांत बैठो। उसकी वजह से इतनी अशांति है दुनिया में। बच्चा अगर बचपन से ही नाच ले, कूद ले, आनंदित हो, तो इतनी अशांति न हो। लेकिन बच्चे को हम कह रहे हैं, बैठो शांत। वह बैठ तो गया है, लेकिन भीतर अशांति चल रही है, क्योंकि बच्चा अभी सजीव है। मरने पर लोग शांत बैठते हैं, वह अभी जिंदा है। अभी जिंदगी आई है। अभी जिंदगी नाचना चाहती है, कूदना चाहती है, हिरनों की तरह उछलना चाहती है। उसको हमने कह दिया, शांत बैठो! वह बैठा है शांत, लेकिन भीतर ऊर्जा कंपित हो रही है।
वह कंपित ऊर्जा रुक जाएगी। जड़ हो जाएगी। उसके पत्थर बन जाएंगे। वह पड़ी है मार्ग में। आप जब तक फिर से अपने बचपन को नहीं पा लेते... । जिस दिन आपके बाप ने आपको कहा था--शांत बैठो, उस दिन आपको वापस लौटना पड़ेगा। और उस पत्थर को तोड़ना पड़ेगा। उस पत्थर के टूटते ही आपका बचपन फिर से लौट आएगा।
ऊर्जा सघन होगी, तेज होगी।
इसलिए दूसरा चरण है, वह बाधाएं हटाने के लिए।
और तीसरा चरण है चोट मारने के लिए, ताकि ऊर्जा भीतर की तरफ और ऊपर की तरफ बहने लगे।
ध्यान रहे, पानी नीचे की तरफ बहता है। वह स्वभाव है। पानी को ऊपर ले जाना हो, तो पंप करना पड़ता है। उसे धक्के देने पड़ते हैं ऊपर की तरफ, तब वह ऊपर की तरफ जाता है। आपकी ऊर्जा भी सहज नीचे की तरफ बह रही है। यह हुंकार, यह हू-हू की आवाज, यह सिर्फ आवाज नहीं है। जब आप हू कहते हैं, तो आपकी नाभि के नीचे जोर से चोट पड़ती है। वह जगह वही है जहां से काम-ऊर्जा पैदा होती है। जहां से ऊर्जा नीचे की तरफ बहती है।
यह हू की चोट--बाधाओं के हट जाने पर, अग्नि के जल जाने पर--ऊर्जा को कुंडलिनी के मार्ग से, आपकी रीढ़ के मार्ग से ऊपर की तरफ गतिमान कर देती है। जितने जोर से यह चोट होगी, उतनी ही ऊर्जा, आग आपकी नाभि से उठकर, आपके कामकेंद्र से उठकर, एक सर्प की तरह फन फैलाकर रीढ़ से ऊपर उठनी शुरू हो जाएगी। उसको ही योग ने कुंडलिनी कहा है।

और जिस दिन यह ऊर्जा आपके अंतिम चक्र सहस्रार में पहुंचती है, तो जीवन
का कमल खिल जाता है। नाचिकेत अग्नि के ये सूत्र हैं।
हे नचिकेता! जिसमें सब प्रकार के भोग मिल सकते हैं; जो जगत का आधार, यज्ञ का चिरस्थायी फल, निर्भयता की अवधि और स्तुति करने योग्य एवं महत्वपूर्ण है तथा वेदों में जिसके गुण नाना प्रकार से गाए गए हैं और जो दीर्घकाल तक की स्थिति से संपन्न है, ऐसे स्वर्गलोक को देखकर भी तुमने धैर्यपूर्वक उसका त्याग कर दिया, इसलिए मैं समझता हूं कि तुम बुद्धिमान हो।
जो योगमाया के पर्दे में छिपा हुआ, सर्वव्यापी सत्य, हृदयरूप गुहा में स्थित, संसाररूप गहन वन में रहने वाला सनातन है, ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्मदेव को शुद्ध बुद्धियुक्त साधक अध्यात्मयोग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग कर देता है।
मनुष्य जब इस धर्ममय उपदेश को सुनकर, भलीभांति ग्रहण करके और उस पर विवेकपूर्वक विचार करके इस सूक्ष्म आत्मतत्व को जानकर अनुभव कर लेता है, तब वह आनंदस्वरूप परब्रह्म पुरुषोत्तम को पाकर आनंद में ही मग्न हो जाता है। तुम नचिकेता के लिए मैं परमधाम का द्वार खुला हुआ मानता हूं।
जहां श्रद्धा है, जहां धैर्य है, जहां समझपूर्वक अनुभव करने की तैयारी है, वहां, यम कहता है-- नचिकेता! तेरे लिए मैं परमधाम का द्वार खुला हुआ मानता हूं।
वह द्वार आपके लिए भी खुला हो सकता है। उस द्वार के बंद होने में आपके अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है। धैर्यपूर्वक, दृढ़ता से, वैराग्यभाव से ऊर्जा को भीतर की तरफ ले जाने की चेष्टा करनी है। वह द्वार शायद खुला ही हुआ है। आप उस द्वार की तरफ बढ़े नहीं कि मंदिर में प्रवेश हो जाता है।
अब सुबह के ध्यान के लिए तैयार हो जाएं।

कठोपनिषद
पांचवां प्रवचन

सतत अतिक्रमण की प्रक्रिया ही परमात्मा

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद।। 14।।

सर्वे वेदा यत पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण
ब्रवीम्योमित्येतत्।। 15।।

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एदद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्।। 16।।

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते।। 17।।

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।। 18।।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।। 19।।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।। 20।।

(यमराज के इन वचनों को सुनकर नचिकेता बोला--) जिस उस परमेश्वर को धर्म
से अतीत, अधर्म से भी अतीत तथा कार्य और कारणरूप संपूर्ण जगत से भी भिन्न और भूत, वर्तमान एवं भविष्य, तीनों कालों से तथा इनसे संबंधित पदार्थों से भी पृथक (आप) जानते हैं, उसे बतलाइए।। 14।।

यम ने कहा, संपूर्ण वेद जिस परमपद का बारंबार प्रतिपादन करते हैं और संपूर्ण तप जिस पद का लक्ष्य कराते हैं अर्थात वे जिसके साधन हैं, जिसको चाहने वाले साधकगण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें (मैं) संक्षिप्त में बतलाता हूं। (वह है) ओम--ऐसा यह एक अक्षर।। 15।।

यह अक्षर ही तो ब्रह्म है (और) यह अक्षर ही परब्रह्म है, इसलिए इसी अक्षर को जानकर, जो जिसको चाहता है, उसको वही (मिल जाता है)।। 16।।
यही अत्युत्तम आलंबन है, यही (सबका) अंतिम आश्रय है। इस आलंबन को भलीभांति जानकर (साधक) ब्रह्मलोक में महिमा को उपलब्ध होता है।। 17।।

नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा न तो जन्मता है और न मरता ही है; यह न तो स्वयं किसी से हुआ है, न (इससे) भी कोई हुआ है, अर्थात यह न तो किसी का कार्य है और न कारण है। यही अजन्मा, नित्य, सदा एकरस रहने वाला (और)पुरातन है, अर्थात क्षय और वृद्धि से रहित है। शरीर के नाश किए जाने पर भी (इसका) नाश नहीं किया जा सकता है।। 18।।

यदि कोई मारने वाला व्यक्ति अपने को मारने में समर्थ मानता है और यदि (कोई) मारा जाने वाला व्यक्ति अपने को मारा गया समझता है, (तो) वे दोनों ही (आत्मस्वरूप को) नहीं जानते; (क्योंकि) यह आत्मा न तो (किसी को) मारता है (और) न किसी के द्वारा मारा जा सकता है।। 19।।

इस जीवात्मा के हृदयरूप गुहा में रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म और महान से भी महान है। परमात्मा की इस महिमा को कामनारहित (और) चिंतारहित (कोई बिरला साधक) सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।। 20।।

भारतीय अध्यात्म साधना की एक मौलिक खोज को समझ लेना जरूरी है, तभी हम
इस सूत्र में प्रवेश कर सकेंगे। आधुनिक विज्ञान ने पदार्थ के विश्लेषण से ऐसी निष्पत्ति निकाली कि यदि हम पदार्थ को विश्लिष्ट करते जाएं, खंडित करते जाएं, तोड़ते जाएं, तो अंत में जो तत्व शेष रह जाता है, जिसे तोड़ा नहीं जा सकता, जो आखिरी इकाई बचती है, वह इकाई विद्युत की है, इलेक्ट्रॉन है। इसलिए विज्ञान के अनुसार, जगत में जो भी दिखाई पड़ रहा है, वह विद्युत का ही समागम है। विभिन्न-विभिन्न रूपों में विद्युत ही सघन होकर पदार्थ हो गई है। विद्युत मौलिक तत्व है।
पूरब के मनीषियों ने भी एक मौलिक तत्व खोजा था। पर उनकी खोज दूसरी तरह
से थी, और दूसरी दिशा से थी। पश्चिम के विज्ञान ने पदार्थ को तोड़-तोड़कर आखिरी अणु, परमाणु और परमाणु का भी विभाजन करके जिस तत्व को पाया है, वह है विद्युत। पूरब के मनीषियों ने भी चेतना की आत्यंतिक गहराई में उतर-उतरकर चेतना का जो आखिरी बिंदु है, उसे पकड़ा था। उस बिंदु को उन्होंने कहा था-- ध्वनि, साउंड।
पूरब की खोज है कि सारा अस्तित्व ध्वनि का ही घनीभूत रूप है; शब्द का घनीभूत रूप है। इसलिए वेद को हमने परमेश्वर कहा, क्योंकि वह शब्द है। और ऐसी पूरब के मनीषियों की ही खोज नहीं है, जिन्होंने भी आत्मा की तरफ से यात्रा की है, उन्होंने भी यही कहा है।
बाइबिल कहती है, जगत के प्राथमिक चरण में शब्द था, लोगोस, दि वर्ड। शब्द था जगत के प्रारंभ में। फिर शब्द से ही सब उत्पत्ति हुई।
जिन्होंने आत्मा के भीतर प्रवेश करके जीवन की आधारशिला खोजनी चाही,
उन सभी ने ध्वनि को आधारभूत माना है। जिन्होंने पदार्थ की खोज की है, उन्होंने विद्युत को आधारभूत माना है। पर एक बड़े मजे की बात यह है कि पश्चिम का विज्ञान कहता है कि ध्वनि विद्युत का एक रूप है। और पूरब का योग कहता है कि विद्युत ध्वनि का एक रूप है।
इस मामले में विज्ञान और योग दोनों सहमत हैं कि विद्युत और ध्वनि दो चीजें नहीं हैं। यह परिभाषा की बात है कि हम विद्युत को ध्वनि का रूप कहें, कि ध्वनि को विद्युत का रूप कहें। लेकिन एक बात में दोनों राजी हैं कि जीवन की चरम, आखिरी, आत्यंतिक जो इकाई है, वह या तो विद्युत-जैसी है, या ध्वनि-जैसी है। और विद्युत और ध्वनि में कोई भेद नहीं है। पर दोनों ने अलग-अलग तरह से यात्रा की है, और अलग-अलग रूप से आत्यंतिक को पकड़ा है।
यदि पदार्थ से खोज की जाए तो विद्युत ही मिलती है। पदार्थ जड़ है। विद्युत भी जड़ है। लेकिन अगर चैतन्य से खोज की जाए, तो चैतन्य का आधारभूत स्वरूप ध्वनि है, शब्द है, विचार है, चैतन्य है, मन है, मनन है। कितने ही गहरे हम उतरते चले जाएं, तो ध्वनि के शुद्धतम रूप शेष रह जाते हैं। ध्वनि का यह अंतिम जो रूप है, उसे हमने नाम दिया है--ओंकार, ओम।
यह ओम कुछ हिंदुओं से बंधा हुआ नहीं है। जैन हिंदुओं से राजी नहीं हैं तत्व-दर्शन में, लेकिन इस बात में राजी हैं कि जो आत्यंतिक घटना भीतर घटती है, उसकी ध्वनि ओंकार की है। बौद्ध राजी नहीं हैं, सब सिद्धांतों में भेद हैं, लेकिन जब समाधि फलती है और समाधि पूर्ण होती है, तो जो ध्वनि भीतर स्फुरित होती है, वह ओंकार की है, वह ओम है।
मुसलमान अपनी प्रार्थना के बाद आमीन शब्द का प्रयोग करते हैं; ईसाई भी, यहूदी भी। शब्दशास्त्री कहते हैं कि आमीन ओम का ही रूप है। वह जो भीतर ध्वनि होती है, उसे कोई ओम की तरह भी समझ सकता है, कोई ओमीन की तरह भी समझ सकता है। ध्वनि में अपनी तरफ से समझ लेने की बहुत आसानी है।
रेलगाड़ी चलती हो और उसके चकों की आवाज होती हो, तो आप जो भी चाहें सुनना वह सुन सकते हैं। आप चाहें तो किसी गीत की कड़ी भी सुन सकते हैं। अगर कोई फिल्मों का भक्त हो, तो उसे कोई गीत की कड़ी सुनाई पड़ जाएगी। और अगर कोई

राम का भक्त हो, तो उसे लगेगा कि रेलगाड़ी के चक्के राम, राम, राम कर रहे हैं।
ध्वनि बहुत सूक्ष्म है। पूरब के मनीषियों ने उसे ओम की तरह पकड़ा।
यहूदी, मुसलमान फकीरों ने उसे ओमीन की तरह पकड़ा, जिसका आमीन रूप हो गया।
अंग्रेजी में कुछ शब्द हैं, जिसको अंग्रेजी भाषाशास्त्री समझा नहीं पाते कि उनकी उत्पत्ति क्या है। जैसे ओमनीप्रेजेंट, ओमनीपोटेंट।
शब्दशास्त्री नहीं समझा पाते कि इनकी उत्पत्ति क्या है। लेकिन जो लोग ओम के विज्ञान को समझते हैं, वे कहेंगे कि इन शब्दों का जन्म ओम से हुआ है।
ओमनीपोटेंट का अर्थ है कि ओम की तरह जो शक्तिशाली हो गया--विराट।
ओमनीप्रेजेंट का अर्थ है कि ओम की भांति जो सब जगह उपस्थित हो गया-- सर्वकाल में।
संस्कृत से संसार की करीब-करीब सभी सुसंस्कृत भाषाओं का जन्म हुआ है।
संस्कृत आदि भाषा है। अंग्रेजी हो कि लिथवानियन हो कि फ्रेंच हो कि स्लाव, रशियन हो कि जर्मन हो कि इटेलियन हो, स्पेनिश हो, स्विस हो, डेनिश हो, सारी भाषाओं में संस्कृत की मूल धातुएं उपस्थित हैं।
ओम संस्कृत की आधारभूत ध्वनि है। इस ओम में संस्कृत की जितनी ध्वनियां हैं, सभी का समावेश है। ओम बना है अ, उ और म--तीन ध्वनियों के जोड़ से। ए, यू, एम। ये तीन मूल स्वर हैं। बाकी सारी भाषा इन्हीं से पैदा होती है। सारे शब्द फिर इनसे ही निर्मित होते हैं। ओम मूल है, अ, उ, म उसकी तीन शाखाएं हैं। और फिर इन तीन शाखाओं से सारी ध्वनि का जाल और सारे शब्दों का जन्म होता है। ओम को लोगोस कहेंगे यहूदियों की भाषा में; शब्द कहेंगे ईसाइयों की भाषा में। इस ओम के संबंध में यह सूत्र है।
और इस सूत्र को बहुत ठीक से समझ लेना। क्योंकि भीतर जिन्हें प्रवेश करना है, वे इस ध्वनि के सहारे बड़े आसानी से भीतर प्रवेश कर सकते हैं। क्योंकि यह ध्वनि भीतर निनादित हो रही है। प्रतिक्षण यह ध्वनि भीतर गूंज रही है। यह ध्वनि ही आपका प्राण है। यह ध्वनि भीतर से खो जाए, आप खो जाएंगे। आपका अस्तित्व इसी ध्वनि की स्फुरणा है।
लेकिन हम इतने शब्दों और इतनी ध्वनियों से भरे हैं, इतने शोरगुल से,
कि भीतर की धुन सुनाई नहीं पड़ती। यह बड़ी सूक्ष्म है, और यह बड़ी गहरे में है। और हम बाजार में इतने उलझे हैं, वहां इतना उपद्रव है, इतना शोरगुल है और हमारे कान उससे इस बुरी तरह भरे हैं कि इस छोटी-सी, धीमी-सी, मौलिक गहरी आवाज को हम सुन नहीं पाते हैं।
इसे सुनने के लिए जरूरी है कि हमारा मन पूरी तरह शांत हो जाए। इसके लिए जरूरी है कि हमारे बाहर का जो शोरगुल है, वह छूट जाए। हमारा मन अव्यस्त हो जाए, अनआकुपाइड हो जाए। बाहर से हम कुछ भी न सुनें और भीतर कोई विचार न चलें, तो धीरे-धीरे-धीरे इस ध्वनि का अनुभव होना शुरू हो जाता है।
इसमें एक खतरा है। और वह खतरा बड़े गहरे खड्डे में भारत को ले गया। जैसे ही यह पता चल गया अज्ञानियों को कि ओम मूलमंत्र है, तो उन्होंने ओम का पाठ शुरू कर दिया। तो वे बैठकर ओम-ओम-ओम का पाठ करने लगे।
यह जो आप पाठ करते हैं, यह मूल नहीं है। जो बिना पाठ किए भीतर गूंज रहा है, वह मूल है। जो आप बोलते हैं होंठों से या मन से, वह तो आपका ही है, वह तो ऊपर-ऊपर है। वह जो भीतर से आता है बिना किसी प्रयास के, जो आपको तोड़कर आता है, पर्त-पर्त उघाड़कर आता है, जो आपके ऊपर छा जाता है, जो आपका कृत्य नहीं है, जो आपके भीतर घटी घटना है, एक हैपनिंग है--उस ओम से जिसका संबंध जुड़ जाता है, वह जीवन के परम आधार से एक हो गया। उसने ब्रह्म के साथ मैत्री बना ली। वह मोक्ष को उपलब्ध हो गया।
लेकिन जैसे ही यह पता चल गया, तो हमने इस पता का यह उपयोग किया कि हम बैठकर ओम-ओम का पाठ करने लगे। अगर आप इसका पाठ करेंगे तो धीरे-धीरे आपका मन ओम की ध्वनि से भर जाएगा। लेकिन वह ध्वनि पैदा की हुई है। वह आपके ही द्वारा पैदा की हुई है। और जो आप पैदा करते हैं, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। इसे बहुत ठीक से समझ लें। जो भी आप पैदा करते हैं, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। आपसे बड़ा, आप कैसे पैदा कर सकते हैं? और जो भी आप पैदा करते हैं, वह हाथ के मैल की तरह है। जिसने आपको पैदा किया, जिससे आप पैदा हुए हैं, उसे आप

पैदा नहीं कर सकते। कोई भी अपने बाप को जन्म नहीं दे सकता। इसका कोई उपाय नहीं है।
लेकिन जो लोग ओम का पाठ करके सोचते हैं कि मूल ध्वनि में उतर जाएंगे,
वे अपने बाप को जन्म देने की कोशिश कर रहे हैं। यह असंभव है। इसके होने का कोई उपाय ही नहीं है। खतरा यह है कि वह ओम जपते-जपते कहीं इतना कंठस्थ हो जाए और इतना यांत्रिक हो जाए, तो वे यह भूल ही जाएंगे कि यह असली नहीं है, नकली है।
हमने हर चीज में नकल पैदा की है। हमने मंत्र भी नकली पैदा कर लिए! आदमी इतना कुशल है नकल करने में कि जैसे ही उसे पता चल जाए कि मूल कैसा है, वह उसकी नकल बना लेता है। हमने प्लास्टिक के, कागज के ही फूल नहीं बनाए, फूलों में ही हमने कागज का प्रयोग नहीं किया, हमने महामंत्र भी कागज के बना लिए हैं। फिर उन कागज के महामंत्रों को लेकर हम घूमते फिरते हैं, इस ख्याल में कि शायद फूल, वास्तविक जीवन का फूल, हमारे हाथ लग गया।
खतरा यह है कि आप ओम का पाठ कर-कर के इतना शोरगुल भीतर पैदा कर लें कि
वह जो भीतर की सूक्ष्मातिसूक्ष्म ध्वनि है, वह सुनाई ही न पड़े। आपका ओम ही उसमें बाधा बन जाए।
ऋषियों ने कहा है कि वह जो भीतर का ओम है, वह अनाहत नाद है। अनाहत नाद
का अर्थ होता है, जो किसी चीज की चोट से पैदा न हो, आहत न हो। जैसे मैं ताली बजाऊं, यह आहत नाद है। दो चीजें टकराईं, उनसे शब्द पैदा हुआ। होंठ टकराए, शब्द पैदा हुआ। जीभ तालू से टकराई, शब्द पैदा हुआ। जो भी चीज दो चीजों के टक्कर से पैदा होती है, वह अनाहत नहीं है। और यह जो ओम है, अनाहत नाद है। यह किसी चीज की टक्कर से पैदा नहीं होता। यह है। यह अस्तित्व का स्वरूप है। यह पैदा कभी हुआ ही नहीं।
और ध्यान रहे, जो चीज भी पैदा होती है, वह मर जाएगी। और जो चीज दो चीजों
की टकराहट से पैदा होती है, वह कितनी देर टिकेगी? हो भी नहीं पाएगी और मिट जाएगी। ताली बज भी नहीं पाई कि खो गई। इन दो हाथों की टक्कर से जो थोड़ी-सी शक्ति मिली ताली की आवाज को, वह कितनी देर चलेगी? और ओम है शाश्वत--सदा, सदैव, नित्य। वह दो चीजों की टक्कर से पैदा नहीं हो रहा है। वह है, वह पैदा हो ही नहीं रहा है।
इस अनाहत की खोज में आप ओम के मंत्र का सहारा ले सकते हैं, लेकिन बड़ी कुशलता की जरूरत है। इसलिए मैंने रात को आपके लिए जो प्रयोग करने को दिया, उसमें मैंने कहा, आप सिर्फ ओ की आवाज करें। म को मत आने दें। आप सिर्फ करें ओऽऽऽ... सिर्फ ओऽऽऽ करते रहें। और एक दिन आप अचानक पाएंगे कि ओम आना शुरू हो गया। आप सिर्फ ओ से चोट मार रहे थे, सिर्फ साज बिठा रहे थे, ताकि भीतर का साज बैठ जाए।
और जिस दिन आप अचानक पाएं चौंककर कि आप तो ओ कहते हैं, लेकिन भीतर से
ओम आता है, उस दिन आप समझना कि कोई और धारा भीतर टूट गई। तो प्रतीक्षा करना। आप जल्दी मत करना। आप सिर्फ ओ का उपयोग करना और आधे हिस्से को छोड़ देना भीतर पर। जिस दिन धारा बहेगी, उस दिन वह जुड़ जाएगा।
और जिस दिन आपको ऐसा लगे कि आपके ओ में कोई नई चीज भीतर से आकर जुड़ गई
है, उस दिन से आप ओ का उच्चारण भी बंद कर देना। उस दिन से सिर्फ आप आंख बंद करके बैठ जाना और सुनने की कोशिश करना, मंत्र बोलने की नहीं। मंत्र को सुनने की कोशिश करना। होंठ और जीभ का प्रयोग मत करना, कान का प्रयोग करना भीतर। सुनना, कि भीतर क्या हो रहा है। और आप पाएंगे कि ओम का नाद भीतर हो रहा है। वह आपका पैदा किया हुआ नहीं है। आप नहीं थे तब वह था, आप नहीं होंगे तब भी वह होगा। आपका होना एक लहर की तरह है, वह आपके नीचे छिपा हुआ सागर है। आदमी कभी-कभी अधैर्य में बहुत जल्दी कर लेता है। इसलिए मैंने आपको आधा मंत्र दिया है, आधा छोड़ रखा है। ताकि आधा भीतर से पूरा हो, तो आपको पता चल जाए कि अब कोई नई घटना घट रही है, जो मैं नहीं कर रहा हूं। उसी वक्त आप रुक जाना और मंत्र बोलने की जगह मंत्र को सुनना शुरू कर देना।
ऋषियों ने मंत्र को सुना है, बोला नहीं है। लेकिन जहां आप खड़े हैं, वहां कुछ तो बोलने से शुरू करना पड़ेगा, ताकि पत्थर हट जाए और झरना बहने लगे।

यह ओ की चोट सिर्फ पत्थर को हटाने के लिए है। और जैसे ही पत्थर हटेगा
कि ओम का झरना बहने लगेगा। फिर आप चुपचाप हो जाना। फिर आप बोलना मत। फिर आहत नाद पैदा मत करना। फिर तो अनाहत करीब है। और जरा कान उसमें लग जाएंगे, एक ट्यूनिंग हो जाएगी, तो बस सुनाई पड़ना शुरू हो जाएगा। और तब आप चकित होंगे कि यह तो स्वर निरंतर गूंज रहा था, अब तक मैंने सुना क्यों नहीं? आप कहीं और उलझे थे, मन कहीं और व्यस्त था।
मन का एक नियम ख्याल में ले लें। मन जहां व्यस्त होता है, उतना ही उसे बोध होता है। और जब मन कहीं बहुत ज्यादा व्यस्त होता है, तो शेष सब जगह अनुपस्थित हो जाता है।
एक युवक खेल रहा है हॉकी के मैदान में। पैर में चोट लग जाती है, खून बहना शुरू हो जाता है। दर्शक जो बैठे हैं ग्राउंड के किनारे, उन्हें दिखाई पड़ता है कि पैर से खून बह रहा है, जमीन पर खून के दाग पड़ गए हैं। लेकिन उस युवक को न तो चोट का पता है, न दर्द हो रहा है, न खून के बहने का कोई ख्याल है। उसका सारा ध्यान खेल में लगा है।
लेकिन खेल बंद होगा। घंटी बजेगी, खेल बंद होगा, और तत्क्षण खून बह रहा है, और पैर में दर्द है, पीड़ा है, चोट लग गई है, उसे स्मरण आएगा। यह चोट तो बहुत पहले की लग गई थी! लेकिन ध्यान कहीं और था।
आपके घर में आग लगी हो और कोई आपको नमस्कार करे। आपको दिखाई भी नहीं पड़ेगा, सुनाई भी नहीं पड़ेगा। आंखें देखेंगी, फिर भी नहीं दिखाई पड़ेगा। कान सुनेंगे, फिर भी सुनाई नहीं पड़ेगा। घर में आग लगी है। आप रास्ते से गुजरते हैं रोज। किनारे लगे दीवालों पर पोस्टर भी पढ़ते हैं, दुकानों के साइनबोर्ड भी पढ़ते हैं। दुकानों में भी झांककर देखते बढ़ते चले जाते हैं। लेकिन घर में आग लगी है, उस दिन आपको कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। उसी रास्ते से आप गुजरेंगे, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। आंखें तो हैं, लेकिन अब आंखों के पीछे मन नहीं है। और जब तक आंखों के पीछे मन न जुड़ा हो, तब तक कुछ अनुभव नहीं होता।
तो आप बाहर इतने व्यस्त हैं, इसलिए भीतर की तरफ ध्यान नहीं है। सारी चेष्टा इतनी है योग की, कि आप बाहर से थोड़े मुक्त हो जाएं, ताकि ध्यान की धारा भीतर बहने लगे। और भीतर सब कुछ मौजूद है, जो चाहा जा सकता है। जो चाह-चाहकर नहीं मिलता, वह मौजूद है। जिसको हम खोज रहे हैं जन्मों-जन्मों से, वह मौजूद है।
बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, और किसी ने पूछा कि आपको क्या मिला, तो बुद्ध
ने कहा है कि मुझे मिला कुछ भी नहीं, जो मिला ही हुआ था उसका पता चला। वह सदा से था ही।
यह ओम आपके भीतर गूंज ही रहा है। यह आपके प्राणों का स्वर है। यह आपका होना है। यह आपका अस्तित्व है। इसको ख्याल में लेकर अब इस सूत्र में उतरें--
यमराज के इन वचनों को सुनकर नचिकेता बोला--जिस उस परमेश्वर को धर्म से अतीत, अधर्म से भी अतीत, तथा कार्य और कारणरूप संपूर्ण जगत से भी भिन्न और भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों से तथा इनसे संबंधित पदार्थों से भी पृथक आप जानते हैं, उसे बतलाइए।
वह जो न मरता है, न जन्मता है; न जिसका कोई अतीत है, न जिसका कोई वर्तमान, न जिसका कोई भविष्य; जो सदा है, जो कालातीत है; जिसके पैदा होने का कोई कारण नहीं और जिसके मिटने का कोई उपाय नहीं; उस परमात्मा को, उस अंतिम तत्व को आप मुझे बतलाइए--वह क्या है?
नचिकेता ने कहा, यह जो सारे संपूर्ण जगत से भिन्न है, सारे जगत से अतीत है, अतिक्रमण कर जाता है; जो दिखाई पड़ता है, उसके पार है; जो सुनाई पड़ता है, उसके पार है--उस परम तत्व को आप मुझे समझाइए।
यम ने कहा, संपूर्ण वेद जिस परमपद का बारंबार प्रतिपादन करते हैं और संपूर्ण तप जिस पद का लक्ष्य कराते हैं अर्थात वे जिसके साधन हैं, जिसको चाहने वाले साधकगण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद तुम्हें मैं संक्षिप्त में बतलाता हूं, वह है ओम--ऐसा यह एक अक्षर।
यह ओम वैसा ही है, जैसे कि फिजिक्स या केमिस्ट्री के फार्मूले होते हैं, सूत्र होते हैं। इस ओम में भारत की सारी खोज समाई हुई है। इस एक शब्द

में हमने सब रख दिया है। और इस छोटे-से शब्द को कोई छोटा न समझे। कुंजी छोटी होती है, लेकिन महलों का द्वार खोल देती है। इस एक छोटी-सी कुंजी से सारे अस्तित्व का द्वार खुल सकता है। लेकिन कुंजी का ठीक-ठीक उपयोग करना आना चाहिए। आपके हाथ में भी कुंजी हो, दरवाजे पर भी आप खड़े हों, और कुंजी को ताले में न लगाएं और कहीं लगाते रहें। ताला न मिले; कुंजी पास हो!
मैंने सुना है, एक रात मुल्ला नसरुद्दीन नशा करके घर आया। वह चाबी घुमा रहा है, बड़ी देर से घुमा रहा है, लेकिन कुछ खुलता नहीं। तो उसकी पत्नी ऊपर से कहती है कि क्या इतने नशे में धुत हो गए हो, कि चाबी खो गई? नसरुद्दीन कहता है, चाबी तो मेरे पास है। पत्नी ने कहा, अगर चाबी खो गई हो, तो मैं दूसरी चाबी फेंकूं? नसरुद्दीन ने कहा, चाबी तो मेरे पास है, अगर दूसरा ताला तेरे पास हो तो फेंक, क्योंकि ताला नहीं मिल रहा है।
चाबी ही हाथ में हो तो काफी नहीं है, ताला भी पता होना चाहिए। चाबी के घुमाने की भी ठीक व्यवस्था ख्याल में होनी चाहिए। क्योंकि आप चाबी उलटी भी घुमाते रह सकते हैं। जरा-सी चूक और सब भटक जाएगा। और जितना सूक्ष्म होता है प्रयोग, उतने ही भटकने की संभावना बढ़ जाती है। क्योंकि जरा-सी चूक, कि हजारों मील का फासला हो जाता है।
यम ने नचिकेता को कहा कि वेद जिसका बारंबार गुणगान करते हैं; संपूर्ण
तप जिसकी ओर लक्ष्य कराते हैं। साधक जिसके लिए ब्रह्मचर्य साधते हैं... । इसे थोड़ा समझ लेना चाहिए। जो लोग भी अति कामी हैं, उन्हें भीतर की ओंकार की ध्वनि सुनाई पड़ने में बड़ी कठिनाई होगी। उसके कारण हैं। कामवासना सिर्फ वासना ही नहीं है, शक्ति का अपव्यय भी है। और जो ऊर्जा
हम बाहर फेंक रहे हैं, वह ऊर्जा हमें भीतर रिक्त कर जाती है, क्षीण कर जाती है, दीन कर जाती है, और भीतर हमें जड़ कर जाती है। संवेदना कम हो जाती है। जिन्हें भी ओम की ध्वनि सुननी हो, उन्हें अपनी शक्ति के अपव्यय से बचना चाहिए। क्योंकि जितनी ज्यादा शक्ति भीतर होगी आंदोलित, जितनी शक्ति की तरंगें भीतर होंगी, उन तरंगों में वह भीतर की ओंकार की ध्वनि टकराने लगेगी। और वह जो टकराहट है, वह आपको पहले सुनाई पड़ेगी।
ब्रह्मचर्य का मूल्य ब्रह्मचर्य में स्वयं नहीं है। ब्रह्मचर्य का मूल्य तो केवल भीतर शक्ति की एक दीवाल खड़ी करने में है, जिसमें भीतर का ओंकार टकराने लगे और उस टकराहट को हम सुन पाएं। बिना ब्रह्मचर्य के आप दीवालरहित हैं। जैसे कोई घर हो, जिसमें दीवाल न हो। आवाज आप करें, तो लौटकर कभी न आए। निकल जाए, आकाश में खो जाए। ब्रह्मचर्य से हीन व्यक्ति दीवालरहित है। उसके आसपास कोई भी घेरा नहीं है, जिस घेरे में भीतर की ध्वनि टकराकर वापस लौट सके और सुनी जा सके। वह बिना दीवाल का मकान है। उसमें से आवाज गूंजती है और अनंत शून्य में, आकाश में खो जाती है। ब्रह्मचर्य एक वैज्ञानिक प्रयोग है, जिसके माध्यम से शरीर की पर्त के साथ-साथ शक्ति की पर्त इकट्ठी होती चली जाती है। इस शक्ति की पर्त में पहली बार ओंकार की ध्वनि गूंजती है। और जब इस गूंज को हम सुन लेते हैं, तो हमें एक बात तो पक्की हो जाती है कि जिसकी यह गूंज है, वह भीतर छिपा है। फिर इस गूंज का ही रास्ता पकड़कर हम उस मूल तक पहुंच सकते हैं।
इसलिए हम इस देश में बच्चों को पहले ब्रह्मचर्य के लिए गुरुकुल भेज देते थे, ताकि वे भीतर की ध्वनि से थोड़े परिचित हो जाएं। एक बार व्यक्ति ब्रह्मचर्य से छूट जाए बिना भीतर की ध्वनि का अनुभव किए, तो फिर बहुत कठिन हो जाता है, अति कठिन हो जाता है उस ध्वनि को पकड़ना। आपके मकान में दीवालों में छेद हो जाते हैं। चीजें जैसे विकृत हो जाती हैं, फिर उनको सुधारना अति कठिन होता चला जाता है।
और एक घड़ी है, ठीक जिस समय चौदह या तेरह वर्ष की उम्र में युवक और युवतियां कामवासना से प्रौढ़ होते हैं, वह क्षण शक्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्षण है। उस समय उनके शरीर के आसपास वह सारी ऊर्जा इकट्ठी है। वह ऊर्जा असाधारण है। क्योंकि उसी ऊर्जा से जन्म होगा। वह ऊर्जा जन्मदात्री है। उस ऊर्जा से बच्चे पैदा होंगे। वह ऊर्जा परमात्मा की है, तभी तो उससे बच्चे पैदा हो पाते हैं। वह सृष्टि की मूल शक्ति है।
और एक-एक व्यक्ति कितनी शक्ति लेकर पैदा होता है, आपको कल्पना नहीं।
एक संभोग में जितना वीर्य नष्ट होता है, उससे दस करोड़ बच्चे पैदा हो सकते

हैं। वैज्ञानिक हिसाब से दस करोड़ जीवकोष्ठ एक संभोग में स्खलित होते हैं। और एक जीवकोष्ठ एक बच्चे को जन्म दे सकता है। अगर एक व्यक्ति के सारे जीवकोष्ठों का उपयोग हो, तो इस पृथ्वी को हम एक ही व्यक्ति के बच्चों से भर सकते हैं। एक व्यक्ति सामान्य रूप से संभोग करे तो जीवन में चार हजार संभोग कर सकता है। और एक-एक संभोग में एक-एक करोड़ बच्चे पैदा कर सकता है। चार अरब बच्चे एक आदमी की संपदा है। इतनी जीवन-ऊर्जा एक-एक आदमी लेकर पैदा होता है।
यह जीवन-ऊर्जा असाधारण है। एक छोटे-से वीर्य के कण में छिपी हुई ऊर्जा एटम में छिपी ऊर्जा से कुछ कम शक्तिशाली नहीं है, ज्यादा ही शक्तिशाली है। हमें कल तक पता नहीं था, उन्नीस सौ पैंतालीस तक पता नहीं था कि एक छोटे-से अणु में, जो दिखाई नहीं पड़ता आंख से, उसमें इतनी ऊर्जा हो सकती है कि पूरा हिरोशिमा, कोई एक लाख लोग एक क्षण में राख हो गए। एक एटम से एक क्षण में एक लाख लोग नष्ट होते हैं, वह हमें पहली दफा पता चला। इस पूरी पृथ्वी को थोड़े- से ही एटम नष्ट कर देंगे। लेकिन एटम से भी बड़ी ऊर्जा जीवकोष्ठ की है। क्योंकि एक ही क्षण में एक व्यक्ति, एक करोड़ व्यक्तियों को पैदा करने की क्षमता को संभोग में खोता है।
और आज नहीं कल, विज्ञान जब जीवकोष्ठ की भी शक्ति को पकड़ लेगा, तो परमाणु बम की शक्ति बहुत छोटी हो जाएगी। जिस दिन भी हम जीवकोष्ठ की शक्ति को पकड़ लेंगे, उस दिन हमने परमात्मा की शक्ति को पकड़ लिया। हमने मौलिक तत्व पकड़ लिया, जिससे सारे जीवन का विस्तार है।
चौदह वर्ष की उम्र में, जब कि पहला स्खलन होगा व्यक्ति का वीर्य का, उस स्खलन के पहले अगर उसे ओंकार की ध्वनि सुनाई पड़ जाए, उसका जीवन दूसरा ही हो जाएगा। उस स्खलन के बाद, हर स्खलन के बाद इस ओंकार को सुनना कठिन होता जाएगा। दीवारों में छेद होने लगे। प्रतिध्वनि वापस नहीं आएगी, बिखर जाएगी, खुले आकाश में लीन हो जाएगी।
जिन्होंने बच्चों को पहला पाठ ब्रह्मचर्य का देना चाहा था, उनके प्रयोजन बड़े गहन थे। और ध्यान रहे, यह पाठ उस दिन शुरू हो जाने चाहिए, जब बच्चों के मन में कोई कामवासना ही पैदा नहीं हुई। एक बार कामवासना पैदा हो गई, फिर ब्रह्मचर्य की शिक्षा का कोई भी अर्थ नहीं। बल्कि वह खतरनाक है, घातक है। क्योंकि उससे मन सिर्फ विकृत होगा, रुग्ण होगा, दमन से भरेगा; कुछ परिणाम नहीं होगा।
छोटे बच्चे, जब उन्हें कामवासना की कोई झलक ही नहीं है, और जब उनके शरीर तैयार हो रहे हैं, और वासना के पहले कृत्य के लिए जब उनकी ऊर्जा इकट्ठी हो रही है, उस क्षण में ही, उस क्षण के पूर्व ही अगर ओम की ध्वनि से संबंध जुड़ जाए, जो कि बहुत आसान है... । छोटे बच्चों को ओंकार की तरफ ले जाना बिल्कुल सरल बात है; बूढ़ों को ले जाना बहुत कठिन बात है।
यह जो यम ने कहा कि साधक उसके लिए ही ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं; उसके लिए ही तप करते हैं। वही संपूर्ण वेदों का सार है। वह एक छोटा शब्द, उसने कहा, वह मैं तुम्हें संक्षिप्त में बतलाता हूं। वह है ओम--ऐसा यह एक अक्षर।
यह अक्षर ही तो ब्रह्म है, और यह अक्षर ही परब्रह्म है। इसलिए इसी अक्षर को जानकर, जो जिसको चाहता है, उसको वही मिल जाता है।
यह सूत्र बड़ा खतरनाक है। और इसलिए इस सूत्र की प्राथमिक साधना में इच्छाओं से मुक्त हो जाना जरूरी है।
ओंकार की ध्वनि आपको सुनाई पड़ जाए, फिर आप जो भी इच्छा करेंगे, वह करते
ही पूरी होने लगेगी। इसलिए आप जैसे अभी हैं, ठीक वैसे ही अगर ओंकार की ध्वनि आपको मिल जाए, तो अपनी आत्महत्या में आप लग जाएंगे।
आपकी हालत वैसी हो जाएगी जैसा मैंने सुना है कि एक यात्री भूला-भटका हुआ स्वर्ग में पहुंच गया। वह कल्पवृक्ष के नीचे थका हुआ विश्राम करने लगा। उसे कुछ पता नहीं कि यह स्वर्ग है। उसे कुछ पता नहीं कि यह कल्पवृक्ष है। वह तो सिर्फ छाया... आंख खुली, थका-मांदा, भूख लगी, उसे ख्याल आया कि अगर इस समय कहीं भोजन मिल जाए। इतना ख्याल का आना था कि--वह कल्पवृक्ष के नीचे था, कि एकदम चकित हुआ--आकाश में से तैरती हुई थालियां, स्वादिष्ट भोजनों को लिए हुए, उसके सामने उपस्थित हो गईं। वह थोड़ा डरा भी। लेकिन भूख इतनी

ज्यादा थी कि उसने भोजन कर लिया। भोजन कर भी नहीं पाया था कि उसे लगा कि यह जगह कुछ खतरनाक मालूम होती है। कोई भूत-प्रेत तो नहीं! देखा कि चारों तरफ भूत-प्रेत खड़े हो गए। उसने कहा कि मरे! कि सब भूत-प्रेत उसकी छाती पर चढ़ गए। उसकी गर्दन दबाने लगे। तो उसने सोचा कि अब यह छोड़ने वाले नहीं, अब तो मार ही डालेंगे। कि उन्होंने उसे मार ही डाला।
वह कल्पवृक्ष था। उसके नीचे जो भी कामना होगी, वह तत्क्षण पूरी हो जाएगी। आप जैसे हैं, कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच जाएं, तो यही होगा। ऐसा मत समझना कि मैंने कहानी कह दी तो आप कुछ और करेंगे। आप यही करेंगे। इससे कोई भेद नहीं पड़ेगा। आपकी इच्छाएं, वासनाएं आपके बस में तो नहीं हैं। उठती हैं, तो आप कुछ कर नहीं सकते। विक्षिप्त है भीतर मन।
यम कह रहा है कि यह अक्षर ही तो ब्रह्म है। यह अक्षर ही परब्रह्म है। इसलिए इसी अक्षर को जानकर, जो जिसको चाहता है, उसको वही मिल जाता है।
इस अक्षर को जानते ही, इस ओंकार की ध्वनि के साथ एक होते ही, जो भी वासना है, वह तत्क्षण पूरी हो जाती है। इसलिए शर्त है कि वासनाएं छोड़कर ही ओंकार की साधना करनी है। नहीं तो आप क्षुद्र से भर जाएंगे और विराट की ऊर्जा क्षुद्र में खो जाएगी। जो मिला था, उसे आप नष्ट कर देंगे। हीरा मिला था, आप कंकड़ खरीद लेंगे, हीरा दे देंगे।
इसीलिए इतनी ज्यादा यम ने परीक्षा ली है, कि कोई वासना तो नहीं है नचिकेता में? और जब पाया कि कोई वासना नहीं है, वैराग्य का भाव पूरा है, तब वह बताने को राजी हुआ है। लेकिन जो व्यक्ति निर्वासना से भरकर ओंकार की साधना में डूब जाता है, उसकी एक ही प्यास शेष रहती है--परमात्मा से मिल जाने की, परम सत्य से एक हो जाने की, लीन हो जाने की महासागर में, बूंद की भांति खो जाने की। बस, वह इच्छा पूरी हो जाती है। ओंकार की ध्वनि की स्फुरणा के साथ ही जो भी प्यास शेष रहती है, वह तत्क्षण पूरी हो जाती है। ओंकार वैसा ही सूत्र है, जैसा कि एटामिक फिजिक्स का सूत्र है, कि हाथ में पड़ते ही विनाश का महामंत्र मिल गया। आइंस्टीन ने कहा है मरने के कुछ दिन पहले कि अगर मुझे दुबारा जन्म मिले, तो मैं किसी गांव में प्लंबर होना पसंद करूंगा, लेकिन अब दुबारा आइंस्टीन होने की इच्छा नहीं है। क्योंकि मुझे पता नहीं था कि मेरे हाथ से विनाश की शक्ति का सूत्र निकल रहा है।
यह ओम सृजन की शक्ति का सूत्र है। यह महासृजन की शक्ति का सूत्र है। इससे हम जीवन के मूल केंद्र पर पहुंच जाते हैं, जहां से सारी सृष्टि विकसित हुई है; उस गंगोत्री पर, जहां से जीवन की सारी गंगा बहती है। लेकिन उसके पहले सारी वासनाएं जड़मूल से खो जानीं चाहिए।
इसलिए मेरा इतना आग्रह है कैथार्सिस का, कि आपका सब तरह से रेचन हो जाना चाहिए। अगर जरा भी कुछ रोग आपके भीतर पड़े रह गए, और ध्यान आपका सधने लगा, तो वे रोग आपको बहुत बुरी तरह सताएंगे। उनका हट जाना जरूरी है। क्योंकि ध्यान महाशक्ति है, अगर रोग मौजूद रहे, तो वह महाशक्ति रोगों को मिल जाएगी। वे रोग हट जाने चाहिए।
लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, इस उछलने-कूदने से क्या होगा? चिल्लाने-रोने से क्या होगा? उन्हें पता नहीं है कि क्या हो सकता है। जब कोई घर में मर जाए और रोना आता हो, आप मत रोएं, रोक लें रोने को, तब आपको पता चलेगा कि क्या हो सकता है। न रोने से क्या हो सकता है! सारे प्राण सिकुड़ जाएंगे। भीतर दुख ही दुख भर जाएगा। आप एक घाव हो जाएंगे, जो रिसने लगेगा। और जब तक आप रो न लेंगे भरपूर, तब तक इस घाव से छुटकारा न होगा। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जो कि बड़ा उलटा मालूम पड़ता है... । आमतौर से जैसा हम समझते हैं, स्त्रियां ज्यादा पागल होनी चाहिए बजाय पुरुषों के। लेकिन बड़ी अजीब बात है, स्त्रियां कम पागल होती हैं, पुरुष ज्यादा पागल होते हैं। होना उलटा चाहिए। क्योंकि स्त्रियां काफी पागल मालूम पड़ती हैं। लेकिन पागल होती नहीं। राज साफ है। पागलपन रोज निकाल लेती हैं, इकट्ठा कभी हो नहीं पाता। पुरुष बड़ा सम्हलकर चलता है। कोई कुछ कह न दे कि क्या नासमझी की बात कर रहे हो! स्त्री दिल खोलकर रो लेती है, कोई भी कुछ नहीं कहेगा। कहेगा, स्त्री है। आप रो रहे हैं, तो कहेगा, क्या मर्द होकर रो रहे हो? आंसू रुक जाएंगे। यह मर्दपन पागलपन में ले जाएगा। अगर ज्यादा मर्दानगी की, तो आप पागलखाने में दिखाई पड़ेंगे।

क्यों प्रकृति ने आपकी आंखों में भी उतने ही आंसू की क्षमता दी है जितनी स्त्री की आंखों में? प्रकृति ने भेद नहीं किया। उतनी ही ग्लैंड्स आपकी आंखों में हैं जितनी स्त्री की। अगर प्रकृति को भेद करना होता स्त्री और पुरुष का, तो पुरुष की आंखों में ग्लैंड्स कम होतीं आंसू की, पर वे उतनी ही हैं।
और ध्यान रहे, जो रोने को रोक लेगा, उसका हंसना भी रुक जाएगा। यह जरा जटिल है। क्योंकि जो ठीक से रो नहीं सकता, वह ठीक से हंस भी नहीं सकता। वह हंसने से भी डरेगा। असल में वह सभी चीजों को नियंत्रित करने लगेगा। क्योंकि भयभीत है कि कुछ छूट न जाए; कहीं कुछ बंधन न टूट जाए; चीजें बाहर न निकल पड़ें।
पुरुष ज्यादा पागल होते हैं। पुरुष ज्यादा आत्महत्या करते हैं। स्त्रियां कम पागल होती हैं, कम आत्महत्या करती हैं। बातें बहुत करती हैं कि आत्महत्या कर लेंगे; करती कम हैं! वह बातों में ही निकल जाता है मामला! इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जो बहुत कहता है आत्महत्या करेंगे, उससे निश्चिंत रहना। जो कभी न कहता हो, वह खतरनाक है। वह कभी न कभी कर सकता है। उसने कभी कहा नहीं, निकल नहीं पाया। सब इकट्ठा होता चला गया है।
जो आदमी रोज क्रोध करता है छोटी-छोटी बातों में, उससे डरने की कोई जरूरत नहीं। वह उपद्रव कोई नहीं कर सकता। वह किसी की हत्या नहीं कर सकता। हत्या के लिए महाक्रोध इकट्ठा होना चाहिए। उसमें कभी इकट्ठा ही नहीं होगा। इसलिए छोटी-छोटी बातों में क्रोध करने वाले लोग अक्सर प्यारे और भले होते हैं। साधु, सज्जन, जो क्रोध नहीं करेंगे, पी जाएंगे, ये खतरनाक हैं। इनसे जरा दूर रहना, ये दुष्ट हैं। ये किसी भी दिन, जब भी करेंगे, तो गर्दन से कम नहीं! इससे कम में इनका काम ही नहीं चलेगा। इन्होंने इतना इकट्ठा कर लिया है।
आप कहते हैं, क्या होगा नाचने-कूदने से, रोने-चिल्लाने से? और आपने जिंदगीभर यह सब इकट्ठा कर रखा है। वही तो आपका रोग है, उसकी वजह से तो आप सरल नहीं हो पाते।
बच्चे क्यों सरल हैं? उनकी सरलता का कुल एक ही कारण है कि अगर क्रोध है, तो बच्चा उछल-कूद पूरी कर लेता है, हाथ-पैर पटक लेता है। बच्चे को क्रोध में देखें, तब जैसे सारी दुनिया की शक्ति उसमें आ जाती है। चेहरा लाल हो जाता है, आंखें जलने लगती हैं, हाथ-पैर पटकने लगता है। है छोटा-सा, लेकिन जैसे विराट उसमें प्रकट होने लगता है। फिर क्रोध बह गया, और एक क्षण बाद वह हंस रहा है। और उसके हंसने में क्रोध का जरा-सा भी विकार नहीं है। उसकी हंसी में क्रोध का जरा-सा भी दाग नहीं है। उसकी हंसी फिर फूल की तरह है। हमें बड़ी हैरानी होती है कि अभी यह इतने क्रोध से भरा था, अब इतना खुश नजर आ रहा है!
असल में क्रोध बह गया, कुछ बचा नहीं, जो खुशी को बिगाड़ सके, जो खुशी में जहर बन सके। क्रोध बह गया, बच्चा हंस रहा है। फिर क्रोध आएगा, फिर क्रोध कर लेगा, फिर हंस लेगा, खुश होगा, दुखी होगा। लेकिन जो भी होगा वह क्षण में हो जाएगा, इकट्ठा कुछ भी न होगा। जिस दिन बच्चा इकट्ठा करने लगा, उसी दिन बचपन मर गया। अब बच्चे ने बूढ़ा होना शुरू कर दिया। और हम सब कितना इकट्ठा कर लिए हैं! उसकी वजह से हम जटिल हैं, सरल नहीं हैं।
और जो सरल नहीं है, सहज नहीं है, उसका इस भीतर के ओंकार से कोई संबंध नहीं हो सकता। इसलिए इतना जोर है कैथार्सिस पर, रेचन पर, कि फेंक दें सब जन्मभर का इकट्ठा हुआ कचरा। उसे सम्हालकर मत चलें।
लेकिन डर है कि कोई देख न ले, कि आप जो कभी नहीं रोए, रो रहे हैं! आपकी प्रतिमा है एक, एक इमेज है, कि आप इस तरह पागलों की तरह खिलखिलाकर हंस रहे हैं? आपसे ऐसी आशा नहीं थी, कि आप ऐसा नाचेंगे, कूदेंगे, कभी सोचा भी नहीं था!
दूसरे के भय से अगर आप रोक लेंगे, तो मैं कुछ भी नहीं कर सकता हूं। दूसरे के भय से अगर आप जी रहे हैं, दूसरा अगर आपको नियोजित कर रहा है, इतना भी साहस नहीं है, तो धर्म आपकी यात्रा नहीं हो सकती। वह निर्भीक, साहसी लोगों का काम है।

एक मित्र आए हैं। वे मुझसे आकर बोले कि और तो सब ठीक है, लेकिन पत्नी
भी साथ आई है। मैं नाचूं-कूदूं कुछ, तो वह घर जाकर... ।
तो उनकी एक प्रतिमा है पत्नी के सामने, वह मिट जाएगी। पत्नी उनसे डरी हुई है। वह भी मुझसे अलग आकर कह गई कि पति साथ आए हुए हैं! एक-दूसरे से डरे हुए लोग हैं।
ध्यान रहे, जिनसे आप डर रहे हैं, वे भी आपसे डर रहे हैं। इतनी कृपा करें, उनसे मत डरें, तो वे भी आपसे नहीं डरेंगे। इनमें से, पति-पत्नी में से एक भी उछलने-कूदने लगे, तो दूसरा स्वतंत्र हो जाएगा कि बात खतम हो गई। अब क्या अपनी प्रतिमा बचानी, जब दूसरे ने नहीं बचाई!
इस प्रतिमा को बचाने के मोह में हम दमित, सप्रेस्ड बने रहते हैं। वह दमित व्यक्तित्व मूल स्वरों को नहीं पकड़ सकता। वह उतना गहरा नहीं जा सकता। गहराई में जाने के लिए सरलता चाहिए, निर्दोष सरलता चाहिए, बच्चे जैसी सरलता चाहिए।
आप इन दिनों में यहां बिल्कुल छोटे बच्चे जैसे हो जाएं। इस संबंध में
एक सूत्र और आपको जोड़ देना है, जो कल सुबह से आप प्रयोग करें। एक सूत्र मैंने दिया, एक विधि रात को करने की, सोने के पहले दस मिनट जोर से श्वास को छोड़ें और ओऽऽऽ... की आवाज करते हुए छोड़ें। और फिर सो जाएं। उसी ओ की आवाज करते-करते लीन हो जाएं, सो जाएं।
सुबह जैसे ही आपको पता चले कि नींद खुल गई है, आंख मत खोलें। जैसे ही अनुभव में आ जाए कि नींद खुल गई, पहला काम करें--जैसा कि बिल्लियां या कुत्ते पूरे शरीर को खींचते हैं, तानते हैं--वैसा पूरे शरीर के अंगों को खींचें, तानें, शिथिल करें, ताकि पूरे शरीर में शक्ति का प्रवाह हो जाए। सारे अंगों को खींचें और ढीला छोड़ दें, खींचें और ढीला छोड़ दें। पैरों को, हाथों को, गर्दन को, पूरे शरीर को अकड़ाएं और सब तरह से, जैसा कि पशु करते हैं, ताकि शरीर की शक्ति पूरी तरह प्रवाहित हो जाए। ढाई मिनट, दो-ढाई मिनट, अभी भी आंख न खोलें और जब दो-ढाई मिनट ऐसा करने के बाद आप पाएं कि स्फूर्ति आ गई, सारा शरीर जग गया, रोआं-रोआं जग गया, तब ढाई मिनट तक खिलखिलाकर पागल की तरह हंसें। आंख बंद ही रखें। उसके बाद ही बिस्तर छोड़ें, ताकि शुभ-मुहूर्त--सुबह ही रेचन शुरू हो जाए। और जब आप ध्यान करने यहां आएं तो पहले ही तैयारी हो चुकी हो।
और डरें मत कि बगल के कमरे का व्यक्ति क्या सोचेगा? उसकी भी सहायता करें, आपका करना सुनकर उसकी भी हिम्मत बढ़ेगी। वह आपसे डरा हुआ है। इस प्रयोग को सुबह के लिए जोड़ दें।
यही अत्युत्तम आलंबन है, यही सबका अंतिम आश्रय है। इस आलंबन को भलीभांति जानकर साधक ब्रह्मलोक में महिमा को उपलब्ध होता है।
नित्य ज्ञानस्वरूप आत्मा न तो जन्मता है और न मरता ही है। यह न तो स्वयं किसी से हुआ है, न इससे भी कोई हुआ है। अर्थात यह न तो किसी का कार्य है और न कारण है। यह अजन्मा, नित्य, सदा एकरस रहने वाला और पुरातन है, अर्थात क्षय और वृद्धि से रहित है। शरीर के नाश किए जाने पर भी इसका नाश नहीं किया जा सकता है।
यदि कोई मारने वाला व्यक्ति अपने को मारने में समर्थ मानता है और यदि कोई मारा जाने वाला व्यक्ति अपने को मारा गया समझता है, तो वे दोनों ही आत्मस्वरूप को नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो किसी को मारता है और न किसी के द्वारा मारा जा सकता है।
ओम की ध्वनि के माध्यम, सहारे से जैसे ही कोई व्यक्ति स्वयं के स्वरूप
की झलक पाता है, वैसे ही मृत्यु असत्य हो जाती है। और तब वह देखता है कि भीतर जो है उसे मिटाने का कोई भी उपाय नहीं, वह नहीं मिट सकता। क्योंकि वह कभी जन्मा नहीं है। जो जन्मता है, वह मरेगा। आप नहीं जन्मे हैं माता-पिता से, केवल आपकी देह जन्मी है। देह निर्मित हुई है, आप प्रविष्ट हुए हैं उस देह में।
वैज्ञानिक सोचते हैं कि आज नहीं कल वे टेस्ट-ट्यूब में मनुष्य की देह
का निर्माण कर लेंगे। और इसमें कुछ अड़चन ज्यादा नहीं मालूम होती। यह हो जाएगा। लेकिन वैज्ञानिक सोचते हैं कि जिस दिन वे मनुष्य को निर्माण कर लेंगे प्रयोगशाला में, और मां और पिता के गर्भ की और वीर्य की कोई भी जरूरत

न रहेगी, जिस दिन बच्चा पूरा यंत्रों के बीच यांत्रिक गर्भ में पैदा और बड़ा होगा, उनकी धारणा है, उस दिन उन्होंने सिद्ध कर दिया होगा कि कोई आत्मा नहीं है। वे गलती में हैं। उससे कुछ भी सिद्ध न होगा--आत्मा का न होना। उससे सिर्फ इतना ही सिद्ध होगा कि अब तक प्राकृतिक ढंग से शरीर निर्मित होता था और आत्मा उसमें प्रविष्ट होती थी। अब शरीर वैज्ञानिक ढंग से निर्मित होने लगा और आत्मा उसमें प्रविष्ट होने लगी। आत्मा सिर्फ प्रवेश करती है, आत्मा पैदा नहीं होती।
इसलिए वैज्ञानिक अगर प्रयोगशाला में भी मनुष्य को पैदा कर लें, तो भी आत्मा को पैदा नहीं कर रहे हैं। वे इस भ्रम में न पड़ें। उन्होंने केवल प्राकृतिक शरीर की जगह कृत्रिम शरीर निर्मित कर दिया। और जिस दिन शरीर इस योग्य होगा--कृत्रिम शरीर--कि आत्मा उसमें प्रवेश कर सके, आत्मा प्रवेश कर जाएगी। आत्मा अजन्मी है और उसकी कोई मृत्यु भी नहीं है। शरीर ही बनता है और शरीर ही मिटता है।
लेकिन यह बात कुछ मान लेने की नहीं है। और यह बात कुछ सिद्धांत की तरह पकड़ लेने की नहीं है। यह तो तभी समझ में आएगी, जब इसका भीतर अनुभव हो जाएगा। इसलिए मैं नहीं कहता कि आप मान लें कि आत्मा अमर है। मैं तो कहता हूं, जानने में लगें।
एक महिला ने मुझे आज आकर कहा कि वह नास्तिक है। बुरा नहीं है, अच्छा है। सभी को नास्तिक होना ही चाहिए। नास्तिक का इतना ही मतलब है कि जिसका हमें पता नहीं, उसे हम कैसे मानें? नास्तिकता वस्तुतः इनकार नहीं है। नास्तिकता का मतलब यह नहीं है कि आत्मा नहीं है। अगर कोई नास्तिक ऐसा कहे कि आत्मा नहीं है, तब तो वह नास्तिकता के बाहर जा रहा है। वह एक ऐसी बात की घोषणा कर रहा है जिसका उसने कोई अनुभव नहीं किया। वह घोषणा भ्रांत है। वह घोषणा निराधार है। क्योंकि अब तक कोई भी सिद्ध नहीं कर पाया है अनुभव से कि आत्मा नहीं है।
अनुभव से तो जिन्होंने भी जाना उन सबने कहा कि आत्मा है। अनुभवी तो कहता है, है। हां, आपको जब तक अनुभव न हो, तब तक आप कह सकते हैं कि मुझे पता नहीं है। बस इतना ही। अगर आप जोर देकर कहने लगें कि नहीं है, तो आप नास्तिक नहीं हैं, आप तर्कयुक्त नहीं हैं। आप बुद्धिमानी की बात नहीं कर रहे हैं। आप अंधे हैं, श्रद्धालु हैं। आपकी श्रद्धा आत्मा के न होने में है, लेकिन अनुभव यह आपका नहीं है। नास्तिक होना बुरा नहीं, लेकिन नास्तिक पर रुक जाना बुरा है।
एक और मित्र दो दिन पहले मुझे मिले। और उन्होंने कहा कि मैं तो नास्तिक हूं और मुझे कोई बात समझ में नहीं आती आस्तिकता की। तो मैंने उनसे कहा कि समझने की जरूरत भी क्या है? परेशान क्यों हैं? मत समझें। छोड़ें। लेकिन जाहिर है कि नास्तिकता में तृप्ति नहीं है। इसलिए समझने की कोशिश है। नहीं तो मेरे शिविर में आने का क्या प्रयोजन है?
और मैंने कहा कि अगर नास्तिकता से आनंद उपलब्ध हो रहा हो, तो मैं खुद
भी नास्तिक बनने को तैयार हूं। वे बोले कि आनंद तो बिल्कुल उपलब्ध नहीं हो रहा है। तो फिर मैंने कहा कि मुझे कहीं आनंद उपलब्ध हो रहा है, मैं कहता हूं, इस रास्ते पर थोड़ा चलकर देखो। अगर तुम्हें आनंद उपलब्ध हो रहा हो, भरोसे से तुम कहते हो, तो मैं तुम्हारे रास्ते पर चलने को राजी हूं। या मैं तुम्हें भरोसे से कहता हूं कि मुझे आनंद उपलब्ध हुआ है, चलकर देख लो। नास्तिकता नपुंसकता है, क्योंकि उससे कुछ मिलता तो है नहीं। वह सिर्फ निषेध है। वह कहती है, यह नहीं है, यह नहीं है, यह नहीं है। लेकिन उपलब्धि क्या है? उससे मिलेगा क्या? नकार से पैदा क्या हो सकता है?
नास्तिकता ऐसे है जैसे एक आदमी खेत में कंकड़ बो दे और मैं उससे कहूं
कि बीज देता हूं, बीज बो दे, और वह कहे कि बीज में हमारा भरोसा नहीं, हम तो कंकड़ में भरोसा करते हैं। तो मैं उससे यही पूछूंगा कि फसल कहां है? अगर तेरा भरोसा कंकड़ों में है, तो फसल दिखा। क्योंकि फल ही प्रमाण है। अंकुर कहां हुए हैं? फल कहां लगे हैं? फूल कहां आए हैं? कंकड़ बोने तक ही काम होता तब तो ठीक था, फसल भी कभी काटी है? अब तक किसी नास्तिक ने कोई फसल नहीं काटी है। तो अगर कंकड़ बोना ही केवल सुख हो, तो बोए चले जाओ।

लेकिन आदमी बोता इसलिए है कि काट सके। आदमी बीज इसलिए डाल सकता है कि वृक्ष हो, कि फूल लगें; कि फल लगें, कि कोई तृप्ति हो, कि कोई उपलब्धि हो; कि कहीं कोई जीवन का रूपांतरण हो। निषेध से कोई रूपांतरण तो नहीं होता। सिर्फ कह देने से कि मोक्ष नहीं है, कुछ हल नहीं होता। इससे आप मुक्त नहीं होते। इससे आप बदलते भी नहीं। इससे आप कहीं जाते भी नहीं। कोई मंजिल उपलब्ध नहीं होती।
लेकिन मैं नहीं कहता कि आप बिना जाने मान लें। मैं कहता हूं कि बिना जाने न तो मानें, और न न-मानने का जोर करें। बिना जाने इतना ही समझें कि मुझे पता नहीं, और खोज के लिए तैयार हों।
आत्मा अमर है, ऐसा सिद्धांत कुछ काम का नहीं है। लेकिन आत्मा अमर है, ऐसी प्रतीति अनूठी है। और वह आपके भीतर छिपा है तत्व। जो आप नहीं थे इस शरीर की भांति, तब भी था; और जब यह शरीर आपके प्रियजन-परिजन मरघट में जला देंगे, तब भी होगा। लेकिन उसे पाने के लिए थोड़ा पीछे सरकना होगा। थोड़ा शरीर से हटना होगा, मन से हटना होगा। और थोड़ा अपने भीतर उस केंद्र को खोजना होगा, जिसके आगे कुछ भी नहीं है।
इस केंद्र की खोज ओंकार से, ओम से हो सकती है। ओम इसकी कुंजी है।
इस जीवात्मा के हृदयरूप गुहा में रहने वाला परमात्मा सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म और महान से महान है। परमात्मा की इस महिमा को कामनारहित, चिंतारहित कोई बिरला साधक सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।
यह आखिरी बात थोड़ी ख्याल में ले लेनी चाहिए। यह बड़ी जटिल है और बड़ी विवादग्रस्त है। और इस पर हजारों साल तक चर्चा हुई है। और दो बड़े मत हैं, जो एक-दूसरे के विरोधी हैं।
एक मत कहता है कि अपने ही संकल्प और अपने ही प्रयत्न से परमात्मा या सत्य मिलता है। जो परमतत्व है, वह अपने ही प्रयास से और प्रयत्न और साधना और तप से उपलब्ध होता है। वह किसी की कृपा से नहीं मिल सकता। कृपा का कोई सवाल भी नहीं है--इस मत का कहना है। और अगर वह किसी की कृपा से मिलता है, तो यह जगत फिर बिल्कुल ही एक बेबूझ पहेली है; यह बेहूदी घटना है। क्योंकि तब तो यह भी हो सकता है कि जो श्रम करे उसे न मिले, और जो श्रम न करे उसे मिल जाए।
इसलिए महावीर, बुद्ध और उस परंपरा के सारे सिद्धपुरुष कहते हैं कि किसी की कृपा का कोई सवाल नहीं है, अपना ही प्रयत्न पर्याप्त है। कृपा की बात ही थोड़ी गड़बड़ है। उसमें थोड़ी रिश्वत की बू है। एक आदमी ऐसा हाथ-पैर जोड़कर मंदिर में, और नाक रगड़कर और सिर पटककर, और कि तुम पतित-पावन हो और मैं पापी हूं, ऐसा कहकर राजी कर ले परमात्मा को। और एक आदमी जीवनभर श्रम करता रहे, तप करे, ध्यान करे, और परमात्मा का नाम भी न ले, तो उस पर कृपा कैसे होगी?
तो महावीर ने तो कहा कि परमात्मा है ही नहीं। क्योंकि वह हो तो यह कृपा का उपद्रव साथ लगा रहे! व्यक्ति का श्रम पर्याप्त है। उसका श्रम जिस दिन पूरा हो जाएगा, उस दिन सत्य उपलब्ध होगा। इस बात में थोड़ी सचाई है। और इस बात में अर्थ है।
इससे विपरीत एक विचारधारा है, जो कहती है, आदमी के हाथ में क्या है? आदमी कमजोर है, असहाय है, अज्ञानी है। और इस अज्ञान से भरा हुआ आदमी जो श्रम भी करेगा, वह श्रम भी तो अज्ञान में ही होगा। इस अज्ञान से भरा हुआ आदमी, कमजोर, दीन-हीन आदमी, जो प्रयत्न भी करेगा वह प्रयत्न भी विराट को पाने वाला कैसे हो सकता है? ये हाथ इतने छोटे हैं आदमी के, कि उस विराट को अपनी मुट्ठी में ले कैसे पाएंगे? सत्य इतना बेबूझ है, इतना दुर्गम है, और आदमी इतना कमजोर और इतने अंधेरे में है कि प्रभु-कृपा के बिना यह यात्रा हो नहीं सकती। उस विराट की कृपा होगी, तो ही इन पैरों में शक्ति आएगी।
और फिर इस दूसरी धारा का यह भी कहना है कि प्रयत्न और संकल्प और श्रम,
सब अहंकार को मजबूत करेंगे, कि मैं कुछ हूं, कि मैं ही पा लूंगा। और अहंकार तो बड़ी बाधा है। इसलिए इस अहंकार को जगह मत दो। उसकी कृपा, उसका प्रसाद, उसकी ग्रेस, उसकी अनुकंपा से होगा, ताकि अहंकार को कोई जगह न रहे। इस दूसरी बात में भी बड़ा सच है।

ये दोनों बातों में सच है और दोनों बातों में खतरा भी है। पहली बात का खतरा है अहंकार। और दूसरी बात का खतरा है प्रमाद, आलस्य।
पहली बात का खतरा है कि आदमी अहंकार से भर जाए। इसलिए जैन-साधु जितना अहंकारी होता है उतना किसी समाज का साधु नहीं होता। होगा ही। जैन-साधु किसी को नमस्कार भी नहीं करेगा। जब परमात्मा नहीं है, जिसको नमस्कार करें, तो फिर किसको नमस्कार करें! जैन-साधु सिर्फ आशीर्वाद दे सकता है, नमस्कार नहीं कर सकता। झुकने की बात ही में गड़बड़ हो जाती है।
तो जैन-साधु जितना सघन अहंकार लेकर चलता है, उतना कोई साधु लेकर नहीं चलता। कारण है, क्योंकि अपने ही प्रयत्न का भरोसा है। कोई कृपा नहीं है, कोई प्रसाद नहीं है। कोई परमात्मा नहीं है जिसका सहारा चाहिए हो। अपना ही सहारा है। स्वभावतः अहंकार सघन होता है। यह खतरा है।
वे जो कृपा को मानकर चलते हैं, वे कुछ करते ही नहीं। वे कहते हैं, जब उसकी कृपा होगी। वे हाथ-पैर भी नहीं हिलाते। वे कहते हैं, जब उसकी कृपा होगी। ये प्रभु-कृपा वाले लोग गहन आलस्य को उपलब्ध हो जाते हैं। उनमें विनम्रता होती है, लेकिन आलस्य हो जाता है।
जैन-साधुओं में या इस तरह की धारा में चलने वाले साधु में बड़ी तत्परता होती है श्रम की, लेकिन अहंकार होता है। प्रसाद को मानने वाले व्यक्ति में विनम्रता होती है। भक्त जैसा विनम्र होता है, वैसा तपस्वी कभी भी नहीं हो सकता। लेकिन आलस्य पकड़ लेता है। वह कहता है, जब उसको करना होगा, करेगा। मैं कौन हूं? और मेरे करने से क्या होने वाला है? ये खतरे हैं।
मैं आपसे कहता हूं, इन दोनों ही बातों को ठीक से समझकर अगर आप पूरा कर सकें--कि प्रयत्न आपको करना होगा, फिर भी उपलब्धि उसके प्रसाद से होगी--तो आपके जीवन में बड़ी क्रांति आ जाएगी। प्रयास आपको करना होगा, क्योंकि प्रयास ही आपको इस योग्य बनाएगा कि उसका प्रसाद आपको मिल सके। लेकिन अंतिम क्षण में प्रसाद से ही घटना घटती है।
इसका यह मतलब नहीं है कि अगर कोई परमात्मा का स्मरण न करे, तो घटना नहीं घटेगी। स्मरण से थोड़े ही प्रसाद मिलता है! परमात्मा को बिल्कुल ही छोड़ दें और सिर्फ प्रयत्न करते चले जाएं, तो भी एक घड़ी आएगी जब प्रसाद मिल जाएगा। कोई परमात्मा इसलिए थोड़े ही प्रसाद देता है... । वहां कोई देने वाला थोड़े ही बैठा है कि देख-देखकर देगा कि किसने मेरा नाम लिया है?
यह तो जीवन की एक आंतरिक-व्यवस्था है। जैसे सौ डिग्री तक कोई पानी को गरम करे, वह भाप बन जाता है, फिर चाहे वह अग्नि-देवता को मानता हो कि न मानता हो, कि अग्नि-देवता की पूजा करता हो कि न पूजा करता हो। सौ डिग्री पर जब पानी आ जाता है, तो भाप बन जाता है।
तो चाहे कोई परमात्मा को मानता हो, या न मानता हो, जब सौ डिग्री पर प्रयत्न आ जाता है तो प्रसाद उपलब्ध हो जाता है। लेकिन अंतिम घड़ी प्रसाद से घटती है।
और यह ऐसा होना ही चाहिए। क्योंकि व्यक्ति एक छोटा-सा अंश है इस विराट का। इस विराट को पाने में श्रम तो चाहिए, लेकिन अकेला श्रम काफी नहीं है। इस विराट को पाने में श्रम से भी ज्यादा कुछ चाहिए--इस विराट का सहयोग चाहिए। लेकिन वह मिलता उसी को है जो श्रम करता है।
यम कह रहा है नचिकेता को कि कोई बिरला साधक ही--लेकिन साधक, ध्यान रहे; साधक का मतलब है जिसने श्रम किया, साधना की--उसकी कृपा से इस परमतत्व को उपलब्ध हो पाता है।
उसकी कृपा को कभी न भूलें। और अपने प्रयत्न को भी कभी न भूलें। आपकी प्रार्थनाओं से उसका प्रसाद नहीं मिलेगा; आपकी साधना से उसका प्रसाद मिलेगा। प्रार्थनाएं बचकानी हैं; वे धोखा हैं, प्रवंचना हैं। कुछ किए बिना हाथ जोड़े खड़े हैं! यह मिल जाए, वह मिल जाए, मोक्ष मिल जाए। सब मिल जाए आपको, लेकिन मिलने की कोई पात्रता नहीं है। सागर को बुला रहे हैं और चुल्लूभर पानी को सम्हालने की पात्रता नहीं है। यह अच्छा ही है कि सागर आपकी प्रार्थना सुनकर नहीं आता, नहीं तो आप डूबेंगे। आपका उबरना मुश्किल हो जाएगा। जिस दिन पात्रता पूरी होती है, उस दिन सागर आ जाता है।
कबीर ने कहा है कि पहले तो मैं सोचता था कि बूंद सागर में खो गई, अब जानता हूं कि सागर ही बूंद में उतर आया। और पहले तो सोचता था कि बड़ा

मुश्किल होगा, एक बार बूंद सागर में खो जाएगी तो उसको वापस कैसे खोजूंगा? और अब तो बड़ी मुसीबत हो गई है, क्योंकि बूंद सागर में खो जाए तो शायद खोजना किसी तरह संभव भी हो, लेकिन जब सागर ही बूंद में खो जाए, तो अब खोजने का कोई उपाय न बचा। यह मिटना पूरा हो गया।
श्रम प्रथम चरण में और अंतिम चरण में प्रसाद। ये दोनों सूत्र अगर सम्हले रहें, तो जीवन में वह जो परम विभूति, वह जो परम ऐश्वर्य है, वह जो परम आनंद है, वह जो परम चैतन्य है, उसके बरसने में देर नहीं लगती।
लेकिन ये दो विरोधी चीजें साथ जुड़ी हों, ये दोनों चाक एक साथ हों, तो आपका जीवन-रथ मुक्ति के द्वार तक निश्चित ही पहुंच जाता है।
आज इतना ही।

कठोपनिषद
छठवां प्रवचन

ज्ञान अनंत यात्रा है

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति।। 21।।

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।। 22।।

नायामात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूंस्वाम्।। 23।।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।। 24।।

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः।। 25।।

तृतीय वल्ली

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः।। 1।।

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेमहि।। 2।।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च।। 3।।

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयान्स्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।। 4।।

यस्त्वविज्ञानवान भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः।। 5।।

वह परमेश्वर बैठा हुआ ही दूर पहुंच जाता है, सोता हुआ (भी) सब ओर चलता रहता है। उस ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त न होने वाले देव को मुझसे भिन्न दूसरा कौन जानने में समर्थ है।। 21।।

(जो) स्थिर न रहने वाले (विनाशशील) शरीरों में शरीररहित (एवं) अविचलभाव से स्थित है, (उस) महान सर्वव्यापी परमात्मा को जानकर बुद्धिमान महापुरुष (कभी किसी कारण से) शोक नहीं करता।। 22।।

यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से (और) न बहुत सुनने
से ही प्राप्त हो सकता है। जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है; (क्योंकि) यह परमात्मा उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रगट कर देता है।। 23।।

सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा भी इस परमात्मा को न तो वह मनुष्य प्राप्त
कर सकता है जो बुरे आचरणों से निवृत्त नहीं हुआ है, न वह प्राप्त कर सकता है जो अशांत है, न वह कि जिसके मन तथा इंद्रियां संयत नहीं हैं। और न वह प्राप्त करता है, जिसका मन शांत नहीं है।। 24।।

(संहारकाल) में जिस परमेश्वर के ब्राह्मण और क्षत्रिय--ये दोनों ही अर्थात संपूर्ण प्राणिमात्र भोजन बन जाते हैं (तथा) सबका संहार करने वाली मृत्यु (भी) जिसका उपसेचन (अर्थात भोज्य वस्तु के साथ लगाकर खाने का व्यंजन, तरकारी आदि) बन जाता है, वह परमेश्वर जहां (और) जैसा है, यह ठीक-ठीक कौन जानता है!।। 25।।

तृतीय वल्ली

शुभ कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य-शरीर में परब्रह्म के उत्तम निवास-स्थान (हृदय-आकाश) में, बुद्धिरूप परम गुफा में छिपे हुए सत्य का पान करने वाले (व अवश्यंभावी कर्म का भोग करने वाले दो भिन्न तत्व हैं)। (वे) छाया और धूप की भांति परस्पर भिन्न हैं, (यह बात) ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी महापुरुष कहते हैं। तथा जो तीन बार नाचिकेत अग्नि का चयन कर लेने वाले (और) पंचाग्निसंपन्न गृहस्थ हैं, वे भी यही बात कहते हैं।। 1।।

यज्ञ करने वालों के लिए जो दुख-समुद्र से पार पहुंचा देने योग्य सेतु है, उस नाचिकेत अग्नि को (और) संसार-समुद्र से पार होने की इच्छा वालों के लिए जो भयरहित पद है, उस अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तम को जानने और प्राप्त करने में हम समर्थ हों।। 2।।

(हे नचिकेता! तुम) जीवात्मा को तो रथ का स्वामी (उसमें बैठकर चलने वाला) समझो और शरीर को ही रथ, बुद्धि को सारथि (रथ को चलाने वाला) समझो, और मन को लगाम (समझो)।। 3।।

ज्ञानीजन (इस रूपक में) इंद्रियों को घोड़े बतलाते हैं (और) विषयों को
उन घोड़ों के विचरने का मार्ग (बतलाते हैं)। (तथा) शरीर, इंद्रिय और मन--इन सबके साथ रहने वाला जीवात्मा ही भोक्ता है, ऐसा कहते हैं।। 4।।
जो सदा विवेकहीन बुद्धि वाला और अवशीभूत (चंचल) मन से (युक्त) रहता है, उसकी इंद्रियां असावधान सारथि के दुष्ट घोड़ों की भांति वश में न रहने वाली हो जाती हैं।। 5।।

परमेश्वर के संबंध में कुछ आधारभूत बातें समझ लें। एक, परमेश्वर समस्त विरोधों का समन्वय है। इस जगत में प्रत्येक वस्तु अपने विरोधी के साथ मौजूद है। यही प्रकृति के होने का ढंग है। प्रकृति का तनाव, प्रकृति का होना विरोध के बिना नहीं हो सकता। रात न हो, तो दिन न होगा। स्त्री न हो, तो पुरुष न होगा। मृत्यु न हो, तो जन्म न होगा। दुख न हो, तो सुख न होगा। सारा जीवन विपरीत से जुड़ा और बना है।
इसलिए जीवन द्वंद्व है, एक संघर्ष है। और विपरीत के आधार पर ही यहां कुछ भी हो सकता है। यहां आपने किसी को मित्र बनाया कि आपने शत्रु बनाने शुरू कर दिए। यहां आपने प्रेम किया कि घृणा का प्रारंभ हो गया। यहां आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं, जिसके विपरीत की उपस्थिति साथ ही मौजूद न हो जाए। बुद्ध ने कहा है, मैं मित्र नहीं बनाता, क्योंकि मैं शत्रु नहीं बनाना चाहता हूं। बुद्ध ने कहा है, मैं प्रेम नहीं करता, क्योंकि मैं घृणा नहीं करना चाहता हूं।
जीवन पदार्थ है और साथ ही चेतना भी। चेतना का अर्थ है, पदार्थ से विपरीत। तत्वचिंतक पूरब के निरंतर इस द्वंद्व को स्वीकार किए हैं। इसलिए उन्होंने कहा है, जगत द्वैत है, डुआलिटी है।
पश्चिम में नई विज्ञान की खोजें भी इस द्वैत को अंगीकार करने लगी हैं। और उनकी तो धारणा अब यह हो गई है कि अगर हमें एक का पता हो और दूसरे का पता न भी हो, तो भी दूसरा होगा ही।
इसलिए एक बहुत अनूठी खोज है, वह है एंटी मैटर की। वे कहते हैं, पदार्थ है, तो पदार्थ के विपरीत पदार्थ भी होना चाहिए। अभी तक वह पकड़ में नहीं

आया, लेकिन होना चाहिए। क्योंकि जहां सभी चीजें विपरीत के साथ निर्मित होती हैं, वहां पदार्थ के विपरीत भी कुछ होना चाहिए।
चूंकि टाइम है, समय है, इसलिए एंटी टाइम, समय के विपरीत भी कोई धारा होनी चाहिए। समय जाता है आगे की तरफ। तो वह जो विपरीत समय होगा, वह जाएगा पीछे की तरफ। यहां बच्चा पैदा होता है, फिर जवान होता है, फिर बूढ़ा होता है। अगर कोई विपरीत समय होगा, तो वहां बूढ़ा होगा, फिर जवान होगा, फिर बच्चा होगा। उलटी यात्रा होगी।
और यह कोई तत्वचिंतक नहीं कह रहे हैं। आधुनिक फिजिसिस्ट, भौतिकशास्त्री कह रहे हैं कि इस समय की धारा के ठीक पास विपरीत समय की धारा होनी चाहिए। क्योंकि समय हो नहीं सकता बिना विपरीत के। बिना विपरीत के कुछ हो ही नहीं सकता।
आप देखते हैं कि एक पत्थर रखा हुआ है। तो पत्थर एक ठोस वस्तु है। विज्ञान कहता है कि जिस तरह पत्थर ठोस वस्तु है, और स्थान घेरता है, ऐसे ही स्थान में छिद्र भी होने चाहिए, होल्स--पदार्थ के विपरीत। अभी तक वे पकड़े नहीं जा सके हैं, लेकिन इस के ऊपर, इस सिद्धांत के ऊपर एक व्यक्ति को नोबल प्राइज उपलब्ध हो गई है।
आकाश में छिद्र भी होने चाहिए। बड़ा कठिन है सोचना भी कि छिद्र का क्या अर्थ होगा? आकाश भरा हुआ है, एक भराव है। ठीक इसके पास ही खाली, शून्य छिद्र भी होने चाहिए।
महावीर ने आज से पच्चीस सौ साल पहले ठीक ऐसी बात कही थी। उन्होंने कहा था, लोक है और अलोक है। अलोक इसके विपरीत है। यह जो अस्तित्व दिखाई पड़ रहा है, यह मैटर--लोक। इसके विपरीत जो है, अलोक--एंटी मैटर।
यह तो जगत की व्यवस्था है, दृश्य की। परमात्मा है अदृश्य। वहां कोई भी विरोध न होगा। वहां सभी विरोध समन्वित हो जाएंगे। वहां विपरीत अपनी विपरीतता खो देंगे।
परमात्मा है एक। तो एंटी गाड, परमात्मा के विपरीत अगर कुछ हो, तो परमात्मा भी जगत का हिस्सा हो गया। लेकिन परमात्मा जगत से बड़ा है। लोक और अलोक, दोनों को घेर लेता है। पदार्थ और विपरीत-पदार्थ, काल और काल के विपरीत धारा, जन्म और मृत्यु, दोनों को एक साथ घेर लेता है। वह एक है, जिसमें दोनों ही समाविष्ट हैं।
यह पहली बात परमेश्वर के संबंध में समझ लेनी चाहिए कि वह समग्रता का जोड़ है। उसके भीतर जन्म भी है और उसके भीतर मृत्यु भी है। इसलिए वही स्रष्टा है और वही विध्वंसक है। वही मित्र है, वही शत्रु है। वही बनाता है, वही मिटाता है।
जब ऐसे शब्दों का हम प्रयोग करते हैं, तो एक कठिनाई है। ऐसा लगता है, जैसे वह कोई व्यक्ति है। यह भाषा की भूल है। और भाषा के पास और कोई उपाय नहीं है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा केवल ऊर्जा का विराट विस्तार है। इस ऊर्जा के विराट विस्तार में दोनों संयुक्त हैं। जो हमें विपरीत दिखाई पड़ते हैं, दिन और रात, वे दोनों ही परमात्मा में समाविष्ट हैं। रात भी उसकी, दिन भी उसका। इस बात को आज नहीं कल विज्ञान को भी स्वीकार कर ही लेना पड़ेगा।
विज्ञान यह तो स्वीकार करता है कि विपरीतता है, एक डुआलिटी है, एक द्वैत है। उसे यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि जहां भी दो हों, उन दोनों को जोड़ने वाला एक तीसरा सेतु चाहिए, अन्यथा उन दोनों के बीच कोई संबंध न रह जाएगा। और उन दोनों के बीच एक तारतम्य है, एक गति है, एक संगीत है। निश्चित ही कोई तीसरा चाहिए, जो दोनों को घेर लेता है, दोनों को समाविष्ट कर लेता है।
परमात्मा का अर्थ है, टोटलिटी, समग्रता, जहां सभी द्वंद्व एक साथ मौजूद हैं। यह हमें समझने में बड़ा कठिन है। क्योंकि तर्क तोड़ता है, जोड़ने की कला तर्क के पास नहीं है। जैसे कैंची काटती है, लेकिन कैंची के पास जोड़ने का कोई उपाय नहीं है। और अगर आप कैंची से जोड़ने का उपाय करें, तो आप मुश्किल में पड़ जाएंगे। जितना आप जोड़ेंगे, उतना ही कटता चला जाएगा।
तर्क कैंची है। इसलिए हमने तर्क के देवता को--गणेश तर्क के देवता हैं भारतीय पुराण-कथा में--चूहे पर सवार किया है। चूहा कैंची है, वह काटता है।

चूहा जोड़ नहीं सकता। इसलिए चूहे को उनका वाहन बनाया है। सिर्फ एक प्रतीक है।
और आप जानकर हैरान होंगे कि आप गणेश का हर काम में स्मरण करते हैं, शुभ काम में। आपको पता नहीं होगा कि कारण बड़ा अजीब है। क्योंकि गणेश खतरनाक हैं, विध्वंसक हैं। वे उपद्रवी हैं, तर्क की सवारी है। तो ऐसी कथा है कि गणेश हर तरह के शुभ कार्यों में बाधा उपस्थित करते रहे हैं, प्राचीन समय में। फिर लोग उनसे इतने डरने लगे कि उनका पहले ही स्मरण कर लेना उचित है, ताकि वे बाधा न बनें। इसलिए--श्री गणेशाय नमः! वह पहले से जो याद कर रहे हैं, उसका मतलब यह है कि तुम कृपा करना, तुमसे भय है।
धीरे-धीरे लोग भूल ही गए कि वे विध्वंसक हैं, अब तो वे मंगल के प्रतीक
हो गए। लंबे समय में मनुष्य की चेतना में ऐसा हो जाता है। उनकी याददाश्त उनके उपद्रवी होने के कारण थी। फिर धीरे-धीरे बात भूल गई। और अब तो वे मंगल-सूचक हैं। अब तो उनकी याददाश्त हम करते हैं इसलिए कि उनसे सभी काम मंगलकारी होंगे। लेकिन उनके उपद्रव का कारण है उनकी तर्कनिष्ठा, तोड़ने की कला, काटने की बात।
विज्ञान तर्क पर निर्भर है। वह तर्क का ही फैलाव है। इसलिए विज्ञान तोड़ता है। इसलिए एनालिसिस, विश्लेषण उसकी विधि है। विज्ञान को कोई भी चीज दें, वह तोड़कर उसको खंड-खंड में बांट देगा। इसलिए विज्ञान परमाणु तक पहुंच गया--तोड़ते-तोड़ते, काटते-काटते।
धर्म तर्क के पार जाता है। क्योंकि धर्म कहता है, तोड़ने से तुम पूर्ण
को कभी भी न जान सकोगे। तोड़ने से खंड तो जान लिया जाएगा, अखंड कैसे जाना जाएगा? परमाणु को तो तुम जान लोगे, लेकिन परमेश्वर को कैसे जानोगे?
ये दो छोर हैं। परमाणु--तोड़ते चले जाएं तो परमाणु बचता है। जोड़ते चले जाएं तो--परमेश्वर। परमेश्वर का अर्थ है, सबका जोड़, जिसके आगे जोड़ने को नहीं बचता। और परमाणु का अर्थ है, आखिरी तोड़, जिसके आगे तोड़ने को नहीं बचता। इसलिए विज्ञान की आखिरी निष्पत्ति परमाणु है, एटम है। धर्म की आखिरी निष्पत्ति परमेश्वर है। ये दो छोर हैं। विज्ञान द्वैत से शुरू होता है और अनेक पर समाप्त होता है। धर्म भी द्वैत से शुरू होता है और एक पर समाप्त होता है।
धर्म की विधि का नाम है सिन्थेसिस, संश्लेषण, जोड़ना। और जोड़ते चले जाना, जब तक कुछ भी शेष रहे। जब सभी जुड़ जाए, तो उस समग्रता का नाम परमेश्वर है। वह कोई व्यक्ति नहीं है। वह इस पूरे अस्तित्व की अखंडता का नाम है। उस अखंडता में सभी भेद समाप्त हो जाएंगे, क्योंकि वह जोड़ है। और विज्ञान में सभी भेद प्रगट हो जाएंगे, क्योंकि वह तोड़ना है।
इसलिए विज्ञान न केवल वस्तुओं को तोड़ता है, बल्कि खुद भी टूटता चला जाता है। आज से कोई पांच सौ साल पहले विज्ञान का कुछ अर्थ था, शब्द का। अब तो कोई अर्थ नहीं है। विज्ञान जैसी कोई चीज अब नहीं है। फिजिक्स है, केमेस्ट्री है, बायोलाजी है, विज्ञान जैसी अब कोई चीज नहीं है। आप अगर पूछें कि साइंटिस्ट कौन है, तो बताना मुश्किल है। कोई बायोलाजिस्ट है, कोई फिजिसिस्ट, कोई केमिस्ट है, साइंटिस्ट तो कोई भी नहीं है। विज्ञान तोड़ते- तोड़ते खुद भी टूट गया, छोटी-छोटी शाखाओं में विभाजित हो गया। और इन शाखाओं के बीच भी कोई तालमेल नहीं रह गया है।
इस समय मनुष्य की सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि हमारे ज्ञान की शाखाओं के बीच कोई समन्वय नहीं रह गया है, कोई संबंध नहीं रह गया है। वह जो भौतिकशास्त्री है, उसे कुछ भी पता नहीं कि रसायनशास्त्र क्या कर रहा है। क्योंकि भौतिकशास्त्र ही इतना बड़ा शास्त्र है कि एक आदमी हजार साल भी जीए, तो भी उसे पूरा नहीं जान पाएगा। और रसायनशास्त्र खुद इतना बड़ा शास्त्र है कि उसे भी कोई आदमी पूरा नहीं जान पाएगा।
पुराने समय में एक ही वैद्य या एक ही डाक्टर सभी का इलाज कर देता था।
अब वैसी बात नहीं है। अब अगर आपकी आंख खराब है, तो अलग डाक्टर है। कान खराब है, पैर खराब है, पेट खराब है, तो बंटता जा रहा है। पश्चिम में एक मजाक है कि इक्कीसवीं सदी में एक आदमी अपनी आंख के इलाज के लिए एक डाक्टर के पास गया।
उस डाक्टर ने पूछा, आपकी कौन-सी आंख खराब है, बायीं कि दायीं? क्योंकि मैं बायीं आंख का डाक्टर हूं।

इसकी संभावना है। चीजें टूटती चली जाती हैं।
विज्ञान, जो दूसरे को खंडित करता है, वह स्वयं भी खंडित होता चला जाता है। इसलिए वैज्ञानिकों के बीच कोई संवाद नहीं रहा है। एक वैज्ञानिक की बात दूसरा वैज्ञानिक नहीं समझ सकता, इतना स्पेशलाइजेशन है। विज्ञान का डर अब यही है कि कहीं ऐसा न हो जाए कि ज्ञान की एक शाखा दूसरे से बिल्कुल अपरिचित हो, तो कठिनाई खड़ी हो जाए।
जैसा हुआ है। पिछले महायुद्ध में जब एटम के प्रयोग शुरू हुए, तो फिजिसिस्ट ने कहा कि कोई खतरा नहीं है। क्योंकि फिजिसिस्ट को बायोलाजी का, जीवशास्त्र का कोई पता नहीं था, जीवशास्त्रियों से पूछा नहीं गया। हिरोशिमा और नागासाकी पर एटम बम गिराने के वक्त भौतिकशास्त्रियों से पूछा गया, क्योंकि उन्होंने एटम बम बनाया था, और जीवशास्त्रियों से पूछा नहीं गया कि जीवन पर इसका क्या परिणाम होगा।
यह तो परिणाम बाद में पता चले, कि परिणाम बड़े भयंकर हैं। और परिणाम एक दिन में समाप्त हो जाने वाले नहीं हैं। जो स्त्रियां गर्भवती थीं और बच गईं, उनके गर्भ के बच्चे रेडियो-एक्टीविटी से भर गए। उनके बच्चे अब हजारों सदियों तक, जब तक उनके बच्चों के बच्चे होते रहेंगे, रुग्ण और बीमार, पंगु होंगे।
जहां एटम गिरा, वहां तो लोग समाप्त हो ही गए, लेकिन उस एटम से जो धुआं उठा और उसके साथ जो रेडियो-एक्टीविटी चारों तरफ फैल गई। सागर में गिरी वह राख, मछलियां उससे विषाक्त हो गईं। अब उन मछलियों को शुद्ध करने का कोई उपाय नहीं। उन मछलियों को जिन लोगों ने खाया, उनकी हड्डियों में रेडियो- एक्टीविटी प्रविष्ट हो गई। उनकी हड्डियां विषाक्त हो गईं, उनका खून विषाक्त हो गया। उन मछलियों की खाद जिन वृक्षों में डाली गई, वे विषाक्त हो गए। चल पड़ी यात्रा।
अब वैज्ञानिक कहते हैं कि उसे सम्हालने का कोई उपाय नहीं है। इतना विस्तार है जीवन का कि वह सब जगह प्रविष्ट हो गई। और लोगों ने सोचा था, भौतिकशास्त्रियों ने, कि एक सीमा में प्रभाव होगा। लेकिन जगत इतना जुड़ा हुआ है, इतना जुड़ा हुआ है कि आप कल्पना ही नहीं कर सकते कि उसका प्रभाव किस भांति फैलता चला जाएगा। गायों के दूध में प्रविष्ट हो गया। गायों का दूध बच्चों ने पीया, वह बच्चों में प्रविष्ट हो गया। उन गायों के जो बच्चे होंगे, वे पहले से ही आण्विक-प्रक्रिया से विषाक्त हो गए। यह पीछे पता चला कि जीवशास्त्री से पूछ लेना चाहिए था कि जीवन पर इसका क्या परिणाम होगा? इसलिए पश्चिम में एक नया आंदोलन है, इकोलाजी। वे कहते हैं कि कोई भी काम करना हो तो समस्त ज्ञान की शाखाओं से पूछकर ही करना चाहिए, क्योंकि जीवन इतना जुड़ा हुआ है। आपने तोड़ लिया है अलग-अलग विज्ञान, लेकिन जीवन नहीं टूट गया है, जीवन इकट्ठा है। यहां छोटी-सी बात के परिणाम होंगे।
अब जैसे कि अभी चांद पर आदमी गया, तो जो चांद पर ले जाने की व्यवस्था
कर रहे थे, अंतरिक्ष यात्री और यात्रा से संबंधित जो विज्ञान थे, उनसे पूछ लिया गया। लेकिन जीवन इतना बड़ा है कि कोई विज्ञान उसे पूरा नहीं घेर पाता। सारी व्यवस्था के बाद भी एक भूल हो गई, जो पीछे ही पता चली। जैसे ही चांद की यात्रा पर हमारे राकेट जाते हैं, तो हमारे वायुमंडल में छिद्र कर जाते हैं। कोई दो सौ मील का वायुमंडल जमीन को घेरे हुए है। और उस वायुमंडल के कारण आपको श्वास ही नहीं मिलती, उस वायुमंडल के कारण अंतरिक्ष से आने वाली जो विषाक्त किरणें हैं, वे रोक ली जाती हैं। यह दो सौ मील की हवा का घेरा खतरनाक किरणों को भीतर नहीं आने देता, इसलिए आप जीवित हैं। नहीं तो अंतरिक्ष से, चांद-तारों से बहुत तरह की किरणें आ रही हैं, जो अगर सब प्रविष्ट हो जाएं तो हम अभी समाप्त हो जाएं।
जब हमारे राकेट निकले वायुमंडल से, तो वे छेद कर गए। उन छिद्रों से, पहली दफा पृथ्वी के इतिहास में, विषाक्त किरणें प्रविष्ट कर गईं। लेकिन जब वे प्रविष्ट कर गईं, तब पता चला। कुछ वैज्ञानिकों का ख्याल है कि कैंसर की बढ़ती हुई हालत वायुमंडल में हुए छिद्रों के कारण है। अब उसे रोकने का कोई उपाय नहीं है। और अब रोज अंतरिक्ष में जाने की बात चल रही है। और इन सारे तथ्यों को छिपाया जाता है, ताकि आम आदमी को पता न चले।

सारे समुद्र विषाक्त होते जा रहे हैं। क्योंकि जो हमारी मिलें और फैक्ट्रियां जो जहर छोड़ रही हैं, वह सागरों को विषाक्त कर रहा है। लेकिन जीवन संयुक्त है। सागर कोई ऐसी जगह नहीं है कि उसमें हमने छोड़ दिया... । सागर में पौधे हैं, वे पौधे आक्सीजन पैदा करते हैं और वह आक्सीजन हम पीते हैं। उनके बिना हम जी नहीं सकते। वे पौधे मरते जा रहे हैं। उनके मर जाने पर हमारी आक्सीजन की मात्रा कम होती जा रही है। वैज्ञानिक कहते हैं कि इन तीन सौ वर्षों में आक्सीजन इतना कम हुआ है कि यह आश्चर्य है कि आदमी जिंदा कैसे है? तो मुर्दा-मुर्दा जिंदा है, स्वास्थ्य खो गया है।
जीवन एक अखंडता है। सब चीजें जुड़ी हैं। जैसे कि मकड़ी का जाल हो और आप
उस मकड़ी के जाल के एक धागे को हिला दें, तो पूरा जाल हिल जाता है। ऐसा ही जीवन में आप जरा-सा कुछ करें, तो पूरे जीवन का जाल हिल जाता है। उस अखंड जाल का नाम परमेश्वर है।
विज्ञान तोड़ता है, खुद भी टूटता है। धर्म जोड़ता है और खुद जुड़ता है। इसलिए जिस दिन आदमी ठीक-ठीक प्रौढ़ होगा, इस पृथ्वी पर एक ही धर्म रह जाएगा। और जितना विज्ञान बढ़ता जाएगा, उतने अनंत विज्ञान होते चले जाएंगे।
दूसरी बात, परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है; परमात्मा एक अनुभव है, जैसे प्रेम एक अनुभव है। और जिसने कभी प्रेम नहीं किया, वह कितने ही शास्त्र पढ़ ले प्रेम के ऊपर, वह कितनी ही जानकारी इकट्ठी कर ले, तो भी प्रेम का उसे कुछ भी पता नहीं चलेगा। और जिसने प्रेम किया है, उसने चाहे कोई भी शास्त्र न पढ़ा हो, तो भी प्रेम क्या है, इसका उसे अनुभव होगा। परमात्मा कोई सिद्धांत नहीं है। गणित में सिद्धांत होते हैं, उनको अनुभव करने की कोई जरूरत नहीं है। अनुभव का उनसे कोई संबंध नहीं है। धर्म में अनुभव होता है, सिद्धांत नहीं। सिद्धांत से उसका कोई संबंध नहीं है।
इसलिए जो लोग सैद्धांतिक खोज करते हैं, वे लोग व्यर्थ ही भटक जाते हैं।
लेकिन जो अनुभव से अपने को बदलकर और किसी नई दिशा में प्रवेश करने की कोशिश करते हैं, वे जरूर उसे उपलब्ध हो जाते हैं।
तीसरी बात, आपके पास जो बुद्धि है, वह बुद्धि आपकी पूर्णता नहीं है।
आप बुद्धि से बहुत ज्यादा हैं। जैसे मेरा हाथ सिर्फ मेरा हाथ है, हाथ से मैं बहुत ज्यादा हूं। मेरा पैर सिर्फ मेरा पैर है, मैं पैर से बहुत ज्यादा हूं। ऐसे ही बुद्धि भी मेरा एक उपकरण है, उससे मैं बहुत ज्यादा हूं। तो जो सिर्फ बुद्धि से खोज करेंगे, वे परमात्मा तक नहीं पहुंचेंगे।
समग्र तक पहुंचना हो तो खुद भी समग्र होना पड़ेगा। बुद्धि एक अंग है, उपयोगी। लेकिन बुद्धि ने पूरी मालकियत कर ली है। और आपको ऐसा लगने लगा है बुद्धि की मालकियत से कि आप खोपड़ी के भीतर रह रहे हैं। अगर कोई आपसे पूछे कि आप कहां हैं, तो आप इशारा करेंगे खोपड़ी के भीतर। यह एक बड़ी भारी दुर्घटना है।
बच्चा जब मां के पेट में होता है, तो मस्तिष्क न के बराबर होता है, लेकिन बच्चा पूरा होता है। और मस्तिष्क के बिना भी शरीर बढ़ता है, बड़ा होता है।
जीवन मस्तिष्क से पहले है। और जीवन की प्रक्रिया से मस्तिष्क पैदा होता है। जब बच्चा पैदा होता है, तो उसके पास केवल दस प्रतिशत मस्तिष्क होता है। फिर नब्बे प्रतिशत तो विकसित होगा। और जब मां के पेट में पहले दिन बच्चे का अणु निर्मित होता है, तब तो मस्तिष्क जैसी कोई चीज होती ही नहीं। लेकिन जीवन होता है। और जीवन फैलता है।
जिस तरह पैर बढ़ता है, हाथ बढ़ते हैं, उसी तरह मस्तिष्क भी बढ़ता है। वह जीवन की एक शाखा है। शाखा को मूल मत समझें। और उस शाखा को ही सब समझकर जो जीने की कोशिश करेगा, उसकी दृष्टि पंगु हो जाएगी।
इसलिए बुद्धि से जीने वाले लोग पंगु हो जाते हैं, क्रिपिल्ड। जैसे कोई आदमी सिर्फ हाथ से ही जी रहा हो, और सारे शरीर को बांधकर रख दे। तो उस आदमी की क्या जिंदगी होगी! वह हाथ से ही देखने की भी कोशिश करेगा। हाथ से ही सुनने की भी कोशिश करेगा। हाथ से ही चलेगा भी। हाथ ही सब कुछ बना ले और सारे शरीर को बांधकर रख ले, ऐसी हमारी हालत है।
हमने मस्तिष्क को सब कुछ बना लिया है और सारे व्यक्तित्व को बांधकर
रख दिया है। यह जकड़ा हुआ, बंधा हुआ व्यक्तित्व परम सत्य को नहीं जान सकता।

इसलिए बुद्धि से थोड़ा गहरे उतरना जरूरी है। और जीवन के उस तल पर आना चाहिए जो बुद्धि के पहले था, और जिस दिन मस्तिष्क जल रहा होगा चिता में, उस दिन भी होगा।
जीवन विराट शक्ति है। आप उस जीवन की विराट शक्ति का एक छोटा-सा पहलू हैं--मस्तिष्क में।
शिव ने पार्वती को दिए गए सूत्रों में एक सूत्र कहा है। और कहा है कि
तू ऐसे जी जैसे मस्तिष्क नहीं है--हेडलेस--जैसे खोपड़ी नहीं है। आप भी चकित होंगे। अगर आप चलते-उठते एक ही बात का स्मरण रख सकें कि खोपड़ी गई, नहीं है, बिना खोपड़ी के सिर्फ धड़! अगर आप तीन महीने इसका अभ्यास कर सकें--जब भी स्मरण आ जाए तो बस, खोपड़ी नहीं है--आप बहुत चकित होंगे, आपकी जिंदगी में बड़े परिवर्तन हो जाएंगे।
क्योंकि खोपड़ी नहीं है, तो आप धीरे-धीरे हृदय की तरफ सरकने लगेंगे, वह केंद्र बन जाएगा होने का। और खोपड़ी नहीं है तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे कि अब अशांत कैसे हों? खोपड़ी नहीं है तो अब बेचैन कैसे हों? खोपड़ी नहीं है तो अब क्रोध कैसे करें? अब चिंतित कैसे हों?
खोपड़ी का त्याग सब उपद्रव का त्याग हो जाता है। अगर तीन महीने आप इस अभ्यास को करते रहें, आप पाएंगे आपकी चिंताएं विसर्जित हो गईं, आपके मन में चलने वाले तूफान और आंधियां खो गईं, और आप ज्यादा संतुलित, शांत और सौम्य हो गए। और हृदय में उतर आए।
लेकिन हृदय से भी नीचे एक और गहराई है, जो नाभि है। क्योंकि बच्चे के जीवन की पहली पुलक नाभि से शुरू होती है। हृदय से भी नीचे उतरने के उपाय हैं। और जब कोई व्यक्ति ठीक नाभि में पहुंच जाता है, तब अपने केंद्र पर, सेंटर पर आ गया। और उस केंद्र से ही परमात्मा से संबंध जुड़ सकता है।
अब हम इन सूत्रों में प्रवेश करें--
वह परमेश्वर बैठा हुआ ही दूर पहुंच जाता है, सोता हुआ भी सब ओर चलता है। उस ऐश्वर्य के मद से उन्मत न होने वाले देव को मुझसे भिन्न दूसरा कौन जानने में समर्थ है!
यह काव्य की भाषा में द्वंद्व के ऊपर निर्द्वंद्व की सूचनाएं हैं।
वह परमेश्वर बैठा हुआ ही दूर पहुंच जाता है।
यह विपरीत हो गई बात, क्योंकि बैठा हुआ कोई कैसे दूर पहुंच सकता है? दूर पहुंचने के लिए चलना होगा। हम चलकर दूर पहुंच सकते हैं। यह काव्य की भाषा है, विपरीत को जोड़ने की, अपोजिट्स को एक साथ लाने की।
यम कह रहा है, वह परमेश्वर बैठा हुआ ही दूर पहुंच जाता है, सोता हुआ भी
सब ओर चलता रहता है। उस ऐश्वर्य के मद से उन्मत न होने वाले देव को मुझसे भिन्न दूसरा कौन जानने में समर्थ है!
हमने परमात्मा का एक नाम रखा है, ईश्वर। ईश्वर का अर्थ होता है, ऐश्वर्य से भरपूर। ईश्वर का अर्थ है, जिसके पास सारा ऐश्वर्य है। लेकिन जिसके पास थोड़ा-सा भी ऐश्वर्य होता है, उसके पास अहंकार निर्मित हो जाता है। जरा-सा धन हो तो धन गर्मी देने लगता है। जरा-सी संपदा हो तो आदमी उछलकर चलने लगता है। धन मद है, शराब है।
एक अमीर आदमी का दिवाला निकल जाए तो सब नशा उखड़ जाता है। फिर उसकी चाल ऐसे हो जाती, जैसे शराबी का जब नशा उतर जाता है तब चलता है--हैंगओवर। नशा भी नहीं है, लेकिन चाल लुस्त-पुस्त हो गई। पीया था कभी, उसकी याद भर रह गई। लेकिन वह याद व्यथित किए जाती है। उसने एक खालीपन पैदा कर दिया।
ईश्वर परम ऐश्वर्य है। लेकिन द्वंद्व के अतीत की सूचना इस बात में है--उस ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त न होने वाले... । लेकिन मद वहां नहीं है। ऐश्वर्य वहां पूर्ण है, लेकिन मूर्च्छा और बेहोशी जरा भी नहीं है। अहंकार वहां नहीं है।
परमात्मा को अहंकार हो, तो समझ में आ सकता है। हमको अहंकार होता है, बिल्कुल समझ में आने जैसा नहीं है। दीन, दुर्बल, ना-कुछ, फिर भी अहंकार पकड़ता है कि मैं हूं। परमात्मा को अहंकार हो कि वह घोषणा करे कि मैं हूं, तो समझ में आता है; लेकिन वहां कोई घोषणा नहीं है। यहां हम दीन-दुर्बल घोषणा करते हैं कि मैं हूं, और उसकी कोई घोषणा नहीं है!

इसीलिए आप कितना ही चिल्लाते रहें कि कहां है परमात्मा, मैं देखना चाहता हूं! आपकी आवाजें, आपके तर्क, उसे इतना भी उत्तेजित नहीं कर पाते कि वह सामने आकर खड़ा हो जाए और कहे कि यह रहा मैं।
मैं वहां नहीं है। नहीं तो नास्तिकों ने उसे कभी का बुला लिया होता।
एक यूरोप का विचारशील नास्तिक हुआ--बर्क। वह एक विवाद में उतरा था एक पादरी के साथ। तो पहला ही तर्क बर्क ने उपस्थित किया। उसने अपनी घड़ी हाथ से निकाली और कहा कि मैं तुम्हारे परमात्मा को कहता हूं कि अगर वह सर्वशक्तिमान है, तो इतना ही करे कि मेरी घड़ी को रोक दे इसी वक्त, बंद कर दे, चले न। अभी घड़ी में आठ बजा है, बस आठ पर ही कांटा रुक जाए। इतना भी तुम्हारा परमात्मा कर दे, तो भी मैं समझ लूंगा कि वह है। लेकिन घड़ी चलती रही। परमात्मा ने इतना भी न किया। सर्वशक्तिमान, इतनी छोटी-सी शक्ति भी न दिखा सका, जो कि एक छोटा बच्चा भी पटककर कर सकता था!
बर्क ने कहा कि प्रमाण जाहिर है। कोई परमात्मा नहीं है।
लेकिन बर्क कर क्या रहा था? वह सिर्फ अहंकार को चोट पहुंचा रहा था। वह
यह कह रहा है कि अगर हो, तो इतना-सा करके दिखा दो। बर्क समझ ही नहीं पा रहा। मुद्दे की बात ही उसकी चूक गई। परमात्मा के पास कोई अहंकार नहीं है, आप इसलिए उसे उत्तेजित नहीं कर सकते। उत्तेजित उसे किया जा सकता है जहां अस्मिता हो।
असल में क्षुद्र को ही उत्तेजित किया जा सकता है; विराट को उत्तेजित करने का कोई उपाय नहीं है। असल में सिर्फ चाय की प्यालियों में ही तूफान लाए जा सकते हैं। विराट में आपकी बातें तूफान नहीं उठा सकतीं। उनसे कोई चोट ही नहीं पड़ती। वे हों या न हों, कोई भेद नहीं होता।
यह सूत्र सूचना कर रहा है कि परम ऐश्वर्यवान, लेकिन ऐश्वर्य के मद से शून्य... ।
यह विपरीतता को जोड़ना है। छोटा-सा भी ऐश्वर्य अहंकार देता है; विराट ऐश्वर्य--अगर गणित से हम चलें--तो महान अहंकार देगा। लेकिन धर्म गणित की भाषा नहीं है। जितना बड़ा ऐश्वर्य, जितना विराट अनंत ऐश्वर्य, उतना ही शून्य अहंकार। इसे अगर हम मनोविज्ञान की भाषा में समझें तो बहुत आसान होगा।
पश्चिम में एक बहुत कीमती मनोवैज्ञानिक हुआ, एडलर। और एडलर ने अपने पूरे मनस-शास्त्र का आधार रखा--इनफिरियारिटी कांप्लेक्स, हीनता का भाव। और एडलर ने कहा कि मनुष्य की सारी चेष्टाएं हीनता की ग्रंथि से पैदा होती हैं। जो आदमी बड़े पद पर पहुंचना चाहता है, एडलर का कहना है, उसको भीतर लगता है कि मैं ना-कुछ हूं। ना-कुछ की बात को पोंछने के लिए वह बड़ी कुर्सी पर बैठना चाहता है। राजनीतिज्ञों से ज्यादा हीन-ग्रंथि से पीड़ित और कोई भी नहीं होता। एडलर ने कहा है कि लिंकन या लेनिन या हिटलर या कोई और, ये सब किसी न किसी हीनता की ग्रंथि से पीड़ित हैं और उस हीनता की ग्रंथि को भरने के लिए दौड़ पड़ते हैं।
लेनिन के पैर छोटे थे। ऊपर का हिस्सा बड़ा था शरीर का, नीचे का हिस्सा छोटा था। वह कुर्सी पर बैठता था तो उसके पैर जमीन को नहीं छूते थे। इससे वह बड़ा पीड़ित था। तो उसने रूस के सबसे बड़े सिंहासन पर बैठकर दिखा दिया कि तुम्हारे पैर जमीन पर पहुंचते हों भला, लेकिन मेरे पैर सिंहासन पर पहुंच जाते हैं।
एडलर का कहना है कि वह हीनता की ग्रंथि उसको खींचती ही रही। हिटलर, शक
है कि नपुंसक था। उसकी नपुंसकता शक्ति की दौड़ बन गई। और यह दौड़ इतनी बड़ी बन गई कि उसकी आकांक्षा थी कि सारी दुनिया को मुट्ठी में लेकर बता दे कि तुम्हारी पुंसकता, तुम्हारी शक्ति क्या है?
विपरीत दौड़ पैदा हो जाती है। अगर कोई आदमी कुरूप है, तो वह किसी न किसी ढंग से उस कुरूपता को पूरा करने की कोशिश करता है। अगर कोई आदमी अंधा है, तो उसकी आंख की सारी शक्ति कानों को उपलब्ध हो जाती है। इसलिए अंधे जितने ढंग से सुनते हैं, कोई आंख वाला नहीं सुन सकता। और अंधे अक्सर संगीत में प्रवीण हो जाते हैं। क्योंकि आंख की शक्ति दौड़कर कान को मिल जाती है। वह जो आंख की कमी थी, कान से अंधा पूरा करने लगता है। जहां-जहां कमी है, उसको ढांकने के लिए उससे विपरीत हमें कुछ करना पड़ता है

एडलर ने कहा है कि आदमी को जो अहंकार पैदा होता है, वह हीनता के कारण है। धन की दौड़ पैदा हो जाती है। जिन लोगों के जीवन में भी प्रेम की कमी है, वे धन के दीवाने हो जाते हैं। जिन्हें प्रेम का स्वर्ण नहीं मिला, वे फिर कंकड़-पत्थर वाला स्वर्ण इकट्ठा करने में लग जाते हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि अगर कोई आदमी ठीक-ठीक प्रेम से भरा हो, तो कंजूस नहीं हो सकता। और कंजूस आदमी प्रेमी नहीं हो सकता। क्योंकि असल में कंजूस प्रेम की कमी को ही धन से पूरा कर रहा है। जिसके जीवन में प्रेम है, उसके जीवन में एक सुरक्षा है। वह जानता है कि मैं भूखा नहीं मरूंगा। वह जानता है, मैं बूढ़ा हो जाऊंगा, तो कोई न कोई मेरी सेवा कर देगा।
लेकिन जिसके जीवन में प्रेम नहीं है, वह घबड़ाया हुआ है, वह असुरक्षित है। वह जानता है कि अगर मैं बूढ़ा हो गया, तो कोई मेरी तरफ देखने वाला भी नहीं है। उसकी पूर्ति वह धन की तरफ पकड़ से करेगा। धन इकट्ठा करने लगेगा, क्योंकि अब धन ही सुरक्षा है। जिसके जीवन में प्रेम की सुरक्षा नहीं है, उसके जीवन में धन की सुरक्षा का भाव पैदा हो जाएगा।
हम पूर्ति करते हैं, छिपाते हैं, ढांकते हैं। हमारे सारे व्यवहार को
हम गौर से देखें तो एडलर की बात सच मालूम पड़ती है।
परमात्मा के पास सब कुछ है, इसलिए हीनता की कोई ग्रंथि नहीं हो सकती। इसलिए जो व्यक्ति जितना परमात्मा के करीब पहुंचने लगता है, उतना ही निरअहंकारी होता चला जाता है। जिसके पास जितना ज्यादा है, उतना ही अहंकार कम होने लगता है; और जिसके पास जितना कम है, उतना ही ज्यादा अहंकार होता है। अहंकार दरिद्र, भिखारी का प्रतीक है। निरअहंकारिता सम्राट होने की सूचना है।
स्वभावतः, जिसके पास जगत की समग्र समग्रता है, उसके पास मैं होने का कोई भी ख्याल न होगा। ये विपरीत को जोड़ने के प्रयास हैं, काव्य के ढंग से। और एक बड़े मजे की बात यम कह रहा है कि उस ऐश्वर्य के मद से उन्मत्त न होने वाले देव को, मुझसे भिन्न दूसरा कौन जानने में समर्थ है?
मृत्यु के अतिरिक्त उस परमात्मा को कोई भी जानने में समर्थ नहीं है। क्यों? क्योंकि जब तक आप मरते नहीं, मिटते नहीं, खोते नहीं, तब तक आप उससे नहीं जुड़ सकते। जब तक आपका अहंकार जल नहीं जाता, राख नहीं हो जाता, तब तक आप उस निरअहंकार के तत्व के साथ एकता नहीं बना सकते। उससे मिलना हो तो उस जैसे हो जाना जरूरी है। समान ही समान से मिल सकता है।
आप अभी बिल्कुल उससे विपरीत हैं, और पूछते हैं, ईश्वर कहां है? आप पीठ किए खड़े हैं सूरज की तरफ, और पूछते हैं, सूरज कहां है? कोई उपाय नहीं है, अगर आप पीठ किए खड़े रहें। सूरज है, आपकी ही पीठ ने छिपाया है। और आप कहते हैं, जब तक सिद्ध न हो जाए कि सूरज है, तब तक मैं पीठ क्यों मोडूं? पहले सिद्ध हो कि सूरज है तो फिर मैं चेष्टा करूं। सभी तार्किक यही कह रहे हैं। धार्मिक कहता है कि तुम पीठ मोड़ो, तभी सूरज है। तुम बदलो अपने को। इस अहंकार को छोड़ो।
यह यम का सूत्र बड़ा कीमती है, कि मेरे अतिरिक्त--मृत्यु के अतिरिक्त-- उसे जानने में और कोई भी समर्थ नहीं है। इसलिए जो मरने को राजी है, मिटने को राजी है... ।
जीसस ने कहा है, जो अपने को खोएंगे, वे ही बचेंगे। और जो अपने को बचाएंगे, उनके बचने का कोई उपाय नहीं है।
एक विसर्जन, जैसे बूंद गिर जाए सागर में और अपने को खो दे, ऐसा जब कोई व्यक्ति राजी हो जाता है गिरने को, खोने को, समर्पित, निवेदित होने को, तत्क्षण अहंकार विसर्जित हो जाता है। और अहंकार के विसर्जित होते ही भीतर की छिपी हीनता तिरोहित हो जाती है।
जब तक आप अहंकार से भरे हैं, आप भीतर हीन रहेंगे। हीनता को मिटा नहीं रहे हैं आप, सिर्फ ढांक रहे हैं। जैसे कोई घाव हो, और हम घाव पर पट्टियां बांध लें सुंदर रेशम की, मखमल की। वे पट्टियां कितनी ही सुंदर हों, और देखने वालों को कितना ही आकर्षित करें, उन पट्टियों के कारण घाव मिटता नहीं है। बल्कि खतरा यह है कि घाव खुला होता तो शायद मिट भी जाता--सूरज की किरणें पड़तीं, हवा पड़ती, प्रकृति उसे भर देती--ढका हुआ घाव और नासूर बनता चला जाएगा।

हम अपनी हीनता को दबा रहे हैं, छिपा रहे हैं। कोई धन से, कोई पद से, कोई ज्ञान से, कोई त्याग से। कोई न कोई उपाय करके हम कह रहे हैं कि मैं कुछ हूं।
समबडी का हम भाव पैदा कर रहे हैं और भीतर नोबडी, ना-कुछ की हालत है। धार्मिक व्यक्ति मृत्यु से गुजरता है, उसका अर्थ है कि वह इस कुछ होने
की बात, फिजूल बात को जो ऊपर से थोपी है, छोड़ देता है और ना-कुछ होने वाली बात से पूरी तरह राजी हो जाता है।
यह रहस्यपूर्ण सूत्र है। जो ना-कुछ होने से राजी है, वह सब कुछ के साथ
एक हो जाता है। और जो कुछ बनने की कोशिश में लगा है, वह सिकुड़ता रहता है, सड़ता रहता है। वह विराट के साथ संबंधित नहीं हो पाता है। ना-कुछ की पीड़ा छोड़ दें, और ना-कुछ के भाव को सहज स्वीकार कर लें, यही भक्त की दशा है। इसलिए यम कह रहा है कि मेरे अतिरिक्त, उसे जानने में कौन समर्थ है?
जो स्थिर न रहने वाले विनाशशील शरीरों में शरीररहित एवं अविचलभाव से स्थित है, उस महान सर्वव्यापी परमात्मा को जानकर बुद्धिमान महापुरुष कभी किसी कारण से शोक नहीं करता।
जो स्थिर न रहने वाले विनाशशील शरीरों में शरीररहित अविचलभाव से स्थित है... ।
शरीर तो परिवर्तनशील है। इस परिवर्तनशील के भीतर वह अपरिवर्तनशील छिपा है। विरोध को जोड़ने की निरंतर चेष्टा है, ताकि अखंड का स्मरण आ जाए। परिवर्तन के भीतर नित्य छिपा है। मरणधर्मा के भीतर अमृत छिपा है। वह जो प्रवाहशील है, उसके भीतर ध्रुव छिपा है। और जो व्यक्ति इस भीतर के अमृत, नित्य को जानने में समर्थ हो जाता है, फिर उसे कोई शोक, कोई दुख ग्रसित नहीं कर सकते।
सारा दुख एक ही बात का है कि हम परिवर्तन से बंधे हैं। और परिवर्तन का अर्थ ही है कि वह बदलेगा। और हम नहीं चाहते हैं कि वह बदले। जवान चाहता है कि शरीर बूढ़ा न हो जाए, शरीर बूढ़ा होगा। बूढ़ा चाहता है कि मर न जाए, शरीर मरेगा। तो जिससे हम बंधे हैं और जिसको हम रोक रखना चाहते हैं, वह रुकने वाला नहीं है। जैसे कोई आदमी नदी के किनारे बैठा है और सोच रहा है कि नदी न बहे, और बहेगी तो दुखी होगा। क्योंकि अपेक्षा पूरी नहीं होती।
सब कुछ बह रहा है। सब कुछ क्षणभंगुर है। लेकिन उस क्षणभंगुर को हम पकड़कर शाश्वत बनाना चाहते हैं। उसी से हमारा दुख पैदा होता है, क्योंकि वह शाश्वत हो नहीं सकता।
एक युवक एक युवती के प्रेम में हो, तो वह उससे कहता है कि सदा-सदा तुझे प्रेम करूंगा। वह युवती भी सोचती है कि सदा-सदा यह प्रेम रहेगा! लेकिन जो बोल रहा है, जहां से यह बात बोली जा रही है, वह देह, वह मस्तिष्क, वह मन क्षणभंगुर है। इससे कही गई कोई भी बात शाश्वत नहीं हो सकती। कल प्रेम बदल जाएगा, राख रह जाएगी पीछे। दीया बुझ जाएगा, बुझी हुई ज्योति रह जाएगी पीछे। तब पीड़ा होगी। तब लगेगा, किसी ने धोखा दिया। कहा था कि सदा-सदा प्रेम करूंगा, और यह प्रेम दिनभर भी न टिका! दुख होगा।
लेकिन दुख का कारण यह नहीं कि किसी ने आपको धोखा दिया। किसी ने धोखा नहीं दिया। परिवर्तन के साथ जो भी शाश्वत बनाने की आकांक्षा रखता है, वह दुख में पड़ता है। उस युवक को भी उस क्षण में ऐसा ही लगा था कि सदा-सदा प्रेम करूंगा, कोई धोखा नहीं दे रहा था। और अब लग रहा है कि प्रेम चला गया, अब क्या कर सकता है!
ईसाइयों का एक संप्रदाय है--क्वेकर। जमीन पर थोड़े से संप्रदाय जो सच में गहरे रूप में धार्मिक होने की कोशिश करते हैं, उनमें क्वेकर्स एक हैं। वे किसी तरह का आश्वासन नहीं देते, कोई प्रामिस नहीं देते। क्योंकि वे कहते हैं, क्षणभंगुर मन से क्या आश्वासन दें? अपना ही भरोसा नहीं है कि कल यही रहेंगे, तो आश्वासन क्या दें?
क्वेकर अदालत में कसम नहीं खाते, इसलिए सैकड़ों क्वेकर्स ने सजा खाई है, सिर्फ इसलिए कि वे अदालत में कसम नहीं खाते। वे कहते हैं, कसम खाए कौन? कल का भरोसा नहीं है। क्षणभर के बाद हम बदल सकते हैं। कसम तो वह खाए, जिसे शाश्वत का भरोसा हो। अदालत कहती है कि खाओ कसम बाइबिल पर हाथ रखकर कि तुम सत्य ही बोलोगे। क्वेकर कहता है कि मैं कसम भी खा लूं तो भी क्या फर्क पड़ता है! क्षणभर बाद मेरा मन सत्य न बोलना चाहे तो मैं क्या करूंगा? इसलिए कसम

नहीं खाता। इसलिए कोई आश्वासन नहीं देता। इसलिए क्वेकर कहता है कि कल का कोई भरोसा नहीं है। अपना ही भरोसा नहीं है। सब बदल रहा है। नदी की तरह सब बहा जा रहा है।
बहती हुई धारा में जो ठहरने की कोशिश करता है, वह दुख पाएगा। वह धारा ठहर नहीं सकती, वह उसका स्वभाव नहीं है।
सिर्फ वही व्यक्ति शोक के पार हो जाता है, शोकवीत हो जाता है, जो भीतर छिपे हुए अविचल को पकड़ लेता है। उसके साथ फिर कभी कोई परिवर्तन नहीं, इसलिए कभी कोई दुख नहीं। वह भीतर का तत्व न कभी बूढ़ा होता है, न कभी मरता है, न कभी बदलता है। वह सदा एकरस है।
यह जो भीतर का अविचल तत्व है, यह परब्रह्म परमात्मा न तो प्रवचन से, न बुद्धि से और न बहुत सुनने से ही प्राप्त हो सकता है। जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह परमात्मा उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रगट कर देता है।
यह थोड़ा-सा कठिन सूत्र है। पर बहुत अनिवार्य है कि ठीक से समझ लिया जाए। इस पर बहुत कुछ निर्भर होता है।
न तो प्रवचन से... ।
कितना ही शास्त्र को पढ़ें, सुनें, समझें, वह परमात्मा उपलब्ध नहीं होता। कोरे शब्द ही हाथ आते हैं, पांडित्य इकट्ठा हो जाता है। बुद्धि भर जाती है। स्मृति सघन हो जाती है। प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं, लेकिन कोई समाधान नहीं मिलता। आत्मा अतृप्त ही रह जाती है।
यह ऐसे ही है, जैसे किसी को प्यास लगी हो और आप उसको समझाएं कि पानी का अर्थ है--एच टू ओ। पानी आक्सीजन और हाइड्रोजन से मिलकर बनता है। और दो उदजन के परमाणु और एक अक्षजन का परमाणु, तीनों से मिलकर पानी बनता है। पानी कोई तत्व नहीं है, असली तत्व आक्सीजन, उदजन है। और जो एच टू ओ को समझ लेता है, उसने जल को समझ लिया। वह आदमी कहेगा, सब ठीक, लेकिन मेरी प्यास!
ध्यान रहे, एच टू ओ से प्यास नहीं बुझती। लिखते रहें बैठकर कागज पर एच
टू ओ, एच टू ओ... । कई लोग लिख रहे हैं--राम, राम; कृष्ण, कृष्ण। लिखे जा रहे हैं! एक पागल आदमी मुझे मिला, उसने एक पूरी लाइब्रेरी बना रखी है। हजारों किताबें भरी रखी हैं। और पूरे मुल्क में उनके भक्त हैं जो लिख-लिखकर--राम, राम, राम, राम--कापियां भर-भरकर वहां भेजते रहते हैं। उनकी लाइब्रेरी में बस ये सिर्फ राम-राम लिखी हुई कापियां हैं। एच टू ओ लिखने से प्यास नहीं बुझती और न राम-राम लिखने से कोई राम को उपलब्ध होता है। समय व्यर्थ होता है। मूढ़ता के प्रतीक हैं।
लेकिन मूढ़ों की कोई कमी नहीं है। सब तरफ हैं। वह आदमी दिन में सुबह बैठकर घंटे दो घंटे खराब करके सोचता है, बड़ा काम कर लिया! क्या होगा तुम्हारे राम-राम लिखते रहने से? यह काम तो प्रेस कर दे सकता है। इसके लिए तुम्हें अपनी बुद्धि लगाने की जरा भी जरूरत नहीं है। और जो प्रेस कर दे, तो प्रेस कोई परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता। आप भी उपलब्ध नहीं हो जाएंगे। वह परमात्मा न तो प्रवचन से उपलब्ध होता है, न शास्त्र से, न बुद्धि से, न बहुत सुनने से।
कोई उपाय नहीं हैं ये उसको पाने के। उसको पाने का तो एक ही उपाय है। और बड़ी अजीब बात यम कह रहा है, वह यह कह रहा है कि जब वह तुम्हें स्वीकार कर ले... ।
वह, परमात्मा जब तुम्हें स्वीकार कर ले, तब उपलब्ध होता है। बड़ी झंझट
की बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि तुम उसके योग्य जिस दिन हो जाओ। तुम अपने को बदलो और इस योग्य बनाओ कि वह तुम्हें स्वीकार कर ले, बस उसी दिन उपलब्ध होता है।
तुम्हारा आत्मिक रूपांतरण, तुम्हारी पात्रता, तुम्हारा इस भांति हो जाना कि कोई उपाय ही न रहे कि तुम्हें अस्वीकार किया जा सके। तुम्हें उसे स्वीकार करना ही पड़े। वह तुम्हें स्वीकार कर ही ले। तुम्हारी ऐसी शुद्धता और निर्दोषता और सरलता, तुम्हारे आचरण में ऐसी सुगंध, तुम्हारे व्यक्तित्व में ऐसी सात्विकता, तुम्हारे होने का ढंग ऐसा ध्यानपूर्ण हो जाए कि उसे तुम्हें स्वीकार करना ही पड़े। तुम उसे मजबूर कर दो। उस स्थिति के अतिरिक्त वह कभी किसी को उपलब्ध नहीं होता है।

शास्त्र पढ़ना बहुत आसान है, जीवन को बदलना बहुत कठिन है। और लोग हमेशा शार्टकट खोजते हैं। जिंदगी में कोई शार्टकट नहीं होते। जिंदगी में तो ठीक रास्ते से ही चलना पड़ता है। रास्ते की पीड़ा भी भोगनी पड़ती है, कष्ट भी झेलने पड़ते हैं। मार्ग के उपद्रव भी सहने पड़ते हैं। भटकन, यात्रा का श्रम, वह सब करना पड़ता है, तो ही कोई पहुंचता है। वह श्रम इसलिए जरूरी है कि उसी श्रम से आप रूपांतरित होते हैं, बदलते हैं, नए होते हैं। यात्रा सिर्फ यात्रा नहीं है, यात्रा रूपांतरण भी है।
यम यह कह रहा है कि जिसको यह स्वीकार कर लेता है, उसके द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि यह परमात्मा उसके लिए अपने यथार्थ स्वरूप को प्रगट कर देता है।
अगर आपको परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, तो आप समझना कि कहीं न कहीं आपमें कुछ ऐसी भूल है, कहीं न कहीं कोई ऐसी बाधा है, जिसके कारण परमात्मा अपने को प्रगट नहीं कर पा रहा है। शायद आप आंख बंद किए खड़े हैं। सूरज सामने है और दिखाई नहीं पड़ रहा है। और अंधे को हम कितना ही प्रवचन दें सूरज के संबंध में, क्या होगा? आंख खोलनी पड़ेगी। व्यक्तित्व को खोलना पड़ेगा।
ध्यान की सारी प्रक्रियाएं व्यक्तित्व को खोलने की प्रक्रियाएं हैं। प्रवचन, शास्त्र, सब बौद्धिक हैं। ध्यान हार्दिक है। और ध्यान आपको बदलेगा। क्योंकि ध्यान का अर्थ है, कुछ आपको करना पड़ रहा है।
एक मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा, आपकी बातें सुनकर बहुत अच्छा लगता है। बहुत भाती हैं। मैंने कहा, वे कितनी ही भाएं और कितनी ही अच्छी लगें, उनसे कुछ होगा नहीं। वह मनोरंजन है। अच्छा लगता है, ठीक है। किसी को फिल्म देखनी अच्छी लगती है, किसी को रेडियो सुनना अच्छा लगता है; आपको मेरी बात सुननी अच्छी लगती है, पर होगा क्या? जब तक आप कुछ न करेंगे, कुछ भी न होगा। जब तक आप न बदलेंगे, कुछ भी न होगा। मेरी बातें इतना ही कर सकती हैं कि आपको बदलने के लिए प्रेरित कर दें, बस और कुछ भी नहीं कर सकतीं। बुद्धपुरुष प्यास जगाते हैं, सत्य नहीं दे सकते। लेकिन अगर आप प्यास
के जगने में ही मजा लेने लगें तो भी मुश्किल हो गई। प्यास ही जग जाए तो क्या होगा? सागर की यात्रा तो आपको करनी पड़ेगी। इसमें कभी झंझट भी हो सकती है। प्यास जगते-जगते आप झंझट में पड़ सकते हैं। यह प्यास ही अगर रस बन जाए, कि सुनने में अच्छा लगता है, पढ़ने में अच्छा लगता है, बुद्धि तृप्त होती है, तो आप जल की तरफ कब जाएंगे? सरोवर कब खोजेंगे?
यम ठीक कह रहा है, सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा भी इस परमात्मा को न तो वह मनुष्य प्राप्त कर सकता है जो बुरे आचरणों से निवृत्त नहीं हुआ... ।
कितनी ही सूक्ष्म बुद्धि हो, और कितना ही प्रगाढ़ चिंतन हो, और कितना
ही तर्कनिष्ठ व्यक्तित्व हो, तो भी परमात्मा को मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता, जो बुरे आचरणों से निवृत्त नहीं हुआ है।
न वह प्राप्त कर सकता है जो अशांत है, न वह कि जिसके मन तथा इंद्रियां संयत नहीं हैं। और न वही प्राप्त करता है, जिसका मन शांत नहीं है।
आचरण भी एक तरह की मूर्च्छा या जागृति है। आप बुरा करते हैं इसलिए कि बेहोश हैं। होश में होंगे, तो बुरा न कर पाएंगे। जागे हुए होंगे तो बुरा होना बंद हो जाएगा। सोए हुए हैं, इसलिए बुरा होता है।
एक आदमी शराब पी लेता है, फिर वह जो भी व्यवहार करता है, वह जो गालियां बकने लगता है, या किसी को चोट पहुंचा देता है--तो हम उससे नहीं कहते कि तू गालियां बकना बंद कर; तू किसी को चोट मत पहुंचा। यह कहना व्यर्थ है। वह शराबी है, उसे कुछ सुनाई भी नहीं पड़ रहा है, समझ भी नहीं पड़ रहा है। ज्यादा से ज्यादा यही हो सकता है कि वह आपको गालियां देने लगे, कि आपको ही चोट कर बैठे। हम अगर समझाएं भी तो हम यह समझाते हैं कि तू शराब मत पी। क्योंकि हम जानते हैं कि जब वह शराब में नहीं होता, बेहोश नहीं होता, तो न गालियां बकता है, न दुराचरण करता है। इसलिए असली सवाल उसका आचरण कम, उसके होश को बढ़ाना ज्यादा है, उसकी बेहोशी को कम करना ज्यादा है।
यम कह रहा है कि आप कितना ही सोच-विचार की बातें करें, कितनी ही समझदारी की बातें करें, लेकिन अगर आपका आचरण नहीं बदलता है, तो वह खबर दे रहा है कि आप भीतर से बेहोश हैं। यह बेहोशी जब तक न टूट जाए! और इस बेहोशी के साथ जुड़ी है अशांति, इस बेहोशी के साथ जुड़ा है इंद्रियों का असंयम! जब

तक यह टूट न जाए असंयम, इंद्रियां संयत न हो जाएं, मन शांत न हो जाए, आप थिर न हो जाएं भीतर, तब तक कोई उस परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता है।
संहारकाल में जिस परमेश्वर के ब्राह्मण और क्षत्रिय, ये दोनों ही, अर्थात संपूर्ण प्राणिमात्र भोजन बन जाते हैं तथा सबका संहार करने वाली मृत्यु भी जिसका उपसेचन अर्थात भोज्य वस्तु के साथ लगाकर खाने का व्यंजन, तरकारी आदि बन जाता है, वह परमेश्वर जहां और जैसा है, यह ठीक-ठीक कौन जानता है!
यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है। परमात्मा को जाना जा सकता है, लेकिन ठीक-ठीक कभी नहीं जाना जा सकता। क्योंकि ठीक-ठीक जानने का अर्थ हुआ कि जानने वाला बड़ा हो जाएगा। आप ठीक-ठीक उसी को जान सकते हैं, जो आपसे छोटा हो, जिसको आप चारों तरफ से घेर लें, जिसको आप सब तरफ से पहचान लें।
परमात्मा को ठीक-ठीक कभी भी कोई नहीं जान सकता। वह रहस्य है और रहस्य
ही रहेगा। आप उसमें कूद सकते हैं, जान सकते हैं कि जान लिया, पहचान सकते हैं कि पहचान लिया, एक हो गए। लेकिन फिर भी आप यह नहीं कह सकते कि ठीक-ठीक जान लिया। आपके जानने में थोड़ी कमी सदा ही रह जाएगी। क्योंकि वह आपसे बड़ा है। वह विराट है। उससे संबंध हो जाएगा, लेकिन उसका पूरा ज्ञान कभी भी नहीं हो सकता।
यह थोड़ा समझ लेने जैसा है।
जैसे एक आदमी सागर में कूद जाए। तो सागर में कूद जाना एक बात है। सागर में डुबकी लगा ली, यह भी एक बात है। और लौटकर वह यह भी कहे कि मैं सागर में स्नान करके लौटा हूं, सागर को जान कर लौटा हूं--यह भी ठीक है। लेकिन सागर बहुत बड़ा है। उस सागर के एक किनारे एक छोटे से जल की परिधि को ही जानकर लौटा है। और वह आदमी सागर में ही रहने लगे, तो भी सागर के एक अंग को और हिस्से को ही जानेगा। एक अर्थ में तो जान लिया उसने, क्योंकि सागर की एक बूंद भी कोई जान ले तो पूरे सागर का सार समझ में आ गया। क्योंकि सागर की एक बूंद में भी वह सब कुछ छिपा है, जो सागर में विराट है। लेकिन फिर भी वह यह नहीं कह सकता कि सागर को पूरा-पूरा जान लिया, ठीक-ठीक जान लिया।
इसे थोड़ा समझें।
विज्ञान का पूरा जोर है इस बात पर कि हर चीज जानी जा सकती है, पूरी- पूरी जानी जा सकती है। और धर्म का जोर है इस बात पर कि सब कुछ जाना जा सकता है, लेकिन पूरा-पूरा कभी भी नहीं। रहस्य शेष रहेगा। दि मिस्ट्री रिमेन्स। धर्म इसलिए रहस्यवादी है। और विज्ञान रहस्य का शत्रु है। वैज्ञानिक कहते हैं कि विज्ञान की परिभाषा है, डिमिस्ट्रीफिकेशन--जहां-जहां रहस्य है, उसको तोड़ना। जहां-जहां रहस्य है, वहां साफ-साफ करना। जहां-जहां चीजें धुंधली हैं, उनको प्रगट करना। और उस दिन विज्ञान पूरी तरह सफल होगा, जिस दिन जगत में कोई रहस्य नहीं रह जाएगा। जिस दिन आप कुछ भी पूछें, उसका उत्तर विज्ञान के पास होगा। धर्म कहता है, ऐसा कभी भी नहीं होगा। और जो विज्ञान में भी बहुत गहरे गए हैं, जैसे आइंस्टीन या प्लांक या ओपनहोइमर जैसे लोग, वे भी यही कहते हैं।
विज्ञान जो स्कूल में पढ़ाता है, वह कोई वैज्ञानिक नहीं है। या कालेज में, यूनिवर्सिटी में जो विज्ञान पढ़ाता है, वह कोई वैज्ञानिक नहीं है। ये तो सिर्फ विज्ञान के पंडित हैं। ये प्रश्न और उत्तर जानते हैं। आइंस्टीन जैसा व्यक्ति, जो कि विज्ञान का संत है, जो विज्ञान में बहुत गहरे गया है, वह आखिरी क्षण में कहता है--अपने जीवन की अंतिम ऊंचाई पर कहता है--कि रहस्य कभी समाप्त न होगा। और हम जितना ही खोज लेते हैं, उतना ही रहस्य बड़ा होता जाता है, कम नहीं होता। क्योंकि जो भी हम खोजते हैं, उस पर नए प्रश्न खड़े हो जाते हैं।
धर्म की यह प्रतीति है कि जगत अनंत रहस्य है। इसलिए यम कहता है, ठीक-ठीक कौन जान सकता है! उससे बड़ा कोई भी नहीं है। ज्ञाता हमेशा ज्ञेय से बड़ा हो, तो ही पूरा-पूरा जान सकता है। लेकिन यहां ज्ञाता है छोटा, और ज्ञेय है बड़ा। यहां एक तितली के पंख हैं, और विराट आकाश है, अंतहीन। इन तितली के पंखों से इस पूरे विराट आकाश को कैसे जाना जा सकता है!

इसका यह मतलब नहीं है कि कोई निराश हो जाए। तितली आकाश में उड़ सकती है। और आकाश का पूरा आनंद ले सकती है। और पूरे को जानने की जरूरत भी क्या है! अपने पंख जहां तक ले जाएं, उतना काफी है, काफी से ज्यादा है।
ज्ञान अनंत यात्रा है, कभी भी चुकता नहीं और समाप्त नहीं होता। यही अर्थ है अनंत सत्य का, अनादि सत्य का--जिसका न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है।
शुभ कर्मों के फलस्वरूप मनुष्य शरीर में परब्रह्म के उत्तम निवासस्थान हृदय-आकाश में बुद्धिरूप परमगुफा में छिपे हुए सत्य का पान करने वाले व अवश्यंभावी कर्म का भोग करने वाले दो भिन्न तत्व हैं। वे छाया और धूप की भांति परस्पर भिन्न हैं, यह बात ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी महापुरुष कहते हैं।
प्रत्येक व्यक्ति के भीतर, उपनिषदों की धारणा है, कि दो तत्व हैं। और
वह धारणा अत्यंत सही है। एक तो है आपके भीतर ज्ञाता और एक है आपके भीतर भोक्ता। उपनिषदों ने कहा है, जैसे एक ही वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हों। एक पक्षी ऊपर बैठा हो और एक नीचे बैठा हो। नीचे का पक्षी उछलता है, कूदता है, फल चखता है, नाचता है, प्रेम करता है, पुकार देता है प्रेयसी को, सब करता है। ऊपर का पक्षी सिर्फ बैठकर नीचे के पक्षी को देखता रहता है। वह कुछ करता नहीं, या सिर्फ देखना ही उसका करना है।
उपनिषद कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति के भीतर दो तत्व हैं। एक उसके भीतर द्रष्टा है जो सिर्फ देखता है, जस्ट विटनेसिंग, सिर्फ साक्षी है, वह कुछ नहीं करता। और एक उसके नीचे तत्व है जो कर्ता है--दुकान चलाता है, लड़ता है, झगड़ता है, मित्रता बनाता है, प्रेम करता है, गृहस्थी बनाता है, संन्यास लेता है। वह कर्ता है। और पीछे एक सिर्फ देखता है--राग-विराग, अच्छा-बुरा, अधार्मिक-धार्मिक, शुभ कर्म, अशुभ कर्म। और दूसरा कर्ता है।
करने वाला तत्व आप नहीं हैं। करने वाला तत्व आपके अनंत जन्मों के कर्मों का जोड़ है। और जब तक वह करने वाला तत्व पूरा न बिखर जाए, तब तक मुक्ति नहीं होती। उसे चाहें आप मन कहें--बौद्धों ने उसे संघात कहा, जैनों ने उसे कर्म-मल कहा--या उसे आप कर्ता-तत्व कहें, जैसा उपनिषद कहते हैं। लेकिन उससे भी गहरे में एक देखने वाला है।
इसे ऐसा समझें, एक चोर चोरी करने जा रहा है। जब चोर चोरी करने जा रहा
है, तब भी उसके भीतर कोई जानता है कि मैं चोरी करने जा रहा हूं। यह जानने वाला है भीतर। आप दुकान चला रहे हैं। कोई भीतर जानता है कि आप दुकान चला रहे हैं। आप जवान हैं। कोई भीतर जानता है कि आप जवान हैं, और बूढ़े होते जा रहे हैं। बीमार हैं। कोई जानता है, आप बीमार हैं।
लेकिन यह जानने वाला तत्व बहुत साफ नहीं है, यही हमारी अड़चन है। इसे
हम भूल-भूल जाते हैं और कर्ता के साथ एक हो जाते हैं, आइडेंटिटी हो जाती है। जब आप जवान से बूढ़े हो रहे हैं, तो आप कहने लगते हैं, मैं ब.ूढा हो रहा हूं। बस वहीं भूल हो जाती है। जब आप क्रोध से भरते हैं, तो आप कहते हैं, मैं क्रुद्ध हो रहा हूं। जब आप दुकान करते हैं, तो आप कहते हैं, मैं दुकान कर रहा हूं।
बुद्ध ने कहा है, भूख पहले भी लगती थी, भूख अब भी लगती है। लेकिन पहले मैं समझता था कि मुझे भूख लग रही है। अब मैं समझता हूं कि मैं देख रहा हूं, शरीर को भूख लग रही है। इतना फासला है। जरा-सा फासला है, लेकिन बहुत बड़ा है। सूक्ष्म, लेकिन अंतहीन।
बीमार होते हैं तो आपको लगता है, मैं बीमार हो गया, यहां भूल है। इतना
ही स्मरण आ जाए कि मैं जान रहा हूं कि शरीर बीमार हो गया, तो आपके भीतर दो तत्व हो गए, एक कर्ता के तल पर और एक द्रष्टा के तल पर।
वह द्रष्टा ही जितना निखरता आए, उतने आप परमात्मा के करीब पहुंचने लगे। और द्रष्टा जितना खोता जाए और कर्ता मजबूत होता जाए, उतना आप संसार में प्रविष्ट होते चले गए। कर्म के साथ एकता जुड़ जाए, तो आप संसार में होते हैं। कर्म के साथ एकता टूट जाए, तो आप परमात्मा के साथ एक हो जाते हैं। यज्ञ करने वालों के लिए जो दुख-समुद्र से पार पहुंचा देने योग्य सेतु है, उस नाचिकेत अग्नि को और संसार-समुद्र से पार होने की इच्छा वालों के

लिए जो भयरहित पद है, उस अविनाशी परब्रह्म पुरुषोत्तम को जानने और प्राप्त करने में हम समर्थ हों।
हे नचिकेता! तुम जीवात्मा को तो रथ का स्वामी, उसमें बैठकर चलने वाला समझो, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि, रथ को चलाने वाला समझो, और मन को लगाम। ज्ञानीजन इस रूपक में इंद्रियों को घोड़े बतलाते हैं और विषयों को उन घोड़ों के विचरने का मार्ग बतलाते हैं, तथा शरीर, इंद्रिय और मन--इन सबके साथ रहने वाला जीवात्मा ही भोक्ता है, ऐसा कहते हैं।
जो सदा विवेकहीन बुद्धि वाला और अवशीभूत चंचल मन से युक्त रहता है, उसकी इंद्रियां असावधान सारथि के दुष्ट घोड़ों की भांति वश में न रहने वाली हो जाती हैं।
बहुत पुराना भारतीय प्रतीक है कि मनुष्य जैसे एक रथ है। उसके भीतर एक मालिक है, गहरे में बैठा हुआ रथ के, वह साक्षी है। फिर घोड़े हैं, वे इंद्रियां हैं। घोड़ों को सम्हाल रखने वाली लगाम है, वह मन है। घोड़े जिस पथ पर दौड़ रहे हैं, वह वासना है। सारथि है, जो लगाम को सम्हाले हुए है, वह मन है। और उन सबके पीछे गहरे में रथ में छिपा बैठा जो साक्षी है, जो द्रष्टा है, वही परम तत्व है। जो उसको पहचानने लगता है, उसके सारे रथ की यात्रा संयत हो जाती है।
लेकिन हम उसको पहचानते ही नहीं। हम घोड़ों के पास ठहरे हुए हैं, या घोड़ों में रमे हुए हैं। फिर बहुत घोड़े जुते हैं रथ में। सब घोड़े अलग-अलग भगा रहे हैं। एक घोड़ा एक तरफ, दूसरा घोड़ा दूसरी तरफ।
तो जीवन बड़ा द्वंद्व और कलह है। एक मन कहता है, यह करो। और दूसरा मन कहता है, यह करो। तीसरी इंद्रिय पुकारती है, यह करो। उन सबके बीच इतना कनफ्यूजन, इतना विभ्रम हो जाता है कि आपको कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करो, क्या न करो? गीता पढ़ने बैठे हैं, एक इंद्रिय पुकारती है कि फिल्म देखने चलो। एक इंद्रिय कहती है, क्या व्यर्थ समय खराब कर रहे हो! यह बुढ़ापे में करने का काम है। गीता बाद में पढ़ लेना। और जल्दी भी क्या है? और यह सब चल रहा है भीतर। तो गीता भी पढ़ रहे हैं, यह भीतर चल भी रहा है। सब घोड़े अलग-अलग भाग रहे हैं। रथ इन घोड़ों के साथ घसिट रहा है।
अगर कोई आदमी थोड़ा-सा सम्हलता है, तो घोड़ों से हटकर मन में अपने को केंद्रित करता है। मन है सारथि। अगर कोई आदमी और थोड़ा सम्हलता है, तो सारथि से भी पीछे हटता है। क्योंकि सारथि भी मालिक नहीं है, वह भी नौकर है। और नौकर के साथ अपने को एक कर लेना खतरे में जाना है।
सरकते-सरकते आदमी रथ के ठीक भीतर आ जाता है, जहां साक्षी बैठा हुआ है, जहां देखने वाला बैठा हुआ है। उस मालिक के साथ एक होते ही जीवन का स्वामित्व उपलब्ध होता है। आप पहली दफा अपने सम्राट हो जाते हैं। उसके बाद भूल-चूक अपने आप बंद हो जाती है। उसके बाद दुराचरण गिर जाता है।
एक ही यात्रा है कि घोड़ों से हटकर धीरे-धीरे साक्षी तक पहुंच जाएं।
साक्षी पर जो ठहर गया, उसके जीवन में फिर कोई दुख, कोई पीड़ा, कोई संताप नहीं है।
अब ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
सातवां प्रवचन

धर्म का आधार-सूत्रः विवेक

यस्तु विज्ञानवान भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः।। 6।।

यस्त्वविज्ञानवान भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति सन्सारं चाधिगच्छति।। 7।।

यस्तु विज्ञानवान भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद भूयो न जायते।। 8।।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्।। 9।।

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान परः।। 10।।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः।। 11।।

जो सदा विवेकयुक्त बुद्धि वाला (और) वश में किए हुए मन से संपन्न रहता है, उसकी इंद्रियां सावधान सारथि के अच्छे घोड़ों की भांति वश में रहती हैं।। 6।।

जो कोई सदा विवेकहीन बुद्धि वाला, असंयतचित्त (और) अपवित्र रहता है,
वह उस परमपद को नहीं पा सकता, अपितु बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्र में ही भटकता रहता है।। 7।।

परंतु जो सदा विवेकशील बुद्धि से युक्त, संयतचित्त (और) पवित्र रहता है, वह उस परमपद को प्राप्त कर लेता है, जहां से (लौटकर) पुनः जन्म नहीं लेता।। 8।।

जो (कोई) मनुष्य विवेकशील बुद्धिरूप सारथि से संपन्न और मनरूप लगाम
को वश में रखने वाला है, वह संसारमार्ग के पार पहुंचकर सर्वव्यापी परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के उस सुप्रसिद्ध परमपद को प्राप्त हो जाता है।। 9।।

क्योंकि इंद्रियों से शब्दादि विषय बलवान हैं, और शब्दादि विषयों से
मन (प्रबल) है, और मन से भी बुद्धि बलवती है (तथा) बुद्धि से भी महान आत्मा (उन सबका स्वामी होने के कारण) अत्यंत श्रेष्ठ और बलवान है।। 10।।
उस जीवात्मा से भी बलवती है भगवान की अव्यक्त मायाशक्ति। अव्यक्त माया से भी श्रेष्ठ है परमपुरुष स्वयं परमेश्वर। परमपुरुष भगवान से श्रेष्ठ और बलवान कुछ भी नहीं है, वही सबकी परम अवधि (और) वही सबकी परम गति है।। 11।।

मनुष्य की अशांति, मनुष्य के मन के भीतर निरंतर का द्वंद्व, तनाव, चिंता, मनुष्य की बेचैनी और विक्षिप्तता, एक ही बात से जन्म पाती है, और वह है मनुष्यों के व्यक्तित्वों में बहुत-सी पर्तों का होना।
मनुष्य एक नहीं है, बहुत-सी पर्त है।

शरीर है; शरीर की एक पर्त है। और शरीर की पर्त की अपनी वासनाएं हैं, अपनी इच्छाएं हैं। शरीर का अपना आकर्षण है। अपने मोह, अपने लोभ, अपनी कामनाएं हैं।
फिर शरीर के भीतर मन की पर्तें हैं। मन की अपनी वासनाएं हैं। अपनी आकांक्षाएं हैं। और मन के भी भीतर बुद्धि है, विवेक है। उस विवेक की कामना बिल्कुल भिन्न है। और इन तीनों पर्तों की वासनाओं में आपस में बड़ा विरोध है।
शरीर कहता है कुछ करो। मन कहता है कुछ और करो। विवेक सुझाता है कुछ और। और तब मनुष्य के भीतर एक भीड़ हो जाती है, संघर्ष की; एक उपद्रव, एक अराजकता हो जाती है।
अगर मनुष्य केवल शरीर होता तो कोई अशांति न होती। अगर मनुष्य अकेला
मन होता तो भी कोई अशांति न होती। अगर मनुष्य केवल आत्मा होता तो भी कोई अशांति न होती। इसलिए पशु मनुष्य से कम अशांत हैं। क्योंकि पशुओं के पास शरीर ही है। मन की थोड़ी-सी झलक है, और जितनी झलक है उतनी अशांति वहां भी है।
पौधे और भी शांत हैं। वृक्ष और भी शांत हैं। कोई चिंता नहीं, कोई तनाव नहीं। मन की वहां हलकी-सी झलक भी नहीं।
मनुष्यों में भी जितना विचारशील व्यक्ति होगा, उतना अशांत हो जाएगा। जितना बुद्धिहीन व्यक्ति होगा, उतना कम अशांत होगा।
इसलिए जैसे-जैसे शिक्षा बढ़ती है, विचार की क्षमता बढ़ती है, बुद्धि तीव्र होती है, वैसे-वैसे अशांति बढ़ती है। अमरिका में पागलों की संख्या सर्वाधिक है। उससे आप प्रसन्न मत होना; उससे आप यह मत सोचना कि हम बड़े सौभाग्यशाली हैं। उसका कुल अर्थ इतना है कि अमेरिका आज बुद्धि के जगत में सर्वाधिक विकसित है।
संपन्न घरों में तनाव और चिंता ज्यादा होगी। होना उलटा चाहिए। विपन्न, दीन-हीन, दरिद्र घरों में उतनी अशांति नहीं है। संपन्न घरों में अशांति है, क्योंकि संपन्नता के साथ बुद्धि भी बढ़ती है। बुद्धि के बढ़ने के साथ संपन्नता बढ़ती है। जितना विपन्न आदमी है, उतना बुद्धि का भी विकास नहीं है। अन्यथा वह भी संपन्न हो गया होता। विपन्न आदमी दुखी, दीन है; अशांत नहीं है।
अर्थ यह हुआ कि हमारे भीतर जितनी पर्तें होंगी ज्यादा, उतना संघर्ष होगा।
अकेला शरीर में कोई जी सके, तो विक्षिप्त होने का कोई कारण नहीं है। लेकिन अकेले शरीर में आप जी नहीं सकते, मन पीछे खड़ा है। शरीर कुछ कहता है, मन कुछ कहता है। आप भोजन कर रहे हैं। शरीर कहता है, पेट भर गया। मन कहता है, स्वादिष्ट है, थोड़ा और लिया जा सकता है। बुद्धि कहती है, नासमझी कर रहे हो, क्योंकि यह रुग्णता का कारण होगा, बीमारी बढ़ेगी। तीन पर्तें हो गईं, कलह भीतर शुरू हो गई।
शरीर कोई नीति-नियम नहीं मानता। शरीर तो ठीक पशु जैसा है। लेकिन मन बड़े द्वंद्व में होता है। मन के पास भी पशुओं जैसी वासना है, लेकिन मन के पास मनुष्य के संस्कार भी हैं। समाज का दिया हुआ ज्ञान भी है, अंतःकरण भी है। भूख लगी है। शरीर तो कहेगा, चोरी कर लो, कोई हर्ज नहीं है। क्योंकि शरीर के तल पर कोई हर्ज होता भी नहीं। लेकिन मन बेचैनी अनुभव करेगा। अहंकार कहेगा कि अगर चोरी करते पकड़ लिए गए, बदनामी होगी। मन यह कहेगा
कि अगर चोरी ही करनी है, तो इस ढंग से करो कि पकड़े न जाओ। लेकिन भीतर बुद्धि है--और भी गहरे में--वह कहेगी, इससे कोई संबंध नहीं कि तुम पकड़े गए या नहीं पकड़े गए। चोरी की, कि गलत हुआ। और बुद्धि को कांटा सालता रहेगा। न भी पकड़े गए तो भी बुद्धि पीड़ा पाएगी कि बुरा हुआ।
मनुष्य की अशांति है उसके बहुत पर्तों में बंटे होने के कारण। इस बात
को ठीक से समझ लें तो दूसरी बात समझने में आसान हो जाएगी। वह दूसरी बात यह है कि जिस तल पर उपद्रव होता है, उसी तल पर आप उसी तल की शक्ति से उस उपद्रव को शांत नहीं कर सकते। उससे ऊंचे तल पर, उससे बड़ी शक्ति के द्वारा उपद्रव शांत हो सकता है।
अगर शरीर के तल पर कठिनाई है, तो शरीर ही उसे हल करने में समर्थ नहीं है, उसे मन हल कर सकता है। और अगर मन के तल पर कठिनाई है, तो मन ही उसे हल

करने में समर्थ नहीं है, उसे बुद्धि हल कर सकती है। और अगर बुद्धि के तल पर कोई कठिनाई है, तो बुद्धि उसे हल करने में समर्थ नहीं है, उसके लिए तो आत्मा के निकट ही पहुंचना पड़े। और अगर आत्मा के तल पर कोई कठिनाई है, तो सिवाय परमात्मा के तल पर पहुंचे उसका कोई हल नहीं है।
इसका मतलब यह हुआ कि जहां कठिनाई है, उससे ऊंचे तल पर उसका हल खोजना होगा।
हम अक्सर उसी तल पर हल खोजते हैं, इससे कठिनाई बढ़ती है, घटती नहीं। समझें। शरीर में वासना उठती है, आंखें रूप की तलाश करती हैं। ऐसे कुछ संतों की कथाएं हैं, कि उन्होंने आंखें निकालकर फेंक दीं, क्योंकि आंख रूप को खोजती है। शरीर रूप की खोज कर रहा है। लेकिन आंख को निकालकर फेंक देना उसी तल पर है, तल के ऊपर उठना नहीं है।
शरीर ही आकर्षित हो रहा है, शरीर को ही आप चोट पहुंचा रहे हैं। शरीर की आंखें निकाल फेंक देने से कोई भी हल न होगा। अंधा भी, आंखें मिट जाने पर भी वासना से ग्रस्त ही रहेगा। शायद आंखें होतीं तो इतना ग्रस्त न होता। आंखें खो जाने से और भी कठिनाई बढ़ जाएगी।
अनेक परंपराओं ने कहा है कि जो अंग कष्ट दें उन्हें काट देना। आप जानकर हैरान होंगे, रूस में ईसाइयों का एक बहुत बड़ा संप्रदाय है, जो जननेंद्रियां काट देता था। उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति के बाद जब कानूनन रोक लगाई गई, तब बामुश्किल उस संप्रदाय को जननेंद्रिय काटने से रोका जा सका। कोई दस लाख लोग रूस में थे, जिन्होंने अपनी जननेंद्रियां काटकर फेंक दी थीं, सिर्फ इस ख्याल से कि जननेंद्रिय के काटने से कामवासना से छुटकारा हो जाएगा।
जननेंद्रिय के काटने से कामवासना का कोई छुटकारा नहीं हो सकता। क्योंकि कामवासना अगर जननेंद्रिय में ही होती पूरी, तो भी कोई बात थी। कामवासना तो मस्तिष्क में है, गहरे में है। जननेंद्रिय तो मस्तिष्क का ही एक हिस्सा है। और जो सुख मिलता है संभोग का, वह जननेंद्रिय के तल पर नहीं मिलता, वह मिलता तो मस्तिष्क के तल पर है।
आपको ज्यादा भोजन में रस है, तो लोग उपवास कर लेते हैं--लेकिन उसी तल पर। जहां जबर्दस्ती भर रहे थे शरीर में, अब जबर्दस्ती रोक लेते हैं। लेकिन तल नहीं बदलता। और जब तक तल न बदले, तब तक जीवन में कोई क्रांति नहीं हो सकती। सिर्फ ऊंचा तल नीचे तल का मालिक हो सकता है। दूसरी बात।
तीसरी बात स्मरण रखें कि अगर आप उसी तल पर व्यवस्था जुटाने की कोशिश करेंगे, तो आपके जीवन में दमन, रिप्रेशन हो जाएगा। और सारी जिंदगी विषाक्त हो जाएगी। लेकिन अगर दूसरे तल को आप सजग करते हैं, तो दमन की कोई भी जरूरत नहीं है। दूसरे तल की शक्ति के मौजूद होते ही पहला तल विनत हो जाता है, झुक जाता है।
मन है और मन की ही सारी कठिनाई है। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं,
इस मन से कैसे छुटकारा हो? लेकिन मन से छुटकारे का वे जो भी उपाय करते हैं, वह भी सब मन का ही काम है। मन से छुटकारे के लिए मंदिर चले जाते हैं। वह मंदिर भी मन का बनाया हुआ खेल है। मन से छुटकारे के लिए शास्त्र पढ़ने लगते हैं। वे शास्त्र भी मन से निर्मित हुए हैं। मन से छूटने के लिए मंत्रोच्चार करने लगते हैं। वे मंत्रोच्चार मन की ही परिधि में हैं। माला जपने लगते हैं। व्रत-नियम ले लेते हैं। कसमें खा लेते हैं। वे कसमें भी मन ही खा रहा है।
एक मित्र मेरे पास आए। उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। लेकिन व्रत लेने से कहीं ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है! अगर इतना आसान होता, तो व्रत लेने की क्या कठिनाई थी? उन्होंने मुझे आकर कहा कि बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। यह व्रत ले लिया है, लेकिन यह सध तो नहीं रहा है। और मन तो बेचैन है। और इतना बेचैन कभी भी नहीं था, जितना अब है। और इतनी वासना भी कभी मन में नहीं थी, जितनी अब है। जब से यह व्रत लिया है, तब से ऐसा हो गया है कि मन में सिवाय वासना के और कुछ भी नहीं है। पहले तो कुछ और बातें भी सोच लेता था। अब तो बस एक ही धुन लगी है!
व्रत लेते ही नासमझ हैं। समझदार व्रत नहीं लेता। समझदार विवेक को जगाता है, व्रत नहीं लेता। क्योंकि व्रत का मतलब है, उसी तल पर उपद्रव

करना। जैसे एक छोटी-सी कक्षा है और उसमें बच्चे लड़ रहे हैं और शोरगुल मचा रहे हैं। और शिक्षक कमरे में प्रवेश कर जाए, एकदम सन्नाटा हो जाता है। बच्चे अपनी जगह बैठ गए हैं, किताबें उन्होंने खोल ली हैं, जैसे कि कहीं कुछ भी नहीं हो रहा था। एक दूसरे तल की शक्ति कमरे के भीतर आ गई। उसकी मौजूदगी रूपांतरण है।
जैसे ही आप ऊंचे तल की शक्ति को जगा लेते हैं, नीचे तल का संघर्ष, उपद्रव एकदम शांत हो जाता है। यह बात बड़ी समझ लेने जैसी है। क्योंकि जहां भी आपके जीवन में अड़चन हो, सीधे उससे लड़ने मत लग जाना। उसके पीछे की शक्ति को जगाने की कोशिश करना।
तो जो मुझसे पूछते हैं, मन को कैसे शांत करें, उनको मैं कहता हूंः मन
की फिकर ही मत करो। मन को कुछ मत करो। तुम विवेक को जगाओ; तुम होश से भर जाओ। मन के साथ संघर्ष मत करो, क्योंकि संघर्ष करने वाला मन ही होगा। यह जो शांत होने के लिए कह रहा है, यह भी मन है।
तो मन मन से लड़े, दो टुकड़ों में बंटकर, तो लड़ाई ऐसी होगी जैसे मेरा दायां हाथ बाएं हाथ से मैं लड़ाने लगूं। कोई जीतेगा नहीं, कोई हारेगा नहीं। और मेरी मौज है, जब चाहूं तो बाएं को ऊपर कर लूं और जब चाहूं तो दाएं को ऊपर कर लूं। दोनों मेरे हाथ हैं और दोनों में मेरी ही शक्ति प्रवाहित है। जीत-हार का कोई उपाय नहीं है। कभी मैं चाहूं तो बाएं हाथ के साथ अपना तादात्म्य कर लूं, कि मैं बायां हाथ हूं। और कभी चाहूं तो दाएं के साथ तादात्म्य कर लूं, कि मैं दायां हाथ हूं।
तो कभी आप मन के उस हिस्से से राजी हो जाते हैं, जो वासना से भरा है। और कभी मन के उस हिस्से से राजी हो जाते हैं, जो व्रत, संकल्प, साधना की बातें सोचता है। यह बदलता रहता है, घड़ी के पेंडुलम की तरह। एक क्षण यह, दूसरे क्षण वह। क्योंकि दोनों हाथ आपके हैं।
संघर्ष के तल के ऊपर, पीछे, गहरे में कोई तत्व खोजना जरूरी है, जो जाग सके। विवेक बुद्धि का सार है। विवेक का अर्थ है, एक प्रकार की सजगता, एक तरह का होश। कार्य में, विचार में, एक तरह की सावधानी, एक तरह का सतत स्मरण, अवेयरनेस।
आप रास्ते पर चल रहे हैं। चलना यांत्रिक है। चलना आपको पता है कैसे चला जाता है, शरीर चलता चला जाता है। आपको कोई होश रखने की जरूरत नहीं है, कि आप चल रहे हैं, कि पैर उठाया जा रहा है। श्वास ले रहे हैं। श्वास चलती चली जाती है, यांत्रिक है। श्वास के लिए आपको कुछ करने की जरूरत नहीं है। होश बिल्कुल आवश्यक नहीं है।
लेकिन आप होशपूर्वक भी श्वास ले सकते हैं। बुद्ध ने अपनी पूरी साधना श्वास और होश के ऊपर आधारित की थी। बुद्ध कहते थे अपने भिक्षुओं को कि तुम अगर होशपूर्वक श्वास लेने लगो, तो सब ठीक हो गया।
इतनी सरल बात, और सब ठीक हो जाए! यह सरल ऊपर से दिखती है, भीतर बहुत जटिल है। और ऊपर सरल दिखती है वैसे, जैसे बिजली का बटन दबाएं और हजारों बल्ब जल जाएं। कोई पूछे कि जरा-सा यह बटन और इसको दबाने से हजारों बल्ब कैसे जल सकते हैं? बटन तो दिखाई पड़ता है, भीतर तारों का बड़ा जाल है, वह दिखाई नहीं पड़ता, वह छिपा है।
होश सरल-सी बात है, लेकिन अति कठिन है। बुद्ध कहते हैं, तुम सिर्फ अपनी श्वास को होशपूर्वक लेने-छोड़ने लगो, बस। क्या हो जाएगा इतने से? इतने से सब कुछ हो जाता है। क्योंकि भीतर का तत्व जो विवेक है, वह जगने लगता है। वह किसी भी प्रक्रिया के द्वारा जगाया जा सकता है।
कोई भी प्रक्रिया आप होशपूर्वक करने लगें, आपकी बुद्धि सजग होने लगेगी। और जैसे ही बुद्धि सजग होती है, मन शांत होने लगता है, क्योंकि मालिक मौजूद हो गया। नौकर चुपचाप बैठ जाता है; आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगता है।
विवेक समस्त धर्मों का सार है, और मूर्च्छा समस्त अधर्म का आधार है।
हम जो भी कर रहे हैं, अगर वह मूर्च्छित है, तो वह पाप है; और अगर वह होशपूर्वक है, तो पुण्य है। कोई कृत्य न तो पुण्य होता है और न पाप। इस बात पर निर्भर होता है कि करते समय चेतना की अवस्था क्या थी? चेतना अगर सजग थी... ।

ऐसा हुआ कि बुद्ध एक गांव से गुजर रहे थे। तब वे बुद्ध नहीं हुए थे। तब
वे खोज में लगे थे और साधक थे, सिद्ध नहीं हुए थे। एक मित्र से बात कर रहे थे। तभी एक मक्खी उनके सिर पर आकर बैठ गई, तो बात उन्होंने जारी रखी, रास्ते पर चलते रहे, मक्खी को उड़ा दिया--जैसा आप उड़ा देते हैं। फिर तत्क्षण रुक गए, फिर हाथ को उठाया और उस जगह ले गए जहां मक्खी अब नहीं थी। उड़ाया--उस मक्खी को जो अब नहीं थी--हाथ को वापस लाए।
उस मित्र ने कहा, आपका मस्तिष्क तो ठीक है न? क्या उड़ा रहे हैं अब? बुद्ध ने कहा, मैं ऐसे उड़ा रहा हूं जैसे मुझे उड़ाना चाहिए था--होशपूर्वक। तुमसे बात में लगा रहा, मूर्च्छा से मक्खी को उड़ा दिया। वह हाथ मेरा यंत्रवत उठ गया। मेरी सावधानी उसमें न थी, अब मैं हाथ को सावधानीपूर्वक ले गया हूं। इस हाथ की गति में मेरा पूरा बोध है। इस हाथ के साथ मैं भी गया हूं। मक्खी मैंने उड़ाई है, उड़ाते वक्त मेरा मन कहीं और नहीं है, उड़ाने की क्रिया में ही मौजूद है। स्मृतिपूर्वक। यह बुद्ध का शब्द है। होशपूर्वक मैंने मक्खी उड़ाई। पहली दफा मैंने भूल की। पाप हो गया।
मक्खी को कोई चोट भी नहीं लगी थी। पाप का कोई कारण भी नहीं था। लेकिन बुद्ध कहते हैं कि पहली दफा पाप हो गया, क्योंकि मैं मूर्च्छित था। और अगर मैं मक्खी मूर्च्छा से उड़ा सकता हूं, तो मैं कुछ भी कर सकता हूं मूर्च्छा में। मैं हत्या भी कर सकता हूं। क्योंकि मूर्च्छित आदमी का क्या भरोसा? जो बिना होश के कुछ भी कर सकता है, उससे कुछ भी हम आशा नहीं रख सकते। उससे कुछ भी पाप हो सकता है। मैंने मक्खी ऐसे उड़ाई जैसी मुझे उड़ानी चाहिए थी। बुद्ध अपने भिक्षुओं को कहते थे--उठो, बैठो, चलो, लेकिन बस भीतर एक स्मृति का दीया जला रहे। जो कदम तुम भूल से उठा लो मूर्च्छा में, उसे वापस लौटा लो। फिर से कदम को उठाओ होशपूर्वक।
जैसे-जैसे कोई व्यक्ति अपनी क्रियाओं में जागरूकता साध लेता है--भोजन करता है, आंख झपकाता है, श्वास लेता है... । थोड़ा प्रयोग करके देखें, आप चकित हो जाएंगे कि आप कितने शांत हो जाते हैं--एकदम। मन को कुछ करना नहीं पड़ता। कोई इलाज मन का नहीं करना पड़ता। सिर्फ क्रियाओं में जागरूकता और आप पाते हैं कि मन शांत हो गया।
मन अशांत है मूर्च्छा के कारण। एक नशा है जो छाया हुआ है। इस नशे को तोड़ना जरूरी है। ये सूत्र इस नशे को तोड़ने की तरफ इशारे हैं।
जो सदा विवेकयुक्त बुद्धि वाला और वश में किए हुए मन से संपन्न रहता है, उसकी इंद्रियां सावधान सारथि के अच्छे घोड़ों की भांति वश में रहती हैं।
समझ लें। आमतौर से हम शुरू करते हैं--घोड़ों को वश में करना। हम इंद्रियों के साथ लड़ना शुरू कर देते हैं। और हम सोचते हैं, एक-एक इंद्रिय पर कब्जा करके जीत लेंगे। कभी कोई जीतता नहीं, सिर्फ विनष्ट होता है। और चीजें इतनी विकृत और परवर्टेड हो जा सकती हैं कि जीवन में कोई अर्थ ही न रह जाए, और जीवन आत्महत्या जैसा मालूम होने लगे। लेकिन अनेक हैं, तथाकथित बुद्धिमान लोग, वे इंद्रियों से ही लड़ते रहते हैं। कोई भोजन से लड़ रहा है, कोई कामवासना से लड़ रहा है, कोई किसी और चीज से लड़ रहा है, लेकिन लड़ाई जारी है, इंद्रियों से।
इंद्रियों से लड़ना ऐसा ही है, जैसे कोई अपने नौकरों से लड़ने लगे। नौकरों को आज्ञा देने की जरूरत होती है, लड़ने की कोई जरूरत ही नहीं होती। लड़ने का मतलब यह है कि तुमने नौकर को समान मान लिया। भूल हो गई। और जिसने नौकर को समान मान लिया, वह नौकर से जीत न सकेगा; नौकर उससे जीतेगा। एक दफा नौकर को पता चल जाए कि मालिक समान मानता है, और ताल ठोंककर लड़ने को तैयार है... क्योंकि लड़ने का मतलब ही होता है, वह सिर्फ समान से हो सकता है। और अगर लड़ाई हो सकती है, तो फिर नौकर जीत भी सकता है। वह भी पूरी कोशिश करेगा। इंद्रियां लड़ने योग्य नहीं हैं। लड़कर ही भूल हो जाती है। और अगर आप इंद्रियों से लड़कर हार गए--जो कि निश्चित है, क्योंकि जिसे अपनी मालकियत का अनुभव नहीं है, वह हार ही जाएगा; लड़ने जा रहा है, वहीं भूल हो गई--अगर आप इंद्रियों से हार गए, तो आप सदा के लिए हताश हो जाएंगे।
मैं कलकत्ते में एक घर में मेहमान था। और एक बहुत समृद्ध और बहुत समझ
के बूढ़े व्यक्ति ने मुझसे कहा कि मैं अपने जीवन में चार बार ब्रह्मचर्य का

व्रत ले चुका हूं। मेरे साथ एक मित्र थे, वे बड़े प्रभावित हुए। मैंने उनसे कहा कि इतने प्रभावित मत हों, पहले इसका मतलब तो समझो। चार बार कोई ब्रह्मचर्य का व्रत किसलिए लेगा? एक ही बार काफी है! और फिर मैंने कहा कि जिसे चार बार लेना पड़ा है, तुम यह भी तो पूछो कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? वे बूढ़े सच में ईमानदार आदमी थे, उन्होंने कहा कि आपने ठीक सवाल उठाया। पांचवीं बार इसीलिए नहीं लिया कि चार बार इतना असफल हो गया, कि यह आशा ही छोड़ दी कि विजय हो सकती है।
अगर आप इंद्रियों से लड़ेंगे, तो एक उपद्रव हो जाने वाला है, और वह यह
कि अगर आप हारे--और आप हारेंगे--हार तो वहीं शुरू हो गई, जहां आपने लड़ने का निर्णय लिया। आपको मालकियत का पता ही नहीं; जिसको लड़ने की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ होश काफी है और इंद्रियां अपने रास्ते पर खड़ी हो जाएंगी। और हार गए अगर, तो हताश हो जाएंगे। और तब सोचेंगे, इंद्रियां बहुत प्रबल हैं, इनसे छुटकारा नहीं हो सकता। और एक बार यह हताशा मन में बैठ जाए, तो जीवन सदा के लिए अंधकार में रह जाता है।
हम सब हताश हैं। हम सबने भरोसा खो दिया है। और हमारी इस हताशा का कारण हमारे तथाकथित साधु-संन्यासी हैं, जो हमें लड़ना सिखाते हैं, जागना नहीं सिखाते। उन्होंने आपको कठिनाई में डाल दिया है।
मेरे पास मित्र आते हैं, वे कहते हैं कि मैं बीस साल हो गए, सिगरेट से
लड़ रहा हूं!
तुम्हें लड़ना ही था तो कुछ बड़ी चीज चुनते! सिगरेट से लड़ रहे हो? तुम अपनी आत्मा की कोई कीमत भी नहीं मानते! और बीस साल से लड़ रहे हो और सिगरेट से भी नहीं जीत पाए! तो कैसे तुम्हें भरोसा आएगा कि तुम्हारे भीतर परमात्मा है? तुम हताश हो ही जाओगे। किसने तुम्हें कहा, किस नासमझ ने तुम्हें यह कहा कि सिगरेट से लड़ो। सिगरेट पीनी थी तो पीते, मालिक तो बने रहते! छोड़नी थी तो छोड़ते, मालिक बने रहते! लड़कर क्यों उपद्रव कर लिया? और बीस साल! और सिगरेट जीत रही है और तुम हार रहे हो!
क्षुद्र से भूलकर भी मत लड़ना। क्षुद्र से लड़ने का मतलब यह है कि विराट
का संग खो गया। विराट को खोजना, क्षुद्र से लड़ना मत। विराट की मौजूदगी पर क्षुद्र अपने आप हार जाता है। बड़े को लाना, छोटे को मिटाने की कोशिश ही मत करना।
सुनी होगी वह कहानी अकबर की, जिसमें उसने एक लकीर खींच दी है दीवार पर,
और अपने दरबारियों को कहा है कि इसे बिना छुए छोटा कर दो। मुश्किल हो गई। वे सब दरबारी आपके तथाकथित साधु-संन्यासियों जैसे रहे होंगे। बिना लकीर को काटे-पीटे छोटी होगी कैसे?
बीरबल उठा, उसने एक बड़ी लकीर उसके पास खींच दी। बड़ी लकीर खिंचते ही वह छोटी हो गई, उसे छूने की जरूरत न रही। उसे काटा भी नहीं, उसे मिटाया भी नहीं।
जीवन की कला यही है कि छोटे के सामने बड़े को खड़ा कर दो। छोटे से लड़ने
मत जाओ, वह तुम्हें छोटा कर देगा।
ध्यान रहे, मित्र तो कोई भी चल जाएगा, शत्रु बहुत सोच-समझकर चुनना। जिसने छोटा शत्रु चुन लिया, वह छोटा हो जाएगा। मित्रों से लोग इतना नहीं सीखते, जितना शत्रुओं से सीखते हैं। क्योंकि शत्रुओं के साथ चौबीस घंटे का संघर्ष होता है। और धीरे-धीरे दोनों शत्रु बराबर एक-से हो जाते हैं। अगर सौ साल तक दो शत्रु लड़ते रहें, तो करीब-करीब मरते समय वे जुड़वां भाइयों जैसे हो जाएंगे। एक-से हो जाएंगे। यह सौ साल का सतत संघर्ष सत्संग है। और एक-दूसरे से लड़कर वे एक-दूसरे की कला सीख रहे हैं। लड़ना हो तो कला सीखनी ही होती है कि दूसरा क्या कर रहा है, उसका हिसाब रखना पड़ता है। धीरे- धीरे वे समान होते चले जाते हैं। शत्रु आमतौर से समान हो जाते हैं। मित्रों में तो भेद बने रहते हैं। शत्रुओं के भेद मिट जाते हैं।
भीतर इस बात को ठीक से ख्याल में रख लेना कि छोटी किसी चीज से शत्रुता
मत लेना।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं--बड़ी कीमत की बात कहते हैं, इस संदर्भ में भी जरूरी है, समझने जैसी है--मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि कोई भी पिता अपने बेटे

से ऐसी बात कभी न कहे, जिसे वह पूरा न करवा सके। एक दफा हार गया कि फिर बेटे के मन में कभी प्रतिष्ठा बाप की नहीं रहेगी।
जैसे समझ लें, आपका छोटा बच्चा आपके सामने बैठा रो रहा है, और आप कहते हैं--रोना बंद कर! आपकी ताकत है रोना बंद करवाना? और वह रोए चला जा रहा है, और आप कह रहे हैं--रोना बंद कर! आप ज्यादा से ज्यादा मार सकते हैं। मारने से वह और रोएगा। रोना बंद करवाना बहुत मुश्किल है।
और एक दफा बच्चे को पता चल गया कि अरे! तुम कहे चले जा रहे हो कि रोना बंद करो, मैं रो रहा हूं, और तुम कुछ भी नहीं कर पा रहे हो, तुम्हारी सारी शक्ति खो गई। इस बच्चे के मन में तुम्हारी स्थिति ठीक हो गई, कि तुम कोई बड़े शक्तिशाली नहीं हो।
फ्रॉयड ने कहा है कि बेटे इस कारण बुरी तरह बिगड़ते हैं कि बाप उनसे ऐसी बात करवाना चाहते हैं जो करवा नहीं सकते। फ्रॉयड ने कहा, ऐसी बात कहना ही मत। तुम वही कहना जो तुम करवा सको। तुम कहो कि निकल जा कमरे के बाहर! तुम निकाल तो सकते हो कम से कम कमरे के बाहर। उसको इतना भरोसा तो रहेगा कि बाप जो कहता है, उसे पूरा कर सकता है।
इस संदर्भ में भी यह याद रखने जैसा है कि अपनी इंद्रियों से वही आप कहना, जो आप पूरा करवा सकें। अन्यथा कहना ही मत। रुकना अभी, ठहरना। क्योंकि एक बार इंद्रियों को यह पता चल जाए कि तुम कहते रहते हो, तुम्हारी बातों का कोई मूल्य नहीं, सब बकवास है; कि तुम निर्णय लेते रहते हो, सब व्यर्थ है। तुम संकल्प बांधते हो, व्रत करते हो, कोई मूल्य का नहीं। इंद्रियों को एक दफा पता चल जाए कि तुम अपने मालिक नहीं हो, तुम्हारी हर चीज तोड़ी जा सकती है, फिर ये घोड़े तुम्हारे वश में आने वाले नहीं हैं। लेकिन हर आदमी ने यही कर लिया है। और बड़े समझदार लोग समझा रहे हैं लोगों को, कि ऐसा करो।
व्रत वही लेना, जो पूरा हो सके। लेकिन जो पूरा हो सके, उसका आदमी व्रत लेता ही नहीं है।
इसे समझ लें। जो पूरा हो सकता है, उसको आप पूरा कर लेते हैं। व्रत की क्या जरूरत है? व्रत तो आप तभी लेते हैं, जिसे आप जानते हैं यह पूरा न हो सकेगा, इसलिए व्रत का सहारा लेते हैं। तो कसम खाते हैं कि इसको करके दिखाऊंगा। लेकिन करके किसको दिखाइएगा! और अगर न दिखा पाए, तो आप अपनी ही आंखों में गिर जाएंगे। और उस आदमी से ज्यादा दीन कोई भी नहीं है, जो अपनी आंखों में गिर जाता है।
तो मैं कहता हूं, शराब पीना हो पीना, सिगरेट पीना हो पीना, जो तुम्हें करना हो करना, लेकिन मालिक रहकर। लड़ाई मत खड़ी कर देना कि मालकियत टूट जाए। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं कह रहा हूं कि तुम शराब पीते ही रहना, सिगरेट पीते ही रहना। मैं यह कह रहा हूं कि भीतर एक और तत्व है, जो संघर्ष से पैदा नहीं होता, जो सजगता से पैदा होता है; वह विवेक है। तुम उसे जगाना, तुम उसकी साधना में लग जाना। इन क्षुद्र चीजों से मत लड़ना। यह लड़ाई बेमानी है। समय और शक्ति का अपव्यय है। और तुमने किसी तरह अगर सिगरेट भी छोड़ दी, तो तुम नास नाक में डालने लगोगे। या तुम कुछ पान खाने लगोगे, या तंबाकू! क्योंकि वह जो उपद्रव था, वह नया रास्ता खोज लेगा। लेकिन इंद्रियां अपनी मालकियत इतनी आसानी से नहीं छोड़तीं।
यह सूत्र उलटी यात्रा बता रहा है। यह कह रहा है कि जो सदा विवेकयुक्त बुद्धि वाला और वश में किए हुए मन से संपन्न रहता है, उसकी इंद्रियां सावधान सारथि के अच्छे घोड़ों की भांति वश में रहती हैं।
असली बात हैः विवेकयुक्त बुद्धि वाला। वह हो, तो मन संयत हो जाता है।
मन संयत हो, तो इंद्रियां वश में आ जाती हैं। इसलिए असली खोज विवेक की है। जो कोई सदा विवेकहीन बुद्धि वाला, असंयत चित्त और अपवित्र रहता है, वह
उस परमपद को नहीं पा सकता, अपितु बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्र में ही भटकता रहता है।
हमारा भटकाव हमारी मूर्च्छा है, अविवेक है। हम ऐसे चल रहे हैं जैसे जन्म से ही शराब पिए हों। एक आदमी अगर साठ साल जीए तो बीस साल तो सोता है। एक तिहाई। यह तो पक्का ही है कि बीस साल सोता है। बीस साल छोटा वक्त नहीं है। जिंदगी का एक तिहाई हिस्सा है। बाकी जो चालीस साल बचते हैं, उन चालीस

साल में भी ऐसे कुछ ही क्षण हैं जब आदमी सपने नहीं देखता, नहीं तो सपने देखता रहता है।
बैठे हैं घर में कुर्सी पर, सपना चल रहा है। सोच रहे हैं कि राष्ट्रपति हो गए हैं, कि अचानक घर में धन की वर्षा हो गई। और ऐसा नहीं कि इतने पर रुक जाते हैं। उस धन का क्या उपयोग करें? कैसे उस धन का महल बनाएं? क्या करें, क्या न करें? वह सब शुरू हो जाता है।
शेखचिल्ली की कहानियां बच्चों की किताबों में नहीं हैं, हर आदमी के
मन में हैं। और हर आदमी बनाए चला जाता है। और एक दफा बनाता है, ऐसा नहीं है, रोज बनाता है। और फिर जरा-सा होश आता है तब हंसता है, कि यह मैं क्या बात कर रहा हूं, छोड़ो सब। लेकिन फिर घड़ी दो घड़ी बाद सिलसिला शुरू हो जाता है स्वप्न का।
बीस साल तो गहन निद्रा में, चालीस साल सपनों में। उसमें कभी-कभी कोई क्षण होते हैं, अगर सब जोड़े जाएं, तो गुरजिएफ कहा करता था कि पांच मिनट से ज्यादा नहीं हैं पूरे साठ साल की जिंदगी में, जब आदमी कभी-कभी क्षणभर को होश में आता है। वह होश की झलकें आती हैं और खो जाती हैं। इतने-से होश से कोई परमात्मा तक नहीं पहुंच सकता। इतने-से होश से तो कहीं पहुंचने का कोई उपाय नहीं। और यह होश भी कब आता है, जब जीवन में कोई अड़चन होती है, कोई भय होता है, कोई दुर्घटना होती है।
आप अपनी कार चला रहे हैं, या साइकिल चला रहे हैं। चले जाते हैं--अपना सपना देखते हुए। हाथ रोबोट की तरह गाड़ी का स्टीयरिंग सम्हालते हैं। मन सपने देख रहा है, भीतर बातचीत चल रही है। जहां आपको पहुंचना है, भीतर आप पहुंच ही गए। जहां से आप आ गए हैं, अभी वहां से आए ही नहीं। गाड़ी चली जा रही है। अचानक एक्सिडेंट की हालत हो जाती है--सामने एक ट्रक आ गया। एक सेकेंड को होश आता है, मन रुक जाता है, विचार टूट जाते हैं, सपने छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। एक सेकेंड को।
आपने कभी ख्याल किया है, अगर एक्सिडेंट का कभी आपको क्षण आया हो, एकदम
से चोट नाभि पर लगती है। नाभि जीवन का मूल है। चोट लगते ही नाभि से एक झलक रोशनी की पूरे चित्त पर फैल जाती है। एक सेकेंड के लिए आप होश से भर जाते हैं। उतनी देर को भर आप होश से स्टीयरिंग सम्हालते हैं। ट्रक चला गया। धड़कन थोड़ी देर धड़कती रहेगी, शांत हो जाएगी। श्वास बढ़ गई थी, धीमी हो जाएगी। सपना वापस लौट आया। फिर अपनी दुनिया में खो गए।
दुर्घटना के क्षणों में कभी-कभी थोड़ा-सा होश आता है। पत्नी मर गई, पति
मर गया, बेटा मर गया। एक क्षण को सदमा लगता है। नाभि पर चोट पड़ती है। एक रोशनी भीतर झलक जाती है। एक क्षण को होश आता है कि मौत है, कि जीवन सदा रहने वाला नहीं, कि जिनको हमने चाहा है वे विदा हो जाएंगे। तो ये प्रेम के सारे घर ताश के घर हैं। कि हमने रेत पर महल बनाया है। तो एक सेकेंड को! और वह सेकेंड इतना छोटा होता है कि हमें कभी-कभी तो उसका पता ही नहीं चलता कि वह कब आया और चला गया। फिर हम छाती पीटकर रोने लगे, दुखी होने लगे, अतीत-भविष्य की सोचने लगे, वह क्षण खो गया।
ऐसा गुरजिएफ कहता था, अगर आदमी की पूरी साठ साल की जिंदगी में जोड़ा जाए तो मुश्किल से ज्यादा से ज्यादा पांच मिनट, और यह भी इकट्ठा नहीं। यह भी इकट्ठा नहीं, यह भी टुकड़ों-टुकड़ों में मिलता है। कभी सूरज उग रहा है और उसके सौंदर्य ने आपको झकझोर दिया। कभी एक बगुलों की कतार आकाश से गुजर गई, काले बादलों की पृष्ठभूमि में एक क्षण को कौंध गई बिजली और आप रुक गए। कभी किसी पक्षी ने गीत गाया और उसकी आवाज भीतर की ध्वनि को चोट कर गई और मन रुक गया। ऐसे मुश्किल से थोड़े-से क्षण। यही हमारे आनंद के क्षण भी हैं। जागृति का क्षण ही आनंद का क्षण है। सोए हुए क्षण सब दुख के क्षण हैं।
यह जागृति अगर कोई सावधानीपूर्वक उठाना शुरू करे अपने भीतर, तो उठ सकती है।
आप एक छोटा-सा प्रयोग करें अपने घर। सुबह उठ आएं। यह पूजा-प्रार्थना
से ज्यादा कीमती होगा। अपनी घड़ी को सामने रख लें, उसके सेकेंड के कांटे पर नजर रखें, और एक ही बात का ख्याल रखें कि मैं सेकेंड के कांटे को एक मिनट तक, जब तक यह पूरा चक्कर लेगा, होशपूर्वक देखता रहूंगा। होश नहीं चूकूंगा, देखता ही रहूंगा, कि कांटा घूम रहा है, घूम रहा है, घूम रहा है।

लेकिन आप चकित होंगे कि दो-चार सेकेंड बाद मन कहीं और चला गया, कांटा भूल गया। दो-चार सेकेंड बाद! साठ सेकेंड भी पूरा आप मन को कांटे पर नहीं रख सकते। पच्चीस बातें आ जाएंगी। यही ख्याल आ जाएगा कि घड़ी कहां की बनी है, स्विस मेड है? कितने ज्वेल्स लगे हैं? वह छोटा-सा घूमता कांटा पच्चीस चीजें ख्याल दिला देगा।
कोशिश करें! अगर आप कोशिश करें तो तीन महीने लगेंगे, जब आप पूरे एक मिनट कांटे पर ध्यान रख सकेंगे। यह बड़ी उपलब्धि है, छोटी उपलब्धि नहीं है। एक सेकेंड का कांटा पूरा चक्कर ले, उस पूरे वर्तुल पर ध्यान। तीन महीने लग जाएगा आपको विवेक जगाने में। इतना कठिन है विवेक।
लेकिन अगर आप एक मिनट को भी विवेक को जगा लें, आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। वह पुराना आदमी आपको लगेगा ही नहीं कि आपसे संबंधित था। वह कहानी किसी और की मालूम पड़ेगी। वह मर गया, वह जो पीछे था, अब कुछ नए जीवन का अवतरण हुआ।
क्योंकि इस व्यक्ति के जीवन की व्यवस्था बिल्कुल अनूठी और नई होगी।
मन इसका मालिक नहीं होगा। जो एक मिनट भी जाग सकता है, मन उसका गुलाम हो जाता है। जो एक मिनट जाग सकता है, कोई वासना उसे खींच नहीं सकती। क्योंकि वह जागकर रह सकता है।
यह बड़े मजे की बात है कि वासना खींच लेती है आपको, क्योंकि आप बेहोश होते हैं, सोए होते हैं। क्रोध आपको पकड़ नहीं सकता। जब भी कोई चीज आपको पकड़े, आप जाग सकते हैं, इतनी कला आपको आ गई। जो एक मिनट जाग सकता है, वह किसी भी घड़ी में, कामवासना मन को पकड़े, वह जाग सकता है। वह रीढ़ को सीधी कर लेगा और एक क्षण को जाग जाएगा। और अचानक एक अनूठा अनुभव होता है, आपके जागते ही वासना एकदम तिरोहित हो जाती है, जैसे थी ही नहीं।
बुद्ध ने कहा है कि जिस घर में दीया जलता है, उस घर में चोर नहीं झांकते। दीया बुझा है, चोर प्रवेश कर जाते हैं। बुद्ध ने कहा है, जिस घर के द्वार पर बैठा हुआ पहरेदार है, उस घर की तरफ चोर देखते भी नहीं। जिस द्वार पर पहरेदार सोया हुआ है, चोरों के लिए निमंत्रण हो जाता है।
वासनाएं चोरों की भांति हैं। आपका पहरेदार जागा हो, कि आपके भीतर का दीया जलता हो, तो वासनाएं झांककर भी नहीं देखेंगी। और आप सोए हैं और खर्राटे की आवाज आ रही है, तो वासनाएं आपको घेर लेंगी। मूर्च्छा में, अंधकार में, सोए हुए होने में वासनाओं का बल है।
जो कोई सदा विवेकहीन बुद्धि वाला, असंयतचित्त और अपवित्र रहता है, वह
उस परमपद को नहीं पा सकता, अपितु बार-बार जन्म-मृत्युरूप संसार-चक्र में भटकता रहता है।
मूर्च्छा ही भटकाती है बार-बार। यह कई बार ऐसा लगता है कि बार-बार जन्म-मृत्यु का यह चक्र, समझ में नहीं आता, क्योंकि हमें अनुभव में नहीं, ख्याल में नहीं है। हमें उसका कोई स्मरण नहीं है। इसको छोड़ दें। एक और तरह से इस बात को समझें तो ख्याल में आ जाए।
आप कितनी दफे जिंदगी में क्रोध कर चुके हैं, और कितनी दफे पश्चात्ताप
कर चुके हैं, और कितनी दफे तय कर चुके हैं कि अब क्रोध नहीं करूंगा, लेकिन फिर करते हैं। कितनी बार वासना ने आपको पकड़ा, आप बेहोश हुए, पागल हुए, और कितनी बार पीछे से पछताए, और मन ने विषाद अनुभव किया, और मन दुखी और पीड़ित हुआ, और मन ने सोचा कि अब नहीं, बस बहुत हो गया। लेकिन यह कितनी बार हो चुका है!
बार-बार, एक गाड़ी के चाक की तरह आप घूम रहे हैं। चाक का वही आरा अभी नीचे जाता मालूम पड़ता है, घड़ीभर बाद फिर ऊपर आ जाता है। क्रोध का आरा अभी ऊपर, नीचे जाता मालूम पड़ता है। जब वह नीचे जाता है, तब आप पश्चात्ताप कर लेते हैं। फिर वह ऊपर आ जाता है। फिर नीचे जाता है, फिर पश्चात्ताप कर लेते हैं। गाड़ी के चाक के आरों की भांति आपका जीवन एक वर्तुल में घूम रहा है। और इसलिए इस बात को समझने में बहुत कठिनाई नहीं है कि यही वर्तुल इस जन्म से शुरू नहीं हो रहा है, इस मृत्यु पर समाप्त नहीं हो रहा है।
अभी मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे के गर्भ में रहते हुए भी उसका व्यक्तित्व होता है--भिन्न। पैदा होने के बाद तो होने ही वाला है भिन्न, गर्भ में भी भिन्न होता है। कुछ बच्चे गर्भ में ही एग्रेसिव होते हैं और

मां के पेट में लातें मारते हैं। आक्रामक और हिंसक होते हैं। कुछ बच्चे इतने उदासचित्त होते हैं कि उनके कारण मां उदास हो जाती है, जब बच्चे गर्भ में होते हैं। कुछ बच्चे इतने प्रसन्न और आनंदित होते हैं कि उनके कारण मां प्रफुल्लित और आनंदित हो जाती है। क्योंकि मां उनकी तरंगों से आंदोलित होती है। वे दोनों जुड़े हुए हैं।
इसलिए अक्सर स्त्रियों का व्यक्तित्व गर्भावस्था में बदल जाता है। क्योंकि एक नया व्यक्ति और एक नई आत्मा संयुक्त हो जाती है। उसके भी प्रभाव काम करने लगते हैं। इसलिए गर्भावस्था में स्त्री का व्यक्तित्व भिन्न हो जाता है। शांत स्त्री अशांत हो सकती है, अशांत शांत हो सकती है।
बच्चे के जन्म के बाद वह वापस लौट आएगी अपने ढर्रे में। लेकिन नौ महीने में एक नई धारा उसके भीतर प्रवाहित होती है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पहले ही क्षण से बच्चे का अपना व्यक्तित्व है।
यह व्यक्तित्व कहां से वह लेकर आता होगा! इसके पीछे लंबी कथा होनी चाहिए। कोई बच्चा आज पैदा नहीं हो रहा है। अनंत-अनंत जन्मों की यात्रा है, वह उनको लेकर पैदा हो रहा है।
जब बच्चा मां के पेट में होता है, तो हर बच्चे के साथ अलग स्वप्न मां
को आते हैं। इसलिए जैनों ने और बौद्धों ने तो पूरा स्वप्न-विज्ञान निर्मित किया था। कि जब तीर्थंकर पैदा होता है तो मां को कैसे स्वप्न आएंगे। उन स्वप्नों से पता चल जाएगा कि होने वाला बेटा तीर्थंकर है, या बुद्धपुरुष है। अनेक तीर्थंकर और अनेक बुद्धपुरुषों की मां को जो अनुभव हुए थे और जो स्वप्न आए थे, उनको संगृहीत किया गया और उनको छांटकर एक पूरा विज्ञान बना लिया गया कि जब भी किसी स्त्री को गर्भ की अवस्था में ये स्वप्न आ जाएं, तो समझना कि इस तरह की आत्मा भीतर प्रवेश कर गई। उसके प्रभाव से ऐसे स्वप्न आने शुरू होते हैं।
यह जो व्यक्तित्व है, यह कोई समाज, संस्कार, व्यवस्था से पैदा नहीं होता। यह व्यक्ति अपने साथ लेकर आता है। आपका मन बड़ा प्राचीन है। अनंत-अनंत अनुभव उसके पास संगृहीत हैं, बीज की तरह, अति सूक्ष्म। उन सूक्ष्म अनुभवों का यह जो जोड़ है, यह कोई आज ही एक चाक की तरह नहीं घूम रहा है, यह घूमता ही रहा है। इसलिए हमने संसार को एक चक्र कहा है, एक व्हील।
यह सूत्र कहता है कि जो संयतचित्त नहीं, विवेक जिसका जागरूक नहीं, जो निर्दोष और पवित्र नहीं, वह बार-बार लौटकर जन्म और मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है।
परंतु जो सदा विवेकशील बुद्धि से युक्त, संयतचित्त और पवित्र है, वह
उस परमपद को प्राप्त कर लेता है, जहां से लौटकर पुनः जन्म नहीं होता।
यह परमपद की धारणा भारत के मन को बड़े प्राचीन समय से पकड़े हुए है। कैसे इस चक्र के बाहर होना हो। मुक्ति, बड़ी अनूठी धारणा है और भारत की अपनी है। मोक्ष भारत की अपनी धारणा है। और करोड़ों-करोड़ों बुद्धपुरुषों के अनुभवों का सार है, कि कैसे इस चक्र के बाहर छलांग लगाई जाए। कैसे कोई इस चक्र के बाहर हो जाए।
और जब तक इस चक्र से कोई बंधा है, तब तक कोई दुख से छुटकारा नहीं हो सकता। क्योंकि जो छूट गया वह फिर आ जाएगा। जो लगता है गया हुआ, वह फिर लौट आएगा। और हम बिल्कुल बंधे हैं, और हमारे हाथ में कुछ भी नहीं है। इस बंधन के बीच एक ही धागा है जो स्वतंत्रता की तरफ ले जा सकता है, वह धागा विवेक का है।
एक आदमी कारागृह में बंद है और सोया हुआ है। क्या सोया हुआ आदमी कारागृह से किसी भी तरह बाहर निकल सकता है? सोए हुए आदमी को पहले तो पता ही नहीं चलता कि वह कारागृह में है। और सोए हुए आदमी को अगर स्वप्न में पता भी चल जाए कि वह कारागृह में है, तो भी वह निकलने के लिए क्या करेगा? उसकी आंखें बंद हैं और वह सोया हुआ पड़ा है, वह बेहोश है। और अगर वह स्वप्न में कुछ चेष्टा भी करे तो वह चेष्टा व्यर्थ होगी, क्योंकि वह स्वप्न में होगी, सत्य से उसका कोई संबंध न होगा।
कारागृह से निकलने के लिए पहली शर्त है कि सोया हुआ कैदी जाग जाए। जाग जाए तो फिर कुछ हो सकता है।

गुरजिएफ, जिसने पश्चिम में इस सदी में जागरूकता पर बड़े गहन प्रयोग किए हैं--ठीक महावीर और बुद्ध जैसे गहन प्रयोग इस सदी में करने वाला व्यक्ति गुरजिएफ था--गुरजिएफ कहता था कि आदमी इतना सोया हुआ है कि अकेले आदमी पर भरोसा ही नहीं किया जा सकता कि वह जाग सकता है। इसलिए गुरजिएफ कहता था कि स्कूल वर्क इज नीडेड। अकेले आदमी से नहीं होगा यह, इसलिए एक समूह की जरूरत है।
जैसे समझें कि एक रात अंधेरी है, चोरों का डर है, जंगली जानवरों का भय है, और आप दस आदमी एक जंगल में रुके हैं। आप यह भरोसा नहीं कर सकते कि एक आदमी को हम पहरे पर बिठाल दें तो वह जागा रहेगा। तो आप ऐसा इंतजाम करते हैं, कि एक आदमी दो घंटे जागे, फिर वह दूसरे को जगाए, वह दो घंटे जागे, फिर वह तीसरे को जगाए, वह दो घंटे जागे। एक आदमी जागता रहे और दूसरा उसको देखता रहे कि वह जाग रहा है कि नहीं, सो तो नहीं रहा है। वह झपकी खाए तो दूसरा उसको जगाए। कि दूसरे के पीछे तीसरा लगा रहे। और ध्यान रखे कि वह झपकी तो नहीं खा रहा है, कि उसकी नजर तो नहीं चूक गई?
इसको गुरजिएफ कहता था, स्कूल वर्क। इसको वह कहता था--एक समूह।
इसलिए गुरजिएफ ने पश्चिम में छोटे-छोटे स्कूल निर्मित किए थे, जिनमें
वह थोड़े-से लोगों को साथ लेकर कोशिश करता था कि वे एक-दूसरे को जगाने की कोशिश करते रहें। कोई सो न जाए। बड़े सालों की मेहनत के बाद यह हालत पैदा हो पाती है कि लोग जागना सीखते हैं। कारागृह में सोया हुआ आदमी तो सोच ही नहीं सकता कि कारागृह से कैसे निकलना? जागरण पहली बात है।
और सोए हुए आदमी को जागने के दो ही उपाय हैं। या तो कोई जागा हुआ उसे जगाए, यही गुरु का अर्थ है। सोया हुआ आदमी सोया है, उसे यह भी पता नहीं कि मैं सोया हूं। क्योंकि यह भी उसे ही पता हो सकता है जो जागा हो, सोने का पता भी तो जागने में चलता है। आप जब सुबह जागते हैं, तब आपको पता चलता है कि रात सोए, बड़े मजे से सोए। यह तो नींद में पता नहीं चलता। यह तो जागने का अनुभव है कि रात सोए, मजे से सोए, ठीक से सोए, नींद अच्छी आई। यह नींद का अनुभव नहीं है। सोए हुए आदमी को पता ही नहीं कि वह सो रहा है। अगर आप आज रात सोएं और बीस साल तक न जागें, तो आपको यह पता भी नहीं चलेगा कि सुबह कभी की हो चुकी।
मैं एक स्त्री को देखने गया था, वह नौ महीने से सोई हुई है। नींद में
ही मूर्च्छित हो गई। कोमा हो गया। अब वह कभी उठेगी नहीं, डॉक्टर कहते हैं। तीन साल तक पड़ी रह सकती है इसी नींद में। उस स्त्री को पता भी नहीं होगा कि सुबह हो चुकी बहुत दिन पहले, नौ महीने पहले। वह अभी भी सो रही है। उसे पता होगा? पता ही नहीं होगा। उसे यह पता होगा कि सो रही है।
अभी वह अगर जागे, तो अगर वह शुक्रवार की रात सोई होगी तो जागते से ही
वह पूछेगी, क्या शनिवार हो गया? सुबह का उसे ख्याल आएगा और वह कहेगी, रात बड़ी गहरी नींद आई। उसे यह ख्याल भी नहीं आ सकता कि नौ महीने... वह तो जागे हुए लोगों का ख्याल है।
गुरु का अर्थ इतना ही है कि सोए हुए आदमी को कोई जगा सकता है जो जागा हुआ हो। लेकिन बड़ा खतरा है। गुरु का काम थोड़ा खतरनाक है। क्योंकि किसी सोए आदमी को जगाना, नाराज करना है उसको। तुम उसकी नींद तोड़ रहे हो! वह मजे से सपना ले रहा है। वह विश्राम कर रहा है, तुम नाहक उसको परेशान कर रहे हो। इमेनुएल कांट जर्मनी का एक दार्शनिक हुआ। उसने एक नौकर रख छोड़ा था। नौकर का काम इतना था कि सुबह उसे चार बजे उठा दे। उसे ब्रह्म-मुहूर्त में उठने की झक थी। और आदमी वह ऐसा था कि जो उसे उठाए उससे वह लड़ाई-झगड़ा करता। तो नौकर इसीलिए रख छोड़ा था, क्योंकि उसके परिवार का कोई उठाने को राजी न था। क्योंकि वह गाली बकता, गलौज करता, कभी मारता भी--सुबह उसकी चार बजे जो भी नींद तोड़ता। लेकिन ब्रह्म-मुहूर्त में उठने की उसको झक भी थी। तो एक नौकर ही रख छोड़ा था। उसका काम ही यह था कि मार-पीट भी हो जाए तो कोई फिकर नहीं, उठाकर ही रहेगा। उसकी आज्ञा ही थी कि चाहे मैं मारूं, तुझे भी मारना पड़े तो मारना, लेकिन चार बजे उठाना है।
गुरु का काम उपद्रव का है। इसलिए गुरुओं पर लोग नाराज हो जाते हैं। जीसस को हम सूली पर लगा देते हैं। वह गुस्सा है सोए हुए लोगों का, कि हमारी नींद खराब कर रहे हो!

ऑस्पेंस्की ने अपनी एक किताब अपने गुरु गुरजिएफ को डेडिकेट की है, समर्पित की है। उसमें लिखा है--गुरजिएफ को, जिसने मेरी नींद तोड़ी।
मगर जब तोड़ी थी, तब बड़ी पीड़ा का काम था, बड़े कष्ट का काम था।
तो गुरु शिष्य के बीच एक संघर्ष है। क्योंकि शिष्य सोना चाहता है।
असल में वह आया इसीलिए है कि तुम ऐसी तरकीब बताओ कि वह अच्छी तरह सो सके। वह आया भी नहीं कि जागे। वह कहता है, शांति से सो सकूं, ऐसा कुछ रास्ता! गुरु और शिष्य के प्रयोजन अलग हैं। शिष्य चाहता है कि किसी तरह शांति
से सो सके, अच्छी गहरी नींद आए। वह इसी प्रयोजन से आता है। शांति की तलाश में आते हैं लोग। सत्य की तलाश में तो शायद ही कोई आता है। मुझसे कोई नहीं पूछने आता कि सत्य कैसे मिले। जो भी आता है, वह कहता है, शांति कैसे मिले? वह नींद की खोज कर रहा है, वह कोई ट्रैंक्वेलाइजर खोज रहा है। कोई जो सम्मोहित कर दे और वह मजे से सो जाए।
गुरु का प्रयोजन दूसरा है। एक अर्थ में गुरु शिष्य का दुश्मन है। क्योंकि वह आया है नींद की तलाश करने, और गुरु उसको नींद की तलाश का आश्वासन देता है कि ठीक है, शांत हो जाओगे, आओ; वह जगाएगा। लेकिन जगाने से पहले अशांति बढ़ेगी। शांति तो बहुत बाद में आएगी। जागने से पहले अशांति बढ़ेगी, क्योंकि नींद में जिनका कुछ भी पता नहीं था, वे सब उपद्रव पता चलने शुरू हो जाएंगे।
जैसे ही कोई व्यक्ति ध्यान करता है, वैसे ही उसकी अशांति बढ़नी शुरू होती है। क्योंकि जो चीजें उसे कल दिखाई नहीं पड़ती थीं, वे अब दिखाई पड़ती हैं। कोई अशांति बढ़ती नहीं। अशांति सदा थी, लेकिन होश ही नहीं था। अब जहां- जहां कांटे लगे हैं, वे सब चुभते हैं। वे सदा से चुभ रहे थे, लेकिन बेहोशी में पता नहीं चलता था। अब सारी मुसीबतें मालूम होने लगती हैं।
साधक का जीवन पहले बड़ी अशांति से गुजरता है। वही तपश्चर्या है। उससे
जो गुजर जाता है, वह शांति को उपलब्ध होता है।
लेकिन गुरु की आकांक्षा शांति के लिए नहीं है। गुरु की आकांक्षा सत्य
के लिए है; परम सत्य के लिए है। परम सत्य की छाया है शांति। जिसे परम सत्य मिलता है, वह शांत तो हो ही जाता है। लेकिन इस सारी यात्रा का मूल-सूत्र है विवेक। और जो विवेक को उपलब्ध है, वह परमपद को पा जाता है और उस जगह पहुंच जाता है जहां से कोई लौटना नहीं है।
जो कोई मनुष्य विवेकशील बुद्धिरूप सारथि से संपन्न और मनरूप लगाम को
वश में रखने वाला है, वह संसार मार्ग के पार पहुंचकर सर्वव्यापी परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान के उस सुप्रसिद्ध परम पद को प्राप्त हो जाता है।
यह थोड़ा समझ लेने जैसा है, क्योंकि लोगों को इस संबंध में बड़ी भ्रांतियां हैं। आमतौर से लोग समझते रहते हैं कि भगवान कोई व्यक्ति है, जिससे हमारा मिलन होगा, जिसका हम साक्षात्कार करेंगे। यह बिल्कुल ही असत्य है।
भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, जिससे आपकी मुलाकात होगी और आप कोई इंटरव्यू लेंगे। भगवान एक अवस्था है। जैसे ही आप उस अवस्था के करीब पहुंचेंगे, आप भगवान होते जाएंगे। जिस दिन आप उस अवस्था में पूरे डूब जाएंगे, आप भगवान हो जाएंगे। वहां कोई बचेगा नहीं, जिससे आप मुलाकात लेंगे। आप ही हो जाएंगे।
भगवान के दर्शन का अर्थ भगवान हो जाना है, क्योंकि भगवान एक पद है, वह
एक अवस्था है। वह चेतना की आखिरी ऊंचाई है। वह आपके भीतर ही छिपे हुए बीज का आखिरी रूप से खिल जाना है। वह जो छिपा है, उसका प्रगट हो जाना है।
तो भगवत्ता एक अवस्था है। इसलिए अच्छा है, भगवान शब्द से भी ज्यादा अच्छा शब्द है भगवत्ता, क्योंकि उससे अवस्था का पता चलता है, न कि व्यक्ति का--दिव्यता, गॉडलीनेस। बजाय गॉड, ईश्वर कहने के बजाय, भगवान कहने के बजाय, ब्रह्म कहने के बजाय--भगवत्ता, ब्रह्मपद।
लेकिन आदमी की कठिनाई है। क्योंकि आदमी की जो भाषा है, वह सभी चीजों
को प्रतीक में, संकेत में बदल लेती है। हम सभी चीजों को बदल लेते हैं। अभी भारत में आजादी की लड़ाई चलती थी तो घर-घर में फोटुएं टंगी थीं भारतमाता की। वह कहीं है नहीं। लेकिन फोटुएं टंगी थीं--माता के पैरों में जंजीरें पड़ी हैं, हाथ में तिरंगा झंडा है। भारतमाता! और भारतमाता की जय बोलते-

बोलते अनेक भूल गए होंगे। भारतमाता जैसा कोई कहीं कुछ है नहीं। प्रतीक है। प्रतीक प्यारा है, काव्यात्मक है, लेकिन तथ्य नहीं है।
भगवान भी बस प्रतीक है। वहां कोई बैठा हुआ भगवान नहीं है। आप ही हो जाएंगे। इसलिए भगवान की खोज असल में भगवान होने की खोज है। और जब तक कोई भगवान न हो जाए, तब तक जीवन में यह खोज जारी रहती है। रहेगी ही। क्योंकि इसी की तलाश है, इसी की प्यास है।
जैसे बीज जमीन में पड़ा हो तो तड़पता है, कि वर्षा हो तो फूट जाए, अंकुरित हो। रास्ते में कंकड़-पत्थर पड़े हों तो उनको भी, कोमल-सा बीज भी उनको हटाकर या उनसे बचकर निकलने की कोशिश करता है। फूटता है, जमीन पर आता है, उठता है आकाश की तरफ। और जब तक फूल न खिल जाएं, तब तक बीज की दौड़ जारी रहती है।
आदमी भी एक बीज है। कहें कि वह भगवान का बीज है। भगवत्ता का बीज है। और
जब तक टूटकर भगवान का फूल न खिल जाए, तब तक बेचैनी जारी रहेगी। यह बेचैनी सृजनात्मक है, क्रिएटिव है। इस बेचैनी के बिना आप तो भटक जाएंगे।
इसलिए धन्य हैं वे, जो आध्यात्मिक बेचैनी से भरे हुए हैं। अभागे हैं वे, जिनको कोई बेचैनी नहीं। जो कहते हैं, हमें कुछ जरूरत ही नहीं है।
मेरे पास कई लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान की क्या जरूरत है? क्या करना है खोजकर भगवान को? धर्म से क्या लेना-देना है?
इस पृथ्वी पर इनसे ज्यादा अभागा और कोई भी नहीं है। ये बीज हैं जो कह रहे हैं--क्या करना है फूटकर? क्या होगा अंकुर बनकर? और क्या फायदा है आकाश में उठने का? और सूरज की यात्रा से क्या मिलने वाला है? तो ये बीज बीज ही रह जाएंगे, कंकड़-पत्थर की तरह पड़े रहेंगे। दुखी होंगे। दुखी हैं, लेकिन उनकी समझ में नहीं आ रहा है कि दुख क्या है।
मेरी दृष्टि में एक ही दुख है जीवन का--आप जो होने को पैदा हुए हैं, अगर
न हो पाए, तो आप दुखी होंगे। और एक ही आनंद है जीवन का कि आप जो होने को पैदा हुए हैं, हो गए। नियति पूरी हो गई। वह जो छिपा था, अनछिपा हो गया, प्रगट हो गया। और जब तक आप वही न हो जाएं जो होने की आपकी क्षमता है--और वह क्षमता भगवान होने की है--तब तक जीवन से पीड़ा, संताप का अंत नहीं है।
और यह सौभाग्य की बात है कि अंत नहीं है। क्योंकि अगर अंत हो जाए, तो
आप वहीं बैठकर रह जाएंगे जहां आप हैं। वह पीड़ा ही आपको धकाए चली जाती है। दुख ही आपको धकाए चला जाता है। अशांति ही आपको धक्का देती है। अशांति, पीड़ा पतवार की तरह है, वही आपकी नाव को ले जाती है उस किनारे की तरफ। क्योंकि इंद्रियों से शब्दादि विषय बलवान हैं, और शब्दादि विषयों से
मन प्रबल है, और मन से भी बुद्धि बलवती है, तथा बुद्धि से भी आत्मा उन सबका स्वामी होने के कारण अत्यंत श्रेष्ठ और बलवान है।
इसलिए ध्यान रखना, जिसको वश में लाना हो, उसके पीछे छिपे हुए तत्व को जगाना। बलवान को पकड़ना, निर्बल से मत लड़ना। यह पॉजिटिव, यह विधायक खोज है। दो तरह के लोग हैं। एक होते हैं नकारात्मक बुद्धि के लोग। वे हमेशा लड़ने में ही समय बिता देते हैं। दूसरे होते हैं विधायक बुद्धि के लोग, वे लड़ने की फिकर नहीं करते। वे श्रेष्ठ की तलाश में लग जाते हैं। कुछ लोग हैं जो इसी में समय बिता देंगे कि जो व्यर्थ है, जो गलत है, उसको कैसे जीता जाए। और कुछ हैं जो सार्थक है उसको कैसे जन्माया जाए, उसमें शक्ति को लगाएंगे। कुछ हैं जो अंधेरे से लड़ते रहेंगे और कुछ दीए को जलाने की कोशिश करेंगे। और मजे की बात यह है कि अंधेरे से लड़ने वाला कभी भी अंधेरे से जीत नहीं पाता और दीए को जलाने वाला अंधेरे को जीत लेता है। तो आप दीए को जलाने वाले बनना; अंधेरे से मत लड़ना। नकारात्मकता अगर आपकी साधना में प्रविष्ट हो जाए, तो साधना बीमार हो गई। विधायक होना। कुछ पाने की कोशिश करना, कुछ छोड़ने की नहीं।
इसलिए मैं कहता हूं, त्याग शब्द को भूल जाओ। कुछ छोड़ने की फिकर मत करना, कुछ उपलब्धि की फिकर करना, कुछ पाने की फिकर करना। और जैसे-जैसे तुम पाओगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे, बहुत-सा छूटता चला जाता है। जैसे ही तुम सीढ़ी पर, ऊंची सीढ़ी पर पैर रखोगे, नीची सीढ़ी से पैर अपने आप हट जाएगा। तुम नीची सीढ़ी को छोड़ने की कोशिश मत करना, तुम ऊंची सीढ़ी पर पैर रखने की कोशिश करना। तुम आगे बढ़ना, पीछे से तुम्हारी मुक्ति होती चली जाएगी। जैसे-जैसे

व्यक्ति भगवान में प्रविष्ट होता है, या भगवान होने में लीन होता है, वैसे- वैसे संसार छूटता चला जाता है।
मेरे देखे ज्ञानियों ने कुछ भी नहीं छोड़ा है, सिर्फ अज्ञानी छोड़ते हैं। यह थोड़ा जटिल मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम कहते हैं, महावीर महात्यागी हैं, बुद्ध महात्यागी हैं। मेरे लेखे नहीं। मेरे लेखे महावीर कुछ भी छोड़ते नहीं, कुछ पाते हैं। और इतना पा लेते हैं कि उसमें कचरा छूट ही जाता है। अब जिसको हीरे मिल जाएं, वह कंकड़-पत्थर हाथ में लिए बैठा रहेगा? हीरे के लिए जगह बनानी पड़ेगी, कंकड़-पत्थर छोड़ देने पड़ेंगे। अज्ञानी छोड़ते हैं और कष्ट पाते हैं। भोग के भी कष्ट पाते हैं और त्याग के भी कष्ट पाते हैं। मैं दोनों तरह के अज्ञानियों को जानता हूं। भोगते हैं, तब भी कष्ट पाते हैं; भोग भी नहीं सकते हैं ठीक से। छोड़ देते हैं, फिर त्याग के कष्ट पाते हैं।
एक संन्यासी ने मुझे आकर कहा कि चालीस साल हो गए छोड़े हुए, अभी तक कुछ मिला नहीं।
तुम पागल, छोड़े किसलिए? पहले पा लेते फिर छोड़ते, तो यह चालीस साल की पीड़ा तो बचती! कुछ मिला नहीं, छोड़े चालीस साल हो गए! असल में जब तक मिले नहीं, तब तक छोड़ने से एक रिक्तता पैदा होगी। और वह रिक्तता बहुत दुख देगी, नारकीय हो जाएगी।
इसलिए मेरी समझ में तो गृहस्थों से भी ज्यादा दुख तथाकथित साधु भोगते हैं। गृहस्थ को कम से कम कुछ तो भरोसा है कि संसार है। साधु को वह भी भरोसा नहीं। संसार भी छूट गया। परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, मोक्ष समझ में नहीं आता, संसार छूट गया। जो हाथ में था, वह गया और आया कुछ भी नहीं। खाली मुट्ठी है।
मगर वह मुट्ठी को बांधे रखता है ताकि लोगों को ऐसा न लगे, किसी को पता
न चले कि कुछ भी उसके पास नहीं। इसलिए आत्मज्ञान की, ब्रह्मज्ञान की बातें करता रहता है। पर वे बातें सब दूसरों के लिए हैं। वह अपने को धोखा दे रहा है। वह दूसरों से चर्चा कर-कर के अपने से बात कर रहा है, अपने को समझा रहा है, परसुएड कर रहा है कि नहीं, कुछ मिल गया है।
जब तक मिले नहीं, तब तक छोड़ना मत। तब तक कंकड़-पत्थर भी ठीक हैं, कम से
कम मुट्ठी तो बंधी रहती है। और ऐसा तो रहता है कि कुछ अपने पास है। और फिर जल्दी क्या है कंकड़-पत्थर छोड़ने की? जब हीरा मिलने लगे, कंकड़-पत्थर गिर जाएंगे, छोड़ने भी नहीं पड़ेंगे। आपको याद भी न आएगा, कब हाथ से कंकड़-पत्थर छूट गए और हीरे पर मुट्ठी बंध गई।
पॉजिटिव, विधायक होने की दृष्टि सदा बनाए रखनी चाहिए। वही प्रयोजन है
यम का। श्रेष्ठ और बलवान कौन है भीतर, उसको जगाएं।
उस जीवात्मा से भी बलवती है भगवान की अव्यक्त मायाशक्ति। अव्यक्त माया से भी श्रेष्ठ है परमपुरुष स्वयं परमेश्वर। परमपुरुष भगवान से श्रेष्ठ और बलवान कुछ भी नहीं है। वही सबकी परम अवधि और वही सबकी परम गति है।
इसलिए साधना की जो आत्यंतिक व्यवस्था है, वह है परमात्मा के प्रति समर्पण। उसका मतलब यह नहीं होता कि कोई परमात्मा है कहीं आकाश में, जिसके चरणों में आपने सिर रख दिया। परमात्मा के प्रति समर्पण का अर्थ होता है कि आप के भीतर जो श्रेष्ठतम और आत्यंतिक शक्ति है, उसके प्रति आपने अपने को समर्पित कर दिया। और अगर यह समर्पण पूरा हो जाए, तो एक क्षण में भी संयम, साधना सब पूरी हो जाती है।
पुराने शास्त्रों ने कहा है, गुरु के प्रति समर्पण। सिर्फ इस अर्थ में कि जिस परमात्मा की तुम्हें भीतर कोई खबर नहीं है, जिसे तुम अपने भीतर खोजने में असफल हो रहे हो, जिसकी झलक तुम अपने भीतर नहीं उपलब्ध कर पा रहे, क्योंकि बड़ी पर्तें हैं अंधेरे की, बड़ी दीवारें हैं, वह किसी दूसरे व्यक्ति में पारदर्शी हो गया है, ट्रांसपेरेंट हो गया है। उस ट्रांसपेरेंसी में, उस पारदर्शिता में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ रहा है।
महावीर के पास जिनको परमात्मा दिखाई पड़ा, बुद्ध के पास, नानक के पास, जीसस के पास, मुहम्मद के पास, जिनको उनकी पारदर्शिता में भीतर का तत्व

जगमगाता हुआ दिखाई पड़ा, वे समर्पित हो गए। वह समर्पण पहले तो मुहम्मद या महावीर के प्रति था, लेकिन वह जो भीतर का तत्व है वह तो एक ही है। वह मुहम्मद का और आपका अलग थोड़े ही है!
समर्पित होते ही उस झलक के प्रति, अपनी झलक की शुरुआत हो जाती है। जैसे दूसरे के सहारे अपना दीया जल गया। जैसे दूसरे की मौजूदगी में दूसरा एक केटेलिटिक एजेंट हो गया। गुरु केटेलिटिक एजेंट है। और जब तक खुद का भीतर का गुरु न जग जाए, तब तक बड़ा सहयोगी है।
परमात्मा के प्रति समर्पण का अर्थ है--अपनी श्रेष्ठतम संभावना के प्रति समर्पण, अपने अंतिम भविष्य के प्रति समर्पण, अपनी नियति की अंतिम अवस्था के प्रति समर्पण।
एक मित्र आज मेरे पास आए थे। पूछने लगे कि आत्मा तक तो ठीक है, लेकिन परमात्मा भी कोई है?
जैन हैं, इसलिए थोड़ी अड़चन है। क्योंकि जैन कोई परमात्मा को नहीं मानते। आत्मा तक तो ठीक है, लेकिन कोई परमात्मा भी है क्या? लेकिन आत्मा का भी पता कहां है? वह भी पढ़ा है, सुना है; वह भी जिस संप्रदाय में पैदा हुए हैं, उसकी खबर है। अगर आत्मा की ही खबर हो जाए, तो परमात्मा से मिलन हो ही जाता है तत्क्षण।
महावीर ने कहा है, आत्मा ही परमात्मा है। लेकिन आत्मा की कुछ तीन हालतें हैं। महावीर का विश्लेषण बहुत साफ है। महावीर ने कहा, एक आत्मा की हालत है--बहिर-आत्मा, बाहर की तरफ देखती हुई आत्मा। और एक आत्मा की हालत है--अंतर-आत्मा, भीतर की तरफ देखती आत्मा। और एक आत्मा की हालत है-- परमात्मा, न बाहर, न भीतर; कहीं भी न देखती हुई, अपने में ठहरी हुई।
तो परमात्मा को महावीर आत्मा की अवस्था कहते हैं। यम भी वही कह रहा है। वह भी नहीं कह रहा है कि कोई परमात्मा कहीं बाहर बैठा हुआ है। वह भी यही कह रहा है कि जीवात्मा से भी बलवती है भगवान की अव्यक्त माया शक्ति। अव्यक्त माया से भी श्रेष्ठ है परमपुरुष स्वयं परमेश्वर। परमपुरुष भगवान से श्रेष्ठ और बलवान कुछ भी नहीं है। वही सबकी परम अवधि और वही सबकी परम गति है।
वहीं सबको पहुंच जाना है। वही सागर है, जहां सभी गंगाएं गिरेंगी। वह सागर कितना ही दूर मालूम पड़ता हो, दूर नहीं है। और कितनी ही देरी लगती हो गंगा के पहुंचने में, देरी नहीं है। गंगा हर क्षण सागर के प्रति गिर रही है; गिरती जा रही है। गंगोत्री से गिरना शुरू करती है, ध्यान तो सागर पर ही लगा है; गिरती चली जाती है। और वह परम गति है--सागर में जब गंगा गिर जाती है, तो सागर अलग और गंगा अलग नहीं है। गंगा सागर हो जाती है।
व्यक्ति की परम, अंतिम अवस्था है परमेश्वर। वह सागर है, जहां सभी नदियां गिर जाती हैं।
अब ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
आठवां प्रवचन

धर्म का आधार-सूत्रः मौन

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग््रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः।। 12।।

यच्छेद्वांमनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छान्त आत्मनि।। 13।।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।। 14।।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाटय तन्मृत्युमुखात प्रमुच्यते।।
15।।

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम्।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते।। 16।।

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद ब्रह्मसंसदि।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते।
तदानन्त्याय कल्पते इति।। 17।।

यह सबका आत्मरूप परमपुरुष समस्त प्राणियों में रहता हुआ भी माया के परदे में छिपा रहने के कारण सबके प्रत्यक्ष नहीं होता। केवल सूक्ष्मतत्वों को समझने वाले पुरुषों द्वारा ही अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जा सकता है।। 12।।

बुद्धिमान साधक को चाहिए कि (पहले) वाक आदि (समस्त इंद्रियों) को मन में निरुद्ध करे, उस मन को ज्ञानस्वरूप बुद्धि में विलीन करे, ज्ञानस्वरूप बुद्धि को महान आत्मा में विलीन करे (और) उसको शांतस्वरूप परमपुरुष परमात्मा में विलीन करे।। 13।।

(हे मनुष्यो!) उठो, जागो (और) श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर, उनके पास जाकर (उनके द्वारा) उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो, (क्योंकि) ज्ञानीजन उस तत्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सदृश दुर्गम बतलाते हैं।। 14।।

जो शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, रसरहित और बिना गंध वाला है तथा (जो) अविनाशी, नित्य, अनादि, अनंत, (असीम), महान, आत्मा से श्रेष्ठ (एवं) सर्वथा सत्य तत्व है, उस परमात्मा को जानकर (मनुष्य) मृत्यु के मुख से सदा के लिए छूट जाता है।। 15।।

मेधावी मनुष्य यमराज के द्वारा कहे हुए नचिकेता के (इस) सनातन उपाख्यान का वर्णन करके और श्रवण करके ब्रह्मलोक में महिमा को उपलब्ध होते हैं, (प्रतिष्ठित होते हैं)।। 16।।

जो मनुष्य सर्वथा शुद्ध होकर इस परम गुह्य रहस्यमय प्रसंग को ब्राह्मणों की सभा में सुनाता है अथवा श्राद्धकाल में (भोजन करने वालों को) सुनाता है, (उसका) वह कर्म अनंत होने में अर्थात अविनाशी फल देने में समर्थ होता है और वह अनंत होने की शक्ति प्राप्त करता है।। 17।।

अग्रेज विचारक ब्रैडले की एक प्रसिद्ध कृति हैः एपियरेंस एंड रिएलिटी--आभास और सत्य, या कहें माया और ब्रह्म। जो दिखाई पड़ता है, वह केवल आभास है। जो दिखाई पड़ने के भीतर छिपा है और दिखाई नहीं पड़ता, वही सत्य है। तो यथार्थ के दो रूप हैं। एक तो जैसा दिखाई पड़ता है--ऊपर-ऊपर; और एक, जैसा है--भीतर।
मैं आपको देखता हूं, तो रूप दिखाई पड़ता है, आकार दिखाई पड़ता है, शरीर दिखाई पड़ता है, लेकिन आप दिखाई नहीं पड़ते। इस सबके भीतर छिपे हैं आप। यह सब जो रूप है, यह सब जो दृश्य हो रहा है, यह सिर्फ बाहर की परिधि है, यह भीतर का केंद्र नहीं है। इसलिए अगर कोई मान ले कि आपको देखकर उसने आपको जान लिया, तो भूल हो जाएगी। जो उसने देखा, वह केवल परिधि थी।
जैसे कोई किसी के घर के बाहर की दीवालों को देखकर लौट आए। ऐसे ही आपके शरीर को, आप में जो दृश्य है उसे देखकर जो समझ ले कि आपसे परिचित हो गया, वह भ्रांति में पड़ गया। आप तो भीतर गहरे में छिपे हैं, जो आंख की पकड़ में नहीं आता, हाथ के स्पर्श में नहीं आता, कान जिसे सुन नहीं सकते। इसलिए गहन प्रेम के क्षण में ही आपको जाना जा सकता है। क्योंकि प्रेम ही वहां तक पहुंच पाएगा, जहां तक इंद्रियां नहीं पहुंच पातीं।
यह पूरा जगत ही ऐसा है। और स्वाभाविक है कि ऐसा हो, क्योंकि किसी भी वस्तु की परिधि होगी और केंद्र होगा, सरकमफ्रेंस होगी और सेंटर होगा। जो बाहर से देखा जा सकता है, वह एक। और जो भीतर से ही गहन हृदय में प्रवेश करके जाना जा सकेगा, वह दो। वही सत्य है, जो केंद्र पर है। परिधि तो रोज बदलती रहती है।
आप मां के पेट में थे तो एक छोटे से अणु थे। अगर वह अणु आज आपके सामने
रख दिया जाए तो आप पहचान भी न सकेंगे कि कभी मैं यह था। लेकिन भीतर के केंद्र पर उस क्षण भी आप यही थे जो आज हैं। परिधि बदल गई। आप बच्चे थे कभी, कभी जवान थे, कभी बूढ़े हुए--परिधि बदलती चली गई। अगर आप अपने ही चित्रों को बचपन से लेकर बुढ़ापे तक देखें, तो आप पहचान न पाएंगे कि ये एक ही आदमी के चित्र हैं। सब बदलता चला गया है।
शरीरशास्त्री कहते हैं, शरीर प्रतिपल बदल रहा है और सात वर्ष में पूरा शरीर बदल जाता है। अगर आप सत्तर साल जीएंगे, तो दस बार आपको नया शरीर मिल चुका होगा।
प्रतिपल शरीर में कुछ मर रहा है। भोजन से आप नया शरीर अपने में निर्मित करते जा रहे हैं। मल से, मूत्र से, पसीने से, बाल से, नाखून से, मरे हुए हिस्से बाहर निकलते जा रहे हैं। इसलिए तो बाल काटने से पीड़ा नहीं होती, वह शरीर का मरा हुआ हिस्सा है। शरीर उसे बाहर फेंक रहा है। नाखून काटने से पीड़ा नहीं होती, वह मरा हुआ हिस्सा है।
आप जानकर चकित होंगे कि मुर्दे के भी बाल और नाखून बढ़ते हैं। मुर्दा
भी रखा रहे, तो उसके बाल और नाखून बढ़ते रहते हैं, क्योंकि बाल और नाखून से जीवन का कोई संबंध नहीं है। वह शरीर का मरा हुआ हिस्सा है। मुर्दे का शरीर भी उस मरे हुए हिस्से को फेंकता रहता है।
सात वर्ष में आपके शरीर के सारे कोष्ठ बदल जाते हैं, नए हो जाते हैं।
यह परिधि है आपकी। जो नदी की धार की तरह बहती चली जाती है। किसी दिन यह जन्मी थी और किसी दिन यह समाप्त भी हो जाएगी।
लेकिन भीतर जो केंद्र है, वह जब आप एक छोटे से अणु थे, जो खाली आंख से देखा भी नहीं जा सकता, जिसे देखने के लिए खुर्दबीन चाहिए... । फिर कभी आप बच्चे थे, फिर जवान थे, कभी बूढ़े थे और कभी फिर मिट्टी में गिर गए। वह सब शरीर के तल पर हो रहा है; केंद्र अछूता है। वह केंद्र ही सत्य है, यह परिधि आभास है। आभास इसे इसलिए कहते हैं कि इसको ही बहुत-से लोग सत्य मान लेते हैं। सत्य होने का भ्रम इससे पैदा होता है।
और ऐसा व्यक्ति के संबंध में ही नहीं, जीवन के समस्त रूपों के संबंध में सत्य है। ये जो वृक्ष खड़े हैं, इनको आप देखते हैं। इनके पत्ते हैं, इनकी शाखाएं हैं--ये वृक्ष का मूल नहीं हैं और न इस वृक्ष का केंद्र हैं, न ये इसकी आत्मा हैं। ये भी इसकी देह हैं। इस देह के भीतर छिपी है वैसी ही आत्मा, जैसी आपके भीतर छिपी है।

और भारत के मनीषी कहते रहे हैं कि कभी आप भी वृक्ष थे। आज आप मनुष्य हैं, वह परिधि का परिवर्तन है। आज जो वृक्ष है, कभी वह भी मनुष्य हो जाएगा। और यहां इतने वृक्ष खड़े हैं, ये भी सब एक जैसे नहीं हैं। इनके भी व्यक्तित्वों में भेद है। इनमें भी मूढ़ वृक्ष हैं, इनमें भी बुद्धिमान वृक्ष हैं। इनमें जो बुद्धिमान वृक्ष हैं, वे तीव्रता से गति कर रहे हैं, वृक्ष की परिधि को पार करके जीवन के और ऊंचे आयाम में प्रवेश करने के लिए। मनुष्यों में भी सभी मनुष्य एक जैसे नहीं हैं। मूढ़ हैं, जो जहां हैं वहीं ठहरे हुए हैं। जिन्होंने परिधि को पकड़ लिया है और उसी को सत्य मान लिया है। उनमें ज्ञानीजन हैं, जो उस परिधि को छोड़कर और श्रेष्ठतर जीवन के आयाम में प्रवेश का प्रयत्न कर रहे हैं।
रूपों के संबंध में ही नहीं, पूरे अस्तित्व को इकट्ठा भी लें, तो परमात्मा की जो परिधि है, उसका नाम माया है--आभास, एपियरेंस। संसार उसी परिधि का नाम है। और इस संसार के गहन गुह्य में छिपा हुआ जो केंद्र है, वही ब्रह्म है।
हम सभी रूप से, आकार से मोहित, सम्मोहित दौड़ते चले जाते हैं। जो व्यक्ति भी इस आकार के भीतर छिपे हुए निराकार की खोज में लग जाता है, उसे ही उपनिषद ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण कोई जन्म से नहीं होता। जन्म से कोई ब्राह्मण होकर समझ ले कि ब्राह्मण हो गया तो पागल है।
ब्राह्मण होना तो सतत साधना की उपलब्धि है। जन्म से तो सभी शूद्र पैदा होते हैं, सभी। इन शूद्रों में से कुछ ब्राह्मण हो जाते हैं, शेष शूद्र ही रह जाते हैं।
ब्राह्मण वही हो जाता है, जो परिधि को छोड़कर केंद्र की तलाश में लग जाता है, जो माया के आवृत को तोड़कर और ब्रह्म की खोज में लग जाता है। आंखें जिसे देख पाती हैं, उसमें उसकी उत्सुकता नहीं। जो अदृश्य है, जिसे आंखें नहीं देख पातीं, जिसे केवल विवेक की आंख देख पाती है, जिसे केवल अंतःप्रज्ञा देख पाती है, उसकी खोज में जो लग जाता है, वह ब्राह्मण है।
ये सूत्र कई अर्थों में कीमती हैं। इनमें हम प्रवेश करें।
यह सबका आत्मरूप परमपुरुष समस्त प्राणियों में रहता हुआ भी माया के परदे में छिपा रहने के कारण सबके प्रत्यक्ष नहीं होता। केवल सूक्ष्मतत्वों को समझने वाले पुरुषों द्वारा ही अति सूक्ष्म तीक्ष्ण बुद्धि से देखा जा सकता है।
लेकिन सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धि से आप कहीं गलत न समझ लें। सूक्ष्म
और तीक्ष्ण बुद्धि से उपनिषदों का अर्थ, जिसे हम सामान्यतः सूक्ष्म और तीक्ष्ण बुद्धि कहते हैं, उससे नहीं है। हम तो उस बुद्धि को सूक्ष्म और तीक्ष्ण कहते हैं, जो गणित और तर्क में कुशल है; जो विवाद में कुशल है; जो किसी भी बात को खंड-खंड तोड़ने में कुशल है।
लेकिन उपनिषद उस बुद्धि को सूक्ष्म कहते हैं जो पवित्र है, जो शुद्ध है, जो शांत है। ये दोनों बिल्कुल अलग धारणाएं हैं। उपनिषद उसे सूक्ष्म बुद्धि कहते हैं जो इतनी शुद्ध है कि जिसमें कोई विकार नहीं रह गया। क्योंकि विकार स्थूल कर देते हैं। निर्विकार बुद्धि का नाम सूक्ष्म बुद्धि है। एक भोले-भाले आदमी के पास हो सकती है सूक्ष्म बुद्धि। जरूरी नहीं है कि एक बड़े गणितज्ञ और एक तर्कशास्त्री के पास हो।
गणितज्ञ और तर्कशास्त्री के पास जो बुद्धि है, वह सूक्ष्म नहीं है। अगर ठीक से समझें, तो उसे कहना चाहिए, वह कुशल है। विचार करने की क्षमता उसके पास है, लेकिन निर्विचार की शुद्धि उसके पास नहीं है। दार्शनिक और संत में यही भेद है।
दार्शनिक किसी भी चीज को तोड़कर उसके भीतर प्रवेश करने की कोशिश करता है। संत अपने को शुद्ध करके--किसी को तोड़कर नहीं--अपनी शुद्धता के माध्यम से किसी में प्रवेश की कोशिश करता है। इसलिए बहुत बार ऐसा हो जाता है कि अपढ़ भी संत हो जाते हैं। और बहुत पढ़े-लिखे लोग भी संत नहीं हो पाते।
जीसस बढ़ई का बेटा है। कुछ भी शिक्षित नहीं है। तर्क में जीसस को कोई
भी पराजित कर सकता है। रामकृष्ण दूसरी कक्षा तक पढ़े हैं। तर्क में कोई भी रामकृष्ण को पराजित कर सकता है। जिस अर्थ में हम बुद्धि को सूक्ष्म कहते

हैं, और जिस अर्थ में पश्चिम के मनोवैज्ञानिक बुद्धि-अंक नापते हैं, आई. क्यू. नापते हैं--उसमें रामकृष्ण कहीं टिकेंगे नहीं।
लेकिन रामकृष्ण के पास या कबीर के पास या नानक के पास या जीसस के पास
एक और तरह की सूक्ष्मता है, जो शुद्धि की है, पवित्रता की है। जैसे सुबह का नया खिला हुआ फूल हो। कांटे की तरह तीक्ष्ण नहीं है वह; किसी को चुभेगी भी नहीं। लेकिन एक फूल की पवित्रता है, एक निर्दोषता है। उस निर्दोषता की एक सूक्ष्मता है। वह सूक्ष्मता ही परम तत्व में प्रवेश कर पाती है।
तीक्ष्ण बुद्धि जिसको हम कहते हैं, वैसा तीक्ष्ण-बुद्धि व्यक्ति वैज्ञानिक हो जाएगा। वह पदार्थ को तोड़कर उसके रहस्यों को खोज लेगा, लेकिन आत्मा के जानने से वंचित रहेगा। जिसको उपनिषद सूक्ष्म बुद्धि कहते हैं, वैसा व्यक्ति तोड़ेगा नहीं, बिना तोड़े प्रवेश कर जाएगा। और निश्चित ही जब तोड़कर प्रवेश करना पड़े, तो बुद्धि आपकी बहुत सूक्ष्म नहीं है। क्योंकि जगह बनानी पड़ती है तब आप प्रवेश कर पाते हैं। बिना तोड़े जो प्रविष्ट हो जाए, उसकी सूक्ष्मता आत्यंतिक है।
यह भेद साफ समझ लेना चाहिए। क्योंकि इस भेद को साफ न समझने के कारण बड़ी अड़चन हुई है। कबीर को काशी के पंडित पूछते हैं कि तुम जब शास्त्र जानते नहीं, संस्कृत पढ़े नहीं, सिद्धांतों का तुम्हें कुछ पता नहीं, तो तुम आत्मज्ञानी कैसे हो गए?
निश्चित ही काशी का कोई भी पंडित, साधारण से साधारण पंडित भी, कबीर से ज्यादा जानता था, शास्त्र की भाषा में। लेकिन कबीर के मुकाबले वे सब बुझे हुए दीए थे। वे कितना ही जानते हों और कबीर बिल्कुल भी न जानता हो, तो भी कबीर का होना सघन था। अस्तित्व सघन था। उनके पास होगी स्मृति, कबीर के पास थी आत्मा।
वह ज्योति, जो कबीर के पास है, उसको सूक्ष्म बुद्धि उपनिषद कहते हैं। छोटे बच्चों के पास होती है; संतों के पास होती है। सरल-चित्त लोगों के पास होती है। इस सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ही माया के पर्दे को कोई पार कर पाता है।
अगर कुशल बुद्धि हो तो माया के पर्दे को ही काटने में और समझने में उलझ जाता है। वह जो एपियरेंस है, जो दिखाई पड़ रहा है, उसी के साथ उलझ जाती है साधारण बुद्धि। जो दिखाई पड़ रहा है उसको छोड़कर, जो नहीं दिखाई पड़ रहा है उस तक पहुंचने की क्षमता, मैंने कहा, प्रेम में है या प्रार्थना में है। जब कोई व्यक्ति सच में ही प्रेम करे, या प्रेम में हो जाए, तो शरीर भूल जाता है। शरीर के पार सीधी छलांग लग जाती है। ऐसा ही प्रेम जब कोई सारे अस्तित्व से करता है तो उसका नाम प्रार्थना है।
ध्यान बुद्धि को सूक्ष्म करने की प्रक्रिया है। जैसे-जैसे आप ध्यान करते हैं, बुद्धि के विकार गिरते चले जाते हैं। एक घड़ी आती है जब बुद्धि परिशुद्ध हो जाती है। उसमें कुछ भी विकार, कोई भी फारेन एलिमेंट, कोई भी विजातीय तत्व नहीं रह जाता। विचार तक नहीं रह जाता। बुद्धि इतनी निर्मल हो जाती है कि विचार भी नहीं करती। सिर्फ होती है। सिर्फ एक ज्योति होती है। उस ज्योति में जरा भी धुआं नहीं होता। शुद्ध प्रकाश रह जाता है, आलोक। उस शुद्ध आलोक से ही व्यक्ति माया के पर्दे में छिपे हुए ब्रह्म को जानने में समर्थ हो पाता है।
बुद्धिमान साधक को चाहिए कि पहले वाक आदि समस्त इंद्रियों को मन में निरुद्ध करे, उस मन को ज्ञानस्वरूप बुद्धि में विलीन करे, ज्ञानस्वरूप बुद्धि को महान आत्मा में विलीन करे और उसको शांतस्वरूप परमपुरुष परमात्मा में विलीन करे।
यह प्रक्रिया है बुद्धि के सूक्ष्म और शुद्ध होने की। शुरू करना है वाक से, वाणी से, विचार से, शब्द से। हमारी बुद्धि विकृत है, क्योंकि इतने विचारों का बोझ है! विचार ही विचार हैं। जैसे आकाश में बादल ही बादल छाए हों, आकाश खो जाए, दिखाई भी न पड़े, सूर्य का कोई दर्शन न हो, ऐसी हमारी बुद्धि है। विचार ही विचार छाए हैं। उसमें वह जो बुद्धि की प्रतिभा है, जो आलोक है, वह खो गया, छिप गया।
एक बादल हट जाए तो आकाश का टुकड़ा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। छिद्र
हो जाएं बादलों में तो प्रकाश की रोशनी आनी शुरू हो जाती है, सूरज के दर्शन

होने लगते हैं। ठीक ऐसे ही बुद्धि जब तक विचार से बहुत ज्यादा आवृत है... और एक पर्त नहीं है विचार की, हजारों पर्तें हैं। जैसे कोई प्याज को छीलता चला जाए तो पर्त के भीतर पर्त, पर्त के भीतर पर्त। ठीक ऐसे विचार प्याज की तरह हैं। एक विचार की पर्त को हटाएं, दूसरी पर्त सामने आ जाती है। दूसरे को हटाएं, तीसरी आ जाती है। एक विचार को हटाएं दूसरा विचार मौजूद है, दूसरे को हटाएं तीसरा मौजूद है।
यह पर्त दर पर्त विचार है। यह हमने जन्मों में इकट्ठे किए हैं, जन्मों-जन्मों में। यह धूल है जो हमारी लंबी यात्रा में हमारे मन पर इकट्ठी हो गई है। जैसे कोई यात्री रास्ते पर चले तो धूल इकट्ठी होती चली जाए। और उसने कभी स्नान न किया हो और यात्रा करता ही रहा हो, तो बहुत धूल इकट्ठी हो जाए, यात्री का पता ही न चले कि वह कहां खो गया।
ध्यान स्नान है बुद्धि का। और जो ध्यान नहीं सम्हाल पा रहा है, उसकी बुद्धि कचरे से लद जाएगी, स्वाभाविक। प्रतिपल संस्कार पड़ रहे हैं, हर घड़ी। पूरे दिन में, वैज्ञानिक कहते हैं, कोई दस लाख संस्कार बुद्धि पर पड़ते हैं। आप सोच भी नहीं सकते कि दस लाख कहां से पड़ते होंगे। हर चीज का संस्कार पड़ रहा है। अभी मैं बोल रहा हूं, यह संस्कार पड़ रहा है। पक्षी आवाज कर रहा है, वह संस्कार पड़ रहा है। एक कार का हार्न बजा, वह संस्कार पड़ा। वृक्ष में हवा दौड़ी, वह संस्कार पड़ा। पैर में एक चींटी ने काटा, वह संस्कार पड़ा। सिर में थोड़ी पीड़ा हुई, वह संस्कार पड़ा। पड़ रहे हैं दस लाख संस्कार दिनभर में, चौबीस घंटे में। और ये सब इकट्ठे होते जा रहे हैं।
यह संस्कार धूल है। और यह हम जन्मों से इकट्ठे कर रहे हैं। इसलिए बहुत पर्तें इकट्ठी हो गई हैं। जब आप सोए हैं, तब भी संस्कार पड़ रहे हैं। नींद लगी है आपकी, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि बुद्धि पूरे वक्त काम कर रही है। बाहर कोई आवाज होगी, नींद में भी संस्कार पड़ रहा है। गर्मी पड़ेगी, संस्कार पड़ रहा है। मच्छड़ आवाज कर रहे हैं, संस्कार पड़ रहा है। करवट बदली, संस्कार पड़ रहा है। गर्मी है, सर्दी है, पूरे समय बुद्धि इकट्ठा कर रही है, हर चोट। बुद्धि की क्षमता बहुत ज्यादा है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि अनंत संस्कार बुद्धि इकट्ठा कर सकती है। आपके
इस छोटे-से सिर के भीतर कोई सात करोड़ सेल हैं। और एक-एक सेल अरबों संस्कार इकट्ठा कर सकता है। इसलिए कोई अंत नहीं है। सारी दुनिया का जितना ज्ञान है, वह एक आदमी की बुद्धि में समाया जा सकता है।
ये जो इकट्ठी होती पर्तें हैं, इनके कारण आप आच्छादित हैं। इस आच्छादन को तोड़ना पड़ेगा। इस तोड़ने का प्रारंभ--बुद्धिमान साधक को चाहिए, पहले वाक आदि समस्त इंद्रियों को मन में निरुद्ध करे।
इसलिए मौन का इतना मूल्य है। मौन का अर्थ है, आप बाहर और भीतर बोलना बंद कर रहे हैं। क्योंकि बोलना बुद्धि की बड़ी गहरी प्रक्रिया है। बोलने के द्वारा बुद्धि बहुत कुछ इकट्ठा करती रहती है। और जो भी आप बोलते हैं, वह आप सिर्फ बोलते नहीं हैं, बोला हुआ आप सुनते भी हैं, उसके संस्कार और सघन हो जाते हैं।
जब आप एक ही बात बार-बार बोलते रहते हैं, तो आपको पता नहीं कि आप बार-बार सुन भी रहे हैं। संस्कार गहरे होते जा रहे हैं। और आप कचरा बोलते रहते हैं। सुबह अखबार पढ़ लिया, फिर दिनभर उसी को लोगों को बोले चले जा रहे हैं। कोई व्यर्थ की बात, जिसका कोई भी मूल्य नहीं, जिससे किसी को कोई लाभ नहीं होगा, उसको आप बोले चले जा रहे हैं। अगर आप अपने चौबीस घंटे का विश्लेषण करें, तो आप पाएंगे कि निन्यानबे प्रतिशत तो कचरा था, जो आप न बोलते तो किसी का कोई हर्ज न था।
ध्यान रहे, जिसे बोलने से किसी को कोई लाभ नहीं हुआ है, उसे बोलने से हानि निश्चित हुई है। क्योंकि न केवल आपने दूसरे के मन में कचरा डाला है-- जो कि हिंसा है, जिसका कोई मूल्य नहीं है वह आप बोलकर दूसरे के मन में डाल दिए हैं--जब आप बोल रहे थे तो आपने फिर से सुन लिया है। वह आपके भीतर दुबारा गहरा हो गया। उसके फिर से संस्कार पड़ गए, फिर कंडीशनिंग हो गई।
अगर आप एक असत्य को भी बार-बार बोलते रहें, तो आप खुद ही भूल जाएंगे कि
वह असत्य है। इतने संस्कार भीतर पड़ जाएंगे कि वह लगने लगेगा कि सत्य है।

एडोल्फ हिटलर ने कहा है कि कोई भी असत्य को सत्य करना हो तो एक ही तरकीब है, उसे बोले चले जाओ। दूसरे ही मान लेंगे ऐसा नहीं है, आप खुद भी मान लेंगे। आप अपनी जिंदगी में देखें, कई असत्य आपको सत्य मालूम पड़ने लगे हैं, क्योंकि आप इतने दिनों से बोल रहे हैं कि अब आपको भी स्मरण नहीं रहा कि पहले दिन यह बात असत्य थी। बहुत बार संस्कार पड़ जाने से गहरे हो जाते हैं; लीक बन जाती है।
पहला काम है साधक के लिए कि वह वाणी को संयत कर ले। वही बोले जो बिल्कुल अनिवार्य हो, अपरिहार्य हो, जिसके बिना चल ही न सकेगा।
यह दुनिया बड़ी शांत हो जाए, अगर लोग अपरिहार्य को बोलें, व्यर्थ को न बोलें। और व्यर्थ को बोलकर बड़ी झंझट में पड़ते हैं। क्योंकि बोलकर आप ही थोड़े ही बोलते हैं, दूसरा जवाब भी देगा।
थोड़ा आप सोचें कि अगर आप संयत रहे होते, मौन रहे होते, तो कितने उपद्रव आपके जीवन से बच गए होते! बोलकर आप न मालूम कितने उपद्रवों में पड़ रहे हैं। फिर उनको बचाने के लिए और बोलना पड़ता है। फिर यह सिलसिला बढ़ता चला जाता है। एक विसियस सर्किल है, एक दुष्टचक्र है, जिसका फिर कोई अंत नहीं है। इसलिए साधु चुप हो जाता है। उतना ही बोलता है, जितना अनिवार्य है। और उतना ही बोलता है, जिससे किसी का हित हो सके। अन्यथा मौन रह जाता है।
वाणी को जब आप बाहर से रोकेंगे, तो भी जरूरी नहीं कि भीतर रुक जाए, क्योंकि आप दूसरे से न बोलें तो खुद से बोलते रहते हैं! बैठे हैं और खुद ही से बात चल रही है। यह खुद ही से चलने वाली बात भी संस्कार निर्मित करती है। क्योंकि जब आप अपने से बोल रहे हैं तब भी मन सुन रहा है। और जो भी आप बोल रहे हैं, उसकी आप लकीर जोर से खोद रहे हैं अपने भीतर। खुद से भी बोलना बंद करें।
वाणी बड़ा उपद्रव है। जरूरी नहीं है कि उपद्रव ही हो, हमने उपद्रव बना लिया है। भीतर भी धीरे-धीरे बोलना बंद करें। चुप्पी साधें, मौन को फैलने दें। जितना-जितना मौन फैलेगा, उतना-उतना मन विसर्जित होता चला जाएगा। जैसे-जैसे मौन घना होगा, वैसे-वैसे बादल तिरोहित होने लगेंगे। जगह-जगह से छिद्र टूटने लगेंगे और रोशनी भीतर की आने लगेगी।
धर्म का, सारे धर्मों का आधार मौन है। महावीर बारह वर्ष मौन रहे। बुद्ध ने अनेक-अनेक दिन मौन में बिताए। जीसस बोलने के पहले मौन में चले गए। मुहम्मद को कुरान का अवतरण हुआ, जब वे परम मौन की अवस्था में थे। इस जगत में जो भी सत्य का अवतरण हुआ है, वह तब हुआ है जब भीतर चुप्पी है, सब शांत है।
उस शांत क्षण में ही हमारा तालमेल हमारी ट्यूनिंग ब्रह्म से जुड़ जाती है। वह मौन का कांटा ही हमें आभास से भीतर ले जाता है और सत्य से जोड़ देता है। इसलिए हमने साधु को मुनि कहा है। मुनि का अर्थ हैः जो मौन हो गया है। जो भीतर चुप हो गया है।
असल में वही बोलने का अधिकारी है, जो भीतर चुप हो गया हो। क्योंकि उसके बोलने का कुछ मूल्य होगा। क्योंकि बोलने का अर्थ होगा। उसने कुछ जाना है, जिसे वह दे रहा है। जो चुप नहीं है, वह बोलने का अधिकारी नहीं है। जो भीतर बोले चला जाता है, उसका बोलना एक बीमारी है।
आप जब दूसरों से बात करते हैं, तो आप सच में उनसे बात नहीं कर रहे हैं,
आप अपने को उलीचना चाहते हैं। इसलिए कोई न मिले आपको सुनने को, तो बेचैनी शुरू हो जाती है। बातचीत, बकवास के लिए कोई चाहिए। लेकिन दूसरा भी आपकी बकवास इसीलिए सुन रहा है कि जब तुम चुप होओगे, तो वह भी शुरू करेगा। और कोई प्रयोजन सुनने का नहीं है।
मैंने सुना है कि एक सभा में एक नेता व्याख्यान कर रहा था, लेकिन धीरे- धीरे लोग उठकर जाते गए। व्याख्यान पूरा होते-होते एक ही आदमी बचा। उस नेता ने कहा, धन्यवाद तुम्हारा। इस गांव में लोग बिल्कुल नासमझ मालूम पड़ते हैं। एक तुम ही बुद्धिमान हो। उसने कहा, ऐसा कुछ भी नहीं। असल में आपके बाद मेरे बोलने की बारी है। आपको सुनने को नहीं रुका हूं। मेरा भी व्याख्यान होने वाला है, इसी सभा में।
कोई किसी को सुन नहीं रहा है। किसी को किसी से सुनने का प्रयोजन नहीं है। सुनना पड़ता है, क्योंकि बोलना है। सुनना रिश्वत है। जब आप किसी की बात

सुन रहे हैं, तब अपने भीतर देखना--आप प्रतीक्षा कर रहे हैं, कब ये सज्जन चुप हों। और अगर कोई सज्जन चुप ही न हों, तो आप कहते हैं, बिल्कुल बोर है। बोर का मतलब, आपको बोर करने का उसने बिल्कुल मौका नहीं दिया! अपनी ही बोले चला जा रहा है। आप अपनी बोलना चाहते थे, उसने आपको मौका ही नहीं दिया। जो सुसंस्कृत लोग हैं, वे आपको बोर भी करते हैं और आपको भी बोर करने का मौका देते हैं। थोड़ा बोलते हैं, थोड़ा आपको बुलवाते हैं। इससे सत्संग बना रहता है। इससे आप घबड़ाते भी नहीं। यह लेन-देन है। लेकिन यह बीमारी है।
अगर बोलना आपकी मजबूरी हो और आपको बोलने में राहत मिलती हो, कि आप हल्के होते हैं, तो समझना कि आप जो बोल रहे हैं, वह कचरा है। इससे किसी का कोई लाभ होने वाला नहीं है।
हम अपना कचरा दूसरे में डालते हैं; दूसरे अपना कचरा हममें डालते हैं। दोनों के पास कचरा बढ़ जाता है! कचरा घटना चाहिए। इसलिए अगर साधक को बहुत बार जंगल में भाग जाना पड़ा है, तो वह आपसे कम भागा है, आप जो कचरा उसके ऊपर उंडेलते हैं, उससे ज्यादा भागा है। जंगल में मौन होने की उसे सुविधा मिल गई।
लेकिन जंगल भागने की जरूरत नहीं है। अगर समझ हो तो आप यहीं धीरे-धीरे मौन होते जा सकते हैं। एक बात भर स्मरण रखें; व्यर्थ न बोलें।
जब तक पक्का न हो जाए कि इससे किसी का लाभ होगा, तब तक न बोलें। जब तक ऐसा न लगे कि यह बोलना बिल्कुल ही अनिवार्य है, तब तक न बोलें। और भीतर भी धीरे-धीरे बोलने की प्रक्रिया को शांत करें। जब मन बोलने लगे, तो आप उसको कोआपरेट न करें, सहयोग न दें। आप दूर खड़े हो जाएं, और कहें कि बोलो, लेकिन मैं कोई साथ न दूंगा। मैं साक्षी रहूंगा। मैं देखता रहूंगा कि तुम बोल रहे हो, लेकिन तुम्हारा कोई रस नहीं लूंगा। तटस्थ हो जाएं। एक उपेक्षा भीतर बना लें।
बुद्ध ने कहा है कि साधु के लिए भीतरी उपेक्षा बड़ी जरूरी है। उपेक्षा
का मतलब है इनडिफरेंस। उसका मतलब है कि चल रहा है मन, ठीक है, चलने दो, लेकिन हमें कोई प्रयोजन नहीं है। हम इसमें बीच में उतरकर रस न लेंगे। ध्यान रहे, मन तभी तक चलता है, जब तक आप उसमें रस लेते हैं। रस दो तरह
के हैं, या तो पक्ष में हों, या विपक्ष में हों। दोनों रस हैं।
आपके मन में कोई विचार चल रहा है, आप उसके पक्ष में हैं, तो आप उसमें जुड़ जाते हैं। आप विचार के साथ बहने लगते हैं। आप विचार को प्राण दे रहे हैं, क्योंकि विचार अपने आप में निर्जीव है, आपका साथ हो तो सजीव हो जाता है। या आप उसके दुश्मन हो जाएं। जब आप दुश्मन हो जाते हैं, तब भी आप प्राण देते हैं। यह जरा कठिन समझ में आएगा। क्योंकि जब आप किसी विचार के दुश्मन हो जाते हैं, तब आपने लड़ना शुरू कर दिया। आपने संघर्ष शुरू कर दिया। संघर्ष का मतलब है कि आप विचार में रस ले रहे हैं। दुश्मन का रस, लेकिन रस ले रहे हैं।
न मित्र, न शत्रु--उपेक्षा। कि ठीक है, चलो। न तुम्हारे चलने में मेरी उत्सुकता है, न तुम्हारे न-चलने में मेरी उत्सुकता है। तुम चलो तो ठीक, तुम न चलो तो ठीक; मैं दूर खड़ा हूं। ऐसे तटस्थ-भाव को जो साधता है, उसे भीतर मौन उपलब्ध हो जाता है।
वाक आदि इंद्रियों को मन में निरुद्ध करके... ।
तब वाणी मन में खो जाती है। तब शब्द निर्मित नहीं होते हैं। मन शून्य
हो जाता है। लेकिन वाक ही अकेला नहीं है। वाक आदि इंद्रियों में वाक प्रमुख है। लेकिन और इंद्रियां भी यही काम कर रही हैं।
आप जबान से नहीं बोलते, आंख से भी बोलते हैं। आंख से इशारा करते हैं, आंख से वासना पता चल जाती है। आंख से उपेक्षा पता चल जाती है, मित्रता पता चल जाती है, शत्रुता पता चल जाती है। आंख से भी मत बोलें।
और आप कान से ही नहीं सुनते, आंख से भी बहुत-सी बातें सुनते हैं। आंख
से भी पकड़ते हैं संस्कार। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी उठते, चलते हर वक्त बोलता है, न बोल रहा हो तो भी। शरीर से भी बोलता है। उसके उठने, बैठने, चलने के ढंग से भी प्रगट करता है।
पश्चिम में बड़ी खोज चल रही है बॉडी लैंग्वेज पर, शरीर की भाषा पर। अगर
आप किसी के प्रति प्रेम से भरे हैं, तो आप उसके पास झुककर खड़े होते हैं।

अगर एक स्त्री आपसे बचना चाहती है, तो वह पीछे की तरफ झुककर खड़ी होगी जब आपसे बात करेगी, अगर आपसे नहीं बचना चाहती, तो आगे की तरफ झुककर खड़ी होगी। वह बोल रही है।
अगर आप जरा शरीर की भाषा समझें, तो आप समझ सकते हैं कि यह स्त्री आपके प्रेम में पड़ना चाहती है कि आपसे बचना चाहती है। कुछ बिना कहे, सिर्फ उसका शरीर बता देगा। अगर कोई स्त्री आपके प्रेम में पड़ना चाहती है, तो दोनों पैर अलग रखकर बैठेगी। अगर वह आपसे बचना चाहती है, तो वह एक-दूसरे पैर के ऊपर पैर रखकर बैठेगी। वह खबर दे रही है कि मेरे द्वार बंद हैं।
आप ट्रेन में चल रहे हैं, आसपास लोगों को बैठे हुए देखें। आप हैरान होंगे। सबके शरीर कुछ खबर दे रहे हैं। प्रतिपल इशारा कर रहे हैं। आप वाणी से ही नहीं बोलते; कान से ही नहीं सुनते; पूरे शरीर से भी सुनते हैं; पूरे शरीर से भी बोलते हैं। आप थोड़ा-सा अपने पर ध्यान देंगे तो आपको ख्याल में आना शुरू हो जाएगा कि आपका शरीर भी इशारा करता है।
इसलिए बुद्ध ने मुद्राओं पर बड़ा जोर दिया है। यह बॉडी लैंग्वेज, शरीर
की भाषा का सवाल है। बुद्ध को आप बैठे देखते हैं। वे जिस ढंग से बैठे हैं, उस बैठने पर आपने शायद कभी विचार न किया हो। वह बैठना बता रहा है, वे इस ढंग से बैठे हैं, जैसे अपने में पूरे हैं। जैसे अपने से बाहर जाने की कोई इच्छा नहीं है। अपने से बाहर जिसे कोई उत्सुकता नहीं है। अपने में घिरे, एक वर्तुल के भीतर, शांत। उनके बैठने का जो ढंग है, वह बता रहा है कि उनकी दूसरे में कोई इच्छा, कोई उत्सुकता, कोई वासना नहीं है।
आप बैठे हों, खड़े हों, सोए हों, हर हालत में आप खबर दे रहे हैं। भीतर का
मन इंगित कर रहा है, इशारे कर रहा है। आप किसी आदमी का हाथ हाथ में लेते हैं, आपका हाथ, आपके हाथ की गर्मी, आपके हाथ से दौड़ती हुई जीवन की धारा, कई खबरें देती है।
जब आप किसी का हाथ प्रेम से हाथ में लेते हैं, तब आपके हाथ की गर्मी और होती है। तब आपके हाथ से जीवन-ऊर्जा उस दूसरे हाथ में दौड़ती हुई होती है, स्वागत करती हुई होती है।
जब आप बेमन से किसी का हाथ हाथ में लेते हैं, तो आपके हाथ में कोई गर्मी नहीं होती। ऊर्जा जाती हुई नहीं होती, भीतर की तरफ खिंची हुई, लौटती हुई होती है। हाथ ठंडा होता है। उसमें कोई स्वागत, कोई स्वीकार नहीं होता। प्रतिपल सारी इंद्रियों से हम बोलते हैं और सारी इंद्रियों से सुनते हैं।
अहंकारी आदमी की नाक बता देगी कि कितना अहंकार भीतर है। आंख बता देगी
कि वह आपको तुच्छ समझता है, दो कौड़ी का समझता है। उसके खड़े होने, उठने का ढंग बता देगा कि तुम कुछ भी नहीं हो।
आपने कभी ख्याल किया, जब आप अपने घर में अपने नौकर के पास से गुजरते हैं, तो आपके गुजरने का ढंग दूसरा होता है। जब आप अपने मालिक के पास से गुजरते हैं, तो गुजरने का ढंग दूसरा होता है। शरीर की भाषा बदल जाती है। नौकर के पास से आप ऐसे गुजरते हैं, जैसे वह है ही नहीं, ना-कुछ। उसकी मौजूदगी कोई अर्थ नहीं रखती। वह कोई आदमी नहीं है, कोई यंत्र है। जब आप मालिक के पास से गुजरते हैं, तो आप ऐसे गुजरते हैं जैसे मैं बिल्कुल नहीं हूं, तुम ही हो! यह सब कहा नहीं जाता, लेकिन यह सब समझा जाता है। इसको कहने की कोई भी जरूरत नहीं है।
पति घर में प्रवेश करता है और वह जानता है कि आज पत्नी कलह करेगी कि नहीं। प्रवेश करते ही! उसके खड़े होने का, बैठने का, उसके चेहरे का, उसकी आंख का ढंग, उसका जोर से बर्तन रखना कि आहिस्ता बर्तन रखना, सब बता देता है। मनसविद कहते हैं कि घर में जिस दिन पत्नी पीड़ित है, दुखी है, परेशान है, उस दिन छह गुनी ज्यादा आवाजें होती हैं। बर्तन गिरते हैं; चीजें जोर से रखी जाती हैं। कुछ उसे पता नहीं, लेकिन भाषा है, वह प्रगट कर रही है अपनी भाषा से। वह कह रही है कि आज सब अस्तव्यस्त है, सब अराजक है। जब पत्नी प्रेम में होती है तो घर में आवाजें बिल्कुल नहीं होतीं। चीजें आहिस्ता से रखी जाती हैं, प्रीति से रखी जाती हैं।
वह जो पति पर प्रेम है, या घृणा है, वह चीजों पर भी प्रगट होती है। उसके सारे व्यक्तित्व का जो तरंगायित रूप है, जो वायब्रेशंस हैं, वे सब बदल

जाते हैं। पति घर में प्रवेश करते ही जान लेता है कि हवा कुछ और है। तापमान ठीक नहीं! इसके लिए न कहना पड़ता है, न बताना पड़ता है।
ऋषि कह रहा है इस उपनिषद में यम के द्वारा कि पहले वाक आदि समस्त इंद्रियों को मन में निरुद्ध करके... । सारी इंद्रियों को उनकी भाषा से मुक्त करके। कोई इंद्रिय कुछ भी न कहे। किसी इंद्रिय से कुछ भी प्रगट न हो, किसी इंद्रिय में कोई गति न हो, कोई हलन-चलन न हो। सारी इंद्रियां मन में लीन हो जाएं। फिर उस मन को, ज्ञानस्वरूप बुद्धि में विलीन करके... । फिर यह जो मन शेष रह जाएगा मौन, इस मौन मन को और भीतर ले जाना है।
जैसे इंद्रियों के पीछे मन है, ऐसे मन के पीछे बुद्धि है, विवेक है। सिर्फ मौन रहना काफी नहीं है। इस मौन में जागना भी जरूरी है। वह जागना बुद्धि में ले जाएगा। तो पहले मौन हो जाना जरूरी है, ताकि ऊर्जा व्यर्थ न हो, भटके न बाहर, अपव्यय न हो। और जब ऊर्जा संगृहीत होने लगे, तो इस ऊर्जा को सजग करना जरूरी है, होशपूर्वक। भीतर एक होश जगाना जरूरी है कि कुछ भी हो, मैं जागा हुआ देखूं। मैं एक शिकार न रहूं, बल्कि एक द्रष्टा हो जाऊं। क्रोध आए तो मैं देखूं कि क्रोध आया, उठा, छा गया, फिर विलीन होने लगा। क्योंकि कोई चीज स्थिर तो नहीं है।
बुद्ध ने कहा है, चीजें आती हैं, रुकती हैं, चली जाती हैं। तुम जरा जल्दी करके उलझ जाते हो। थोड़ा रुको और थोड़ा देखते रहो। क्रोध उठा, कोई क्रोध शाश्वत तो है नहीं, सदा रहेगा नहीं। थोड़ा धैर्य रखो, उठने दो। बुद्ध कहते हैं, आंख बंद कर लो, देखो कि क्रोध पूरे शरीर पर धुएं की तरह फैल गया; रोआं-रोआं उत्तप्त हो गया। देखो, जल्दी मत करो। थोड़ी देर में पाओगे कि जो धुएं की तरह उठा था, वह धुएं की तरह ही लीन भी होने लगा, खोने भी लगा। शरीर का उत्ताप वापस लौट आया अपनी जगह पर। हृदय की धड़कन अपनी जगह आ गई। अब बादल विसर्जित हो गए। तुम जरा रुको, और देखते रहो। क्रोध आएगा और चला जाएगा, और तुम अछूते रह जाओगे।
और एक बार भी कोई व्यक्ति किसी एक वासना को देखने में समर्थ हो जाए, तो समस्त वासनाओं से मुक्त हो जाता है। क्योंकि कुंजी उसके हाथ में आ गई। अधैर्य के कारण हम उलझ जाते हैं, बड़ी जल्दी कर लेते हैं।
गुरजिएफ का बाप मरा तो उसने गुरजिएफ को कहा कि तू एक वचन दे दे, कि जब
भी तुझे क्रोध आए, तो तू चौबीस घंटे बाद उसका जवाब देना। कोई गाली दे, तो तू चौबीस घंटे बाद जाकर जवाब देना। गुरजिएफ ने कहा, यह भी बड़ी अजीब बात है! लेकिन आप कहते हैं... । मरते हुए पिता--तो उसने स्वीकार कर लिया।
फिर बाद में गुरजिएफ ने कहा कि मेरी पूरी जिंदगी बदल दी मेरे मरते बाप ने। क्योंकि चौबीस घंटे बाद कोई मतलब ही नहीं रह जाता। किसी ने गाली दी, अब उससे उसको कहकर आना पड़ता है कि ठहरिए, मैं जरा पिता को वचन दे दिया हूं, चौबीस घंटे बाद आकर जवाब दूंगा। पर चौबीस घंटे में बात इतनी राख हो जाती कि कई बार तो ऐसा लगने लगता कि उसकी गाली बिल्कुल सही थी, जाकर धन्यवाद दे आएं, आदमी मैं ऐसा ही हूं। कई बार ऐसा लगता है कि उसने गाली दी, यह उसके भीतर का रोग है, इससे मेरा क्या प्रयोजन? मैं तो सिर्फ निमित्त था।
लेकिन गुरजिएफ ने कहा, ऐसा मौका कभी नहीं आया कि मैं चौबीस घंटे बाद जाकर गाली का उत्तर दिया हूं। चौबीस घंटा बहुत वक्त है; चौबीस क्षण भी अगर आप रुक जाएं, जिंदगी दूसरी होने लगेगी।
मौन को जागरण बनाना है, और मन को बुद्धि में, विवेक में विसर्जित कर देना है।
फिर ज्ञानस्वरूप बुद्धि को महान आत्मा में विलीन करे।
फिर यह जो जागरण है, फिर यह जो विवेक है, यह जो अवेयरनेस है, यह भी अंत नहीं है। क्योंकि इस जागरण के लिए भी चेष्टा करनी पड़ती है। और जो भी चेष्टित है, वह स्वभाव नहीं बन पाता। जिसमें भी प्रयास करना पड़ता है, वह ऊपर-ऊपर ही रह जाता है। इसकी भी कोशिश करनी पड़ती है। भीतर साधना साधना पड़ता है। जागे रहो, होश रखो, यह भी द्वंद्व है। एक तरह का संघर्ष है। उपनिषद कह रहा है कि फिर इस संघर्ष को भी, इस चेष्टा को, आत्मा में लीन करना। आत्मा का अर्थ हैः बीइंग, और चेष्टा का अर्थ होता हैः डूइंग, जो भी हम करते हैं, वह। और आत्मा का अर्थ होता है, जो है, जिसको करना नहीं पड़ता, जिसमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। इस जागरूकता को आत्मा में लीन करने का

अर्थ है, यह स्वभाव बन जाए। इसकी कोई चेष्टा न करनी पड़े। यह रहे, इसको साधना न पड़े। जिसको भी साधना पड़ता है, वह कृत्रिम है, वह ऊपर-ऊपर है। जरा ही छोड़ देंगे, खो जाएगा।
एक सूफी फकीर को मेरे पास लाया गया। उस सूफी फकीर को सभी जगह परमात्मा
के दर्शन होते थे कोई तीस वर्ष से निरंतर। उसके भक्त थे। और भक्तों ने कहा कि आदमी अनूठा है। वृक्ष हो, कि पत्थर हो, कि पहाड़ हो, सब जगह इसे परमात्मा के दर्शन होते हैं। मैंने उस सूफी को कहा कि तुम अभी भी इसकी चेष्टा तो नहीं करते हो? उसने कहा, क्या मतलब? यह परमात्मा को देखने की चेष्टा तो नहीं करते हो?
मैंने कहा, तीन दिन तक तुम चेष्टा छोड़ दो, और फिर भी अगर परमात्मा दिखाई पड़ता रहे, तो समझना कि कुछ हुआ। अन्यथा चेष्टा से अगर दिखाई पड़ता रहे तो अभी कुछ भी नहीं हुआ।
तीन दिन बाद वह फकीर मुझ पर बहुत नाराज हो गया। उसने कहा कि मेरी तीस साल की साधना खराब कर दी। मुझे वृक्ष में फिर वृक्ष दिखाई पड़ने लगा! मैंने कहा, कुछ खराब नहीं हुआ, जो था ही नहीं वही खोता है। तुम चेष्टा कर-करके देख रहे थे, तीस साल में आदत हो गई थी। वह आदत थी, अनुभव नहीं था। आदत और अनुभव में बड़ा फर्क है। आदत ऊपर से थोपी गई व्यवस्था है, अनुभव भीतर से आया हुआ प्रवाह है।
इसलिए चेष्टा से जो जागरूकता सधती है, वह अंतिम नहीं है। प्रारंभ में
तो चेष्टा करनी पड़ेगी, लेकिन जल्दी ही उसे निश्चेष्ट आत्मा में लीन कर देना है। उसे भी भूल जाना है। उसकी भी याद नहीं रखनी है। वह रहे सहज। इसका ही स्मरण रखना है कि बिना चेष्टा के सहज रहे। यह हो जाता है।
अगर मन की सारी ऊर्जा इकट्ठी हो जाए, तो वह ऊर्जा विवेक बन जाती है। विवेक जब पूरी तरह जगने लगता है, तो उसे सहज कर लेना कठिन नहीं है। ऐसे ही जैसे कि आप तैरना सीखते हैं। जब पहले सीखते हैं, तो वह चेष्टा होती है। जब सीख जाते हैं, तो फिर स्वभाव--आदत नहीं। यही फर्क है। क्योंकि अगर तैरना आदत हो, तो आप तीस वर्ष के बाद फिर दुबारा तैरें तो आपको फिर सीखना पड़ेगा। तीस साल में आदत टूट जाएगी। लेकिन आप तीन सौ जन्मों के बाद भी, अगर आपको होश हो कि आप एक दफा तैरे हैं, तो फिर कोई सीखने की जरूरत नहीं। आप पानी में गए कि आप तैरने लगेंगे।
तैरना कोई कभी भूल नहीं सकता। एक दफा जान लिया, स्वभाव बन जाता है।
उसको भूलने का कोई उपाय नहीं। दुबारा सीखने की कभी कोई जरूरत नहीं पड़ती। आदत तो छूट जाती है। आप किसी चीज की आदत बना लें, फिर कुछ दिन अभ्यास न करें, छूट जाएगी। लेकिन स्वभाव नहीं छूटता।
विवेक जब पूरी तरह जगता है, तो धीरे-धीरे उसकी चेष्टा छोड़ते जाना है,
और निश्चेष्ट विवेक को साधना है। विवेक बना रहे, यह देखना है। कोशिश न करनी पड़े। कोशिश हटा देनी है। कोशिश के हट जाने पर एफर्टलेस अवेयरनेस, तब प्रयत्नरहित विवेक सधता है। वह आत्मा में लीन हो जाना है। लेकिन आत्मा भी अंत नहीं है।
उसको भी शांतस्वरूप परमपुरुष परमात्मा में विलीन करे।
अब क्या बचा विलीन करने को? पहले वाणी थी, शब्द थे, इंद्रियां थीं, उन्हें लीन किया। मन बचा--मौन मन बचा, फिर उस मौन मन को लीन किया, विवेक बचा। फिर उस विवेक को लीन किया, शुद्ध अस्तित्व--आत्मा बची। अब इसको किसमें लीन करें? और अब बचा क्या?
आत्मा के बचने का अर्थ है, अभी भी मुझे ख्याल है कि मैं हूं--अस्मिता।
एक सूक्ष्म, शुद्ध अहंकार अभी भी बचा--कि मैं हूं। इसको भी लीन कर दें--मैं नहीं हूं। इसका नाम है परमात्मा में लीन करना। इतना भी ख्याल न रह जाए कि मैं हूं। होना तो बचेगा, लेकिन मेरा होना नहीं बचेगा। उस शुद्ध होने का नाम, जहां मैं का कोई भाव नहीं उठता, परमात्मा है। वह आपके भीतर है केंद्र। वहां कोई मैं का भाव नहीं, कोई ईगो, कोई अस्मिता नहीं है। यह परम उपलब्धि है।
और यम कह रहा है--हे मनुष्यो! उठो, जागो, और श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर, उनके पास जाकर, उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो,

क्योंकि ज्ञानीजन उस तत्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सदृश दुर्गम बतलाते हैं।
निश्चित ही जैसे-जैसे हम भीतर प्रवेश करते हैं, वैसे-वैसे मार्ग दुर्गम होता जाता है, सूक्ष्म होता जाता है--नाजुक। जरा-सी भूल और आप भटक जाएंगे। जैसे-जैसे मार्ग भीतर जाता है, वैसे-वैसे रहस्यपूर्ण होता जाता है। और जैसे-जैसे मार्ग भीतर जाता है, वैसे-वैसे आप अकेले होते जाते हैं। इस भीतर के रास्ते पर भी किसी का साथ मिल जाए... । वह साथ किसका हो सकता है? वह उसका हो सकता है, जो भीतर ठीक अपने केंद्र पर स्थापित हो गया हो, जो पूरी तरह अपने केंद्र को पा लिया हो; जो इस मार्ग से गुजर चुका हो, जो इस मार्ग की कठिनाइयां, भटकन, उलझाव जानता हो; जो इस मार्ग के पास से गुजरने वाले दूसरे मार्ग जानता हो, जिन पर भटक जाने की बहुत संभावना है।
जैसे आप एक पहाड़ी यात्रा पर जाते हैं। तो दो तरह के उपाय हो सकते हैं।
या तो आप एक नक्शा ले लें। पहाड़ के सारे मार्गों का, सारे मोड़ों का, भटकाव का, खाई-खड्ड का, उलझन का, सारा नक्शा ले लें। और नक्शा लेकर पहाड़ पर चल पड़ें। शास्त्रों के अनुसार जो लोग चलते हैं, वे नक्शा लेकर चलते हैं। लेकिन ध्यान रहे, नक्शा मुर्दा है। और नक्शा कभी भी गाइड का काम पूरा नहीं कर सकता।
एक पहाड़ी आदमी, जो पढ़ा-लिखा भी न हो, जिसको नक्शा देखना भी न आता हो, जिसे शास्त्र का कोई पता भी न हो, अगर पहाड़ का रहने वाला निवासी आपको गाइड की तरह मिल जाए तो हजार नक्शों से बेहतर है। क्योंकि सारी भूमि उससे परिचित है। उसे कोई हिसाब लगाने की जरूरत नहीं। वह उस भूमि में बड़ा हुआ है, पला है। वह उस भूमि के रत्ती-रत्ती से वाकिफ है। वह पर्वत, वह पहाड़ उसके लिए मित्र है। भूलने-भटकने का कोई सवाल नहीं है।
वेद भी उतना काम न देंगे, कबीर जैसा बेपढ़ा-लिखा गाइड भी काफी है; वह उस भूमि के चप्पे-चप्पे से परिचित है। वह वहां हुआ है, वहां बढ़ा, वहां प्रवेश पाया है। वह उस आखिरी मंजिल तक हो आया है, जहां तक रास्ते ले जा सकते हैं। जीवित गुरु मिल सके, तो मुर्दा शास्त्रों की कोई भी कीमत नहीं है। शास्त्रों के साथ एक और बड़ी कठिनाई है। और वह कठिनाई यह है कि शास्त्रों का अर्थ आप लगाएंगे। नक्शा भी आपके हाथ में हो, तो भी नक्शे की व्याख्या तो आप ही करेंगे। और आप क्या व्याख्या करेंगे? आप वही अर्थ निकाल लेंगे जो आप निकाल सकते हैं। आपका अर्थ आपसे बड़ा तो नहीं हो सकता।
इसलिए जितने लोग गीता पढ़ते हैं, उतने ही अर्थ होते हैं। जिस भांति का आदमी गीता पढ़ेगा, उसी भांति का अर्थ निकाल लेगा। वह अर्थ कृष्ण का कभी भी नहीं हो सकता। वह अर्थ आपका ही होगा। तो गीता से आप कहां जाएंगे? क्योंकि अर्थ आप अपना निकाल लेंगे। वह अर्थ कृष्ण का होता तो शायद आप कहीं जा भी सकते थे।
इसलिए शास्त्र सार्थक नहीं हो पाते। शास्त्र तो बहुत हैं। नक्शे कितने हैं! कोई तीन सौ धर्म हैं जमीन पर, तो तीन सौ नक्शे हैं परमात्मा तक जाने के। लेकिन कोई नक्शा काम नहीं आ रहा है। सबके पास नक्शे हैं, सब अपना- अपना नक्शा लेकर बैठे हुए हैं! लेकिन नक्शे का अर्थ वह खुद ही निकालना पड़ता है। नक्शे की भाषा... ।
नक्शा तो प्रतीक है। नक्शा कोई असली चीज तो नहीं है। नक्शे के हाथ में होने से कुछ भी नहीं होता। कई बार तो यह भी हो सकता है कि नक्शा ही भटकाने का कारण हो जाए। बिना नक्शे के शायद आप पहुंच भी जाते। क्योंकि अपनी बुद्धि से थोड़ा खोजबीन करते। नक्शे पर आंख गड़ाए बैठे हैं, भूमि को तो देखते ही नहीं कि कहां जा रहे हैं?
फिर ये नक्शे भी हजारों साल से चल रहे हैं। हजारों लोगों ने उनमें चीजें जोड़ दी हैं, घटा दी हैं। मौलिक नक्शे कहीं भी बचे नहीं हैं। बच नहीं सकते, क्योंकि आदमी के हाथ में जो भी नक्शा रहेगा, वह उसमें कुछ जोड़ेगा, घटाएगा, कुछ अपनी तरफ से बनाएगा, कुछ रंग भर देगा, खूबसूरत कर लेगा। पूजा के योग्य बना लेगा, लेकिन चलने के योग्य नहीं रह जाएगा।
सभी शास्त्र पूजा के योग्य हो गए हैं। उनको मंदिर में रखकर हम पूजा कर सकते हैं, उतना काफी है। लेकिन उनको लेकर चल नहीं सकते।

शास्त्र से भरा हुआ मन कई बार तो सीधे तथ्य भी नहीं देख पाता, क्योंकि शास्त्र बीच में आ जाते हैं।
इसलिए यम कह रहा है, और समस्त सदगुरुओं ने कहा है, किसी ऐसे व्यक्ति को खोज लेना जो जीवित शास्त्र हो। उसके भरोसे यात्रा आसानी से हो सकती है। क्योंकि आपको व्याख्या नहीं करनी पड़ेगी। और आप पूछ भी सकते हैं। और धीरे- धीरे वह आपको अपनी तरफ उठाने लगेगा।
बुद्ध या महावीर या कृष्ण या क्राइस्ट जीवित शास्त्र हैं। लेकिन बाद में उनके वचन भी मुर्दा शास्त्र हो जाते हैं। फिर लोग उन मुर्दा वचनों को खोजकर ढोते रहते हैं।
समझदार साधक पहले तो यही कोशिश करेगा कि कोई जीवित व्यक्ति मिल जाए,
जो गाइड हो सके। और ऐसा कभी भी नहीं होता पृथ्वी पर कि ऐसे जीवित व्यक्ति न हों--ऐसा कभी होता ही नहीं--जो आपको मार्ग न दे सकें।
यम कह रहा--हे मनुष्यो! उठो, जागो और श्रेष्ठ महापुरुषों को पाकर, उनके पास जाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वर को जान लो। क्योंकि ज्ञानीजन उस तत्वज्ञान के मार्ग को छुरे की तीक्ष्ण की हुई दुस्तर धार के सदृश दुर्गम बतलाते हैं।
अकेले में उपद्रव भी हो सकता है। अकेले में तय करना बहुत मुश्किल है
कि कहां जा रहे हैं? क्या कर रहे हैं? जो हो रहा है, वह ठीक हो रहा है, या नहीं हो रहा? और भीतर की शक्ति से खेलना उपद्रव है। क्योंकि बड़े जाल हैं भीतर भी। और भीतर की ऊर्जा जग जाए और ठीक मार्ग न पकड़े, तो विक्षिप्त आप हो सकते हैं। न मालूम कितने साधक विक्षिप्त हो जाते हैं। और विक्षिप्त होने का कुल कारण इतना होता है कि कोई वहां मौजूद नहीं, जो उनको भीतर व्यवस्था दे सके; जो भीतर उन्हें अनुशासन दे सके। भीतर बड़ा जटिल जाल है।
एक युवक को मेरे पास लाया गया। वह अकेले ही शीर्षासन कर रहा है। व्याख्या खुद ही करनी पड़ेगी। और जब शीर्षासन से उसको लगा कि आनंद आता है, स्वास्थ्य मालूम पड़ा, एक तरह का वेल-बीइंग चौबीस घंटे रहने लगा, तो वह बढ़ाता चला गया समय। एक सीमा के बाद स्वास्थ्य भी खो गया, वह जो सुख मालूम होता था वह भी खो गया, और सिर सदा भारी रहने लगा और पत्थर की तरह बोझिल हो गया। तब वह घबड़ाया।
अब भीतर सब सूक्ष्म है व्यवस्था। मस्तिष्क में एक सीमित मात्रा में
ही खून की धारा बढ़ाई जा सकती है, उससे ज्यादा बढ़ाने पर मस्तिष्क के सूक्ष्म तंतु टूट जाते हैं। टूट जाने पर भारी नुकसान है। असल में आदमी इतना मस्तिष्क को विकसित कर सका इसीलिए कि उसने चार हाथ-पैर से चलना छोड़कर दो पैर पर वह खड़ा हुआ। जानवरों का मस्तिष्क विकसित नहीं हो सकता, क्योंकि खून की इतनी धारा तेजी से मस्तिष्क में बह रही है कि सूक्ष्म तंतु टूट जाते हैं। जैसे जोर से नदी की धार आ जाए, तो सूक्ष्म चीजें नष्ट हो जाएंगी। जब आप सिर के बल खड़े होते हैं, तो खून की धारा नीचे की तरफ बहनी शुरू हो जाती है, क्योंकि जमीन में कशिश है। जब आप ऊपर की तरफ खड़े हैं, तो सबसे कम खून मस्तिष्क में पहुंचता है। इसलिए तो मस्तिष्क इतना विकसित हो पाया; उसमें सूक्ष्म तंतु टिक पाए।
जानवर जमीन के साथ, चारों हाथ-पैर जमीन पर रखकर चल रहे हैं। उनके सिर
पर कशिश उतनी ही पड़ रही है जमीन की, जितनी उनके पूरे शरीर पर पड़ रही है। इसलिए आप खड़े-खड़े सोने में बड़ा मुश्किल अनुभव करेंगे। लेटकर सोना आसान होता है, क्योंकि आप फिर जानवर की स्थिति में आ गए। सोने के लिए लेट जाना जरूरी है। आराम के लिए लेट जाना जरूरी है।
असल में कोई भी पशु की अवस्था में जाने में आराम मिलेगा। क्योंकि मनुष्य की जो तकलीफ है, तनाव है, वह छूट जाता है।
उस युवक के सूक्ष्म तंतु टूट गए। और मस्तिष्क एक विक्षिप्तता की हालत में है।
शीर्षासन लाभ कर सकता है, लेकिन व्यक्ति और जीवित गुरु के करीब। क्योंकि वह तय करेगा कि कितनी देर, कितना समय, कितना और कब? क्योंकि सभी समय भी नहीं हो सकता। अगर आप रात शीर्षासन कर रहे हैं, तो अलग परिणाम होंगे। सुबह कर रहे हैं, तो अलग परिणाम होंगे। सूरज के उगने के साथ शीर्षासन के अलग परिणाम होंगे, सूरज के डूबने के साथ अलग परिणाम होंगे।

चांद किस अवस्था में है, उसके अनुसार अलग परिणाम होंगे। पूर्णिमा की रात अलग परिणाम होंगे, अमावस की रात अलग परिणाम होंगे। क्योंकि जीवन कोई छोटी घटना नहीं है, बड़ा विराट जाल है।
आपको पता है, पूर्णिमा की रात दुनिया में सर्वाधिक लोग पागल होते हैं। पूर्णिमा की रात दुनिया में सबसे ज्यादा पाप होते हैं। पूर्णिमा की रात दुनिया में सबसे ज्यादा हत्याएं होती हैं, आत्महत्याएं होती हैं। क्योंकि पूरा चांद आदमी के मन को उसी तरह खींचता है, जैसे सागर में लहरों को। इसलिए पुराना शब्द है पागल के लिए--चांदमारा। अंग्रेजी में शब्द है लूनाटिक। लूनाटिक लूनार से बना है, चांद से।
चांद किसी तरह आदमी को पागल कर रहा है। और इसलिए प्रेमी पूर्णिमा के दिन बड़े प्रसन्न होते हैं, क्योंकि पागलपन की सुविधा हो जाती है। कवि पूर्णिमा के गीत लिखते हैं, क्योंकि कवियों में थोड़ा तो पागलपन होता ही है। पूर्णिमा ज्यादा खींचती है। पूर्णिमा को जैसी कविता उतरती है, वैसी अमावस को नहीं उतर सकती। अमावस बड़ी शांत रात्रि है। जमीन पर सबसे कम अपराध अमावस की रात होते हैं। यह बड़ी उलटी बात मालूम पड़ेगी। हमको लगता है कि अंधेरी रात में ज्यादा होने चाहिए। लेकिन लोग सोते हैं, क्योंकि चांद खींचता नहीं। लोग आराम में होते हैं, झगड़े-कलह कम होती है।
चांद का भारी प्रभाव है। आपके रोएं-रोएं पर प्रभाव है। आपके शरीर में पचहत्तर प्रतिशत पानी है। और उस पानी का वही गुणधर्म है, जो सागर के पानी का है। तो चांद आपको, आपके पचहत्तर प्रतिशत व्यक्तित्व को खींचता है और आंदोलित करता है।
पूर्णिमा की रात शीर्षासन बड़ा खतरनाक हो सकता है। अमावस की रात उतना खतरनाक नहीं होगा। लेकिन यह कोई जीवित गाइड के पास... । किसी शास्त्र में यह लिखा हुआ नहीं है। और बहुत-सी सूक्ष्मताएं हैं जो लिखी नहीं जा सकतीं। क्योंकि एक-एक व्यक्ति में भेद पड़ेगा। अगर बहुत बुद्धिमान आदमी है, तो बहुत थोड़े शीर्षासन से फायदा होगा। अगर मूढ़ है, तो लंबे शीर्षासन से फायदा होगा। इस बात पर निर्भर करेगा कि मस्तिष्क के तंतु कितने मोटे और कितने सूक्ष्म हैं। मोटे तंतु ज्यादा देर तक शीर्षासन करें, तो हर्जा नहीं होगा।
और एक बात आप जानकर चकित होंगे, कि शीर्षासन करने वाले किसी आदमी ने
अब तक नोबल प्राइज नहीं पाई है। और शीर्षासन करने वालों ने कोई बहुत बड़ी बुद्धिमत्ता का प्रमाण नहीं दिया है। कुछ मामला है, कुछ कारण है। शीर्षासन जटिल प्रयोग है। और जब तक जीवित व्यक्ति के करीब न किया जाए, फायदे की जगह नुकसान ज्यादा संभव है।
यह ऐसा ही है जैसे कि आप एक ऐलोपैथी के दवाखाने में घुस जाएं, जहां कि
सब पाय.जन हैं और अपने ही दिल से मिक्सचर तैयार करके पीने लगें। और डाक्टर से कहें कि तुम क्या जानोगे! मैं बीमार हूं। मैं अपनी बीमारी को ज्यादा जानता हूं कि तुम मेरी बीमारी को ज्यादा जानते हो? या एक मेडिकल की किताब उठा लें और पढ़-पढ़कर दवाइयों का प्रयोग करें। आपकी बीमारी तो न जाएगी, बीमार चला जाएगा।
लेकिन शरीर के साथ आप इतना उपद्रव नहीं करते। आप मजे से डाक्टर के पास चले जाते हैं और वह जो प्रिस्क्राइब करता है, वह जो लिख देता है, उसको आप वेदवाक्य मानकर उसका अनुसरण करते हैं। मन शरीर से बहुत सूक्ष्म है। इसके लिए किसी महापुरुष के पास ही जाकर प्रिस्क्रिप्शन खोजना चाहिए। उसके प्रिस्क्रिप्शन आप खुद ही लिख लेते हैं।
अनेक लोग कुछ न कुछ करते रहते हैं! कोई किसी तरह का ध्यान करता रहता है; कोई किसी तरह का आसन करता रहता है। कोई कुछ, कोई कुछ। लोग अपना-अपना खोजकर बनाते रहते हैं। आपके बनाए हुए नक्शे और आपकी व्याख्याएं खतरनाक हैं। आप अपने से थोड़े सावधान रहें।
लेकिन क्यों ऐसा होता है? एक महापुरुष के पास जाने में क्या अड़चन है? अहंकार को अड़चन होती है। किसी महापुरुष के पास जाने में अहंकार को बड़ी पीड़ा होती है। वह पीड़ा वैसी ही है जैसे ऊंट को पहाड़ के पास जाने में होती है। क्योंकि वहां उसको पहली दफा पता चलता है कि हम कुछ भी नहीं।

तो ऊंट पहाड़ से बचता है। आदमी भी महापुरुष के पास जाने से बचते हैं।
और पहुंच भी जाएं, तो भी ऐसा इंतजाम करते हैं सुरक्षा का कि महापुरुष कुछ कर न पाए। कहीं कोई बदलाहट न कर दे। कहीं कोई जीवन की धारा न बदल दे। हम इतने भयभीत हैं! भयभीत का कारण हमारा अहंकार है।
महापुरुषों के पास तो केवल वे ही जा सकते हैं, जो अपने को मिटाने को, खोने को, छोड़ने को राजी हैं।
जो शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, रसरहित और बिना गंध वाला है, तथा
जो अविनाशी, नित्य, अनादि, अनंत, असीम, महान, आत्मा से श्रेष्ठ एवं सर्वथा सत्य तत्व है, उस परमात्मा को जानकर मनुष्य मृत्यु के मुख से सदा के लिए छूट जाता है।
मेधावी मनुष्य यमराज के द्वारा कहे हुए नचिकेता के इस सनातन उपाख्यान
का वर्णन करके और श्रवण करके ब्रह्मलोक में महिमा को उपलब्ध होते हैं, प्रतिष्ठित होते हैं।
जो मनुष्य सर्वथा शुद्ध होकर इस परम गुह्य रहस्यमय प्रसंग को ब्राह्मणों की सभा में सुनाता है, अथवा श्राद्धकाल में भोजन करने वालों को सुनाता है, उसका वह कर्म अनंत होने में अर्थात अविनाशी फल देने में समर्थ होता है और वह अनंत होने की शक्ति प्राप्त करता है।
इस अंतिम बात को बहुत गौर से समझ लेना चाहिए। क्योंकि इसकी बड़ी भ्रांत व्याख्याएं हो गई हैं। पहली तो बात, ब्राह्मणों की सभा का अर्थ ब्राह्मणों की सभा नहीं है। ब्रह्म-संसद। ब्रह्म की खोज करने वालों की सभा।
ये वचन ऐसे नहीं हैं कि सभी को सुनाए जाएं। क्योंकि जिनके भीतर कोई प्यास नहीं है, उनके लिए ये वचन व्यर्थ मालूम पड़ेंगे। जिनके भीतर कोई प्यास नहीं है, उनके लिए इन वचनों का कहना नासमझी है। बीमार को औषधि की जरूरत है। प्यासे को इन वचनों की, प्रवचनों की जरूरत है। प्यास बिल्कुल जरूरी है। सभी के लिए यह नहीं है। और अध्यात्म कभी भी सभी के लिए नहीं हो सकता है।
एक विशिष्ट विकास की अवस्था में ही अध्यात्म सार्थक है। उसके पहले आप सुन भी लेंगे, तो भी लगेगा व्यर्थ है, बेकार है। जैसे एक छोटे से बच्चे को, सात साल के बच्चे को, कोई वात्स्यायन का कामसूत्र पढ़कर सुनाने लगे। बिल्कुल व्यर्थ है। वह बच्चा कहेगा, कहां की बकवास है। अभी परियों की कथाएं, भूत-प्रेत, टारजन, अभी ये सार्थक हैं। अभी वात्स्यायन के कामसूत्र का क्या अर्थ है? अभी कामवासना जगी नहीं। तो उस बच्चे को बड़ी हैरानी होगी कि क्या बातें आप कर रहे हैं! क्यों कर रहे हैं? निरर्थक है।
लेकिन यही बच्चा चौदह साल का होगा, कामवासना जगनी शुरू होगी। और आप कितना ही बचाएं, यह वात्स्यायन का कामसूत्र खोज लेगा। गीता में छिपाकर रखकर पढ़ेगा। अब सार्थक होना शुरू हुआ। वासना की प्यास जगी तो वात्स्यायन का कामसूत्र सार्थक होता है।
ठीक अध्यात्म की प्यास... । लेकिन कामवासना तो प्रकृति के हाथ में है। चौदह साल में वह सभी को कामवासना से भर देती है। अध्यात्म की प्यास प्रकृति के हाथ में नहीं है। कभी-कभी जन्म-जन्म लग जाते हैं, तभी आप उस प्यास को उपलब्ध होते हैं। यह आपके हाथ में है।
अध्यात्म चुनाव है, और इसलिए स्वतंत्रता है। कामवासना परतंत्रता है,
वह आपके हाथ में नहीं है। प्रकृति आपको कर ही देगी प्रौढ़, क्योंकि प्रकृति का कुछ प्रयोजन है। कामवासना से प्रयोजन है, आपसे कोई प्रयोजन नहीं है। आप मिट जाएं, लेकिन संतति जारी रहे, जीवन चलता रहे। तो प्रकृति सब उपाय करती है कि जीवन अवरुद्ध न हो जाए। थोड़ी देर को सोचें, चौबीस घंटे के लिए जगत से कामवासना तिरोहित हो जाए--चौबीस घंटे में जगत नष्ट हो जाएगा।
तो प्रकृति बड़े प्रबल वेग से कामवासना को पैदा करती है। और आप कितना
ही लड़ें, कितना ही संघर्ष करें, कामवासना आपको पकड़ेगी ही। वह आपकी ग्रंथियों में, आपके हारमोन्स में, आपके शरीर के रोएं-रोएं में छिपी है।
वह एक घड़ी पर आपको जकड़ लेगी।

लेकिन अध्यात्म प्राकृतिक घटना नहीं है। अध्यात्म प्रकृति के पार जाने की कला है। और अपने अनुभव, विचार, चिंतन, मनन, अपनी ही खोज से आप एक दिन पकेंगे। और उसके पहले कोई उपयोग नहीं है।
इसलिए यम कहता है कि ब्राह्मणों की सभा में--वे जो ब्रह्म के तलाशी हैं, वे जो ब्रह्म के प्रार्थी हैं, वे जो ब्रह्म के कामी हैं, वे जो ब्रह्म को ही चाहते हैं, अब जो परम सत्य की खोज के लिए उत्सुक हैं--सर्वथा शुद्ध होकर इस परम गुह्य रहस्यमय प्रसंग को जो ब्राह्मणों की सभा में सुनाता है, वह अनंत शक्ति प्राप्त करता है। अथवा श्राद्धकाल में भोजन करने वालों को सुनाता है, उसका वह कर्म अनंत होने में और अविनाशी फल देने में समर्थ होता है।
दूसरी बात भी समझ लेनी जरूरी है। श्राद्ध एक परंपरा बन गई है। उसमें लोग कुछ धर्म-वचन, उपनिषद या कठोपनिषद सुनाते हैं। परंपराएं जड़ हो जाती हैं। यह उनका स्वभाव है। बहुत बार पुनरुक्त करने से उनके अर्थ खो जाते हैं। लेकिन अर्थ फिर-फिर खोजे जा सकते हैं।
यम कह रहा है, श्राद्ध के क्षणों में... । असल में यह पूरा उपनिषद मृत्यु और मृत्यु के पार कैसे जाएं, उससे संबंधित है। एक भी व्यक्ति जब मर जाता है, प्रियजन, परिजन, आपके निकट का, तो मृत्यु आपके लिए पहली दफा महत्वपूर्ण हो उठती है। जब भी कोई मरता है आपके निकट का, तो आपके भीतर भी कुछ मरता है। आपका भी एक अंश टूट जाता है, खंडित हो जाता है।
एक स्त्री को आप प्रेम करते हैं, आपकी पत्नी है--या आपका बेटा है, या आपका पति है, या आपकी मां है--जिस दिन आपकी पत्नी मरेगी, उस दिन पत्नी ने जो-जो आपके भीतर भर दिया था, और आपके व्यक्तित्व में जो-जो जगह घेर ली थी, और आपके हृदय के जिन-जिन कोनों में वह प्रवेश कर गई थी, वह सब एकदम टूट जाएंगे। पत्नी ही नहीं मरती, पति भी उसी दिन मरेगा; आधा तो मरेगा ही। घाव छूट जाएगा। मौत बड़ी अर्थपूर्ण हो जाएगी।
और सच तो यह है कि आपकी मौत के समय तो आप होश में नहीं रहेंगे, इसलिए उस वक्त कठोपनिषद सुनाना बहुत सार्थक नहीं होगा। सुनने वाला बेहोश होगा। लेकिन जब प्रियजन मरता है, तब आप आधे मरते हैं और होश भी रहता है, उस वक्त कठोपनिषद सार्थक हो सकता है। वह क्षण संवेदनशील है। उस क्षण आप ग्राहक हैं। उस क्षण आप समझना चाहते हैं--क्या है मृत्यु? और उस क्षण आप यह भी जानना चाहते हैं--क्या मृत्यु के पार कुछ बचता है? आपकी प्रेयसी, आपका प्रिय, आपका बेटा, आपकी मां, आपका पिता, आपका मित्र, क्या सच में ही बिल्कुल मिट गया, या कुछ बच रहता है। उस क्षण आपकी पूरी चेतना मृत्यु के इर्द-गिर्द घूमती है।
श्राद्ध के क्षणों में ये विचार सार्थक हो सकते हैं, उपयोगी हो सकते हैं। क्योंकि मौत के प्रति जब आप संवेदनशील हैं, तभी अमृत की तलाश शुरू हो सकती है।
कुछ क्षण जीवन में बड़े महत्वपूर्ण हैं। एक तो जीवन में वह क्षण महत्वपूर्ण है, जिस दिन आप पैदा होते हैं, मां के गर्भ से छूटते हैं। अति महत्वपूर्ण क्षण है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि उससे महत्वपूर्ण क्षण फिर दूसरा खोजना मुश्किल है। क्योंकि पहली बार आप स्वतंत्र होकर श्वास लेते हैं। एक परिधि थी मां की, उससे आप झटके से बाहर आ जाते हैं। जगत में आपका प्रवेश होता है। वह क्षण ट्रामैटिक है।
विल्हेम रेक, एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक का तो कहना है, कि जब तक हम उस क्षण को न बदलें, तब तक आदमियत को बदला नहीं जा सकता। उस क्षण में आदमी दुख से भर जाता है। इसलिए सभी बच्चे रोते-चीखते पैदा होते हैं। वह बड़े गहन दुख का क्षण है। क्योंकि सारा सुख जो गर्भ का था, छिन गया। सारी शांति गर्भ की छिन गई। वह जो गर्भ में एक सहज आनंद का क्षण था, वह नष्ट हो गया। चिंता, उपद्रव का जगत शुरू हो गया।
बच्चे के कान में पहली दफे शोरगुल सुनाई पड़ता है। वह नौ महीने तक परम शून्य में था। साउंडलेसनेस थी, कोई ध्वनि न थी। नौ महीने तक कोई चिंता न थी, कोई दायित्व न था। न भोजन की तलाश करनी थी, न नौकरी करनी थी, न श्वास लेनी थी। कुछ भी नहीं करना था। वह सिर्फ था। और होना पर्याप्त था, पूर्ण था। उस पूर्णता के सुख के क्षण से अचानक जगत में आना कष्टपूर्ण है।

ओटो रैंक कहता है, जब तक हम जन्म के क्षण को आनंद का क्षण न बना सकें, आदमी दुखी रहेगा। उसकी बात में सचाई है।
फिर दूसरा एक क्षण है, जब आप प्रेम में पड़ते हैं। वह भी बहुत महत्वपूर्ण है, जैसे गर्भ का क्षण महत्वपूर्ण है, क्योंकि आप किसी व्यक्ति से मुक्त होते हैं, वैसे प्रेम का क्षण महत्वपूर्ण है, क्योंकि आप फिर से किसी व्यक्ति से बंधते हैं। फिर आप अपने हृदय को, अपने को, किसी से जोड़ते हैं। वह एक नया जन्म है। उस क्षण में आप पूरे खुले होते हैं।
और तीसरा क्षण है, जब आपका प्रियजन मरता है। तब फिर आप टूटते हैं। और चौथा क्षण है, जब आप मरेंगे। ये चार क्षण अति बहुमूल्य हैं। और इन चार क्षणों को ठीक से सम्हाल लेना जीवन की कला का हिस्सा है। लेकिन ये चारों क्षण ही हम करीब-करीब गंवा देते हैं।
बच्चा जिस क्षण पैदा होता है... । अभी कुछ जीवशास्त्री एक सिद्धांत विकसित किए हैं। उनका सिद्धांत यह है कि बच्चा जैसे ही पैदा होता है, उस क्षण उसके आस-पास जो भी वातावरण होता है, जो भी घटना घट रही होती है, वह बच्चे पर सदा के लिए संस्कारित हो जाती है। उस क्षण का इंपैक्ट बहुत गहन है। फिर उससे छुटकारा बहुत मुश्किल है।
एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था मुर्गियों के ऊपर। तो जैसे ही मुर्गी
का बच्चा अंडे से निकलता है, उसको पहला दर्शन अपनी मां का होता है। वह अंडे को सम्हालकर बैठी है; उसको से रही है। बस वह मां के पीछे भागने लगता है। एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था, उसने मां की जगह एक रबर का गुब्बारा अंडे के ऊपर रखा हुआ था। और जैसे ही अंडे से चूजा निकला, उसने मां को तो नहीं देखा, रबर के गुब्बारे को देखा। बस रबर का गुब्बारा उसकी मां हो गया! रबर का गुब्बारा जहां भी ले जाओ, वह उसके पीछे भागता हुआ चला जाता। मां की उसे कोई चिंता ही नहीं। मां पास भी आए तो वह फिकर न करे। और यह फिर उस चूजे के लिए जिंदगीभर के लिए उपद्रव हो गया। वह चूजा फिर किसी मुर्गी को प्रेम नहीं कर सका। रबर का गुब्बारा ही उसका प्रेम हो गया।
इस तरह के बहुत प्रयोग हुए हैं अभी, और उनसे यह पता चलता है कि वह जो जन्म का क्षण है, वह बड़ा कीमती है। अगर उस क्षण में जो भी प्रभाव हम पर पड़ते हैं, वे जीवनभर हमारे साथ रहते हैं।
इसलिए मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि हर बेटा उस स्त्री की तलाश में है, जो उसकी मां जैसी होगी। चाहे उसे पता हो, चाहे न हो। और कोई भी स्त्री मां जैसी तो खोजना मुश्किल है। इसलिए सभी स्त्रियों से दुख मिलेगा। अड़चन होगी। क्योंकि आकांक्षा जिसकी तलाश की है, वह तो मिलने वाला नहीं।
और कोई स्त्री आपको बेटा बनाने के लिए आपसे विवाह कर भी नहीं रही है।
वह अपने पिता को खोज रही है; आप अपनी मां को खोज रहे हैं। यह एक उपद्रव का धंधा है। इसमें कहीं भी शांति होने वाली नहीं है। इसलिए विवाह नर्क है। उसमें अचेतन प्रभाव काम कर रहे हैं और संघर्ष खड़ा कर रहे हैं।
इस पहले क्षण में जो भी प्रभाव पड़ेंगे, वे जीवनभर साथ रहेंगे। प्रेम
के क्षण में जो प्रभाव पड़ेंगे, वे भी जीवनभर साथ रहेंगे। प्रियजन की मृत्यु के क्षण में जो प्रभाव पड़ेंगे, वे भी जीवनभर साथ रहेंगे। और आपकी मृत्यु के क्षण में जो प्रभाव पड़ेंगे, वे अगले जन्म में साथ रहेंगे।
यह उपनिषद मृत्यु से संबंधित है। इसलिए श्राद्ध के क्षणों में पढ़ने जैसा है, श्राद्ध के क्षणों में समझने जैसा है। जब मृत्यु आप पर प्रभावी हो, और चारों तरफ मौत की छाया ने आपको घेर लिया हो, और जीवन व्यर्थ मालूम पड़ता हो, उन क्षणों में अगर इस उपनिषद को कोई जानने वाला पुरुष इसके रहस्य को आप में खोल दे, तो वह संस्कार गहन हो जाएगा, वह आपके पूरे जीवन को बदलने की कीमिया सिद्ध हो सकता है।
अब ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
नौवां प्रवचन

आत्मज्ञान ही प्रत्यक्ष ज्ञान

द्वितीय अध्याय

प्रथम वल्ली

परांचि खानि व्यतृणत स्वयंभूस्तस्मात्परांपश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तच्रुरमृतत्वमिच्छन्।। 1।।

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते।। 2।।

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शान्श्च मैथुनान्।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते।। एतद्वै तत्।। 3।।

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति।। 4।।

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते।। एतद्वै तत्।। 5।।

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्यतिष्ठन्तयो भूतेभिर्व्यपश्यत।। एतद्वै तत्।। 6।।

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत।। एतद्वै तत्।। 7।।

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः।। एतद्वै
तत्।। 8।।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन।।
एतद्वै तत्।। 9।।

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति।। 10।।

स्वयं प्रगट होने वाले परमेश्वर ने समस्त इंद्रियों के द्वार बाहर की
ओर जाने वाले ही बनाए हैं, इसलिए (मनुष्य इंद्रियों के द्वारा प्रायः) बाहर की वस्तुओं को ही देखता है, अंतरात्मा को नहीं। किसी (भाग्यशाली) बुद्धिमान मनुष्य ने ही अमरपद को पाने की इच्छा करके च्रु आदि इंद्रियों को बाह्य विषयों की ओर से लौटाकर अंतरात्मा को देखा है।। 1।।

जो बाल-बुद्धि वाले बाह्य भोगों का अनुसरण करते हैं, वे सर्वत्र फैले हुए मृत्यु के बंधन में पड़ते हैं। किंतु बुद्धिमान मनुष्य नित्य अमरपद को विवेक द्वारा जानकर इस जगत में अनित्य भोगों में से किसी को (भी) नहीं चाहते।। 2।।

जिसके अनुग्रह से (मनुष्य) शब्दों को, स्पर्शों को, रूप-समुदाय को, रस को, गंध को और स्त्री-प्रसंग आदि के सुखों को अनुभव करता है, उसी के अनुग्रह से (यह भी जानता है कि) यहां क्या शेष रह जाता है अर्थात कुछ भी नहीं। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 3।।

स्वप्न के दृश्यों को और जाग्रत-अवस्था के दृश्यों को, इन दोनों अवस्थाओं के दृश्यों को (मनुष्य) जिससे बार-बार देखता है, उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, सबके आत्मा को जानकर बुद्धिमान शोक नहीं करता।। 4।।

जो मनुष्य कर्मफलदाता, सबको जीवन प्रदान करने वाले (तथा) भूत, (वर्तमान) और भविष्य का शासन करने वाले इस परमात्मा को (अपने) लिए समीप जानता है, उसके बाद वह (कभी) किसी की निंदा नहीं करता। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 5।।

जो जल आदि पांच तत्वों से पहले ही अजन्मा था, उस सबसे पहले तप से उत्पन्न, हृदय-गुहा में प्रवेश करके जीवात्माओं के साथ स्थित रहने वाले परमेश्वर को जो पुरुष देखता है, (वही ठीक देखता है)। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 6।।

जो देवी अदिति प्राणों के सहित उत्पन्न होती है, जो प्राणियों के सहित उत्पन्न हुई है (तथा जो) हृदयरूपी गुहा में प्रवेश करके वहीं रहने वाली है, उसे (जो पुरुष देखता है, वही यथार्थ देखता है)। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 7।।

जो सर्वज्ञ अग्निदेवता गर्भिणी स्त्रियों द्वारा भली प्रकार धारण किए हुए गर्भ की भांति दो अरणियों में सुरक्षित है, छिपा है (तथा जो) जाग्रत है (और) हवन करने योग्य सामग्रियों से युक्त मनुष्यों द्वारा प्रतिदिन स्तुति करने योग्य (है), यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 8।।
जहां से सूर्यदेव उदय होते हैं और जहां अस्त होते हैं, सभी देवता उसी में समर्पित हैं। उस परमेश्वर को कोई (कभी भी) नहीं लांघ सकता। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 9।।

जो परब्रह्म यहां (है), वही वहां (परलोक में भी है)। जो वहां (है), वही यहां (इस लोक में) भी है। वह मनुष्य मृत्यु से मृत्यु को (अर्थात बारंबार जन्म-मरण को) प्राप्त होता है, जो इस जगत में (उस परमात्मा को) अनेक की भांति देखता है।। 10।।

मनुष्य की इंद्रियां केवल बाहर की ओर उन्मुख होती हैं और हो सकती हैं। भीतर की ओर उन्मुख होने का कोई प्रयोजन नहीं है।
जैसे कोई वैज्ञानिक दूर के तारों की खोज के लिए दूरबीन बनाता है। तो
उस दूरबीन से दूर के तारे तो दिखाई पड़ जाते हैं, लेकिन दूरबीन के पीछे छिपा हुआ वैज्ञानिक उस दूरबीन से दिखाई नहीं पड़ता, जो बिल्कुल पास ही खड़ा है। दूरबीन से जो आंखें सटाकर खड़ा है, दूरबीन उस वैज्ञानिक को नहीं पकड़ती; दूर, करोड़ों मील दूर के तारों को पकड़ लेती है। दूरबीन बनी ही है दूर को देखने के लिए। वह जो देखने वाला है, उसे देखने के लिए तो किसी भी दूरबीन की कोई जरूरत नहीं है।
इंद्रियां हैं पदार्थ को देखने के लिए। स्वयं को देखने के लिए इंद्रियों की कोई भी जरूरत नहीं है। स्वयं को तो बिना इंद्रियों के ही देखा जा सकता है। इसलिए इंद्रियां भीतर की तरफ नहीं जातीं, बाहर की तरफ जाती हैं। पर इससे बड़ी उलझन खड़ी होती है। इससे उलझन यह खड़ी होती है कि दूर तारों को देखने वाला वैज्ञानिक धीरे-धीरे यह भूल भी जा सकता है कि वह भी है। तारे ही सब कुछ हो जा सकते हैं। दूरबीन को थामे-थामे वह जो पीछे देखने वाला है, वह विस्मरण हो जा सकता है, क्योंकि निरंतर वही दिखाई पड़ेगा जो

बाहर है, सतत वही दिखाई पड़ेगा जो बाहर है। और जो भीतर छिपा है, वह दिखाई न पड़ने से स्मृति से खो सकता है।
यही हुआ है। हमारी सारी इंद्रियां बाहर की तरफ जाती हैं। मैं हाथ से आपको छू सकता हूं। मैं हाथ से अपनी देह को भी छू सकता हूं, क्योंकि वह भी पराई है और बाहर है। हाथ से मैं अपने को नहीं छू सकता जो देह में छिपा है। हाथ से मैं छूने वाले को नहीं छू सकता।
जब मैं अपना हाथ आपकी तरफ बढ़ाता हूं, तो सिर्फ हाथ ही नहीं बढ़ता, हाथ में छिपा हुआ मैं भी बढ़ता हूं। मैं बढ़ना चाहता हूं, आपको छूना चाहता हूं, इसीलिए हाथ बढ़ता है। हाथ तो छाया की तरह मेरे पीछे आता है। मैं चाहता हूं आपको छुऊं, तो मेरा हाथ अनुसरण करता है, मेरी आज्ञा का पालन करता है। लेकिन जब मैं आपको छूता हूं, तब दो घटनाएं घट रही हैं--एक तो आप हैं जिसको मैंने छुआ, और एक मैं हूं जिसने छुआ; और एक हाथ है जिसके द्वारा छुआ, और एक आपका शरीर है जिसके द्वारा आपको छुआ गया।
आंख बाहर की तरफ देखती है, उसे सब दिखाई पड़ जाता है। सिर्फ मैं जो भीतर छिपा हूं, वह उसे दिखाई नहीं पड़ेगा। कान बाहर की तरफ सुनते हैं। स्वाद, रस, गंध, सब बाहर से संबंधित हैं।
इंद्रियों का निर्माण ही इसलिए हुआ है कि हम जगत से परिचित हो सकें। दूसरे से, अन्य से परिचित होने की व्यवस्था है। लेकिन वह जो भीतर छुपा है, वह इस परिचय में अपरिचित हो जाता है। जो हमारा अपना होना है, वह आच्छादित होता चला जाता है। हम वस्तुओं को जानते-जानते उसे भूल ही जाते हैं जो जानने वाला है। यह बात इस सूत्र की पहली बात है।
स्वयं प्रगट होने वाले परमेश्वर ने समस्त इंद्रियों के द्वार बाहर की
ओर जाने वाले ही बनाए हैं। इसलिए मनुष्य इंद्रियों के द्वारा प्रायः बाहर की वस्तुओं को ही देखता है, अंतरात्मा को नहीं। किसी भाग्यशाली बुद्धिमान मनुष्य ने ही अमरपद को पाने की इच्छा करके च्रु आदि इंद्रियों को बाह्य विषयों की ओर से लौटाकर अंतरात्मा को देखा है।
इसमें एक बात ख्याल में ले लेने जैसी है, क्योंकि उससे बहुत भ्रांति साधकों के जगत में है। आंख को भीतर लौटाने का क्या अर्थ है? क्या आंख भीतर लौटाई जा सकती है? आंख भीतर लौटाई ही नहीं जा सकती। आंख बाहर ही देख सकती है। आंख के भीतर देखने का कोई उपाय नहीं। देखने वाले को आंख से देखने का कोई उपाय नहीं। लेकिन संतों ने कहा है, योगियों ने कहा है, लौटा लो आंख को, उलटी कर लो धारा।
लौटाने का कुल मतलब इतना है कि बाहर की तरफ मत जाओ। जो ऊर्जा आंख से बाहर जाती है, उसे बाहर मत जाने दो। बाहर की तरफ जाने वाला द्वार बंद हो जाए, तो जो देखने वाला बाहर की तरफ जाता है, बाहर न जाकर वह देखने वाला अपनी तरफ लौट आएगा। वहां कोई आंख न होगी, लेकिन स्वयं को देखने के लिए आंख की कोई जरूरत ही नहीं है। स्वयं का देखना बिना आंख के हो जाता है। वह च्रुरहित दर्शन है।
स्वयं को सुनने के लिए कोई कानों को भीतर लौटाने की जरूरत नहीं है। सिर्फ कान बाहर न सुनें। बाहर की ध्वनि-तरंगों का जाल कान से छूट जाए। कान बाहर के प्रति उपेक्षा से भर जाएं। तो जो ऊर्जा कान से बाहर की तरफ जाती है बाहर न जाए, तो वह ऊर्जा भीतर की ध्वनि को अपने आप सुन लेती है। उस ध्वनि को सुनने के लिए कान की कोई भी जरूरत नहीं है।
इंद्रियां भीतर लौट आएं, इसका केवल इतना ही अर्थ है कि बाहर न जाएं, बाहर की तरफ प्रवाह न हो। तो जैसे कोई झरना बहता है और अवरुद्ध हो जाए और कहीं जाने का मार्ग न मिले, तो झरना अपनी तरफ लौट आएगा, झरने का बहना बंद हो जाएगा और एक झील बन जाएगी। ऐसे ही चेतना बाहर जा रही है पांचों इंद्रियों से। वह बाहर न जाए तो चैतन्य की झील भीतर निर्मित हो जाती है। वह झील स्वयं-बोध-संपन्न है। वह झील स्वयं को देखने, स्वयं को सुनने, स्पर्श करने में संपन्न है। लेकिन वे सारे अनुभव अतींद्रिय हैं। उनका इंद्रियों से कोई भी लेना-देना नहीं है।
एक सूफी फकीर हुआ बायजीद। वह निरंतर कहा करता था कि मेरे गुरु ने तीन युवकों को एक-एक कबूतर दे दिया और कहा कि ऐसी जगह जाकर कबूतर को मार डालना जहां कोई देखने वाला न हो। एक युवक तो पांच मिनट बाद कबूतर को मारकर वापस आ

गया। वह बगल की गली में गया। वहां कोई भी नहीं था। उसने गरदन मरोड़ी। वापस आ गया। दूसरा युवक तीन दिन बाद कबूतर को मारकर लौटा। उसने बड़ी खोजबीन की; कहीं भी भूल-चूक से कोई देख न ले। तो वह एक गहरी गुफा में गया। उसने गुफा के द्वार पर पत्थर लगा दिया। किसी के आने का कोई उपाय न रहा। गहन अंधकार था। वहां कोई देख भी नहीं सकता था, आ भी जाए तो भी। उसने गरदन मरोड़ दी।
तीसरा युवक तीन महीने के बाद कबूतर को लिए वापस लौटा। गुरु ने कहा कि क्या तीन महीने में तुम ऐसी कोई जगह न खोज पाए, जहां कोई भी न हो? उसने कहा कि तीन जन्मों में भी खोजना संभव नहीं है। तीन महीने बहुत मेहनत कर ली। गहन गुफा में गया, अंधकार था, लेकिन मैं तो देख ही रहा था; कबूतर तो देख ही रहा था। दो तो मौजूद थे। कबूतर की भी आंखें बंद कर दूं, तो भी मैं मारने वाला तो देखता ही रहूंगा--कितना ही गहन अंधकार हो!
बायजीद के गुरु ने कहा कि तू ही केवल स्वयं को खोजने में सफल हो पाएगा। बाकी दो की कोई आंतरिक खोज नहीं है। दो को विदा कर दिया, उस एक को रोक लिया। क्योंकि तुझे इतना स्मरण है कि इंद्रियां भी जहां नहीं देख पातीं, प्रकाश जहां मौजूद नहीं, वहां भी तू तो देख ही रहा है। तेरे देखने के लिए इंद्रियों की कोई भी जरूरत नहीं है।
कितना ही गहन अंधकार हो कमरे में, आपको कुछ भी न दिखाई पड़ता हो, लेकिन
आप हैं, इतना तो पता चलता ही रहता है। दीवाल न दिखती हो, सामान न दिखता हो, कक्ष में बैठे और लोग न दिखते हों, लेकिन आप हैं, यह तो कोई भी अंधकार मिटा न सकेगा। यह तो कोई भी स्थिति में आप रहेंगे ही और आपको पता चलता ही रहेगा कि मैं हूं। यह होना स्वयंसिद्ध है। यह किसी माध्यम से नहीं है। इसलिए आत्मज्ञानियों ने कहा है कि जगत के सारे अनुभव परोक्ष हैं, सिर्फ आत्म-अनुभव प्रत्यक्ष है।
यह बड़ी उलटी बात है। क्योंकि आमतौर से हम सोचते हैं कि सब चीजें प्रत्यक्ष हैं। वृक्ष दिखाई पड़ रहा है। आप दिखाई पड़ रहे हैं। सब चीजें प्रत्यक्ष हैं, आंख के सामने हैं। लेकिन आत्मज्ञानी कहते हैं कि जगत के सभी अनुभव परोक्ष हैं। क्योंकि बीच में आंख माध्यम का काम कर रही है। तुम पीछे छिपे हो। ज्ञेय वस्तु बाहर है, बीच में माध्यम, दलाल आंख है। आंख धोखा दे सकती है।
ज्ञान सीधा नहीं है, इमीजिएट नहीं है। ज्ञान के बीच में एक माध्यम है।
तो पीलिया हो किसी को तो पीला रंग दिखाई पड़े। किसी की आंख खराब हो, कलर ब्लाइंड हो कोई, तो उसे कोई रंग दिखाई न पड़े। आंख का भरोसा क्या? आंख ठीक कह रही है--इसका सबूत क्या? आंख का भरोसा करना पड़ता है।
अब यह बड़े मजे की बात है कि लोग दुनिया में सभी से प्रमाण पूछते हैं, लेकिन कभी अपनी इंद्रियों से कोई प्रमाण नहीं पूछते कि तुम्हारा भरोसा क्या? आपकी आंख ठीक देख रही है, इसका प्रमाण क्या है? चार्वाकों ने, नास्तिकों ने एक ही प्रमाण माना है--प्रत्यक्ष, कि जो आंख के सामने है, उसे ही मानेंगे।
लेकिन उन चार्वाक विचारकों ने यह कभी नहीं पूछा कि इस आंख के भरोसे का इतना क्या कारण है? आंख सदा ठीक ही देखती है क्या? क्योंकि रात सपने भी देखती है आंख। वे प्रत्यक्ष होते हैं, लेकिन सत्य नहीं होते। कभी राह पर पड़ी रस्सी सांप दिखाई पड़ जाती है। और जब आंख सांप देखती है रस्सी में, तो सांप बिल्कुल दिखाई पड़ता है। लेकिन बाद में रोशनी आने पर पता चलता है, वहां कोई सांप नहीं। मरुस्थल में मृग-मरीचिका दिखाई पड़ जाती है।
पहली दफा जब थ्री-डायमेंशनल फिल्म बनी, तीन-आयामी फिल्म बनी, तो जो लोग उन्हें देखने जाते थे, वे भयभीत हो जाते थे। जो पहली फिल्म लंदन में दिखाई गई, उसमें एक घुड़सवार भाला फेंकता है। पूरे हाल के लोग अपनी गरदन झुका लेते हैं। क्योंकि थ्री-डायमेंशनल फिल्म में वह असली भाले जैसा भाला मालूम पड़ता है। और एक क्षण को भाला पास से गुजर रहा है, ऐसा एहसास होता है। पूरा हाल दो हिस्सों में झुक जाता। परदे पर कुछ भी नहीं है। न कोई भाला है; न कुछ आने को, न कुछ जाने को। सिर्फ छाया और प्रकाश का खेल है। लेकिन आंख धोखा खा जाती है।
आंख का भरोसा क्या? इंद्रियों का इतना भरोसा क्या है? आत्मज्ञानी पुरुष कहते हैं कि सिर्फ आत्मज्ञान ही प्रत्यक्ष है, बाकी सब ज्ञान

परोक्ष है। क्योंकि बीच में कोई मध्यस्थ है। मध्यस्थ का कोई भरोसा नहीं। जिसको सीधा देखा है, वही देखा है; जिसको बीच में लेकर देखा है, उसकी कोई बात नहीं। आप आकर मुझे कहते हैं कि बाहर रोशनी है। आप पर मुझे भरोसा करना पड़ेगा। आप सच बोल सकते हैं, आप झूठ बोल सकते हैं, आप खुद धोखे में हो सकते हैं। लेकिन आपका भरोसा क्या है, जब तक मैं ही बाहर जाकर न देख लूं?
लेकिन पदार्थ का ज्ञान तो परोक्ष ही होगा, सिर्फ आत्मा का ज्ञान प्रत्यक्ष हो सकता है। क्योंकि वहां बीच में कोई भी नहीं है। मैं ही हूं; अकेला मैं ही हूं। कोई धोखा देने वाला तत्व, कोई विकृत करने वाला तत्व बीच में नहीं है। इसलिए सामान्य अनुभव में जो प्रत्यक्ष है, आत्मज्ञानी के लिए परोक्ष है। और सामान्य अनुभव में जिसको हम बिल्कुल नहीं देखते, वह आत्मज्ञानी के लिए प्रत्यक्ष है।
आत्मा स्वयं प्रकाशित है। उसे देखने के लिए इंद्रियों के प्रकाश की कोई भी जरूरत नहीं है। अंधा भी उसे देखने में इतना ही समर्थ है, जितना आंख वाला। बहरा भी उसे देखने में इतना ही समर्थ है, जितना कान वाला। लकवे से लगा हुआ, पड़ा हुआ मनुष्य भी उसे देखने में उतना ही समर्थ है, जितना कोई एवरेस्ट पर चढ़ जाए इतनी सामर्थ्य वाला। उससे कोई, शरीर की सामर्थ्य से कोई भेद नहीं पड़ता।
आत्मा को जानने में शरीर का उपयोग ही नहीं होता। शरीर हो दुर्बल कि सबल, स्वस्थ कि अस्वस्थ, सुंदर कि कुरूप, काला कि गोरा, कोई अंतर नहीं पड़ता। शरीर की कोई उपयोगिता आत्मज्ञान के लिए नहीं है। लेकिन शरीर की उपयोगिता पर-ज्ञान के लिए है। दूसरे को जानना हो तो शरीर की उपयोगिता है। आंखें स्वस्थ होनी चाहिए, कान स्वस्थ होने चाहिए। शरीर शक्तिशाली होना चाहिए, तो ही दूसरे से संबंध जुड़ेगा। अपने से संबंध तो बना ही हुआ है, उसे जोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है।
इसलिए यह सूत्र कहता है, परमेश्वर ने, स्वयं प्रगट होने वाले परमेश्वर ने... । इसलिए परमेश्वर को जानने के लिए तो इंद्रियों की जरूरत नहीं है, वह तो स्वयं ही प्रगट हो जाता है। वह प्रगट है ही। लेकिन संसार स्वयं प्रगट नहीं होता, संसार को जानने के लिए इंद्रियों की जरूरत है। इसलिए जितनी ज्यादा इंद्रियां हों, उतना ज्यादा संसार प्रगट होता है। जगत में बहुत इंद्रियों वाले प्राणी हैं। मनुष्य के पास पांच इंद्रियां हैं। अमीबा है छोटा-सा जीवकोष्ठ, उसके पास एक ही इंद्रिय है, केवल शरीर है। स्पर्श का भर उसे अनुभव होता है, और कोई इंद्रिय नहीं है। तो अमीबा सबसे कम विकसित प्राणी है--आत्मा की दृष्टि से नहीं, जगत को जानने की दृष्टि से। उसकी जानकारी सिर्फ स्पर्श पर निर्भर है। बस उतना ही उसका ज्ञान है। फिर दो इंद्रियों वाले, तीन इंद्रियों वाले, चार इंद्रियों वाले प्राणी हैं। जितनी ज्यादा इंद्रियां होती जाती हैं, जगत की जानकारी उतनी बढ़ती चली जाती है।
कोई आश्चर्य न होगा कि किसी चांद-तारे पर पांच इंद्रियों से ज्यादा इंद्रियों वाले प्राणी हों, तो मनुष्य का ज्ञान उनके सामने बिल्कुल फीका हो जाए। दस इंद्रियां हो सकती हैं, कोई बाधा नहीं है, कोई कारण नहीं है। हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि छठवीं इंद्रिय क्या होगी? क्योंकि पांच का हमारा ज्ञान है, पांच की हमारी कल्पना है। जिन पशुओं के पास चार इंद्रियां हैं, वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि पांचवीं इंद्रिय क्या होगी? उनके पास चार ही इंद्रियां हैं, चार का उन्हें ज्ञान है।
पशुओं को छोड़ दें, एक अंधा आदमी है, वह सोच भी नहीं सकता कि प्रकाश क्या होगा। वह यह भी कल्पना नहीं कर सकता कि आंख जैसी चीज किस ढंग की होती होगी, जिससे प्रकाश दिखाई पड़ता है। क्योंकि न प्रकाश का उसे कोई अनुभव है, न आंख का उसे कोई अनुभव है। उसके पास चार ही इंद्रियां हैं, तो उसका ज्ञान सीमित हो जाता है।
आप जानकर हैरान होंगे कि आपके ज्ञान का अस्सी प्रतिशत आंख से आता है, बाकी चार इंद्रियों से तो केवल बीस प्रतिशत आता है। इसलिए अंधे पर हमें बहुत दया आती है। लूले पर उतनी दया नहीं आती, बहरे पर उतनी दया नहीं आती, अंधे पर बहुत दया आती है। दया का कारण है कि उसका अस्सी प्रतिशत जीवन

अंधेरे में है। अस्सी प्रतिशत ज्ञान की उसे कोई संभावना नहीं है। वह बहुत दयनीय है।
लेकिन ये पांचों इंद्रियां जो ज्ञान देती हैं, वह बाहर का है। भीतर के ज्ञान के लिए कोई इंद्रिय आवश्यक नहीं है। वहां तो सारी इंद्रियों को छोड़कर ही कोई प्रवेश करता है। वहां इंद्रियों का त्याग ही उपाय है। स्वयं प्रगट होने वाले परमेश्वर ने समस्त इंद्रियों के द्वार बाहर की
ओर बनाए हैं। इसलिए अधिक मनुष्य प्रायः बाहर की वस्तुओं को देखने में ही जीवन व्यतीत कर देते हैं, अंतरात्मा को नहीं। किसी भाग्यशाली बुद्धिमान मनुष्य ने ही अमरत्व को पाने की आकांक्षा से च्रु आदि इंद्रियों को बाह्य-विषयों की ओर से हटाकर अंतरात्मा को देखा है।
सारे ध्यान के प्रयोग, अलग-अलग विधियों वाले प्रयोग, एक चीज को मौलिक रूप से स्वीकार करते हैं कि आपकी सारी इंद्रियां शांत हो जाएं। किस ढंग से शांत हों, इसमें भेद है, लेकिन शांत हो जाएं, इसमें कोई विवाद नहीं है। सब इंद्रियां शांत हो जाएं और आप भीतर रह जाएं। जगत बाहर रह जाए, आप भीतर रह जाएं और बीच में कोई सेतु न रहे, कोई जोड़ न रहे। उस क्षण में अंतरात्मा आविर्भूत होती है, प्रगट हो जाती है।
यहां हम जो प्रयोग कर रहे हैं, तीन चरणों में आपकी पूरी इंद्रियों का उपयोग किया जाता है। जितनी ज्यादा तेजी से आप कर सकें, उपयोग कर लें; थका दें। ताकि दस मिनट के लिए इंद्रियां थककर भी शांत हो जाएं, तो भी भीतर की झलक आ जाए।
सूफी फकीर एक नृत्य करते हैं--दरवेश-नृत्य, बड़ा कीमती है। जरा आपकी हिम्मत थोड़ी बढ़ती जाएगी तो जल्दी हम दरवेश-नृत्य में प्रवेश करने लगेंगे। लेकिन दरवेश-नृत्य काफी लंबा चलता है, कोई पांच घंटे। धीरे-धीरे आप कर लेंगे। पांच घंटे फकीर नाचता ही रहता है। सब थक जाता है। जब तक अपने आप शरीर गिर नहीं जाता, तब तक नृत्य जारी रहता है। अपनी तरफ से नहीं रोकना है, अपनी तरफ से कुछ करना ही नहीं है। नाचते ही जाना है, नाचते ही जाना है। जब तक आखिरी बूंद भी शेष रह जाए शक्ति की, तब तक नाचते ही जाना है।
बेईमानी जरा भी नहीं चलेगी कि आदमी सोचे कि अब थक गए, बैठ जाएं। नहीं,
जब तक आपको लग रहा है कि आप बैठ सकते हैं, अभी कम से कम बैठने की ताकत बची है, इसको भी नाचने में लगा देना है। जब तक कि शरीर को आप देखें न कि गिर रहा है... ।
बड़ा अनूठा अनुभव है। जब आपकी सारी शक्ति शरीर की चुक जाती है और आप देखते हैं कि शरीर गिर रहा है--आप कुछ भी नहीं कर सकते, न रोक सकते, न नाच सकते, न आप सम्हाल सकते--बस शरीर गिर रहा है। उस क्षण साक्षी का भाव अचानक जग जाता है। और जब शरीर बिल्कुल थक जाता है, तो कोई भी इंद्रिय सक्रिय नहीं रह जाती, द्वार बंद हो जाते हैं, सेतु टूट जाते हैं। सूफी भीतर प्रवेश कर जाता है।
हम जो कीर्तन का प्रयोग कर रहे हैं, वह सूफी-नृत्य का ही हिस्सा है। बहुत लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि भारत में ऐसा तो कीर्तन होता नहीं! इसका भारतीय कीर्तन से कोई सीधा संबंध है भी नहीं। यह कोई पूजा-पाठ नहीं है। इसका कोई संबंध कृष्ण, गोपाल से नहीं है। वह तो केवल बहाना है। वह तो केवल खूंटी है। उस बहाने आपको थकाने की चेष्टा है। इसलिए जो अपने को बचाएगा, वह मूल मुद्दा ही चूक गया। थका डालना है। इतने जोर से शक्ति का उपयोग करना है कि आप बिल्कुल थक जाएं, शरीर मुर्दा हो जाए। जैसे सारा प्राण सूख गया। उस क्षण में इंद्रियां बंद हो जाती हैं। अंतरात्मा की झलक... ।
और एक बार झलक मिलने लगे, फिर कठिनाई नहीं है। एक दफे रास्ता साफ हो जाए, फिर जरूरत नहीं है कि आप थकाएं। फिर तो आंख भी बंद करें, आप भीतर जा सकते हैं। एक दफे वह रास्ता साफ हो जाए, पहचान में आ जाए, पगडंडी कौन-सी है। जैसे अंधेरी रात में बिजली चमक जाए और रास्ता दिख जाए एक क्षण को। फिर बिजली खो भी जाए तो भी फिर आप अंधेरे में आश्वस्त चल सकते हैं। आप जानते हैं, रास्ता है। एक दफे देखा है। अब आप खोज सकते हैं।
ये सारे ध्यान के प्रयोग मौलिक रूप से थकाने के प्रयोग हैं, ताकि इंद्रियां थककर बैठ जाएं। एक रास्ता है जबरदस्ती बिठाने का। मैं उसके पक्ष में नहीं हूं, क्योंकि जबरदस्ती कोई भी इंद्रियों को बैठा नहीं

सकता। हालत वैसी हो जाती है, जैसे छोटे बच्चे को कह दो कि बैठो शांति से। तो वह बैठ जाता है, लेकिन उसकी सारी ताकत शांति से बैठने में लग रही है। एक-एक चीज को खींचे हुए है। तना हुआ है। शिथिल भी नहीं हो पाता। विश्राम भी नहीं कर पाता। तनावग्रस्त है।
न, उस बच्चे को कहो कि दौड़ो, एक पच्चीस चक्कर लगाओ। फिर कहने की जरूरत नहीं कि शांत बैठ जाओ। पच्चीस चक्कर के बाद वह खुद ही शांत बैठ जाएगा। वह शांति बड़ी अलग होगी। उस शांति में कोई तनाव नहीं होगा, कोई बेचैनी नहीं होगी। बल्कि शांति में एक सुख होगा, एक राहत होगी, एक झलक होगी विश्राम की। इंद्रियों को थका डालें, इतना थका डालें कि क्षणभर को भी अगर वे विश्राम में पहुंच जाएं, तो उतने क्षणभर को आपका प्रवेश भीतर हो जाए।
जो बाल-बुद्धि वाले बाह्य भोगों का अनुसरण करते हैं, वे सर्वत्र फैले हुए मृत्यु के बंधन में पड़ते हैं। किंतु बुद्धिमान मनुष्य नित्य अमरपद को विवेक द्वारा जानकर इस जगत में अनित्य भोगों में से किसी को भी नहीं चाहते।
विवेक का अर्थ इतना ही है कि जो निरर्थक है, वह हमें निरर्थक दिखाई पड़ जाए; जो सार्थक है, वह सार्थक दिखाई पड़ जाए। जगत में हम कुछ भी चाहें, पहली तो बात, अगर न मिले तो दुख, और मिल जाए तो भी सुख नहीं। एक आदमी धन चाहता है। जब तक नहीं मिलता, तब तक दुखी है। और जब मिल जाता है, तब वह पाता है कि क्या मिला? धन के ढेर लग गए, अब क्या?
जो भी आपने चाहा है अपने अतीत में, अगर न मिला तो आपने दुख पाया है, अगर मिल गया तो कौन-सा सुख पाया है? बस जब तक नहीं मिलता, तभी तक सुख का आभास होता है। इस जगत में दुख वास्तविक है, सुख सिर्फ आभास है। जो चीज नहीं मिलती, बस उसमें सुख है। और जो मिल जाती है, उसमें सब सुख खो जाता है। इसलिए कोई भी आदमी कहीं भी सुखी नहीं है।
मेरे एक मित्र हैं। वे पहले एम.एल.ए. थे, तो वे मुझसे कहते थे, आशीर्वाद दें--बस और कुछ चाहिए नहीं--कि कम से कम डिप्टी-मिनिस्टर तो मुझे बनवा ही दें। मैं उनको कहता कि बन ही जाएंगे, क्योंकि जैसा पागलपन आपमें है, आप बिना बने बच नहीं सकते। लेकिन आप अगर सोचते हों कि बड़ा आनंद घटित हो जाएगा, तो आप गलती में हैं।
फिर वे डिप्टी-मिनिस्टर भी हो गए। तो वे आए मेरे पास और कहने लगे कि बस, अब एक आकांक्षा है कि मिनिस्टर हो जाऊं। मैंने उनको कहा कि आपको सुख डिप्टी-मिनिस्टर होने से मिल गया, जिसको आप वर्षों से सोचते थे? उन्होंने कहा, डिप्टी-मिनिस्टर में कुछ भी नहीं रखा है, मिनिस्टर होने से ही कुछ हो सकता है। फिर अब वे मिनिस्टर भी हो गए। तो अब वे कहते हैं कि चीफ-मिनिस्टर हो जाएं। मैंने उनको पूछा कि तुम कहां रुकोगे? पिछले अनुभव से कुछ सीखो। आदमी जहां है, वहीं दुखी है। सुखी आदमी खोजना कठिन है। आपने कभी कोई सुखी आदमी देखा? सुखी आदमी वही हो सकता है, जो जहां है वहीं सुखी है। लेकिन जो आदमी भी कहीं और सोचता है कि सुख होगा, वह दुखी होगा। जो जहां है वहीं सुखी है, ऐसे आदमी का नाम ही संन्यासी है।
और जो जहां है वहीं दुखी है, ऐसे आदमी का नाम ही गृहस्थ है। वह हमेशा भविष्य में ही जी रहा है। कल उसका सुख है। स्वर्ग कल है, आज कुछ भी नहीं। आज को समर्पित करेगा कल के लिए। आज को लगाएगा कल के लिए। आज को जलाएगा कल के लिए, ताकि कल का स्वर्ग मिल जाए। कल कभी आता नहीं। कल जब आएगा, वह आज ही होगा। वह उस आज को फिर कल के लिए लगाएगा। ऐसे वह लगाता जाता है। और एक दिन सिवाय मृत्यु के हाथ में कुछ भी नहीं आता।
उपनिषद कह रहा है, बाल-बुद्धि वाले लोग, बचकानी बुद्धि वाले लोग, अप्रौढ़, केवल बाहर की वस्तुओं का अनुसरण करने में जीवन को गंवा देते हैं। बुद्धिमान, विवेकशील वह है जो इस सत्य को जानकर कि बाहर कभी किसी को न कोई आनंद मिला है और न मिल सकता है, अपने ही अनुभव से, अपने ही जीवन के प्रयोगों से इस रहस्य को समझकर, जो बाहर के अनित्य भोगों की आकांक्षा छोड़ देता है, वही विवेकशील है।
बाहर की वस्तुओं की आकांक्षा छोड़ देता है। कुछ नासमझ बाहर की वस्तुओं
को छोड़ने में लग जाते हैं। बाहर की वस्तुओं की आकांक्षा छोड़ना बिल्कुल और बात है। बाहर की वस्तुओं को छोड़ने में लग जाना बिल्कुल और बात है। और ही

नहीं, भिन्न ही नहीं, विपरीत है। बाहर की वस्तु को तो वही छोड़ने में लगता है, जो बाहर की वस्तु को पकड़ने में लगा था पहले। अब वह छोड़ने में लगता है। लेकिन उसकी नजर बाहर की वस्तु पर ही लगी रहती है। कुछ लोग हैं, जो धन के लिए पागल हैं। और कुछ पागल हैं, जो धन न छू जाए, इससे डरे हुए हैं।
एक संन्यासी को मैं जानता हूं। वे बड़े संन्यासी हैं। बहुत उनके अनुयायी हैं। वे पैसा नहीं छूते। अगर आप पैसा उन्हें छुला दें, तो वे बिल्कुल पागल हो जाते हैं। इतने नाराज हो जाते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। वे स्नान करते हैं, अगर पैसा छूना हो जाए। लोग उनको मानते हैं इसीलिए--कि यह है त्याग!
यह है पागलपन, यह है विक्षिप्तता। यह रोग पुराना है, नया नहीं है। पहले पैसे को पकड़ने में बहुत रस आता रहा होगा। और इससे आप समझ सकते हैं, कि जब इतना दुख हो रहा है छूने में, तो रस कितना आता रहा होगा! यह माप है। वह रस अब भी नहीं खो गया है, वह उलटा हो गया है। रस अब भी है, लेकिन अब विपरीत भाव पैदा हो गया है।
मुक्त नहीं हुए पैसे से, बंधे हैं अब भी। कल मित्र की तरह बंधे थे, अब शत्रु की तरह बंधे हैं। मित्र का भी ध्यान रखना पड़ता है, शत्रु का और भी ज्यादा ध्यान रखना पड़ता है। वे अगर आकर बैठते हैं, तो वे सब तरफ देख लेते हैं। पैसा तो नहीं है! कोई धन तो नहीं है! चौबीस घंटे प्रभु-स्मरण नहीं चल रहा है।
और ऐसे बहुत लोग हैं इस देश में, जिनकी वृत्ति सिर्फ शीर्षासन करने लगती है। होती वही पुरानी है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। वही का वही आदमी पहले पैर के बल खड़ा था, अब सिर के बल खड़ा है। आदमी में जरा भी फर्क नहीं है। रत्तीभर भेद नहीं हुआ है। कोई क्रांति घटित नहीं हुई है। लेकिन क्रांति दिखाई पड़ती है। वह झूठी है।
बाहर की वस्तु न तो पकड़ने योग्य है और न छोड़ने योग्य। बाहर की वस्तु बाहर है। न तुम उसे पकड़ सकते हो, न तुम उसे छोड़ सकते हो। तुम हो कौन? तुमने पकड़ा, वह तुम्हारी भ्रांति थी। तुम छोड़ रहे हो, यह तुम्हारी भ्रांति है। बाहर की वस्तु को न तुम्हारे पकड़ने से कुछ फर्क पड़ता है, न तुम्हारे छोड़ने से कुछ फर्क पड़ता है।
तुम कल कहते थे, यह मकान मेरा है। मकान ने कभी नहीं कहा था कि तुम मेरे मालिक हो। और मकान को अगर थोड़ा भी बोध होगा, तो वह हंसा होगा कि खूब गजब के मालिक हो। क्योंकि तुमसे पहले कोई और यही कह रहा था। उससे पहले कोई और यही कह रहा था। और मैं जानता हूं कि तुम्हारे बाद भी लोग होंगे जो यही कहेंगे, कि वे मालिक हैं।
और फिर एक दिन तुम कहते हो कि मैंने त्याग कर दिया है इस मकान का। न मकान तुम्हारा था, न तुम त्याग कर सकते हो। त्याग करना उतना ही पागलपन की बात है, जितना मालकियत की घोषणा थी। त्याग तो मालिक कर सकता है। ज्ञानी इस सत्य को जान लेता है कि मैं मालिक ही नहीं हूं किसी चीज का--छोडूंगा कैसे? पकडूंगा कैसे?
वासना का त्याग है--इस बोध का भीतर गहरा हो जाना कि न इस जगत में कुछ पकड़ा जा सकता है और न छोड़ा जा सकता है। पकड़ना, छोड़ना, दोनों ही नासमझी हैं। इस जगत में न पकड़ने योग्य कुछ है और न छोड़ने योग्य कुछ है। ऐसी तटस्थता में जो आदमी ठहर जाता है, वह विवेकशील है। उसकी वासना गिर जाती है। वह बाहर के जगत में दौड़ना बंद कर देता है।
जिसके अनुग्रह से मनुष्य शब्दों को, स्पर्शों को, रूप को, रस को, गंध को, स्त्री-प्रसंग आदि के सुखों को अनुभव करता है, उसी के अनुग्रह से यह भी जानता है कि यहां क्या शेष रह जाता है! अर्थात कुछ भी नहीं। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
यम नचिकेता को कह रहा है कि तूने जिस परमात्मा के संबंध में पूछा था,
वह क्या है। पहली बात वह यह कह रहा है कि यहां इस जगत में जो हम भोग रहे हैं, जो रस, सौंदर्य, सुख, जिसके कारण भोग रहे हैं, जो इस सबके भीतर छिपा है, जिसके बिना यह कोई भी घटना न घट पाएगी... । आप रस ले रहे हैं, क्योंकि भीतर आप मौजूद हैं। आप भीतर से तिरोहित हो जाएंगे, शरीर कोई रस न ले सकेगा। आपको सुगंध मालूम पड़ रही है, क्योंकि भीतर आप मौजूद हैं। आप मौजूद न होंगे,

सुगंध मालूम न पड़ेगी। इस जगत के जो भी अनुभव हो रहे हैं, वे किसके आधार पर हो रहे हैं? उस चैतन्य के आधार पर, जो भीतर छिपा है।
हमारी दृष्टि लग जाती है, जब फूल में सुगंध आती है, तो हमारा ध्यान फूल
पर जाता है। हमारा ध्यान उस पर नहीं जाता, जिसको सुगंध आ रही है। तीन चीजें हैं। फूल खिला, सुगंध फैली, आप पास में बैठे हैं या खड़े हैं--सुगंध आई। यहां तीन हैं। एक तो फूल है, एक आप हैं, और दोनों के बीच में तैरती हुई सुगंध है। एक ज्ञेय है, एक ज्ञाता है, और एक ज्ञान है। हर जगह त्रिवेणी है। हर जगह ये तीन मौजूद हैं। लेकिन हमारा ध्यान हमेशा ज्ञेय पर जाता है, आब्जेक्ट पर, वह जो जाना गया। फूल पर नजर जाती है। हम कहते हैं, कैसा सुंदर फूल है! हम यह नहीं कहते कि कैसी सुंदर आत्मा है कि फूल की गंध ले सकी! कैसा सुंदर फूल! कभी ख्याल नहीं आता कि कैसा सुंदर चैतन्य! वह भीतर जो छिपा है, उसका हमें स्मरण ही नहीं आता।
न तो सुगंध उतनी कीमती है, न फूल उतना कीमती है, जितना वह कीमती है जिसके आधार पर ये सब घट रहा है। इस जीवन में जो भी हो रहा है, उस सबके पीछे छिपी हुई चेतना है।
यम कह रहा है, यह जो भीतर छिपी चेतना है, जो सभी सुखों का अनुभव करता है, यह जो अनुभोक्ता है, और जो यह भी अनुभव करता है कि यहां कुछ भी अनुभव करने योग्य नहीं, जो यह भी अनुभव कर लेता है कि सब व्यर्थ है, जो यह भी अनुभव कर लेता है कि यहां पाने योग्य कुछ भी शेष नहीं रहा है, यहां कुछ पाया भी नहीं जा सकता है, यही है वह परमात्मा जिसके विषय में तुमने पूछा था।
तो परमात्मा की पहली व्याख्या यम कर रहा है। और वह यह कि तुम्हारे भीतर छिपा हुआ जो चैतन्य है, वह जो कांशसनेस है, वह जो बोध की शक्ति है, वह जो तुम्हारे जीवन का मूल है, यही है वह परमात्मा जिसके लिए तूने पूछा था। तो ईश्वर की पहली व्याख्या हुई--भीतर का द्रष्टा।
स्वप्न के दृश्यों को और जाग्रत-अवस्था के दृश्यों को, इन दोनों अवस्थाओं के दृश्यों को मनुष्य जिससे बार-बार देखता है, उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, सबके आत्मा को जानकर बुद्धिमान मनुष्य शोक नहीं करता।
यह थोड़ा समझने जैसा कीमती सूत्र है। यम कह रहा है कि स्वप्न के अनुभवों को, जागृति के अनुभवों को जिसके द्वारा मनुष्य बार-बार देखता है... ।
यह एक बहुत मजे की बात है। शायद आपने कभी निरीक्षण न की हो, चूक गए हों। चूकने जैसी नहीं है, क्योंकि उसके आधार पर जीवन में बहुत कुछ नए आयाम खुल सकते हैं। रात आप स्वप्न देखते हैं। जब आप स्वप्न देखते हैं, तो स्वप्न बिल्कुल सत्य मालूम होता है। स्वप्न में ही यह जानना कि यह असत्य है, बिल्कुल असंभव है। स्वप्न जब तक चलता है, पूर्णतया सत्य होता है। असंगत से असंगत स्वप्न भी पूर्णतया सत्य होता है। आप चाहे भीख मांगते हों सड़क के किनारे, लेकिन स्वप्न में अगर सम्राट हो जाएं, तो आपको जरा भी संदेह नहीं आता कि यह मैं कैसा देख रहा हूं! मैं तो भिखमंगा हूं। भिखमंगा भी स्वप्न में सम्राट हो जाए तो बिल्कुल भरोसा करता है।
स्वप्न में सभी श्रद्धालु होते हैं। स्वप्न में मैंने अब तक एक आदमी नास्तिक नहीं देखा, जो संदेह करे। मानना ही पड़ता है स्वप्न को कि वह ठीक है। और ऐसा नहीं है कि भिखारी ही मानता है कि मैं सम्राट हूं। सम्राट भी भिखारी का सपना देखे तो मानता है कि मैं भिखारी हूं। और स्वप्न में कुछ भी संगत-असंगत घटे, आपमें तर्क उठता ही नहीं। कुछ भी घटे, कैसी भी घटना हो, मन बिल्कुल भरोसे से भरा होता है।
सभी स्वप्न स्वप्न के भीतर सत्य होते हैं। स्वप्न के बाहर जब आप जागते हैं, तब असत्य हो जाते हैं। जैसे ही आप जागते हैं और पाते हैं कि अपने कमरे में सोया हुआ हूं, कि अपने झाड़ के नीचे बैठा हुआ हूं, वह सम्राट, वह भिखारी, वह सब स्वप्न का जाल एकदम टूट जाता है। आप कहते हैं, सब झूठा था। लेकिन एक और दूसरे मजे की बात है, जब आप स्वप्न में जाएंगे रात, तो आपने जागरण में जो देखा था, वह सब झूठा हो जाता है। और ज्यादा झूठा हो जाता है। क्योंकि स्वप्न तो थोड़ा-बहुत याद भी रहता है जागकर, लेकिन स्वप्न में जागा अनुभव बिल्कुल याद नहीं रहता। थोड़ा-बहुत स्वप्न तो याद रह जाता है,

जब आप सुबह जागते हैं। लेकिन जब आप रात सोते हैं, तब थोड़ी-बहुत जागृति का अनुभव शेष रहता है? बिल्कुल नहीं रहता।
इसलिए भारतीय मनसविदों ने तो कहा है कि स्वप्न जागृति से भी ज्यादा गहरा अनुभव है। क्योंकि जागृति स्वप्न को पूरी तरह नहीं पोंछ पाती, सुबह कुछ न कुछ याद रह जाता है। लेकिन स्वप्न पूरी तरह आपकी जागृति को पोंछ डालता है। कुछ भी याद नहीं रहता, रंचमात्र भी याद नहीं रहता। निश्चित ही स्वप्न की धारा बड़ी प्रगाढ़ है। स्वप्न में जागरण असत्य हो जाता है। जागरण में स्वप्न असत्य हो जाता है। फिर सत्य क्या है?
च्वांग्त्से की बड़ी प्रसिद्ध घटना है। उसने एक रात स्वप्न देखा और सुबह उदास होकर बैठ गया। उसके शिष्यों ने पूछा, तुम उदास! क्या हुआ? उसने कहा कि रात मैंने स्वप्न देखा कि मैं एक तितली हो गया हूं। शिष्यों ने कहा, छोड़ो भी, स्वप्नों से किसी को उदास होने की जरूरत? अब तो जाग गए। उसने कहा, नहीं, बड़ी अड़चन खड़ी हो गई है। अब मुझे यह समझ में नहीं आ रहा, रात अगर च्वांग्त्से तितली हो सकता है सपने में, तो अब यह हो सकता है कि तितली सपना देख रही हो, सो गई हो और सोचती हो, च्वांग्त्से हो गई। तो अब मैं क्या करूं? अगर च्वांग्त्से सपना देख सकता है कि तितली हो गया, तो तितली क्यों सपना नहीं देख सकती कि च्वांग्त्से हो गई? तो अब मैं कौन हूं? जागा हुआ च्वांग्त्से, या सोई हुई तितली? सपना चल रहा है, कि जो चल रहा है वह सच है? स्वप्न असत्य कर देते हैं जागरण को, जागरण असत्य कर देता है स्वप्न को। सत्य क्या है? सत्य दोनों में से कोई भी नहीं है। सत्य तो सिर्फ देखने वाला है, जिसको दोनों ही असत्य नहीं कर पाते। रात भी एक चीज मौजूद रहती है, देखने वाला; सपने देखता है। और दिन भी वह चीज मौजूद रहती है, देखने वाला; जागृति के अनुभव देखता है। सपने बदल जाते हैं, जागरण बदल जाता है, लेकिन देखने वाला अपरिवर्तित रूप से सतत मौजूद रहता है।
वह द्रष्टा ही केवल सत्य है। जो देखा जाता है, वह तो सब असत्य हो जाता है। जो देखने वाला है, वही केवल सत्य रह जाता है। स्मरण रखें, असत्य देखने के लिए भी सत्य देखने वाला चाहिए। झूठ स्वप्न को भी देखने के लिए एक सच्चा देखने वाला चाहिए। अगर देखने वाला भीतर न हो, तो असत्य भी नहीं देखा जा सकता।
दूसरा सूत्र यम कह रहा है--स्वप्न के दृश्यों को और जाग्रत के दृश्यों को, इन दोनों अवस्थाओं के दृश्यों को मनुष्य जिससे बार-बार देखता है, उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वव्यापी, सबके आत्मा को जानकर बुद्धिमान मनुष्य शोक नहीं करता।
जो उसको पकड़ लेता है जो देखने वाला है, फिर वह शोक नहीं करता।
चीन में एक बहुत प्रसिद्ध कथा है कि एक सम्राट का पुत्र बीमार है। एक
ही पुत्र है, मरने के करीब है। सम्राट रातभर जागता रहा, सेवा करता रहा। चार बजे के करीब उसकी नींद लग गई। सोचा था रातभर जागता रहेगा, क्योंकि बेटा कभी भी मर सकता है। और अंतिम क्षण में बाप साथ होना चाहता था। लेकिन झपकी लग गई। झपकी में उसने एक स्वप्न देखा कि वह सारे जगत का सम्राट है, उसके बारह पुत्र हैं। हर पुत्र का एक स्वर्णमहल है। अपरंपार संपत्ति है। जब वह यह स्वप्न देख रहा था, तभी उसका बेटा मर गया। पत्नी छाती पीटकर रोई, तो उसकी नींद टूट गई।
नींद टूट गई तो बजाय रोने के वह खिलखिलाकर हंसने लगा। तो उसकी पत्नी
ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो गए हो शोक में, हंस क्यों रहे हो? उसने कहा, मैं हंस इसलिए रहा हूं कि किसके लिए रोऊं? अभी-अभी मेरे बारह पुत्र थे। ऐसे सुंदर, जैसे मैंने कभी देखे नहीं! इतना विराट साम्राज्य था! अनंत खजाने थे। सब खो गए। और जब मैं उन बारह पुत्रों के साथ था, तब इस पुत्र का मुझे स्मरण भी नहीं था, कि यह है भी। मरने-जीने की तो बात अलग! अब बारह पुत्र मर गए, खो गए और यह पुत्र मर गया। अब मैं सोच में पड़ा हूं कि किसके लिए रोऊं? कौन सच है?
न तो रात सपने में देखे गए बारह पुत्र सत्य हैं, और न दिन के सपने में देखे गए पुत्र सत्य हैं। सत्य तो सिर्फ देखने वाला है। जो इस देखने वाले को पकड़ने लगता है, उसने सिद्ध होने का पहला कदम उठा लिया। फिर उसे कोई शोक, कोई दुख नहीं पकड़ता। क्योंकि दुख पकड़ता है बाहर की चीजों को पकड़ने के

कारण। जो भीतर के द्रष्टा को पकड़ लेता है, उसे फिर कोई दुख का कारण नहीं है। आनंद उसकी सहज अवस्था हो जाती है।
जो मनुष्य कर्मफलदाता, सबको जीवन प्रदान करने वाले तथा भूत, वर्तमान
और भविष्य का शासन करने वाले इस परमात्मा को अपने लिए समीप जानता है, उसके बाद वह कभी किसी की निंदा नहीं करता। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
अगर आपको द्रष्टा का अनुभव होने लगे--दर्शन से आंख हटे, दृश्य से आंख हटे और पीछे छिपे द्रष्टा से थोड़ा-सा भी तालमेल बैठने लगे--तो परमात्मा को आप पाएंगे कि उससे ज्यादा समीप और कोई भी नहीं। अभी उससे ज्यादा दूर और कोई भी नहीं है। अभी परमात्मा सिर्फ कोरा शब्द है। और जब भी हम सोचते हैं, तो ऐसा लगता है कि आकाश में कहीं बहुत दूर परमात्मा बैठा होगा किसी सिंहासन पर। यात्रा लंबी मालूम पड़ती है। और परमात्मा यहां बैठा है, ठीक सांसों के पीछे!
मुहम्मद ने कहा है कि तुम्हारी गले की नस जो काट दी जाए तो तुम मर जाओ,
वह जितने तुम्हारे पास है, परमात्मा उससे भी ज्यादा पास है। पास से भी पास, क्योंकि तुम स्वयं वही हो। लेकिन यह ख्याल तभी आएगा जब द्रष्टा पर ध्यान जाने लगे। तो परमात्मा एकदम निकट है। और जिसको परमात्मा इतना निकट मालूम होगा अपने भीतर, ध्यान रहे, उसे सबके भीतर भी मालूम होने लगेगा।
यह एक नियम है जीवन का अनिवार्य कि जो आपको अपने भीतर दिखाई पड़ता है, वही आपको दूसरों के भीतर दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। अगर आप चोर हैं, तो आपको चारों तरफ चोर दिखाई पड़ते हैं, और लगता है, सब साजिश कर रहे हैं। अगर आप बेईमान हैं, तो आपको कोई ईमानदार नहीं दिखाई पड़ता। लगता है कि सब बेईमान हैं। सब बने-ठने बैठे हैं। जल्दी धोखा देंगे।
मैंने सुना है कि दो युवक एक रास्ते से गुजर रहे थे। दोनों जेबकट थे। दोनों साथ जा रहे थे, मित्र थे। पहला युवक बार-बार अपने खीसे में हाथ डालकर कुछ टटोलता। दूसरा बार-बार अपने खीसे से घड़ी निकालकर समय देखता। पहले युवक ने पूछा कि इतना बार-बार समय क्यों देख रहे हो? उस दूसरे ने कहा कि तुम बार-बार खीसे में क्या टटोलते हो? मैं भी जेबकट हूं। घड़ी को बार-बार देखना पड़ रहा है कि अभी है कि गई! तुम क्या टटोल रहे हो? उसने कहा कि जेबकट तो मैं भी हूं। खीसे में नोट रखे हैं। वह बार-बार टटोलने पड़ रहे हैं कि गए कि बचे!
दूसरे के संबंध में, जो भी धारणा हमारी होती है, वह बहुत गहरे में अपनी
ही धारणा होती है। अगर आप चोरों से बहुत सचेत रहते हैं, तो समझना कि चोर भीतर छिपा है, अन्यथा इतने सचेत आप न रहेंगे। क्या कारण है सचेत रहने का इतना? जो हमारे भीतर है, वही हमारी धारणा है मनुष्यों के बाबत।
इसलिए बुरा आदमी कभी नहीं मान पाता कि कोई अच्छा आदमी हो सकता है। बुरा आदमी मानता है कि अच्छा दिखाई पड़ता होगा। ढोंग रच रहा होगा। अच्छा हो नहीं सकता। इसलिए बुरा आदमी हमेशा कोशिश में रहता है। अगर आप उससे कहें कि फलां आदमी अच्छा है, तो अविश्वास से सिर हिलाएगा। वह कहेगा कि ठहरो, थोड़े दिन में समझोगे। ज्यादा देर तक चीजें छिपी नहीं रहतीं। पता चल ही जाएगा। और वह पूरी कोशिश करेगा पता लगाने की कि आदमी बुरा होना चाहिए। बुरा होना तो पक्का भरोसा है। अच्छा होना तो आवरण ही हो सकता है।
सिर्फ अच्छा आदमी ही भरोसा करता है कि दूसरा अच्छा हो सकता है। अच्छा आदमी मुश्किल पाता है कि कोई बुरा कैसे हो सकता है? क्यों होगा? और ध्यान रहे, अगर आपको दूसरे के बुरे होने पर तत्काल भरोसा आ जाता हो, तो भूलकर मत समझना कि आप अच्छे आदमी हैं। वह कसौटी है। अच्छे आदमी को तो बड़ा मुश्किल है यह भरोसा लाना कि दूसरा बुरा है--बुरा हो तो भी। ठीक वैसे ही जैसे बुरे आदमी को भरोसा लाना मुश्किल है कि दूसरा अच्छा है--अच्छा हो तो भी।
हम सोच ही नहीं सकते अपने से बाहर। इसलिए जिस व्यक्ति को द्रष्टा का अनुभव होने लगता है, उसे सबके भीतर भी द्रष्टा का अनुभव होने लगता है। वह आपके शरीर को नहीं देखता, आपके भीतर की झलक उसे मिलने लगती है। उसे सब तरफ परमात्मा मौजूद मालूम होता है, इसलिए निंदा असंभव हो जाती है। निंदा असंभव तभी हो सकती है, जब दूसरे में हमें परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। तब तो स्तुति हो सकती है, निंदा होने का कोई कारण नहीं रह जाता।

हमें सब तरफ शैतान दिखाई पड़ता है, इसलिए निंदा चलती है। शैतान को शैतान दिखाई पड़ता है, परमात्मा को परमात्मा दिखाई पड़ता है। आप जो हैं, वही आपके जगत का अनुभव है। उसी का फैलाव है। उसी दिन समझना कि आपके भीतर संतत्व का उदय हुआ, जिस दिन आपको शैतान दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाए। राबिया एक सूफी फकीर औरत हुई। कुरान में एक जगह वचन आता है कि शैतान
को घृणा करो। उसने कुरान में यह वचन काट दिया।
यह बड़ी असभ्यता की बात है, अशिष्ट है। कुरान में कोई सुधार नहीं किया
जा सकता, कि गीता या वेद में, कि आप बैठें और सुधार कर दें। एक फकीर जुन्नैद राबिया के घर मेहमान था। उसने सुबह-सुबह राबिया की कुरान उठाकर पढ़ी, तो उसने देखा कि उसमें सुधार किया हुआ है! उसने काट दी है लाइन! जुन्नैद ने कहा कि किस नासमझ ने यह पाप कृत्य किया है? कुरान को कोई सुधार सकता है! राबिया ने कहा, किसी और ने नहीं, मैंने ही वह लकीर काटी है। तो जुन्नैद
ने कहा कि तूने ऐसी नास्तिकता का काम किया! राबिया ने कहा, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गई हूं। जब से प्रभु का अनुभव होना शुरू हुआ, मुझे शैतान दिखाई नहीं पड़ता। तो घृणा मैं किसको करूं? तो यह वचन मेरे योग्य नहीं है। यह वचन मुझसे तालमेल नहीं खाता। शैतान कहां है? अब तो शैतान भी मेरे सामने आकर खड़ा हो, तो मुझे परमात्मा ही दिखाई पड़ेगा। इसलिए अब घृणा करने का कोई उपाय नहीं। इसलिए लकीर मैंने काट दी। जिससे मेरा कोई तालमेल नहीं है अब, मेरी कुरान में वह लकीर नहीं रह सकती।
यह सूत्र कह रहा है कि जैसे ही किसी व्यक्ति को अनुभव होता है कि वह समीप है, समीपतम है, उसके बाद वह किसी की निंदा नहीं करता। स्तुति सहज हो जाती है। उसे सबके भीतर उसकी झलक दिखाई पड़ने लगती है। सब दीयों में उसी की रोशनी।
यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
जो जल आदि पांच तत्वों से पहले ही अजन्मा था, उस सबसे पहले तप से उत्पन्न हृदय-गुहा में प्रवेश करके जीवात्माओं के साथ स्थित रहने वाले परमेश्वर को जो पुरुष देखता है, वही ठीक देखता है। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
कौन देखता है ठीक? किसकी दृष्टि ठीक है? और दृष्टि ही ठीक न हो तो परमात्मा का दर्शन असंभव है। कौन देखता है ठीक? वही देखता है ठीक, जो हृदय की गुफा में छिपे हुए उसको पहचान लेता है, जो अजन्मा है।
हृदय का तो जन्म हुआ है, गुहा तो बनी है, मिट जाएगी। शरीर तो निर्मित है, बिखर जाएगा। जन्मा है, मृत्यु होगी। इस शरीर की गुफा में छिपा हुआ अजन्मा कोई है, जिसका कोई जन्म नहीं हुआ है और जो कभी मिटेगा नहीं, उसे जो देखता है, वही देखता है। बस उसके पास ही आंख है, बाकी सब अंधे हैं; भीतर की दृष्टि से--बाकी सब अंधे हैं। बाहर कितना ही दिखाई पड़ता हो, जो स्वयं को ही नहीं देख पाते, उनकी आंखों का होना न-होना बराबर है।
उपनिषद कह रहा है, वही ठीक देखता है जो अजन्मा को हृदय की गुफा में पहचान लेता है। यह ही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
जो देवी अदिति प्राणों के सहित उत्पन्न होती है, जो प्राणियों के सहित उत्पन्न हुई है तथा जो हृदयरूपी गुहा में प्रवेश करके वहीं रहने वाली है, उसे जो पुरुष देखता है, वही यथार्थ देखता है। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
प्राण की ऊर्जा का नाम अदिति है। जीवन-ऊर्जा का नाम अदिति है। यह जो भीतर जीवन की धारा बह रही है, इस धारा को जो पहचान लेता है... ।
हम शरीर को पहचानते हैं। शरीर नदी नहीं है, सिर्फ नदी का किनारा है।
शरीर के दो किनारों के बीच नदी बह रही है। किनारे तो हमें दिखाई पड़ते हैं, नदी नहीं दिखाई पड़ती। नदी सरस्वती जैसी है, अदृश्य। किनारे भर दिखाई पड़ते हैं, सूखा बीच का मार्ग दिखाई पड़ता है, नदी दिखाई नहीं पड़ती।
शरीर किनारा है। उसके सहारे कुछ और बह रहा है, जो दिखाई नहीं पड़ता। प्रतिपल आपके रोएं-रोएं में ऊर्जा बह रही है। ऊर्जा तो कहीं भी दिखाई नहीं पड़ती। ये बिजली के बल्ब जल रहे हैं। ये बल्ब दिखाई पड़ते हैं, लेकिन तारों के भीतर से बहती हुई ऊर्जा दिखाई नहीं पड़ती। आज तक बिजली को किसी ने देखा

नहीं है, सिर्फ बिजली का उपयोग देखा है। आज तक कोई भी शक्ति प्रत्यक्ष नहीं हो सकी है। सिर्फ शक्ति की अभिव्यक्तियां प्रगट होती हैं।
यह बिजली है--बल्ब जल रहा है, पंखा चल रहा है--ये सिर्फ उपयोग हैं। लेकिन बिजली क्या है? उसे आज तक किसी ने नहीं देखा। कोई कभी देखेगा भी नहीं। शक्ति का कोई दर्शन नहीं हो सकता। शक्ति अरूप है, निराकार है। आप चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, बोलते हैं--यह दिखाई पड़ता है। लेकिन कौन चलता है? कौन बैठता? कौन बोलता? कौन चुप होता? वह बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता। वह प्राण-ऊर्जा, उसका नाम अदिति है। उस प्राण-ऊर्जा को जो अपने भीतर देख लेता है, वही देखता है--वही यथार्थ देखता है। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा।
जो सर्वज्ञ अग्निदेवता गर्भिणी स्त्रियों द्वारा भलीभांति धारण किए हुए गर्भ की भांति दो अरणियों में सुरक्षित है, छिपा है, तथा जो जाग्रत है और हवन करने योग्य सामग्रियों से युक्त मनुष्यों द्वारा प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है, यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था। पुराने जमाने में जब आग को पैदा करने के और कोई उपाय न थे, तो दो लकड़ियों को रगड़कर आग पैदा की जाती थी। वह जिस लकड़ी को रगड़कर आग पैदा करते थे, उसका नाम अरणि था। रगड़ने से जो छिपी आग थी, वह प्रगट हो जाती। छिपी तो पहले ही थी, दोनों लकड़ियों में छिपी थी। चकमक का पत्थर आपने देखा है, उसमें छिपी है; रगड़ते हैं, पैदा हो जाती है। रगड़ से कोई चीज पैदा नहीं होती, केवल प्रगट हो सकती है। जो छिपी हो, वह प्रगट हो सकती है।
आपके भीतर भी परमात्मा छिपा है, थोड़े-से रगड़ने की बात है; थोड़े-से साधना की, थोड़े-से तप की बात है; थोड़े-से प्रयास की बात है। जो छिपा है, वह प्रगट हो जाएगा। धू-धू करके उसकी लपट जलने लगेगी। लेकिन कोई आदमी दो अरणियों को रखे बैठा रहे। सर्द रात हो। बर्फ पड़ती हो। कंपता हो। और दो लकड़ियों को रखे बैठा रहे, तो कुछ होगा नहीं।
छिपी हुई आग से कोई गर्मी नहीं मिलती। छिपी हुई आग से रोशनी भी नहीं मिलती। और आग छिपी है और सामने रखी है। जरा-सा दो लकड़ियों को रगड़ने की बात है कि प्रगट हो जाएगी। अंधेरा टूट जाएगा। सर्दी टूट जाएगी। अग्नि देवता प्रगट हो सकता है।
अग्नि की पूजा बड़ी प्राचीन है। और अग्नि की पूजा का मौलिक कारण यही था, कि जैसे अग्नि छिपी होती है पदार्थों में और प्रगट करनी पड़ती है, वैसे ही परमात्मा भी छिपा है और प्रगट करना पड़ता है।
और भी एक कारण से अग्नि निरंतर पूज्य रही। अग्नि की एक खूबी है कि वह सदा ऊपर की तरफ जाती है, उसकी गति सदा ऊपर की तरफ है। अगर आप दीए को उलटा भी कर दें, तो भी लौ ऊपर की तरफ जाएगी। दीया उलटा हो जाएगा, लौ उलटी नहीं कर सकते आप।
पानी नीचे की तरफ बहता है, आग ऊपर की तरफ बहती है। आग का सहारा अगर पानी भी ले ले तो पानी तक ऊपर की तरफ बहने लगता है। गरम हो जाए, उबल जाए, भाप बन जाए, यात्रा बदल जाती है। पानी का गुणधर्म बदल जाता है। वह जो नीचे की तरफ बहता था, वह भी आकाश की तरफ उठने लगता है।
इस जगत में पुराने दिनों में आदमी को अनुभव हुआ कि आग के अतिरिक्त किसी चीज में ऊपर की तरफ जाने की क्षमता नहीं है। आग ग्रेविटेशन के विपरीत है। जमीन खींचती है, आग को नहीं खींच पाती। आग लेविटेशन को मानती है। आग ऊपर की तरफ जाती है, जमीन उस पर कुछ भी नहीं कर पाती।
जो चेतना ऊपर की तरफ जाने लगती है, वह आग उसका प्रतीक बन गई। और परमात्मा निरंतर ऊपर की तरफ जाती हुई चेतना का नाम है। यह आग सबके भीतर छिपी है। साधन पूरे के पूरे आपके पास हैं। थोड़ी-सी रगड़ की जरूरत है। उस रगड़ का नाम साधना है। थोड़ा-सा हिलना-डुलना पड़ेगा। थोड़ा भीतर छिपी हुई अरणियों को टकराना पड़ेगा। ये मैं जितने ध्यान के प्रयोग आपको कह रहा हूं, ये वस्तुतः अरणियों का टकराना हैं।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि ऐसे चुपचाप ही बैठकर करें तो क्या हर्ज है? वे यह पूछ रहे हैं कि अरणियों को ऐसे ही रखा रहने दें चुपचाप, तो आग पैदा नहीं होगी?

नहीं होगी। रगड़ना ही पड़ेगा। आपके भीतर की ऊर्जा को थोड़ा संघर्षण से गुजरना पड़ेगा। ऐसे ही होने वाली बात होती तो हो गई होती। वह नहीं हुई है।
उस आग को जगाने के लिए थोड़ा-सा श्रम जरूरी है।
जहां से सूर्य का उदय होता है, जहां सूर्य अस्त होता है, सभी देवता उसी में समर्पित हैं।
जहां सूर्य पैदा होता है, जहां सूर्य समाप्त होता है, जहां से जीवन का प्रारंभ है और जहां जीवन विसर्जित होता है, उस मूल उदगम या उस अंतिम पड़ाव में ही, जहां सभी देवता समर्पित हैं... ।
उस परमेश्वर को कोई कभी लांघ नहीं सकता।
वह सबका मूल उदगम और सबका अंतिम अंत है। उसके पार जाने का कोई उपाय नहीं। परमात्मा का कोई अतिक्रमण नहीं हो सकता, क्योंकि सभी चीजों का अतिक्रमण करके जो उपलब्ध होता है, वह परमात्मा है। उसके पार जाने का कोई उपाय नहीं। वह अंतिम है। वह आखिरी सीमा है अस्तित्व की।
यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
जो परब्रह्म यहां है --यह सूत्र थोड़ा ठीक से ख्याल में ले लें--जो परब्रह्म यहां है, वही वहां परलोक में भी है। जो वहां है, वही यहां इस लोक में भी है। वह मनुष्य मृत्यु से मृत्यु को अर्थात बारंबार जन्म-मरण को प्राप्त होता है, जो इस जगत में उस परमात्मा को अनेक की भांति देखता है। अगर कोई कहता हो कि परमात्मा यहां नहीं परलोक में है, तो वह अज्ञानी है। अगर कोई कहता हो कि परमात्मा यहां नहीं वहां है, तो वह भ्रांति में है। क्योंकि वह सब जगह है। सभी जगह जो है, उसी का वह नाम है। सबके अस्तित्व में जो छिपा है, वही यहां भी, वहां भी; इस पार भी, उस पार भी; जहां तक अस्तित्व है, जहां तक होना है, वहां तक वही है। परलोक में परमात्मा है, ऐसा नहीं है, इस लोक में भी वही है। देखने वाली आंख चाहिए। और जिसके पास देखने वाली आंख है, उसे यहां ही दिखाई पड़ जाएगा।
और ध्यान रहे, जिसे यहां दिखाई नहीं पड़ता, उसे वहां भी दिखाई नहीं पड़ेगा। देखने वाली आंख पर निर्भर है। वह आंख पैदा हो जाए, तो सब जगह वह प्रगट हो जाता है। वह आंख पास में न हो, तो वह कहीं भी प्रगट नहीं होता। लेकिन लोग अपने को धोखा देते रहते हैं। वे कहते हैं, वह यहां प्रगट नहीं हो रहा है क्योंकि यहां नहीं है, वहां परलोक में है। इस तरह अंधे अपना बचाव कर लेते हैं। उनको फिर यह ख्याल नहीं होता कि हम अंधे हैं इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहा।
अंधों ने बैकुंठ, स्वर्ग, परलोक, न-मालूम क्या-क्या निर्माण किए हैं।
वह उनकी इस बात की कोशिश है कि हममें कोई गलती नहीं है कि वह हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है; वह यहां है ही नहीं, वह परलोक में है। जब हम परलोक पहुंचेंगे, तब वह दिखाई पड़ेगा। इससे अंधों को बड़ी सुविधा हो जाती है, सांत्वना मिलती है।
लेकिन ध्यान रहे, यह सूत्र कुछ और कह रहा है। ये यह कह रहा है, वह यहां
भी उतना ही है जितना वहां। अगर नहीं दिखाई पड़ता तो गैर-मौजूदगी कारण नहीं है। नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि आंखें पास नहीं हैं। आंख पैदा करने की कोशिश करनी पड़े।
झेन फकीर रिंझाई का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है। उस वचन पर सदियों तक विवाद होता रहा है। वह वचन बड़ा उलटा मालूम पड़ता है। रिंझाई ने कहा है, संसार और निर्वाण एक ही हैं। यह बड़ी उलटी बात हो गई। क्योंकि हम तो कहते हैंः संसार छोड़ो, त्याग करो। और यह रिंझाई कहता है, संसार और निर्वाण एक ही हैं। जिसने रत्तीभर भेद किया, वह अज्ञानी है। रिंझाई ने अगर यह सूत्र पढ़ा होता उपनिषद का, तो वह नाच उठता। वह कहता कि बिल्कुल ठीक। जो वहां है वह यहां भी है। संसार और निर्वाण एक हैं। भेद अंधों के कारण है। उनको यहां दिखाई नहीं पड़ता, इससे वे यह नहीं सोचते कि आंखें नहीं हैं। इससे वे सोचते हैं, यहां वह मौजूद नहीं है। खोज की कोई जरूरत नहीं, जब परलोक जाएंगे... । इसीलिए जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है और परलोक करीब आने लगता है, वैसे-वैसे धार्मिक होने लगता है। मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में बूढ़े इकट्ठे हैं, जवान वहां दिखाई नहीं पड़ते। और कभी कोई जवान भी दिख जाए, तो समझना कि किसी न किसी कारण से बूढ़ा हो गया है। कोई न कोई गड़बड़ हो गई

है। बूढ़े भी चौंककर देखेंगे कि जवान आदमी यहां किसलिए? वे भी अपने बेटों को समझाते हैं कि धर्म अभी तुम्हारे काम का नहीं। इसकी एक उम्र होती है।
जब बूढ़े हो जाओ, तब।
असल में मरने की घटना जब बिल्कुल करीब आने लगे, जब ऐसा शक होने लगे कि
अब परलोक जाना ही पड़ेगा, तो आदमी धार्मिक होना शुरू होता है। क्योंकि इस लोक में तो परमात्मा है नहीं।
लेकिन यह व्यवस्था धोखे की है। जो यहां धार्मिक नहीं है, वह मौत, सिर्फ मौत के कारण धार्मिक नहीं हो जाएगा। और जिसको परमात्मा यहां नहीं दिखाई पड़ता, मौत कोई आंखें दान नहीं देती कि परमात्मा परलोक में दिखाई पड़ जाएगा।
ठीक जैसे आप हैं, अगर आपको परलोक में खड़ा कर दिया जाए, आप वहां भी संसार ही देखेंगे। जल्दी से आप वहां भी कुछ इंतजाम करना शुरू कर देंगे।
दुकान खोल लेंगे, शादी-विवाह करने लगेंगे, कुछ न कुछ आप तत्क्षण, जो संसार आपका यहां था, आप वहां बसाना शुरू कर देंगे।
लेकिन मुक्तपुरुष को यहां इस संसार में भी मोक्ष ही दिखाई पड़ता है।
कुछ और दिखाई पड़ने का उपाय नहीं है।
जो परब्रह्म यहां है, वही वहां परलोक में भी है। जो वहां है, वही यहां
इस लोक में भी है। वह मनुष्य मृत्यु से मृत्यु को अर्थात बारंबार जन्म-मरण को प्राप्त होता है, जो इस जगत में उस परमात्मा को अनेक की भांति देखता है।
एक की भांति नहीं।
इसे भी थोड़ा समझ लेना चाहिए। हम इस जगत को अनेक की भांति देखते हैं। वृक्ष, पत्थर अलग, आप अलग, मैं अलग, पड़ोसी अलग; सब अलग; सब टूटे हुए, खंड-खंड। हमारी हालत ऐसी है जैसे रात चांद निकले और जमीन पर हजारों डबरे हैं, झीलें हैं, पानी के सरोवर हैं, और सब में चांद दिखाई पड़ता है। एक ही चांद होता है आकाश में, लेकिन सब पानी में हजारों-लाखों प्रतिबिंब बनते हैं, और हम एक-एक प्रतिबिंब को गिनते फिरें, और सोचें कि कितने चांद हैं! और नजर न उठाएं उस एक की तरफ, जिसके सब प्रतिबिंब हैं।
इस जगत में जितना भी अस्तित्व है, जितने रूप हैं, वे एक के ही प्रतिबिंब हैं। आपके भीतर, एक सरोवर की भांति आपकी चेतना में, उस एक की ही छाया बनी है।
यह सूत्र कहता है, जो यहां अनेक की भांति देखता है, वह भटकता है जन्म-मरण में। जो यहां भी एक की भांति देख लेता है उसे, वह तत्क्षण मुक्त हो जाता है।
एक को पहचान लेना परम ज्ञान है। अनेक को देखते रहना अज्ञान है।
ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
दसवां प्रवचन

निर्धूम-ज्योति की खोज

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।। 11।।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते।। एतद्वै तत्।। 12।।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः।। एतद्वै तत्।। 13।।

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान पृथक पश्यंस्तानेवानुविधावति।। 14।।

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम।। 15।।

(शुद्ध) मन से ही यह परमात्मतत्व प्राप्त किए जाने योग्य है। इस जगत में (एक परमात्मा के अतिरिक्त) अन्य कुछ भी नहीं है। (इसलिए) जो इस जगत को अनेक की भांति देखता है, वह मनुष्य मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात बार-बार जन्मता-मरता रहता है।। 11।।

अंगुष्ठमात्र (परिमाण वाला) परमपुरुष (परमात्मा) शरीर के मध्यभाग हृदयाकाश में स्थित है, जो कि भूत, वर्तमान और भविष्य का शासन करने वाला है। उसे जान लेने के बाद व्यक्ति किसी की निंदा नहीं करता। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 12।।

अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष परमात्मा धूम्ररहित ज्योति की भांति है। भूत, (वर्तमान) और भविष्य पर शासन करने वाला वह परमात्मा ही आज है और वही कल भी है (अर्थात वह नित्य सनातन है)। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 13।।

जिस प्रकार ऊंचे शिखर पर बरसा हुआ जल पहाड़ के नाना स्थलों में चारों
ओर चला जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न धर्मों से युक्त देव, असुर, मनुष्य आदि को परमात्मा से पृथक देखकर (उनका सेवन करने वाला मनुष्य) उन्हीं के पीछे दौड़ता रहता है (अर्थात उन्हीं के शुभाशुभ लोकों में और नाना ऊंच-नीच योनियों में भटकता रहता है)।। 14।।

हे गौतमवंशी नचिकेता! जैसे वर्षा का शुद्ध जल अन्य निर्मल जलों में मिलकर वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार परमेश्वर को जानने वाले संतजन की आत्मा परमेश्वरमय हो जाती है।। 15।।

शुद्ध मन से ही यह परमात्मतत्व प्राप्त किए जाने योग्य है। इस जगत में एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। इसलिए जो इस जगत को अनेक की भांति देखता है, वह मनुष्य मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है अर्थात बार-बार जन्मता-मरता रहता है।
शुद्ध मन को समझना होगा। साधारणतः शुद्ध मन के संबंध में जो धारणा है,
वह बड़ी भ्रांत है। शुद्ध मन से लोग समझते हैं--सात्विक विचारों वाला मन। शुद्ध मन से लोग समझते हैं--नैतिक रूप से प्रतिष्ठित मन। शुद्ध मन से लोग समझते हैं--जिसे हम बुरा कहते हैं, अनैतिक कहते हैं, अनाचार कहते हैं, उस सबसे मुक्त हुआ मन।

लेकिन उपनिषद इस मन को भी अशुद्ध ही कहेंगे। उपनिषद की भाषा में शुद्ध मन वह है, जहां न तो बुरा रह जाता है और न भला; जहां न नीति रह जाती है, न अनीति; जहां न शुभ बचता है, न अशुभ; जहां विचार की सारी तरंगें ही समाप्त हो जाती हैं। जब तक विचार शेष है, तब तक मन अशुद्ध है।
साधु का मन भी अशुद्ध है, असाधु का मन भी अशुद्ध है। असाधु के मन की अशुद्धि हैं--बुरे विचार। साधु के मन की अशुद्धि हैं--भले विचार। संत शुद्ध मन वाला है। न वहां अच्छे विचार बचे हैं, न बुरे विचार बचे हैं। यह थोड़ा जटिल है, क्योंकि हम अच्छे विचार को ही शुद्धता मान लेते हैं।
अच्छा विचार भी विजातीय है। अच्छा विचार भी मन में तरंगें ही पैदा करता है। अच्छा विचार भी मन में अशांति लाता है। अच्छा विचार भी मन की सीमा बनाता है। शुद्ध मन तो तब है, जब वहां कोई भी विजातीय तत्व न रहा। ऐसा समझें, एक दर्पण है। दर्पण के सामने एक चोर खड़ा है, तो भी दर्पण अशुद्ध है, क्योंकि चोर का प्रतिबिंब बन रहा है। दर्पण के सामने एक साधु खड़ा है, तो भी दर्पण अशुद्ध है, दर्पण में साधु का प्रतिबिंब बन रहा है। जब दर्पण के सामने कोई भी नहीं खड़ा है, तभी दर्पण शुद्ध है।
इसलिए संत साधु नहीं है, संत असाधु भी नहीं है। संत दोनों से भिन्न है।
संतत्व की उपनिषद की धारणा बड़ी गहन है। शुद्धता की उपनिषद की धारणा बड़ी सूक्ष्म है। मन में जब तक कोई भी तरंग उठती है, तब तक मन अशुद्ध है। जब मन निस्तरंग हो जाता है, शून्य की भांति हो जाता है, दर्पण प्रतिबिंबों से खाली हो जाता है। न बुरा करने की वासना रह जाती है, न भला करने की वासना रह जाती है, न पाप मन को घेरता है, न पुण्य मन को घेरता है; न स्वार्थ मन को घेरता है, न परार्थ मन को घेरता है; जब मन को कुछ घेरता ही नहीं, तब मन असीम हो जाता है। तब मन की होने की क्षमता मात्र शेष रह जाती है। तब मनन करने को कुछ भी नहीं बचता, सिर्फ कोरा दर्पण होता है, जस्ट मिरर। मन जब कोरा दर्पण रह जाता है, जिसमें कोई प्रतिबिंब, कोई प्रतिमा, कोई चित्र, कोई छबि, कोई छाया नहीं पड़ती--उपनषिद कहते हैं--ऐसे मन से ही कोई परमेश्वर को जानने में समर्थ होता है।
धर्म और नीति का यही भेद है। नीति शुभ मन को शुद्ध समझती है, और धर्म शून्य मन को शुद्ध समझता है। नैतिक होने के लिए धार्मिक होना जरूरी नहीं है। नास्तिक भी नैतिक हो सकता है, होता है। अक्सर तो यह होता है, आस्तिक से ज्यादा नैतिक होता है। रूस में जितनी नैतिकता है उतनी भारत में नहीं। और रूस नास्तिक है! इतनी चोरी वहां नहीं है। इतनी बेईमानी वहां नहीं है। वस्तुओं में इतनी मिलावट वहां नहीं है। इतनी धोखाधड़ी, इतना ओछापन नहीं। नास्तिक नैतिक हो सकता है। सच तो यह है कि नास्तिक को नैतिक होने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है, क्योंकि धार्मिक तो वह हो नहीं सकता। नास्तिक के लिए बुरे का छोड़ना और भले का पकड़ना, यह अंतिम बात है।
आस्तिक इतने से राजी नहीं है। आस्तिक की यात्रा और लंबी है। आस्तिक कहता है--बुरे को छोड़ दिया, भले को पकड़ लिया, लेकिन पकड़ तो न छूटी। कल बुरा था हाथ में, अब भला है हाथ में। कल जंजीरें लोहे की थीं, अब सोने की हैं, लेकिन जंजीरें मौजूद हैं। कुछ भी बांधे नहीं, कुछ भी पकड़े नहीं, कोई पकड़ न रह जाए, मन बिल्कुल पकड़ से शून्य हो जाए।
धर्म अनीति के तो पार जाता ही है, नीति के भी पार जाता है। धार्मिक व्यक्ति का आचरण सिर्फ नैतिक नहीं होता। धार्मिक व्यक्ति का आचरण वस्तुतः नीति-अनीति शून्य हो जाता है। इसलिए धार्मिक व्यक्ति के आचरण को समझना बहुत कठिन है।
नैतिक व्यक्ति का आचरण हमें समझ में आता है। हमें पता है, क्या बुरा
है और क्या भला है। जो भला करता है, वह हमें समझ में आता है। जो बुरा करता है, वह भी समझ में आता है। लेकिन संत भले और बुरे करने के दोनों के पार हो जाता है। उसका आचरण स्पांटेनियस, सहज हो जाता है। उसके भीतर से जो उठता है वह करता है। न वह भले का चिंतन करता है, न बुरे का चिंतन करता है।
तो कई बार ऐसा भी हो सकता है कि जिसे हम भला कहते थे, वह संत न करे। कई बार ऐसा भी हो सकता है कि जो समाज की धारणा में बुरा था, वह संत करे। जैसे

जीसस, या कबीर, या बुद्ध, या महावीर समाज की धारणाओं से बहुत अतिक्रमण कर जाते हैं।
महावीर नग्न खड़े हो गए! समाज की धारणा में नग्न खड़े हो जाना अशिष्टता है, अनैतिकता है। समाज नग्न लोगों को बर्दाश्त नहीं करेगा। उसके कारण हैं। क्योंकि समाज ने शरीर को ही नहीं ढांका है, शरीर के साथ उसने कामवासना को भी ढांका है। कामवासना से इतना भय है कि उसे छिपाकर रखना पड़ता है। नग्न आदमी की कामवासना प्रगट हो जाती है। नग्न आदमी का शरीर कामवासना की दृष्टि से ढंका हुआ नहीं है। तो समाज नग्नता को पसंद नहीं करेगा। वह मानेगा कि उसमें अनीति है।
महावीर नग्न खड़े हो गए। बड़ी अड़चन हो गई। गांव-गांव से महावीर को हटाया गया। जगह-जगह उन पर पत्थर फेंके गए। जगह-जगह उनकी निंदा की गई। और महावीर मौन भी थे। नग्न भी थे, मौन भी थे, बोलते भी नहीं थे। जवाब भी नहीं देते थे कि क्यों नग्न हैं? क्यों खड़े हैं यहां? क्या प्रयोजन है? तो और भी बेबूझ हो गए थे।
लेकिन महावीर की नग्नता अनैतिक नहीं है। महावीर की नग्नता को नैतिक कहना भी मुश्किल है। महावीर की नग्नता बड़ी साहजिक है, छोटे बच्चे की भांति निर्दोष है। वहां नीति और अनीति दोनों नहीं हैं। महावीर वैसे सरल हो गए हैं, जहां ढांकने को कुछ भी नहीं बचा है। जिसके पास ढांकने को कुछ बचा है, वह जटिल है। जो चाहता है कुछ छिपाए, उसमें थोड़ी-सी जटिलता है। महावीर सरल हो गए हैं। उस सरलता में इतनी सीमा आ गई है, जहां वस्त्रों को ढोने का उन्हें कोई आकर्षण नहीं रहा है। लेकिन महावीर की नग्नता को सामान्य समाज अनैतिक समझेगा। महावीर के संतत्व को समझने में बड़ी जटिलता है।
जीसस एक गांव से गुजरे और एक वेश्या ने आकर उनके पैरों पर सिर रख दिया
और उसके आंसू बहने लगे। उसने अपने आंसुओं से उनके पैर भिगो दिए। गांव के जो नैतिक पुरुष थे, उन्होंने कहा कि वेश्या के द्वारा अपने को छूने देना उचित नहीं है। उन्होंने जीसस से कहा कि इस वेश्या को कहो कि तुम्हें न छुए। संत को तो साधारण स्त्री का स्पर्श भी वर्जित है, तो यह तो वेश्या है। जीसस ने कहा कि मेरे चरण अब तक जितने लोगों ने छुए हैं, इतनी पवित्रता से किसी ने कभी नहीं छुए। लोगों ने जल से मेरे पैर धोए हैं, इस स्त्री ने मेरे पैरों को अपने प्राणों के आंसुओं से धोया है।
जीसस पर जो जुर्म थे, जिनकी वजह से उन्हें सूली लगी, उसमें एक जुर्म यह
भी था। साधारण उनके समाज की जो नीति की धारणा थी, उसके विपरीत थी यह बात। एक स्त्री को जीसस के पास लोग लाए, क्योंकि वह व्यभिचारिणी थी, और यहूदी कानून था कि जो स्त्री व्यभिचार करे, उसे पत्थरों से मारकर मार डालना न्यायसंगत है। तो जीसस गांव के बाहर ठहरे थे। लोगों ने उनसे आकर कहा कि यह स्त्री व्यभिचारिणी है। और इसके पक्के प्रमाण मिल गए हैं। न केवल प्रमाण, बल्कि इस स्त्री ने भी स्वीकार कर लिया है। इसलिए अब कोई सवाल नहीं है। और पुरानी किताब कहती है कि इस स्त्री को पत्थरों से मारकर मार डालना उचित है, न्यायसंगत है। आप क्या कहते हैं?
जीसस ने कहा, पुरानी किताब ठीक कहती है। लेकिन वे ही लोग पत्थर मारने
के अधिकारी हैं, जिन्होंने व्यभिचार न तो किया हो और न सोचा हो। तुम पत्थर उठाओ। तो व्यभिचार, कौन है जिसने नहीं किया, या नहीं सोचा? वे जो समाज के बड़े पंडित और मुखिया थे, पंच थे, वे चुपचाप भीड़ में पीछे हटने लगे। धीरे- धीरे लोग जो पत्थर लेकर आए थे, वे पत्थर छोड़कर गांव की तरफ भाग गए। जीसस पर यह भी एक जुर्म था कि उन्होंने एक व्यभिचारिणी स्त्री को बचा लिया।
जीसस का व्यवहार नीति के सामान्य दायरे में नहीं बंधता है। साहजिक है। जो सहज उनकी चेतना में उठ रहा है, वह कर रहे हैं। वे न तो सोचेंगे कि समाज की धारणा से मेल खाता है कि नहीं मेल खाता। वह विचार नैतिक व्यक्ति करता है।
धार्मिक व्यक्ति बड़ी अनूठी घटना है। इसका यह मतलब नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति अनिवार्य रूप से अनैतिक हो जाता है। उसका आचरण नीति और अनीति से मुक्त होता है। कभी नीति से मेल भी खा जाता है, कभी मेल नहीं भी खाता। लेकिन यह उसके मन में अभिप्राय नहीं है कि मेल खाए या मेल न खाए। क्योंकि जब तक हम सोचते हैंः किसी धारणा से मेरा आचरण मेल खाए, तब तक हमारा आचरण

असत्य होगा; तब तक हमारा आचरण पाखंड होगा; तब तक आचरण भीतर से नहीं आ रहा है, बाहर के मापदंडों से तौला जा रहा है। तब तक आचरण आत्मा की अभिव्यक्ति नहीं है। तब तक आचरण समाज का अनुसरण है।
नैतिक व्यक्ति समाज का अनुसरण करता है। इसलिए जिनको आप साधु कहते हैं, आमतौर से नैतिक होते हैं, धार्मिक नहीं। और जब भी कोई व्यक्ति धार्मिक हो जाता है, तब आपको अड़चन शुरू हो जाती है। क्योंकि तत्क्षण उसके आचरण को आप अपने ढांचों में नहीं बिठा पाते। आपके जो पैटर्न हैं, सोचने के जो ढांचे हैं, वह उनसे ज्यादा बड़ा है। सब ढांचे टूट जाते हैं।
शुद्ध मन उपनिषद कहता है उस मन को, जहां नीति और अनीति की सारी तरंगें
खो गई हैं; जहां मन बिल्कुल सूना हो गया, शून्य हो गया; जहां कोई विजातीय तत्व न रहा। विचार विजातीय तत्व है।
पानी में कोई दूध मिला देता है, तो हम कहते हैं, दूध शुद्ध नहीं है। लेकिन बड़े मजे की बात है, अगर शुद्ध पानी मिलाया हो तो? तो दूध शुद्ध है या नहीं? तो भी दूध अशुद्ध है। बिल्कुल शुद्ध दूध और शुद्ध पानी मिलाया हो, तो दो शुद्धताएं मिलकर भी दूध अशुद्ध होगा।
अशुद्धि का संबंध इससे नहीं है कि जो मिलाया आपने वह शुद्ध था या नहीं। अशुद्धि का संबंध इससे है कि जो मिलाया वह विजातीय है, फारेन एलीमेंट है। वह दूध नहीं है, जो मिलाया आपने; वह पानी है। वह शुद्ध होगा। विजातीय तत्व का प्रवेश अशुद्धि है।
मन में मन के बाहर से कुछ भी आ जाए तो अशुद्धि है। वह शुद्ध विचार आया, अशुद्ध विचार आया, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बाहर से कुछ भी मन में आया, अशुद्धि हो गई। मन में बाहर से कुछ भी न आए, मन अकेला हो, अपने में हो, तो शुद्ध है। शुद्धि की यह बात ठीक से ख्याल में ले लेनी जरूरी है।
और इसीलिए पश्चिम में जब पहली दफा उपनिषदों पर टीकाएं लिखी गईं और उपनिषद के अनुवाद हुए, तो पश्चिम के विचारकों ने कहा कि उपनिषद जो हैं, वे मारल, नैतिक नहीं मालूम होते। ड्यूसन ने अपने प्रसिद्ध अनुवाद में यह शंका जाहिर की है कि उपनिषदों में कोई नैतिक शिक्षा नहीं है। जैसा बाइबिल में है कि चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, पर-स्त्रीगमन मत करो, ऐसी साफ-साफ कोई नैतिक शिक्षा उपनिषद में नहीं है। ड्यूसन की शंका ठीक है, लेकिन ड्यूसन की व्याख्या ठीक नहीं है। ड्यूसन बिल्कुल ठीक कह रहा है कि जैसा पुराने बाइबिल में सीधे उपदेश हैं, टेन कमांडमेंट्स हैं, दस आज्ञाएं हैं-- ऐसा करो, ऐसा मत करो--ऐसा उपनिषद में कुछ भी नहीं है।
उपनिषद असल में करने की बात ही नहीं करता। उपनिषद कहता है, ऐसे हो जाओ। करना गौण है, कृत्य गौण है, होना वास्तविक है। उपनिषद यह नहीं कहता कि तुम अच्छा करो, बुरा मत करो। उपनिषद कहता है तुम परमेश्वरमय हो जाओ फिर तुमसे अच्छा होगा। लेकिन वह तुम्हारी चिंता नहीं होगी। फिर तुमसे बुरा नहीं होगा। लेकिन वह तुम्हें रोकना नहीं पड़ेगा।
उपनिषद की धारणा यह है--जब तक बुरे को मुझे रोकना पड़े, तब तक वह मुझमें है। जब तक अच्छे को मुझे चेष्टा से करना पड़े, तब तक वह मेरी वास्तविक संपदा नहीं है। तब तक सब झूठ है, पाखंड है; ऊपर-ऊपर है; तब तक मेरे भीतर कोई ज्योति नहीं जगी है।
इसलिए उपनिषद कहता हैः तुम्हारा बीइंग, तुम्हारा अस्तित्व, तुम्हारी आत्मा रूपांतरित हो जाए, तो तुम्हारा आचरण उसके पीछे आ ही जाएगा। उसकी तुम चिंता मत करो। जैसे व्यक्ति के पीछे उसकी छाया आती है और हमें लौट-लौटकर नहीं देखना पड़ता कि छाया आ रही है या नहीं आ रही है, और हमें छाया को सम्हालना भी नहीं पड़ता, और छाया के लिए कोई इंतजाम भी नहीं करना पड़ता। छाया पीछे आती है, ठीक वैसे ही आचरण भी पीछे आता है।
तुम्हारी आत्मा जैसी होती है, वैसा ही आचरण तुम्हारे पीछे आता है। इसलिए आचरण को बदलो या आत्मा को? साधारण धर्मग्रंथ कहते हैं, आचरण को बदलो। असाधारण धर्मग्रंथ कहते हैं, आत्मा को बदलो। साधारण धर्मग्रंथ साधारण आदमी की पकड़ के ख्याल से लिखे गए हैं। असाधारण धर्मग्रंथ मनुष्य की आत्यंतिक संभावना की दृष्टि से लिखे गए हैं। उपनिषद असाधारण धर्मग्रंथ हैं। आखिरी बात है, जिसके ऊपर और कोई बात नहीं हो सकती।

शुद्ध मन से ही यह परमात्मतत्व प्राप्त किए जाने योग्य है। इस जगत में एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।
जैसे ही मन शुद्ध होगा, वैसे ही जगत में एक दिखाई पड़ने लगेगा। मन की अशुद्धि के कारण जगत अनेक में टूटा हुआ दिखाई पड़ता है, क्योंकि जितना मन अशुद्ध होता है; उतना मन खंड-खंड होता है। ऐसा समझें, एक दर्पण है, उसको हम पचास टुकड़ों में तोड़ दें। तो जहां एक प्रतिबिंब बनता था पहले, अब पचास प्रतिबिंब बनेंगे। जो दर्पण पहले एक की खबर देता था, वह अब पचास की देगा। पांच सौ टुकड़ों में तोड़ दें, तो पांच सौ प्रतिबिंब बनेंगे। क्योंकि हर टुकड़ा एक दर्पण हो गया।
आप शायद कभी किसी ऐसे भवन में गए हों, जहां बहुत से दर्पण के टुकड़े दीवार पर लगे हों, तो आप अगर बीच में खड़े हो जाएं, तो लाखों प्रतिबिंब दिखाई पड़ेंगे। अगर दर्पण एक होता, तो एक प्रतिबिंब बनता। अगर लाखों टुकड़े लगे हैं, तो लाखों प्रतिबिंब बनेंगे।
मन जितना अशुद्ध होगा, उतने टुकड़ों में बंट जाता है। अशुद्ध मन खंडित होता है। उस खंडित मन में जगत अनेक की तरह दिखाई पड़ता है। जब मन शुद्ध होता है और एक दर्पण रह जाता है, तो जगत भी एक अस्तित्व की तरह दिखाई पड़ता है। एक परमात्मा कोई विचार नहीं है। एक परमात्मा एक हो गए मन की अनुभूति है। इसलिए सवाल परमात्मा को खोजने का बिल्कुल नहीं है। और जो लोग भी परमात्मा को खोजते हैं, वे गलत यात्रा करते हैं। असली सवाल मन की एकता को खोजने का है। लोग कहते हैं, परमात्मा कहां है? यह बात ही फिजूल है। यह पूछनी ही नहीं चाहिए। इतना ही पूछना चाहिए कि मेरा टूटा हुआ खंडित मन अखंड कैसे हो जाए? एक कैसे हो जाए? क्योंकि जब भी मन एक हो जाता है, उस एक की झलक बननी शुरू हो जाती है। जैसा होगा मन--टूटा हुआ खंडित, या अखंड और एक--वैसी ही प्रतीति अस्तित्व की होगी।
मन एक दर्पण है, जिसमें हम देखते हैं अस्तित्व को। अगर अस्तित्व टुकड़े-टुकड़े में दिखाई पड़ता है, तो जानना कि आपका मन टूटा हुआ है-- डिसइंटिग्रेटेड। और जब तक यह मन इंटिग्रेटेड न हो जाए, इकट्ठा न हो जाए, तब तक यह जगत टूटा ही रहेगा।
इसलिए असली सवाल परमात्मा की खोज का नहीं है। असली सवाल एक शुद्ध मन
की खोज का है।
शुद्ध मन से यह परमात्मतत्व प्राप्त किए जाने योग्य है। इस जगत में
एक परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।
एक ही है केवल और यह एक की प्रतीति सिर्फ धार्मिक अनुभूति की ही प्रतीति नहीं है, विज्ञान की भी आत्यंतिक प्रतीति यही है। क्योंकि विज्ञान की अगर हम पांच हजार वर्ष की यात्रा देखें, तो पांच हजार साल पुराने वैज्ञानिकों ने कहा था, पांच तत्व हैं। अभी भी हम पुराने उस पांच हजार वर्ष की धारणा को, भारत में तो हमारी भाषा में प्रविष्ट हो गई है--पंच तत्व, यह देह पंच तत्व से बनी है, यह जगत पंच तत्वों से बना है--यह कोई पांच हजार साल के वैज्ञानिक की खोज थी, पहले की, कि पांच तत्व हैं। फिर जैसे- जैसे वैज्ञानिक विश्लेषण की विधियां सूक्ष्म और तीक्ष्ण हुईं, वैसे-वैसे और तत्वों की खोज हुई।
जिनको हमने तत्व कहा था, आज का विज्ञान उनको तत्व मानता ही नहीं। जल कोई तत्व नहीं है, क्योंकि जल आक्सीजन और हाइड्रोजन से मिलकर बना है, वह संयोग है। आक्सीजन और हाइड्रोजन तत्व हैं। तो विज्ञान खोजते-खोजते अट्ठानबे तत्वों पर पहुंचा। अट्ठानबे तत्व हैं, उनमें आपके पांच तत्व कोई भी नहीं हैं। न तो पृथ्वी कोई तत्व है, न जल कोई तत्व है, न वायु कोई तत्व है, न अग्नि कोई तत्व है। ये कोई भी तत्व नहीं हैं। ये सभी संयोग सिद्ध हुए।
लेकिन पांच हजार साल पहले हमारे पास जांचने का कोई उपाय नहीं था। तो
जल तत्व था, क्योंकि जल को तोड़ने की हमारे पास कोई विधि नहीं थी कि हम तोड़कर देख लें कि जल कंपाउंड है या एलिमेंट है। तत्व का मतलब होता है, जो किसी से जुड़कर नहीं बना, जो स्वयं है। तो जल एक तत्व सिद्ध नहीं हुआ। फिर अट्ठानबे तत्व हो गए, फिर बढ़ते-बढ़ते एक सौ बारह तत्व हो गए। और ऐसा लगा कि विज्ञान के तत्वों की संख्या तो बढ़ती चली जा रही है।

लेकिन फिर अचानक इन पिछले बीस वर्षों में, एक सौ बारह तत्व खो गए और एक तत्व रह गया। क्योंकि हर तत्व के पीछे और भी खोज की गई। पहले जल तोड़ा गया तो आक्सीजन और हाइड्रोजन हाथ में लगे। फिर आक्सीजन भी तोड़ ली गई तो इलेक्ट्रिसिटी हाथ में लगी। हाइड्रोजन भी तोड़ ली गई तो इलेक्ट्रिसिटी हाथ में लगी। फिर सब चीजें तोड़कर देख ली गईं तो अंत में विद्युत हाथ में लगी। और अब विज्ञान कहता है, सारा जगत एक इलेक्ट्रिसिटी, एक विद्युत का जाल है। सब उसका ही खेल, सब उसका ही रूप है।
विज्ञान पदार्थ के माध्यम से एक पर पहुंच गया; धर्म चैतन्य के माध्यम
से एक पर पहुंचा। इसलिए विज्ञान कहेगा, विद्युत। और धर्म कहेगा, परमात्मा। दोनों की यात्राएं अलग-अलग हैं, लेकिन निष्पत्ति बड़ी करीब आ गई। एक बात पर दोनों राजी हैं कि सब एक का ही विस्तार है।
लेकिन विज्ञान की प्रतीति में कोई जीवन का रूपांतरण नहीं है। तत्व एक
सौ बारह हों, पांच हों, कि एक हो, विज्ञान के माध्यम से आप में कोई फर्क नहीं पड़ता। एक सौ बारह हों, तो आप जैसे हैं वैसे ही रहेंगे। पांच हों, तो जैसे हैं वैसे रहेंगे। एक हो, तो जैसे हैं वैसे रहेंगे।
लेकिन धर्म की जो प्रक्रिया है उस एक को जानने की, उसमें आप पूरी तरह रूपांतरित हो जाते हैं। उस एक की तरफ पहुंचने में आपको अपना मन बदलना पड़ता है। वैज्ञानिक को कुछ भी नहीं बदलना पड़ता, वह सिर्फ साधनों के द्वारा प्रयोग करता रहता है; खुद अछूता रह जाता है। धार्मिक व्यक्ति की प्रयोगशाला वह स्वयं है; उसे कुछ और नहीं बदलना पड़ता, खुद को ही बदलना पड़ता है। और जैसे-जैसे वह बदलता है, वैसे-वैसे एक के करीब आता है। जब वह पूरी तरह शुद्ध हो जाता है, तो एक का फैलाव रह जाता है।
इसलिए विज्ञान किसी आनंद पर नहीं पहुंचाता। बड़े से बड़ा वैज्ञानिक उतना ही दुखी होता है, जितना कोई गांव का गंवार। शायद गांव का गंवार कम दुखी हो, क्योंकि दुख के लिए भी थोड़ी समझदारी चाहिए। दुखी होने के लिए भी जरा बुद्धिमत्ता चाहिए। लेकिन वैज्ञानिक स्वयं के भीतर कोई रूपांतरण नहीं कर पाता। धार्मिक रूपांतरण न करे, तो एक को उपलब्ध ही नहीं होता। विज्ञान है पदार्थ के साथ श्रम, और धर्म है स्वयं के साथ श्रम। जैसे
ही मन शुद्ध होता है, एक के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रह जाता। और जो इस जगत को अनेक की भांति देखता है, वह फिर-फिर जन्मता है, फिर-फिर मरता है।
हमारे जन्म और मरण का एक ही कारण है और वह कारण यह है कि हम उस महासागर
को नहीं देख पाते, जो हम हैं। हम अपने को छोटे-छोटे झरनों की तरह देखते रहते हैं। झरने बनेंगे, मिटेंगे; फिर बनेंगे, फिर मिटेंगे। सागर सदा है। आपने अपने को जैसा जाना है, वैसी ही आपकी परिणति हो जाएगी। अगर आप समझते हैं कि एक छोटा झरना हैं, तो गरमी आएगी, सूखेंगे, भाप बनेंगे, उड़ेंगे। फिर वर्षा आएगी, फिर बरसेंगे, फिर झरना बनेगा, फिर फूटेंगे, फिर बहेंगे, फिर गर्मी। बस बनते और मिटते रहेंगे। जन्म-मरण का इतना ही अर्थ है।
लेकिन अगर आप अपने को महासागर की तरह देख लें, तो वह सदा है। न मिटता है, न बनता। न छोटा होता, न बड़ा होता। न उसमें कभी कोई पूर आता और न कभी कोई कमी पड़ती। वह जैसा है, वैसा है। फिर भी हमारे सागर तो बहुत छोटे हैं। चेतना का सागर तो अनंत है। उसमें कुछ कम नहीं होता, कुछ ज्यादा नहीं होता। इसलिए उपनिषदों ने कहा है, उस पूर्ण में से पूर्ण को भी निकाल लो तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रहता है। उसमें से हम कितना ही निकाल लें तो भी रत्तीभर कम नहीं होता। और उसमें हम पूर्ण भी जोड़ दें तो भी कुछ जुड़ता नहीं। क्योंकि अनंत का अर्थ ही होता हैः जिसमें से कुछ घटाओ, कुछ जोड़ो, कोई फर्क नहीं पड़ता। न कुछ जोड़ा जा सकता है, न कुछ घटाया जा सकता है।
जिस व्यक्ति ने उस महासागर की तरह अपने को देख लिया... ।
तो दो कदम हुए। एक कदम हैः मन का शुद्ध हो जाना। मन के शुद्ध होते ही
उस एक का दर्शन होता है। लेकिन अभी ख्याल रखें, उस एक के दर्शन में अभी दो की मौजूदगी है। एक तो वह जिसका दर्शन हो रहा है, और एक आप जिसको दर्शन हो रहा है। पहला कदम यह है कि मन शुद्ध हो जाए। मन के शुद्ध होने पर एक का दर्शन होगा। लेकिन एक के दर्शन का मतलब ही यह है कि अभी दूसरा मौजूद है। देखने वाला मौजूद है, दर्शन करने वाला मौजूद है। दो हैं।

दूसरा कदम यह है कि वह जो शुद्ध मन था, वह भी खो जाए। उसकी भी कोई जरूरत नहीं है। दर्पण ही टूट जाए, नष्ट ही हो जाए, बचे ही नहीं, तो दर्पण जो फासला कर रहा था दो का, वह भी विदा हो जाए। तब एक ही रह जाएगा। लेकिन उस एक का तो पता भी नहीं चलेगा कि एक है। इसलिए उस एक को हमने इस देश में अद्वैत कहा है। क्योंकि एक कहने से ठीक नहीं मालूम होगा। बस इतना ही कहा है कि वह दो नहीं है। क्योंकि एक कहने से शक पैदा होता है कि जानने वाला कोई होगा। एक हमने कहा कि दो हो जाता है। एक का मतलब ही यह है कि गिनती आ गई।
अद्वैत का मतलब है, हम गिनती का इनकार कर रहे हैं। हम कह रहे हैं, उसकी कोई गिनती नहीं। वह दो नहीं है। बस इतना साफ है। वह क्या है, यह हम नहीं कह रहे हैं। वह क्या नहीं है, यह हम कह रहे हैं।
और यह समझ लेने जैसा है कि परमात्मा के संबंध में कोई पाजिटिव स्टेटमेंट, कोई विधायक वक्तव्य सही नहीं हो सकता। उसके संबंध में सिर्फ निगेटिव स्टेटमेंट, सिर्फ नकारात्मक वक्तव्य, नेति-नेति सत्य हो सकता है। हम इतना ही कह सकते हैं कि वह क्या नहीं है। हम यह नहीं कह सकते कि वह क्या है, क्योंकि वह इतना बड़ा है कि उसे कोई शब्द प्रगट न कर पाएगा। पर यह हम जरूर कह सकते हैं कि वह क्या नहीं है। क्या नहीं है, यह कहा जा सकता है। तो हम कहते हैं, वह दो नहीं है। हम कहते हैं, वह दुख नहीं है।
बुद्ध से कोई पूछता था कि तुम्हारे उस महापरिनिर्वाण में आनंद होगा?
तो बुद्ध कहते थे, यह मैं नहीं जानता। इतना ही मैं कह सकता हूं, वहां दुख नहीं है, दुख-निरोध है। हम निषेध कर सकते हैं। हम यह नहीं कह सकते कि वह प्रकाश है। हम इतना ही कह सकते हैं, वहां कोई अंधकार नहीं है।
यह जो निषेध की बात है, यह बहुत मौलिक है, बहुत आधारभूत है। विराट को
जब भी बताना हो तो आप ऐसा नहीं बता सकते कि यह रहा। क्योंकि अगर विराट को आप ऐसा इशारा करके बताएंगे, वह क्षुद्र हो जाएगा। जिसके प्रति इशारा किया जा सकता है, वह क्षुद्र हो जाएगा।
अगर मैं कहूं कि यह रहा परमात्मा, अंगुली का इशारा करूं, तो सीमा हो जाएगी। जिसको मेरी अंगुली बता सकती है, वह विराट नहीं हो सकता। परमात्मा को बताना हो तो मुट्ठी बांधकर बताना पड़ेगा कि यह रहा। कोई इशारा नहीं किया जा सकता।
सब इशारे सिर्फ समझ के लिए थोड़ा-सा सहारा हैं। वे सहारे वैसे ही हैं जैसे लंगड़ा आदमी बैसाखी का सहारा लेकर चलता है। बैसाखी कोई पैर नहीं है। और लंगड़ा सिर्फ प्रतीक्षा कर रहा है कि जब पैर ठीक हो जाएंगे तो बैसाखी को फेंक देगा।
सारे शब्द जो परमात्मा के संबंध में कहे जा सकते हैं--बैसाखियां हैं, सत्य नहीं हैं। और जैसे ही आपको अनुभव होगा, इन शब्दों को फेंक देना होगा, जैसे लंगड़ा बैसाखियों को फेंक देता है। फिर उनका कोई प्रयोजन नहीं; उनको ढोना फिर नासमझी है।
अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष परमात्मा शरीर के मध्यभाग हृदयाकाश में स्थित है, जो कि भूत, वर्तमान और भविष्य का शासन करने वाला है, उसे जान लेने के बाद व्यक्ति किसी की भी निंदा नहीं करता। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
यह थोड़ा विवादग्रस्त सिद्धांत है। लंबा विवाद रहा है कि आत्मा का आकार क्या है? शरीर में उसका स्थान कहां है? उपनिषद मानते हैं कि अंगूठे के बराबर, अंगुष्ठमात्र, उसका आकार है। और शरीर के मध्यभाग में हृदयाकाश में वह स्थित है।
जैनों की धारणा है कि यह बात अजीब है, अंगुष्ठमात्र! आत्मा, और अंगूठे
के बराबर! जैनों की धारणा है कि आत्मा पूरे शरीर में व्याप्त है और शरीर के आकार की है।
लेकिन उसमें भी बड़ी झंझटें हैं। क्योंकि चींटी मरकर हाथी हो सकती है।
तो जब चींटी मरकर हाथी होगी, तो चींटी के शरीर में आत्मा चींटी के बराबर थी, फिर हाथी के शरीर में हाथी के बराबर हो गई!
तो जैनों को एक धारणा विकसित करनी पड़ी है कि आत्मा लोचपूर्ण है; फैलती-सिकुड़ती है। जितने बड़े शरीर में होती है, उतनी ही हो जाती है। जब

हाथी के शरीर में होती है तो हाथी के बराबर हो जाती है, फैल जाती है। और जब चींटी के शरीर में होती है तो सिकुड़ जाती है।
लेकिन उपनिषद पूछते हैं कि आत्मा क्या कोई वस्तु है जो सिकुड़ सकती, फैल सकती है? कोई पदार्थ है? लेकिन जैन दार्शनिक भी पूछते हैं कि अगर फैलने-सिकुड़ने की संभावना नहीं है, तो तुम अंगुष्ठमात्र कहते हो, तो आत्मा क्या कोई पदार्थ है, जो अंगूठे के बराबर हो सकती है? फिर चींटी का क्या होगा? अंगुष्ठमात्र आत्मा चींटी में कैसे प्रवेश करेगी? बड़ा मुश्किल हो जाएगा। चींटी आत्मा के भीतर होगी, आत्मा चींटी के भीतर नहीं होगी।
इस पर कोई हजारों वर्ष से विवाद है। और उस विवाद में कोई अंत नहीं आ सका, क्योंकि विवाद की मूल-भित्तियां ही गलत हैं। इसे विज्ञान की भाषा से थोड़ा समझें तो आसानी हो जाएगी।
एक दीया जल रहा है। दीए की लौ छोटी-सी है, लेकिन प्रकाश पूरे कमरे को
भर देता है। कमरा जितना बड़ा हो, छोटा हो, दीवालें जितनी हों, प्रकाश उतना ही हो जाता है। दीया छोटा-सा कमरे में जल रहा है, लेकिन प्रकाश की सीमा कमरे से तय होती है। दीया तो जल रहा है। उपनिषदों की यह धारणा कि अंगुष्ठमात्र है, असल में दीए की ज्योति की धारणा है। दीए की ज्योति की भांति, अंगूठे के बराबर दीए की ज्योति। प्रकाश पूरे शरीर में भर जाता है। शरीर जितना बड़ा हो, छोटा हो, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता।
दीए की ज्योति की भांति। दीए की ज्योति छोटी भी हो सकती है, बड़ी भी हो सकती है। यह जो अंगुष्ठमात्र आत्मा कही है, यह मनुष्य के लिए कही है। चींटी का दीया छोटा है। उसकी ज्योति भी छोटी होगी। हाथी का दीया बड़ा है, उसकी ज्योति भी बड़ी होगी। लेकिन प्रकाश का गुण एक है--वह छोटी ज्योति हो, कि बड़ी ज्योति हो, कि महासूर्य हो--प्रकाश के गुण में कोई भेद नहीं पड़ता। और शरीर की दीवालें कितनी हैं, कक्ष कितना बड़ा है, उतने को प्रकाश से भर देगी।
दीए की ज्योति के आधार पर अंगूठे के बराबर आत्मा की धारणा है।
आपके पूरे शरीर को प्रकाश से भरा हुआ है। आपकी अंगुलियों तक आत्मा नहीं आई है, सिर्फ आत्मा का प्रकाश आया है। उतना प्रकाश भी आपके शरीर को जीवित करने के लिए काफी है। उतनी ही ऊर्जा से आप जीवित हैं। मरते हुए आदमी का प्रकाश धीमा पड़ने लगता है। शरीर शिथिल होने लगता है। दीए की ज्योति इस घर को छोड़ने के लिए तैयार होने लगती है।
दूसरी बात, यह जो हृदयाकाश में अंगुष्ठमात्र आत्मा की बात उपनिषदों
ने कही है, इसको शाब्दिक अर्थों में लेना उचित नहीं है। और इसके साथ शाब्दिक-व्यवहार करना भी उचित नहीं। ये केवल इशारे हैं। इसका ठीक मतलब अंगूठे के बराबर नहीं होता। केवल इशारा है।
इस शरीर में ठीक हृदय के मध्य में आत्मा का संस्पर्श है। उपनिषद की धारणा यह है कि आत्मा तो सब जगह व्याप्त है, परमात्मा सबको घेरे हुए है। लेकिन परमात्मा सबको घेरे हुए है, पर आपके भीतर परमात्मा का जो कांटैक्ट, संपर्क-स्थल है, वह हृदय के मध्य में छोटी-सी जगह है। वहां से परमात्मा से आप जुड़े हैं। वहां से प्लग्ड हैं।
आपने बल्ब लगाया है, एक छोटी-सी जगह में बल्ब लग गया है। बिजली की बड़ी धारा पीछे है। आप पांच कैंडल का बल्ब लगाए हैं तो पांच कैंडल का प्रकाश मिल रहा है। पचास कैंडल का लगाए हैं तो पचास कैंडल का, पांच हजार कैंडल का लगाए हैं तो पांच हजार कैंडल का प्रकाश मिल रहा है। पीछे अनंत धारा है। लेकिन आपके बल्ब की जितनी क्षमता है, उतना प्रकाश आपका बल्ब ले रहा है। हम सब की आत्माएं तो समान हैं, क्योंकि हम सब परमात्मा से जुड़े हुए हैं। हमारे भीतर परमात्मा का जो जोड़ है, उसका नाम आत्मा है। फिर जितनी हमारी क्षमता है, जितनी हमारी कैंडल की क्षमता है, उतना ज्यादा प्रकाश हम उस परमात्मा के स्रोत से ले लेते हैं। कोई पांच कैंडल का है। बुद्ध जैसा कोई पांच हजार कैंडल का है, तो वह पांच हजार कैंडल का प्रकाश अपने चारों तरफ फेंक पाता है।
लेकिन हम जुड़े हैं महास्रोत से। चींटी बहुत थोड़ा-सा कैंडल ले रही है, आदमी थोड़ा ज्यादा ले रहा है, बुद्ध बहुत ज्यादा ले रहे हैं। लेकिन महास्रोत समान है।

आपके भीतर उस महास्रोत का जो संपर्क-स्थल है, उपनिषद उसकी बात कर रहे हैं, कि वह अंगूठे की तरह छोटी-सी जगह है भीतर, जहां से आप परमात्मा से जुड़े हैं। और आप जितने शुद्ध होते चले जाएंगे, उतने ही उस महास्रोत से ज्यादा शक्ति आपको उपलब्ध होती चली जाएगी। आपकी शुद्धता पर निर्भर होगा। अगर आप पूर्ण शुद्ध हो जाएं तो परमात्मा का महास्रोत आपसे प्रगट होने लगेगा। हमने जिन पुरुषों को अवतार कहा है, तीर्थंकर कहा है, बुद्ध कहा है, वे वैसे लोग हैं, जिन्होंने अपने को इतना शुद्ध कर लिया कि खुद बचे ही नहीं, तो उनके भीतर से महास्रोत प्रगट हो गया। तो फिर हमने उन्हें मनुष्य कहना उचित नहीं समझा, फिर हमने ठीक समझा कि वे जिस महास्रोत के साथ एक हो गए हैं, हम उन्हें उसी महास्रोत के नाम से स्मरण करें।
अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष शरीर के मध्यभाग हृदयाकाश में स्थित है, जो कि भूत, वर्तमान और भविष्य का शासन करने वाला है। उसे जान लेने के बाद व्यक्ति किसी की निंदा नहीं करता। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष परमात्मा धूम्ररहित ज्योति की भांति है। भूत, वर्तमान और भविष्य पर शासन करने वाला वह परमात्मा आज है, और वही कल भी है, अर्थात वह नित्य सनातन है। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
धूम्ररहित ज्योति! समझने जैसा है। आप जो भी ज्योति जलाते हैं, वह धूम्रसहित होती है, उसमें धुआं होता है। धुआं क्यों होता है ज्योति में? धुआं किस कारण होता है? ज्योति का हाथ है धुएं में? ज्योति के स्वभाव में कुछ बात है जिससे धुआं हो?
नहीं। धुआं होता है ईंधन के कारण। ज्योति के स्वभाव से धुएं का कोई संबंध नहीं है। और जितना ईंधन गीला हो उतना ज्यादा धुआं होता है। ईंधन सूखा हो, धुआं कम होता है। गीली लकड़ी जलाएं, धुआं ही धुआं होता है, ज्योति पता नहीं चलती। सूखी लकड़ी जलाएं, धुआं कम रह जाता है, ज्योति पता चलती है। बिल्कुल सूखी लकड़ी हो, तो धुआं करीब-करीब न के बराबर हो जाता है। इससे एक बात साफ है कि धुएं का संबंध ईंधन से है, ज्योति से नहीं।
इसका मतलब यह हुआ कि धूम्ररहित ज्योति तो वही हो सकती है जो बिना ईंधन
के हो। नहीं तो कोई भी ईंधन होगा तो किसी न किसी तरह का धुआं पैदा होगा। शुद्धतम ईंधन, स्प्रिट भी जलाएंगे, तो भी थोड़ा-सा धुआं पैदा होगा, चाहे दिखाई भी न पड़े आंख से। क्योंकि जब कोई चीज जलेगी, तो वहां दो चीजें हो गईं--अग्नि और जलने वाली चीज। वह जो जलने वाली चीज है, वह धुआं पैदा करेगी। धुआं है कार्बन डाई आक्साइड। और जब भी कोई चीज जलेगी तो कार्बन पैदा होगा। अगर हम कोई ऐसी ज्योति खोज लें जो ईधनरहित हो... ।
पर बड़े मजे हैं। पिछले तीन सौ वर्षों में, विज्ञान की जो बड़ी-बड़ी समितियां हैं--रायल सोसाइटी है, या फ्रांस की एकेडमी है, या अमेरिका का विज्ञान-मंडल है, या सोवियत रूस की साइंस एकेडमी है--इनके पास हर वर्ष सैकड़ों लोग दावा करते हैं कि हमने वह अग्नि खोज ली, जो ईंधनरहित है। मगर वे सब दावे गलत होते हैं।
यह खोज बड़ी पुरानी है। और कुछ मुल्कों ने, जैसे फ्रांस ने और इंग्लैंड
ने तो अब एक नियम बना दिया कि कोई भी आदमी इस तरह की खबर न दे, क्योंकि उससे व्यर्थ समय खराब होता है। सैकड़ों लोग पेटेंट के लिए एप्लाई करते हैं सारी दुनिया में, कि हमने ईंधनरहित शक्ति खोज ली। यह खोज बड़ी पुरानी है। क्योंकि जिस दिन हम ईंधनरहित शक्ति खोज लेंगे, उस दिन हम महान शक्ति खोज लेंगे। क्योंकि सब ईंधन चुक जाने वाले हैं। अगर हम जिस भांति पेट्रोल जला रहे हैं इसी भांति जलाते रहे, तो वैज्ञानिक कहते हैं, पांच हजार साल बाद पेट्रोल की एक बूंद भी नहीं होगी। और सब कुछ पेट्रोल पर निर्भर मालूम हो रहा है। पेट्रोल की एक सीमा है।
जिस भांति हमने जला-जलाकर लकड़ी, जंगल नष्ट कर दिए, अब हम रो रहे हैं, क्योंकि वर्षा नहीं होती। कहीं कुछ दूसरा उपद्रव है, सॉइलइरोजन है। जमीन नष्ट हो रही है। पाकिस्तान में प्रति घंटे पांच हजार बच्चे पैदा हो रहे हैं और एक एकड़ जमीन नष्ट हो रही है, प्रति घंटे। बच्चे एक इंच जमीन तो साथ लेकर आते नहीं, और हर घंटे एक एकड़ जमीन सॉइलइरोजन में नष्ट होती जा रही है,

क्योंकि जंगल कट गए हैं। वृक्ष अपनी जड़ों से जमीन को रोके रखते हैं। जब वृक्ष नहीं रह जाते, तो जमीन पर पकड़ खो जाती है, तो जमीन बिखरने लगती है। अगर आप सब जंगल काट दें, तो जमीन सब बिखरकर नष्ट हो जाएगी।
वृक्ष जमीन को पकड़े हुए हैं। वृक्ष ही जमीन से भोजन नहीं ले रहे हैं, जमीन भी वृक्ष का सहारा ले रही है। और वृक्ष पूरे वक्त आकाश से तत्वों को खींचकर जमीन को दे रहे हैं। वृक्ष हट जाते हैं, जमीन बंजर हो जाती है, बांझ हो जाती है।
तो बड़ी खोज है कि कोई ऐसा तत्व मिल जाए। क्योंकि जंगल कट गए, अब लकड़ी नहीं बची। कोयला जमीन से निकाल-निकालकर हम खतम किए ले रहे हैं। पेट्रोल निकाल-निकालकर खतम किए ले रहे हैं। हमारे सब ईंधन किसी दिन खतम हो जाएंगे, उस दिन आदमी को मरना पड़ेगा। क्योंकि आप सोच भी नहीं सकते कि जिस दिन पेट्रोल नहीं होगा, दुनिया की क्या हालत होगी। न हवाई जहाज चल सकते, न कार चल सकती! और हमारे मुल्क में तो अभी इतनी दिक्कत नहीं है, लेकिन रूस में या अमेरिका में कोई सोच ही नहीं सकता कि बिना कार के जीवन कैसे हो सकता है। असंभव है। बिना पेट्रोल के जीवन का कोई उपाय नहीं दिखता।
इसलिए कई झक्की लोग झूठे दावे कर देते हैं कि उन्होंने खोज लिया ईंधन। बहुत विचार करने के बाद कई सरकारों ने तय कर लिया कि अब इस तरह की कोई एप्लीकेशन स्वीकार नहीं की जाएगी। यह बात हो नहीं सकती कि ईंधनरहित अग्नि खोजी जा सके।
लेकिन उपनिषद कहते हैं कि आदमी के भीतर वह शक्ति चल रही है, जो ईंधनरहित है। परमात्मा ईंधनरहित अग्नि है, इसलिए निर्धूम है। धुआं उसमें पैदा नहीं होता।
आप कहेंगे, जरा मुश्किल है यह बात समझना! और अगर मेडिकल साइंस से पूछें, तो वह भी राजी नहीं होगी। क्योंकि वह कहेगी, आप भोजन से ईंधन ले रहे हैं, इसलिए आप जीवित हैं। अगर भोजन बंद कर दें, तो जीवन बंद हो जाएगा। श्वास से ईंधन ले रहे हैं, आक्सीजन भीतर जा रही है। अगर आक्सीजन भीतर न जाए, आप मर जाएंगे। सब तरह से आप ईंधन भीतर ले रहे हैं। तो यह जो भीतर की आत्मा है, इसको आप ईंधनरहित ज्योति क्यों कहते हैं?
इस बात के लिए बड़ी खोज करनी जरूरी है। और कुछ ऐसे उदाहरण उपस्थित हुए
इस सदी में; पिछली सदियों में तो ऐसे बहुत उदाहरण थे ईंधनरहित लोगों के। लेकिन इस सदी में जरा मुश्किल हो गया, लेकिन फिर भी कुछ आदमी इस तरह के रहे।
यूरोप में एक महिला थी न्यूमन, जो तीस साल तक बिना भोजन के रही, और सारे चिकित्साशास्त्र को मुश्किल में डाल दिया। और उसका एक रत्तीभर वजन नहीं गिरा!
एक स्त्री बंगाल में थी, जो उन्नीस सौ पचास में मरी, जो चालीस साल तक बिना भोजन के रही। परिपूर्ण स्वस्थ। आम आदमी से ज्यादा स्वस्थ। कभी बीमार नहीं पड़ी। मरते दम तक युवकों जैसी शक्ति उसमें रही। और वजन उसका गिरा नहीं।
आकस्मिक घटना हुई, उसका पति मरा और वह इतना दुखी हुई पति के प्रेम में
कि उसने भोजन छोड़ दिया। लेकिन भोजन छोड़ने से वह मरी नहीं, बल्कि इसके पहले वह बीमार रहती थी, भोजन छोड़ने के बाद उसकी बीमारियां भी खो गयीं। और एक चमत्कार घटित हुआ कि वह चालीस साल तक बिना भोजन के रही।
अभी पश्चिम में एक नया शास्त्र विकसित हो रहा है, जो सोचता है कि भोजन आदमी की आदत है, आवश्यकता नहीं। और भोजन के द्वारा आदमी को ईंधन नहीं मिलता, सिर्फ एक आदत है, एक व्यसन। जैसा हम कहते हैं कि शराब पीना एक व्यसन है, सिगरेट पीना एक व्यसन है। ऐसा कुछ विचारक इस खोज में लगे हैं, वे कहते हैं, भोजन भी सिर्फ एक व्यसन है; जरूरत नहीं है उसकी। उसके बिना आदमी हो सकता है।
जैन-शास्त्रों में यह कहा गया है कि उनके पहले तीर्थंकर ऋषभदेव के पैदा होने के पहले लोग बिना भोजन के जीते थे। यह कथा सच हो सकती है। और ऋषभदेव ने पहली दफे अन्न की ईजाद की। तो हमारे भोजन की आदत के वे शुरुआत, पहले वैज्ञानिक हो सकते हैं। शायद लोग उस कला को भूलने लगे होंगे और भोजन

खोजना पड़ा होगा। श्वास की कला पर निर्भर करता है कि आप क्या बिना भोजन के रह सकते हैं!
लेकिन तब भी एक बात बच रहती है कि ये दोनों महिलाएं श्वास तो लेती ही थीं। तो श्वास से भोजन मिल सकता है। वृक्ष को श्वास से ही भोजन मिल रहा है। कोई वजह नहीं, आदमी को क्यों न मिले। आप चकित होंगे, आप सोचते होंगे कि वृक्ष में जो लकड़ी बन रही है, पत्ते बन रहे हैं, फल आ रहे हैं, ये जमीन से खींचे जा रहे हैं, तो आप बिल्कुल गलती में हैं। ये सब आकाश से खींचे जा रहे हैं।
तो वनस्पतिशास्त्रियों ने पिछली सदी में बहुत प्रयोग किए और बड़े चकित
हो गए, क्योंकि सदा से यही माना जाता था कि वृक्ष जमीन को खींच रहे हैं। लेकिन एक वैज्ञानिक ने एक पौधा लगाया गमले में। गमले की मिट्टी का पूरा माप रखा। फिर पौधा बड़ा होने लगा। और पौधा बहुत बड़ा वृक्ष हो गया, तब पौधे को बिल्कुल अलग कर लिया। पौधे को तौला। टनों उसका वजन था। लेकिन मिट्टी गमले में उतनी की उतनी थी, उसमें रत्तीभर कमी नहीं हुई थी। यह वजन कहां से आया? यह सब हवा से खींचा गया, मिट्टी से नहीं खींचा गया। नहीं तो जमीन पर इतने वृक्ष हैं, अभी तक जमीन खाली हो गई होती, गड्ढे ही गड्ढे हो गए होते! जमीन उतनी की उतनी है। वृक्ष आकाश से खींच रहे हैं। सूर्य की किरणों से और वायु से सारा तत्व खींचा जा रहा है। तो आदमी क्यों नहीं जी सकता?
और फिर आदमी वृक्षों के ही माध्यम से तो जीता है। उनके फल खाता है, अनाज खाता है। और वृक्ष आकाश से खींचकर फल बनाते हैं, तो आदमी सीधा बिना वृक्ष के माध्यम के जी सकता है।
महावीर को जरूर ऐसी कोई कला आती होगी। क्योंकि बारह वर्ष में उन्होंने केवल तीन सौ साठ दिन भोजन लिया। कभी तीन महीने, कभी चार महीने, कभी पांच महीने... । और उनके शरीर को, उनकी प्रतिमाओं को देखकर ऐसा नहीं लगता कि वे भूखे मर रहे होंगे। उनका शरीर बलिष्ठ है। बलिष्ठ से बलिष्ठ शरीर उनके पास है। जैन-मुनि चार महीने उपवास करते हैं, तो हड्डी-हड्डी हो जाते हैं, उन्हें महावीर की कला का कुछ पता नहीं है। महावीर जरूर कोई सूत्र जानते हैं, जिससे वे श्वास से सीधा ईंधन ले रहे हैं।
ये दोनों महिलाएं इतना तो सिद्ध करती हैं कि बिना भोजन के आदमी जी सकता। लेकिन बिना श्वास के? बिना श्वास के जीने के प्रमाण भी हैं। और अभी- अभी कुछ प्रमाण बहुत अदभुत हुए।
अठारह सौ अस्सी में एक सूफी फकीर इजिप्त में समाधिस्थ हुआ, और उसने कहा, चालीस साल बाद उन्नीस सौ बीस में मेरी समाधि को खोलना। जिन लोगों ने उसे समाधिस्थ किया था, वे सब मर गए। सच तो यह है कि लोग करीब-करीब भूल चुके थे। चालीस साल! उन्नीस सौ बीस में अचानक किसी आदमी के हाथ में चालीस साल पुराना अखबार लग गया। और उसमें उसने खबर देखी कि एक आदमी आज समाधिस्थ हो रहा है और चालीस साल बाद खोदा जाने वाला है। तो उस आदमी ने फिक्र की, सरकार को लिखा-पढ़ी की, उस आदमी की कब्र खोदी गई, जहां वह चालीस साल से गड़ा था। और उसे खोदा गया, वह आदमी जिंदा वापस निकला। चालीस साल बिना श्वास के जीया, और निकलने के बाद वह एक साल जिंदा रहा।
भारत के बहुत से योगी तीन महीने, तीन सप्ताह इत्यादि के प्रयोग करते हैं। लेकिन तीन सप्ताह का प्रयोग बहुत सिद्ध नहीं करता। क्योंकि जिस गड्ढे में उनको दबाया जाता है, उस गड्ढे में इतनी आक्सीजन रहती है, जो तीन सप्ताह तक चल सकती है। मगर चालीस साल तक चलने वाली आक्सीजन छोटे से गड्ढे में असंभव है।
बहुत से पशु हैं, साइबेरिया में रीछ होता है, भालू होता है, जब छह महीने साइबेरिया में रात होती है--क्योंकि छह महीने दिन, और छह महीने रात होती है--तो जब छह महीने रात होती है और सब बर्फ जम जाती है, तो भालू सो जाता है, श्वास बंद कर लेता है। छह महीने तक वह श्वास बंद किए पड़ा रहता है। छह महीने बाद जब सुबह का सूरज उगता है, फिर दिन होता है, गर्मी बढ़ती है, बर्फ पिघलती है, भालू फिर से श्वास लेता है। छह महीने तक अगर भालू बिना श्वास के रह सकता है जीवित, तो आदमी क्यों नहीं रह सकता?
हमारे मुल्क में भी मेंढक बिना श्वास के जमीन में दब जाता है। वर्षा बंद हो जाती है, मेंढक जमीन में सो जाता है, श्वास बंद हो जाती है, सब

प्रक्रियाएं बंद हो जाती हैं, लेकिन वह मरता नहीं। वर्षा आती है, फिर से मेंढक जाग उठता है। यह लंबी नींद है; यह बिना श्वास के हो सकती है।
आदमी के भीतर, वस्तुतः समस्त जीवन के भीतर एक तत्व है, जो बिना ईंधन के
चल रहा है। इस बिना ईंधन की ज्योति को उपनिषद कहते हैं--धूम्ररहित ज्योति। अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष परमात्मा धूम्ररहित ज्योति की भांति है। भूत, वर्तमान और भविष्य पर शासन करने वाला वह परमात्मा ही आज है, वही कल भी है। वह नित्य सनातन है।
उसके मिटने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि जिसके जीवन का कोई कारण नहीं, उसकी मृत्यु का कोई कारण नहीं होता। जिसके लिए ईंधन की, भोजन की कोई जरूरत नहीं, जो अपने में पर्याप्त है, उसके मिटने का कोई उपाय नहीं। अगर आप किसी चीज पर निर्भर हैं, तो मिटेंगे। क्योंकि जिस चीज पर निर्भर हैं, अगर वह मिट जाए, तो आपके बचने की संभावना नहीं।
परमात्मा स्वयंभू, स्वयं परिपूर्ण, स्वयं आप्तशक्ति है; किसी पर निर्भर नहीं है। इसलिए जगत चलता चला जाता है। अस्तित्व बहता चला जाता है। यह न कभी नष्ट होता है, न कभी पैदा होता है।
यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
जिस प्रकार ऊंचे शिखर पर बरसा हुआ जल पहाड़ के नाना स्थलों में चारों
ओर चला जाता है, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न धर्मों से युक्त देव, असुर, मनुष्य आदि को परमात्मा से पृथक देखकर उनका सेवन करने वाला मनुष्य उन्हीं के पीछे दौड़ता रहता है। अर्थात उन्हीं के शुभाशुभ लोकों में और नाना ऊंच-नीच योनियों में भटकता रहता है।
हे गौतमवंशी नचिकेता! जैसे वर्षा का शुद्ध जल अन्य जलों में मिलकर वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार परमेश्वर को जानने वाले संतजन की आत्मा परमेश्वरमय हो जाती है।
अनेक और एक, ये दो दृष्टियां हैं। जिसको अनेक दिखाई पड़ते हैं, वह अंधा है; उसके पास अंधे की दृष्टि है। जिसको एक दिखाई पड़ता है, वह आंख वाला है; उसकी आंख खुल गई। वह क्षुद्र दीवारों को नहीं देखता, वह सब के भीतर व्याप्त एक तत्व को देखने लगता है।
यम कहता है, नचिकेता! ऐसा एक को जानने वाला व्यक्ति, जैसे वर्षा का जल बह-बहकर सागर में एक हो जाता है, सागर जैसा ही हो जाता है। ऐसा एक को देखने वाला व्यक्ति बह-बहकर परमात्मा के सागर में एक हो जाता है।
हमारी पी.ड़ा यही है कि हमारा बहाव रुक गया है। हम जम गए हैं, फ्रोजन, अकड़ गए हैं। जैसे कोई झरना बर्फ हो गया हो, वह बह नहीं सकता, वह सागर तक जा नहीं सकता। गर्मी चाहिए कि वह पिघले। धूप चाहिए कि वह पिघले। एक मेल्टिंग, एक पिघलने की जरूरत है, ताकि वह बह सके, सागर की तरफ जा सके। हम सब अपने- अपने शरीरों में जम गए हैं, बर्फ की तरह हो गए हैं। तपश्चर्या, साधना पिघलाने के उपाय हैं।
यहां हम जो प्रयोग कर रहे हैं, उनकी सारी चेष्टा इतनी है कि आप थोड़े से पिघल जाएं, तरल हो जाएं, बहने लगें, फ्लो आ जाए, प्रवाह पैदा हो जाए। सागर बहुत दूर नहीं है। लेकिन आप जमे रहें, तो बिल्कुल सागर के किनारे पर भी पड़ी रहे बर्फ की चट्टान तो भी सागर से मिल नहीं सकती। पिघलें, थोड़ा बहें।
और यह अहंकार हमारा बहुत पथरीला है। यह पिघलने नहीं देता। यह रोकता है। यह कहता है, क्या कर रहे हो? मिटने जा रहे हो? सम्हालो अपने को। वह जो सम्हालेगा, वह जड़, जमा हुआ रह जाएगा।
ध्यान के प्रयोगों में अपने को पिघलाएं। इसलिए मेरा इतना जोर है-- नाचें, कूदें, छोटे बच्चे की तरह तरल हो जाएं। अहंकार को मार्ग से हटा दें और शरीर को तरल हो जाने दें। शरीर की ऊर्जा बहने लगे, जमी न रह जाए। उत्तप्त हो जाएं। गहरी श्वास लें, ताकि आक्सीजन जोर से चोट करे। जोर से हुंकार करें, ताकि कुंडलिनी पर आघात पड़े। और भीतर उत्तप्त हो जाएं। अग्नि जग जाए, अरणि टकरा जाए। और छिपी हुई अग्नि की लौ आपके भीतर जलने लगे।
इस लौ के जलते ही--जब तक आप रहेंगे, थोड़ा धुआं रहेगा, क्योंकि आप ईंधन हैं--जैसे ही आप खो जाएंगे, धूम खो जाएगा। निर्धूम-ज्योति... । और निर्धूम-ज्योति का जिसे अनुभव हो जाता है, उसके लिए फिर कुछ और अनुभव करने को शेष नहीं रहता है।

[illegible]

कठोपनिषद
ग्यारहवां प्रवचन

बोध ही ऊर्ध्वगमन

द्वितीय वल्ली

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते।। एतद्वै तत्।। 1।।

हन्सः शुचिषद वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद वरसदृतसद व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्।। 2।।

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते।। 3।।

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते।। एतद्वै तत्।। 4।।

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ।। 5।।

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम।। 6।।

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्ये नुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम्।। 7।।

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्।। 8।।

सरल, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप अजन्मा परमेश्वर का ग्यारह द्वारों वाला (मनुष्य शरीररूप) नगर है, (इसके रहते हुए ही परमेश्वर का ध्यान आदि) साधन करके (मनुष्य) कभी शोक नहीं करता, अपितु जीवन-मुक्त होकर (मरने के बाद) विदेह हो जाता है। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।।
1।।

जो विशुद्ध परमधाम में रहने वाला स्वयंप्रकाश (पुरुषोत्तम) है, (वही) अंतरिक्ष में निवास करने वाला वसु है, घरों में उपस्थित होने वाला अतिथि है, (और) यज्ञ की वेदी पर स्थापित अग्निस्वरूप तथा उसमें आहुति डालने वाला होता है (तथा) समस्त मनुष्यों में रहने वाला, मनुष्यों से श्रेष्ठ देवताओं में रहने वाला, सत्य में रहने वाला (और) आकाश में रहने वाला (है तथा) जलों में नाना रूपों से प्रगट, पृथ्वी में नाना रूपों से प्रगट, सत्कर्मों में प्रगट होने वाला (और) पर्वतों में प्रगट होने वाला, (वही) सबसे बड़ा परम सत्य है, वही सब जगह है।। 2।।

(जो) प्राण को ऊपर की ओर उठाता है (और) अपान को नीचे ढकेलता है, शरीर के मध्य (हृदय) में बैठे हुए (उस) सर्वश्रेष्ठ भजनेयोग्य परमात्मा की सभी देवता उपासना करते हैं।। 3।।

इस शरीर में स्थित, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाले जीवात्मा के शरीर से निकल जाने पर, यहां (इस शरीर में) शेष ही क्या रहता है? यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 4।।

कोई भी मरणधर्मा प्राणी न तो प्राण से (जीता है, और) न अपान से (ही) जीता है; किंतु जिसमें (प्राण और अपान) ये दोनों आश्रय पाए हुए हैं, (ऐसे किसी) दूसरे से ही (सब) जीते हैं। हे गौतमवंशीय नचिकेता! (वह) रहस्यमय सनातन ब्रह्म (जैसा है) और जीवात्मा मरकर जिस प्रकार से रहता है, यह बात मैं अब तुम्हें फिर से बताऊंगा।। 5-6।।

जिसका जैसा कर्म होता है और शास्त्रादि के श्रवण द्वारा जिसको जैसा भाव प्राप्त होता है (उन्हीं के अनुसार) शरीर धारण करने के लिए कितने ही जीवात्मा तो (नाना प्रकार की) योनियों को प्राप्त हो जाते हैं (और) दूसरे (कितने ही) जीवात्मा वृक्ष, लता, पर्वत आदि स्थावर-भाव का अनुसरण करते हैं।। 7।।

जो यह (जीवों के कर्मानुसार) नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करने वाला परमपुरुष परमेश्वर (प्रलयकाल में सबके) सो जाने पर भी जागता रहता है, वही परम विशुद्ध तत्व है, वही ब्रह्म है, वही अमृत कहलाता है, (तथा) उसी में संपूर्ण लोक आश्रय पाए हुए हैं। उसे कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 8।।

उपनिषद के ऋषियों के मन में मनुष्य के शरीर की कोई भी निंदा नहीं है। मनुष्य के शरीर के प्रति बहुत सदभाव है, बहुत श्रद्धा भाव है, क्योंकि मनुष्य का शरीर वस्तुतः मंदिर है। उस परमात्मा का निवास जिसके भीतर है, उसकी निंदा तो कैसे की जा सकती है! परमात्मा जिसके भीतर बसा है, उस परमात्मा के बसने के कारण ही शरीर पवित्र हो जाता है।
उपनिषद की दृष्टि में शरीर अपवित्र नहीं है। साधारणतः धार्मिक लोग-- तथाकथित धार्मिक लोग--शरीर के प्रति एक तरह की गहरी निंदा से भरे होते हैं, एक कंडेमनेशन, जैसे शरीर कुछ बुरा है, गर्हित, घृणित। जैसे शरीर के कारण ही जीवन में दुख, पीड़ा और बंधन है। जैसे शरीर ही नर्क का द्वार है।
लेकिन इस तथाकथित धार्मिक दृष्टि के लिए कोई भी आधार नहीं है। और अगर कोई आधार है तो केवल रुग्ण-चित्त मनुष्यों में है।
शरीर आपको बांधे हुए नहीं है। शरीर आपको पकड़े हुए भी नहीं है। शरीर तो आपको पकड़ भी कैसे सकता है! आपने ही शरीर को पकड़ा है। आपने ही शरीर को चुना है। यह आपकी ही वासनाओं और इच्छाओं का मूर्तरूप है।
तो पहले तो इस बात को समझ लें कि जो भी शरीर आपको उपलब्ध हुआ है-- मनुष्य का, कि पशु का, कि पक्षी का, कि वृक्ष का, कि पत्थर का; कि स्त्री का, कि पुरुष का; सुंदर या कुरूप; स्वस्थ या बीमार; जैसा भी, जो भी देह आपको उपलब्ध हुई है, यह आपकी ही कामनाओं, आपकी ही वासनाओं और इच्छाओं का मूर्तरूप है। जो आपने चाहा था, वह आपको मिल गया है। लेकिन यह हमें दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि चाह में और पूरे होने में बड़ा फासला है।
एक आदमी बीज बोता है। वर्षों बाद अंकुर निकलता है। वह भूल ही जाता है
कि बीज बोया था। आप जानकर चकित होंगे कि सैकड़ों ऐसी जातियां जमीन पर रही हैं, और आज भी अफ्रीका के कुछ कबीले हैं, जो यह नहीं मानते कि बच्चे का जन्म संभोग से होता है। क्योंकि संभोग किए हुए तो महीनों बीत जाते हैं, तब बच्चे का जन्म होता है। तो कई जातियां यह तर्क ही नहीं उठा पाईं कि बच्चे का जन्म संभोग से होता है।
फिर सभी संभोग से जन्म होता भी नहीं। सैकड़ों संभोग में एक संभोग जन्म बनता है। फिर जो संभोग जन्म बनता है वह भी तत्काल नहीं बन जाता, उसमें भी महीनों लग जाते हैं। तो उन जातियों को यह स्मरण ही नहीं आ पाया कि संभोग से जन्म का कोई संबंध है। वे सोचते हैं कि जन्म परमात्मा की कृपा है, या किसी देवता का वरदान है, या किसी गुरु का आशीष है। लेकिन संभोग से उसका कोई संबंध नहीं जोड़ पाते। फासला इतना है।
आदमी के कर्म और आदमी की वासनाओं और इच्छाओं और उनके पूरा होने में तो
कई बार बहुत लंबा फासला हो जाता है। आप खुद ही भूल जाते हैं कि यह आपने चाहा था।

मनसविद कहते हैं कि बहुत-सी बीमारियां आप ही बुला लेते हैं। आप उन्हें चाहे हैं कभी, और वह चाह अचेतन में दबी रह गई। फिर धीरे-धीरे शरीर उस बीमारी को पैदा कर लेता है। यह थोड़ी हमें सोचकर कठिनाई होगी, मानने में थोड़ी मुसीबत होगी, क्योंकि बीमारी तो कोई भी चाहता नहीं, इसलिए कौन बीमार होना चाहेगा? उसके बीज कोई क्यों बोएगा? लेकिन बड़े गहरे कारण मनुष्य के जीवन में हैं, बड़ा जटिल जाल है।
एक छोटा बच्चा है। जब भी वह बीमार पड़ता है, तो लोग उसकी चिंता करते हैं, फिक्र करते हैं। जब वह स्वस्थ रहता है, तब उसकी तरफ कोई भी ध्यान नहीं देता। बच्चे के अचेतन में एक बात निश्चित हो जाती है कि बीमार होना भी एक गुण है, तभी लोग उस पर ध्यान देते हैं। और सभी लोग चाहते हैं कि ध्यान दिया जाए। बड़ी गहरी आकांक्षा है कि लोग आप पर ध्यान दें, क्योंकि ध्यान भोजन है। जब कोई आपकी तरफ देखता है, आप प्रफुल्लित होते हैं। जब कोई भी नहीं देखता तो आप उदास हो जाते हैं।
एक छोटा बच्चा धीरे-धीरे अनुभव करता है कि वह जब बीमार होता है, तब जरूर कोई गरिमापूर्ण घटना घट जाती है। पिता ज्यादा प्यार करता है, मां पास बैठती है। बहुत चाहता है वह कि मां पास बैठे, पिता प्यार करे, सब उसकी फिक्र करें, लेकिन कोई उसकी फिक्र नहीं करता। लेकिन जब बीमार होता है, तब उसकी सब इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। बीमारी के साथ एक आकांक्षा जुड़ जाती है।
यह बच्चा जिंदगी में बहुत वर्षों बाद जब भी अनुभव करेगा कि कोई ध्यान नहीं दे रहा, तभी इसकी भीतरी इच्छा प्रबल हो जाएगी कि मैं बीमार पड़ जाऊं। यह चेतन में नहीं होगी, यह गहरे अचेतन, अनकांशस में होगी।
स्त्रियों की तो अधिकतम बीमारियां ध्यान न मिलने की बीमारियां हैं।
जब एक स्त्री को कोई प्रेम करता है, तो वह स्वस्थ होती है। और जैसे ही प्रेम विदा होने लगता है, या समाप्त हो जाता है, या क्षीण हो जाता है, वह रुग्ण होने लगती है। उसका रोग यह कह रहा है कि अब उस पर कोई ध्यान नहीं दे रहा।
स्त्रियों की पचास प्रतिशत बीमारियां कामना से, कोई ध्यान दे, उस आकांक्षा से पैदा होती हैं। पति के घर आते ही स्त्री बीमार हो जाती है। जब तक वे घर नहीं, तब तक वह ठीक है। और ऐसा नहीं कि वह कोई झूठा आडंबर रचती है। नहीं, पति को देखते ही बीमार हो जाती है। पति को देखते ही--पति उस पर ध्यान दे, उसके सिर पर हाथ रखे, उसकी फिक्र करे, चिंता करे--यह वासना जगती है। यह वासना भीतर बहुत-सी चीजों को छोड़ देती है अचेतन में। और वह उन स्थितियों में अपने को रख लेती है, जहां पति ध्यान करेगा, उसका विचार करेगा, उसकी सेवा करेगा।
आदमी का मन बहुत गहरे जाल से भरा हुआ है। मनसविद यह आज कहते हैं। लेकिन पूरब के मनोशास्त्री निरंतर यह कहते रहे हैं कि यह बात--हम जो कुछ भी हो जाते हैं, हम जो भी हैं, हमारी ही इच्छाओं का सघन रूप है। इस जन्म में, पिछले जन्म में, और पिछले जन्मों में हमने जो चाहा है, जो इकट्ठा किया है, वह आज पूरा हो गया है।
तो शरीर को घृणा करने का कोई भी कारण नहीं है। यही शरीर आपने मांगा था, यही शरीर आपको उपलब्ध हो गया है।
दूसरी बात ध्यान रखनी जरूरी है कि यह शरीर आपको नहीं पकड़े हुए है।
शरीर कैसे आपको पकड़ेगा! आप शरीर को पकड़े हुए हैं। और जिस दिन भी आप शरीर को छोड़ने में समर्थ हो जाएंगे, शरीर विदा हो जाएगा। एक क्षण भी रुकेगा नहीं। एक क्षण को भी भीतर आप शरीर से अपने को पूरा अलग कर लें, शरीर विदा होने लगेगा।
इसलिए संत स्वेच्छा से मर सकते हैं। स्वेच्छा से मरने की कला यही है
कि वे उस राज को जानते हैं कि शरीर से कैसे अलग हो जाएं। शायद एक-आध खूंटी शरीर में गड़ाए रखते हैं, ताकि शरीर का कोई उपयोग है, वह पूरा हो ले। जिस दिन भी उन्हें लगता है कि विदा हो जाना है, आखिरी खूंटी भी उखाड़ लेते हैं, नाव छूट जाती है।
इसलिए संत अक्सर अपनी मृत्यु की खबर दे देते हैं कि फलां दिन मैं मर जाऊंगा। यह कोई भविष्य-दर्शन के कारण नहीं, जैसा कि लोग समझते हैं कि संत

को भविष्य का पता है। नहीं, संत शरीर से अपने को किसी भी क्षण मुक्त कर सकता है। यह उसकी स्वतंत्रता है। वह जिस दिन चाहे, उस दिन विदा हो सकता है।
उसने इस रहस्य को समझ लिया है कि शरीर उसे नहीं पकड़े हुए है, उसने ही शरीर को पकड़ा है। तो जब तक पकड़ना हो, ठीक है। जब छोड़ना हो, तब छोड़ा जा सकता है। आप यह बात बिल्कुल भूल ही गए हैं। आप ऐसा समझते हैं कि जैसे शरीर ने आपको पकड़ा हुआ है। और तब इससे बहुत नासमझियां पैदा होती हैं।
ईसाइयों का एक संप्रदाय था, जिसके फकीर अपने को दिन-रात कोड़े मारते थे, शरीर को कष्ट देने के लिए। क्योंकि शरीर दुश्मन है। और जो जितने ज्यादा कोड़े मारता, उतना बड़ा संत समझा जाता। अगर आज वैसे संत हों, तो हम उनको कहेंगे कि वे मैसोचिस्ट हैं, वे अपने को सताने में रस लेने वाले बीमार लोग हैं। उनको हम पागलखाने में रखेंगे। लेकिन मध्य-सदी में पूरा यूरोप ऐसे संतों से भरा था। वे संत नहीं थे, सिर्फ रुग्ण, बीमार लोग थे। ऐसे ईसाई फकीर हुए हैं, जो जूते पहनेंगे जिनमें अंदर कीले लगे होंगे; कमर में पट्टे बांधेंगे जिनमें अंदर कीले चुभे होंगे, ताकि शरीर में कीले चुभे रहें और शरीर को पीड़ा दिन-रात, सोते-जागते मिलती रहे। उन्हें लोग बड़ा आदर देते थे।
हम भी उसी तरह के लोगों को आदर देते हैं जो शरीर को सता रहे हैं। कोई भूखा मरकर सता रहा है। कोई धूप में खड़ा होकर सता रहा है। कोई पैर के बल खड़ा है तो बैठता ही नहीं, खड़े होकर सता रहा है। कोई कांटों पर लेटकर सता रहा है। काशी में जाकर देखें, ऐसी बहुत सी प्रदर्शनियां लगी हुई हैं। कुंभ के मेले में चले जाएं, वहां पूरा प्रदर्शन इस सब पागलपन का है।
लेकिन यह शरीर को सताने वाले आदमी के लिए हमारे मन में भी आदर उठता है
कि क्या गजब की बात है! कुछ भी नहीं हो रहा है। शरीर को सताने का मतलब केवल इतना ही है कि तुम्हें अभी यह भी पता नहीं चल सका कि शरीर तुम्हें नहीं पकड़े हुए है, तुमने शरीर को पकड़ा है।
यह तो वैसे ही है जैसे कोई उठकर अपनी कार की पिटाई करने लगे, क्योंकि
यह कार मुझे कहीं भी ले जाए जा रही है। कार तुम्हें कैसे कहीं ले जाएगी? तुम उसमें पेट्रोल डालते हो, तुम उसकी साज-संवार करते हो, तुम उसका स्टिअरिंग सम्हालते हो। तुम्हीं कहीं जाना चाहते हो, इसलिए कार जाती है। हालांकि तुम उसके भीतर बैठे हो, लेकिन कार तुम्हारे पीछे जा रही है। तुम कार के पीछे नहीं जा रहे।
शरीर रथ है, जैसा कि इस उपनिषद में कहा है। एक कार है, उसमें भीतर बैठकर तुम्हीं चला रहे हो। तो अगर तुम पाप की तरफ जाते हो, तो यह मत सोचना कि शरीर ले जा रहा है। यह बहुत नासमझी की बात है। तुम पाप की तरफ जाना चाहते हो, शरीर तुम्हारे साथ चला जाता है। तुम कार को वेश्यालय की तरफ ले जाते हो, कार वेश्यालय चली जाती है। कार को कोई प्रयोजन नहीं कि तुम कहां जा रहे हो। कार का काम चलना है। तुम मंदिर ले जाना चाहते हो, कार मंदिर के द्वार पर रुक जाती है। लेकिन जब वेश्यालय के द्वार पर रुकती है, तो तुम उतरकर कार की पिटाई शुरू कर देते हो। तुम नासमझ हो।
और ऐसा नहीं कि तुम, जिनको बहुत लोगों ने आदर दिया है, ऐसे अनेक लोग इस तरह का काम करते रहे हैं। हाथ काट दिए हैं फकीरों ने, क्योंकि हाथ ने कोई बुराई की। हाथ कैसे बुराई कर सकता है? आंखें फोड़ दी हैं फकीरों ने, क्योंकि आंख ने वासना जगाई। आंख क्या वासना जगाएगी? आंख के भीतर तुम छिपे हो। तुम जहां आंख को ले जाते हो, आंख वहां जाती है। आंख अपने आप चलती नहीं, तुमसे चलती है। दोष तुम करते हो, आंख फोड़कर सजा तुम किसको दे रहे हो? फकीरों ने जबान काट दी है, जननेंद्रियां काट दी हैं। विक्षिप्तताएं हैं ये। यह तुम समझ ही नहीं पा रहे हो कि शरीर तो सिर्फ यंत्र है। शरीर के पास कोई चेतना नहीं है, चेतना तो तुम हो। इसलिए अगर दोष है तो तुम्हारा, अगर गुण है तो तुम्हारा। अगर नर्क जाओगे तो तुम, अगर स्वर्ग जाओगे तो तुम। शरीर को दोष देने वाला बिल्कुल निर्बुद्धि है। उपनिषद की इस धारणा को समझकर, आप इस सूत्र में प्रवेश करें।
सरल, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप अजन्मा परमेश्वर का ग्यारह द्वारों वाला मनुष्य शरीर नगर है, पुर है।

इसलिए हमने मनुष्य को पुरुष कहा है। पुरुष का अर्थ है जिसके भीतर, जिस पुर में परमात्मा बसा है, जिस नगर में छिपा है। पुरुष बड़ा बहुमूल्य शब्द है, पुर से बना है--नगर। और नगर ही कहना चाहिए, घर कहना ठीक नहीं है, क्योंकि घर बड़ी छोटी चीज है। आपका शरीर सच में ही नगर है। और छोटी-मोटी आबादी नहीं है उस नगर की। सात करोड़ जीवकोष्ठ हैं। सात करोड़ जीवित कोष्ठ आपके शरीर को बना रहे हैं। एक विशाल नगर है।
उन कोष्ठों की दृष्टि से अगर हम सोचें, अगर आपके शरीर के एक कोष्ठ को,
एक सेल को आपकी ऊंचाई के बराबर बड़ा कर दिया जाए, तो आपका शरीर लंदन के बराबर बड़ा नगर हो जाएगा, उसी अनुपात में। और लंदन में जैसी सड़कें हैं, और लंदन में जैसी नदी बहती है, और लंदन में जैसे तारों का जाल है, टेलीफोन का, टेलीग्राफ का; पुलिस के सिपाही हैं, मिलिटरी है, नगर-निवासी हैं; मालिक हैं, गुलाम हैं; गरीब हैं, अमीर हैं--इन सात सौ करोड़ निवासियों में सारी की सारी ऐसी अवस्था है। इसमें पुलिस के सिपाही हैं। अगर आप चिकित्साशास्त्र से पूछें, तो आप बड़े चकित हो जाएंगे।
शरीर बड़ी अनूठी घटना है। जरा सी चोट लगती है आपको और आप पाते हैं कि थोड़ी ही देर में वहां मवाद इकट्ठी हो गई। आपने कभी सोचा नहीं होगा कि मवाद चोट लगते ही क्यों इकट्ठी होती है? यह मवाद नहीं है, ये आपके खून के सफेद सेल हैं, जो कि शरीर में पुलिस का काम कर रहे हैं, पूरे समय। जहां भी खतरा होता है, उपद्रव होता है, दुर्घटना होती है, भागकर वहां पहुंच जाते हैं। और उस जगह को घेर लेते हैं। क्योंकि उस जगह को घेर लेने के बाद फिर कोई इन्फेक्शन भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। और अगर वह जगह खुली रह जाए, तो कोई भी कीटाणु, बैक्टीरिया, कोई भी बीमारियों के वाहक तत्काल भीतर प्रवेश कर सकते हैं। तो आपके खून के सफेद सेल हैं, वे तत्काल भागकर पहुंच जाते हैं और जहां भी घाव लगता है उसको चारों तरफ से घेरकर ढांक देते हैं। उसको आप मवाद कहते हैं। वह मवाद नहीं है, वह आपके शरीर की सुरक्षा का उपाय है।
अब यह बड़ी हैरानी की बात है। चिकित्साशास्त्र समझाने में असमर्थ है
कि इन सफेद सेलों को कैसे पता चलता है कि चोट पैर में लगी, कि सिर में लगी, कि हाथ में लगी! और वे पूरे शरीर से भागकर, खून में यात्रा करके वहां पहुंच जाते हैं, तत्काल उस जगह को घेर लेते हैं। अगर आपके शरीर के सफेद सेल कम हो जाएं, तो आप बहुत ज्यादा बीमार पड़ने लगेंगे, क्योंकि आपके सुरक्षा-दल की कमी हो गई। इसलिए सफेद सेल की एक मात्रा आपके शरीर में होनी ही चाहिए। अगर वह न हो तो आपका रेसिस्टेन्स, आपकी बीमारी से लड़ने की ताकत कम हो जाएगी। क्योंकि वे लड़ रहे हैं। उनको आपका कोई भी पता नहीं है।
बड़ा मजा यह है कि इन सात सौ करोड़ सेलों का जो बसा हुआ नगर है, आपका इसको कोई अनुभव ही नहीं है, कि आप भी इसमें हैं। हो भी नहीं सकता। आपसे इनकी कोई मुलाकात भी नहीं होती। वे अपने काम में लगे रहते हैं। कुछ खून बनाने का काम कर रहे हैं, कुछ भोजन को पचाने का काम कर रहे हैं। भोजन आप कर लेते हैं, उसको जीवाणु तोड़ रहे हैं, पचा रहे हैं, रासायनिक द्रव्यों में बदल रहे हैं। खून, मांस बन रहा है। पूरा काम चल रहा है। और सब काम ठीक से विभाजित है।
हिंदुओं ने बहुत पुराने समय में चार वर्णों की कल्पना की थी, करीब-करीब चार वर्णों के सेल शरीर में हैं। उसमें शूद्र सेल हैं, जो सेवा में लगे हैं। उसमें वैश्य सेल हैं, जो चीजों को रूपांतरित करने का व्यवसाय कर रहे हैं। एक चीज को दूसरे में बदलते हैं। एक रासायनिक को हारमोन बनाते हैं, एक हारमोन को कुछ और बनाते हैं। पूरे वक्त व्यवसाय में लगे हैं। उसमें क्षत्रिय हैं, जो पूरे समय रक्षा में लगे हैं। उसमें ब्राह्मण हैं, जो पूरे समय विचार में संलग्न हैं। आपके मस्तिष्क के सब सेल ब्राह्मण सेल हैं।
हिंदुओं ने जो कल्पना की थी कि शूद्र पैर से, और ब्राह्मण सिर से, वह प्रतीक कीमती है। पूरा शरीर विभाजित है। इस बात की बहुत संभावना है कि योगियों के अंतर्दर्शन से भीतर की जो व्यवस्था ख्याल में आई हो, उसी व्यवस्था को उन्होंने समाज में लागू किया हो और वर्ण की व्यवस्था प्रचलित हुई हो। इसकी बहुत संभावना है। क्योंकि ये चार वर्णों का ख्याल कैसे पैदा हुआ? और यह सिर्फ भारत में पैदा हुआ। भारत के बाहर कहीं भी चार वर्णों का,

वर्णों का कोई ख्याल पैदा नहीं हुआ। असल में भारत के बाहर शरीर के नगर में प्रवेश की कोई चेष्टा ही नहीं हुई। तो भीतर के गहरे दर्शन से यह समझ में आया होगा। इस दर्शन को ही फैलाकर समाज पर... ।
चाहे दुनिया में चार वर्ण माने जाते हों या न माने जाते हों, चार वर्ण होते तो हैं ही। चाहे रूस हो और चाहे अमरीका हो, शूद्र तो होता ही है। शूद्र को रूस में वे प्रोलोतेरियेत कहते हैं, सर्वहारा। नाम बदलने से कुछ फर्क नहीं पड़ता। कोई है, जो मजदूर का काम करता ही रहता है। चाहे समाज बदले, राज्य की व्यवस्था बदले, अर्थशास्त्र बदले, लेकिन कोई तो वहां शूद्र का काम करता ही रहेगा। लोकतंत्र हो, कि तानाशाही हो, कि किसी तरह का तंत्र हो, कोई तो वहां होगा कि जो क्षत्रिय की तरह छाती पर बैठा ही रहेगा।
और कैसा ही तंत्र हो, ब्राह्मण को सिर से नीचे उतारना असंभव है। उसका कोई उपाय नहीं है। क्योंकि ब्राह्मण सिर है, उसको उतारने का कोई उपाय नहीं। कितनी ही चेष्टा की जाए, ब्राह्मण सदा सिर पर पहुंच जाएगा।
आज रूस में प्रोफेसर की, डाक्टर की, इंजीनियर की, वैज्ञानिक की जो प्रतिष्ठा है, वह किसी और की नहीं है। वे ब्राह्मण हैं। उनका सबका धंधा विद्या है। अमरीका में तो यह डर पैदा होता जा रहा है कि आने वाले सौ वर्षों में वैज्ञानिक इतने ज्यादा शक्तिशाली होते जा रहे हैं कि कहीं वे पूरे राज्यतंत्र पर कब्जा न कर लें, क्योंकि सारी कुंजी उनके हाथ में है।
आज राजनीतिज्ञ बाहर दिखता है ताकत में, लेकिन पीछे वैज्ञानिक ताकत में है। क्योंकि एटम की कुंजी उसके हाथ में है। वह आज नहीं कल, कभी भी छाती पर सवार हो सकता है। और राजनीतिज्ञ भी उसके पास पहुंचता है सलाह-मशविरा लेने। केनेडी जैसे ही अमरीका के राष्ट्रपति हुए, उन्होंने अमरीका में जितने बुद्धिमान लोग थे, उनमें से चुने हुए लोगों को तत्काल बुला लिया-- अपने सलाहकार के लिए। बड़े प्रोफेसर, बड़े वैज्ञानिक, बड़े लेखक, बड़े कवि केनेडी ने अपने चारों तरफ इकट्ठे कर लिए। क्योंकि क्षत्रिय की खुद की बुद्धि तो ज्यादा चल नहीं सकती। वह क्षत्रिय सदा ब्राह्मण से सलाह लेता रहा है। ब्राह्मण सामने नहीं होता; वह पीछे होता है। क्षत्रिय सामने होता है, लेकिन ब्राह्मण गहरे में चलाता रहता है।
शरीर के भीतर एक बड़ा नगर है। और यह बड़े नगर का इतना व्यवस्थित काम है, जितना अभी तक किसी नगर का भी नहीं है। इतना व्यवस्थित काम है और सब चुपचाप चलता जाता है, बिल्कुल आटोमैटिक है, स्वचालित है। आप सो रहे हैं, तो चल रहा है; आप जग रहे हैं, तो चल रहा है। आप काम कर रहे हैं, तो चल रहा है; आप विश्राम कर रहे हैं, तो चल रहा है। और आपको कोई बाधा भी नहीं है इससे। अपने आप चलता रहता है। कब भोजन पच जाता है, कब खून बन जाता है, कब हड्डी निर्मित होती है, कब मुर्दा सेल बाहर फेंक दिए जाते हैं--आपको कुछ प्रयोजन नहीं। पूरा नगर स्वचालित है।
इस नगर के बीच में आप हैं। यह नगर सम्मानयोग्य है। और इस नगर ने आपको मौका दिया है कि आप चाहें तो नरक की यात्रा कर लें इसके सहारे, और आप चाहें तो स्वर्ग पहुंच जाएं। और आप चाहें तो स्वर्ग और नर्क दोनों से मुक्त होकर मोक्ष की उपलब्धि कर लें। शरीर साधन है।
यह सूत्र कहता है--सरल, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप अजन्मा परमेश्वर का ग्यारह द्वारों वाला मनुष्य शरीररूप नगर है।
पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां और एक मन, ऐसे ग्यारह इसके द्वार हैं।
इसके रहते हुए ही परमेश्वर का ध्यान आदि साधन करके मनुष्य कभी शोक नहीं करता, अपितु जीवन-मुक्त होकर मरने के बाद विदेह हो जाता है। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
इसके रहते हुए ही परमेश्वर का ध्यान करके, साधन करके, मनुष्य कभी शोक नहीं करता, अपितु जीवन-मुक्त हो जाता है। और जीवन-मुक्त होकर विदेह हो जाता है। फिर इस नगर की कोई जरूरत नहीं रह जाती, फिर इस यंत्र से मुक्ति हो जाती है।
इस शरीर के यंत्र के दो उपयोग हो सकते हैं। एक है अपने को विस्मरण करने में, वासना उसी का नाम है। एक है अपने को स्मरण करने में, ध्यान उसी का नाम है। या तो आप इस शरीर का उपयोग कर लें इस भांति कि जीवन में क्षुद्र

सुखों की खोज में लग जाएं। और सुख है क्या? जहां भी आप थोड़ी देर को अपने को भूल पाते हैं, वहीं आप समझते हैं सुख है।
सुख खुद को भूलने से ज्यादा कुछ भी नहीं है। एक आदमी शराब पीकर भूल पाता है, तो वह कहता है, बड़ा सुख मिलता है। एक आदमी संगीत सुनकर भूल पाता है, तो कहता है, बड़ा सुख मिलता है। एक आदमी संभोग में भूल पाता है, तो कहता है, बड़ा सुख मिलता है। एक आदमी भोजन में भूल पाता है, तो कहता है, बड़ा सुख मिलता है। एक आदमी सिंहासन पर बैठकर भूल पाता है, तो कहता है, बड़ा सुख मिलता है। हमारी सुख की परिभाषा क्या है? जहां भी हमें अपनी याद नहीं रहती, वहीं हम कहते हैं, सुख मिलता है। और जहां भी हमें अपनी याद आती है, वहीं हम कहते हैं, दुख मिलता है!
असल में जहां भी आपको स्मरण आना शुरू होता है अपना, वहीं पीड़ा सघन होने लगती है। क्योंकि आपको लगता है--क्या कर रहे हैं? कहां हैं? क्यों हैं? यह सब क्या हो रहा है? चिंता पकड़ लेती है। फिर अपने को भुला लेते हैं। कोई अखबार पढ़ने में भुला रहा है। कोई गीता पढ़ने में भुला रहा है। भुलाने के रास्ते अनेक हैं, लेकिन भुलाने की कोशिश चल रही है।
वासना है आत्म-विस्मरण, अपने को भुलाना। और जो अपने को भुला रहा है, वह कैसे आत्मवान हो सकेगा? और जो अपने को भुला रहा है, वह चैतन्य को कैसे उपलब्ध होगा? परमेश्वर बहुत दूर हो जाएगा। जितना ही आप अपने को भूल जाते हैं, उतना ही परमेश्वर दूर है।
इसलिए सभी धर्मों ने शराब का विरोध किया है। विरोध शराब का नहीं है।
शराब निर्दोष चीज है, उसका क्या विरोध करना! विरोध है खुद को भूल जाने का।
सिर्फ तांत्रिकों ने शराब का विरोध नहीं किया है, पर बात उनकी भी वही है।
तांत्रिक कहते हैं, शराब का क्या विरोध करना! शराब पीकर भी होश बनाए रखें, तो कोई हर्ज नहीं है।
तो तांत्रिकों ने उपाय किया है कि शराब पीयो और होश को सम्हालो। धीरे- धीरे शराब की मात्रा बढ़ाते जाओ और होश को भी सम्हालते जाओ। उतनी ही मात्रा बढ़ाओ, जितना होश रहे। फिर बढ़ाते जाओ, बढ़ाते जाओ; फिर जहर भी तांत्रिक पी जाता है, तो भी होश नहीं खोता। फिर तांत्रिक शराब, जहर इनसे कुछ भी असर नहीं होता, तो सांप पाल लेता है। सांप को जीभ पर कटा देता है। उसका भी कोई परिणाम नहीं होता, तब तांत्रिक कहता है कि अब मैं सच में जागा। अब कोई चीज मुझे सुला नहीं सकती।
तो तांत्रिक का भी विरोध शराब से तो है ही। सारी दुनिया का विरोध बेहोशी से है। धार्मिक खोज होश की खोज है; प्रक्रिया अलग है। जैन-साधु है, बौद्ध-साधु है, वह सोच भी नहीं सकता--शराब, जहर। तांत्रिक कहता है, पीयो, लेकिन होश मत खोओ। दोनों एक ही बात कह रहे हैं। वह इसलिए कह रहा है मत पीयो कि कहीं होश न खो जाए। और तांत्रिक कह रहा है, पीकर जांच करते रहो कि पीने से कहीं होश तो नहीं खोता। होश बढ़ता जाए।
और मैं मानता हूं कि अगर तांत्रिक और दूसरे साधुओं को साथ खड़ा कर दिया जाए, तो तांत्रिक का जो होश है, वह किसी दूसरे साधु का नहीं हो सकता। क्योंकि तांत्रिक होश को सम्हाल रहा है विपरीत परिस्थिति में, इसलिए उसके होश की कीमत और ऊंचाई बड़ी गहन है। अगर दुनिया के सब साधु इकट्ठे कर लिए जाएं और उनको शराब पिला दी जाए, तो सिर्फ तांत्रिक भर होश में रहेंगे। बाकी तो सब उपद्रव में पड़ जाएंगे। अगर जहर की वर्षा भी हो जाए, तो तांत्रिक बेहोश होने वाला नहीं है। उसने तो उसके साथ ही होश को साधा है।
इसलिए तंत्र की प्रक्रिया बड़ी दुरूह है। और साधारण आदमी अपने को धोखा
दे सकता है, वह सोच सकता है कि हम शराब इसलिए पी रहे हैं कि हम तांत्रिक हैं।
तंत्र ने किसी भी बुराई का विरोध नहीं किया है, कहा है कि हर बुराई में होश को साधा जा सकता है। इसलिए संभोग का कोई विरोध नहीं किया है। संभोग में भी होश सधा रहे, तो संभोग भी ध्यान हो गया। एक बात साफ है कि चाहे विरोध हो धर्मों का और चाहे विरोध न हो, बेहोशी से सबका विरोध है, होश से सबकी सहमति है।
इस शरीर का उपयोग जो होश को साधने के लिए कर लेता है, वह इस शरीर से, इसमें रहते ही मुक्त हो जाता है। जैसे-जैसे होश बढ़ता है, वैसे-वैसे पता

चलता है कि मैं अलग हूं, शरीर अलग है। बीच का फासला बड़ा होता जाता है। फिर शरीर को कुछ होता है, तो ऐसा नहीं लगता कि मुझे होता है। ऐसा लगता है कि शरीर को होता है।
आप चले जा रहे हैं और कार खड़खड़ की आवाज करने लगी, तो आप सोचते हैं, इंजन में कुछ खराबी है। आप ऐसा नहीं सोचते कि मुझमें कुछ खराबी है! आप रोकते हैं, गाड़ी की जांच-पड़ताल करते हैं।
आपके शरीर में कुछ गड़बड़ होगी, जब होश सधा होगा तो आपको लगेगाः शरीर में कुछ गड़बड़ है; ऐसा नहीं लगेगाः मुझे, मुझमें कुछ गड़बड़ है। शरीर की चिकित्सा करवा लेंगे, व्यवस्था कर देंगे। लेकिन इससे कुछ पीड़ित और परेशान होने का कहीं भी कोई कारण नहीं है। भूख लगेगी तो लगेगा, शरीर को भूख लगी है, ठीक वैसे ही जैसे पेट्रोल खत्म हो जाएगा कार का तो आप कहेंगे, टंकी खाली है, इसमें पेट्रोल डालना है; लेकिन अपने में पेट्रोल नहीं डालना है। जैसे-जैसे होश जगता है, वैसे-वैसे सारी क्रियाएं शरीर की हो जाती हैं। सिर्फ एक ही क्रिया आपकी रह जाती है, वह है जागरूकता की क्रिया, ध्यान की क्रिया। इसलिए ध्यान आत्मिक है, शेष सब शारीरिक है। इसलिए जो ध्यान को नहीं साध रहा है, वह सिर्फ शरीर में ही जी रहा है, वह आत्मा में कोई प्रवेश नहीं कर सकता। सिर्फ एक सूत्र है जो आत्मा का है, वह है ध्यान।
यह सूत्र कह रहा है--इसके रहते हुए ही परमेश्वर का ध्यान आदि साधन करके मनुष्य कभी शोक नहीं करता। क्योंकि शोक का कोई कारण नहीं है। दुख का कोई कारण नहीं है। दुख तो होता इसलिए है कि मैं शरीर हूं, ऐसी प्रतीति गहरी हो गई है। दुख मिट जाता है, जैसे ही यह साफ हो जाता है कि मैं शरीर नहीं हूं। और इसी शरीर में व्यक्ति जीवन-मुक्त हो जाता है।
जीवन-मुक्त का अर्थ है, ऐसा व्यक्ति जिसे ठीक-ठीक प्रतीति हो गई है कि मैं शरीर नहीं हूं। जीवन-मुक्त कुछ देर तक शरीर में रुक सकता है। आप भी शरीर में रुके हैं, जीवन-मुक्त भी कुछ देर शरीर में रुकता है। महावीर को ज्ञान हुआ, फिर वे चालीस वर्ष तक और शरीर में थे। बुद्ध को ज्ञान हुआ, वे भी चालीस वर्ष तक और शरीर में थे। क्यों रुके? आप भी शरीर में रुकते हैं, बुद्ध और महावीर भी शरीर में रुकते हैं। आप रुकते हैं, कुछ वासना पूरी करनी है इसलिए। और बुद्ध और महावीर रुकते हैं कि जो उन्हें मिला है, वह बांट दें। कुछ करुणा पूरी करनी है इसलिए।
जन्मों-जन्मों के बाद एक संपदा उपलब्ध होती है बुद्ध को। अगर उसी वक्त वे शरीर से हट जाएं--चाहें तो हट सकते हैं। बुद्ध ने चाहा भी था। बुद्ध सात दिन तक चुप बैठे रह गए थे ज्ञान के बाद। बड़ी मीठी कथा है कि देवता उनके चरणों में आए और उन्होंने कहा, आप बोलें। आप लोगों को समझाएं। क्योंकि सदियों के बाद कोई इस अवस्था को उपलब्ध होता है, बुद्ध होता है कोई। आप चुप न रहें। आप लीन न हो जाएं। आप खो न जाएं। आप थोड़ी देर ठहरें। इस किनारे पर थोड़ी देर रुकें।
बुद्ध चालीस वर्ष रुकते हैं इस किनारे पर। यह रुकना कुछ पाने के लिए नहीं है, यह रुकना कुछ देने के लिए है। हम कुछ पाने के लिए शरीर को पकड़े हुए हैं, बुद्ध कुछ देने के लिए शरीर को पकड़ रखते हैं।
जीवन-मुक्त भी शरीर में रह सकता है। लेकिन जीवन-मुक्त होते ही एक बात
तय हो गई कि एक बार शरीर छोड़ा गया अब, फिर कोई शरीर नहीं है, फिर शरीर में प्रवेश संभव नहीं है। इस घर को खाली किया कि फिर कोई दूसरा घर होने को नहीं है।
बुद्ध को ज्ञान हुआ तो बुद्ध ने जो पहले वचन कहे, वह यह कहे कि हे वासना के देव! अब तुझे मेरे लिए और घर बनाने की जरूरत न पड़ेगी। मेरा आखिरी घर बन चुका और मिट चुका, अब तुझे मेरे लिए शरीर न गढ़ने होंगे। कितने तूने शरीर मेरे लिए गढ़े! हे वासना के देव! कितने जन्मों-जन्मों तक कितने-कितने प्रकार के शरीर तूने मेरे लिए गढ़े! अब तू मुक्त हुआ। अब तेरी सेवा की कोई जरूरत न होगी।
जो व्यक्ति देह के रहते जान लेता है कि मैं देह नहीं हूं, इस देह के गिरते ही उसकी अवस्था विदेह हो जाती है। उसका अस्तित्व होता है, लेकिन फिर कोई रूप नहीं होता। फिर होना तो होता है, लेकिन इस होने के लिए कोई घर नहीं होता। फिर इस विराट के साथ तादात्म्य सध जाता है। जैसे बूंद सागर में होती

है, लेकिन बूंद की तरह नहीं होती, सागर हो जाती है। जैसे एक दीए की लौ आकाश में खो जाती है, खोती नहीं है, क्योंकि कोई भी ऊर्जा खो नहीं सकती, लेकिन महासूर्य का हिस्सा हो जाती है, महाप्रकाश का हिस्सा हो जाती है। लेकिन देह में रहते हुए जो साध लेगा, वही।
कुछ लोग क्या करते हैं--सोचते हैं कि साध लेंगे अंत में। कुछ तो यहां
तक खींच देते हैं इस तर्क को कि वे मरे हुए पड़े हैं, और लोग उनके कान में मंत्र पढ़ रहे हैं, गीता सुना रहे हैं, नमोकार सुना रहे हैं--वे मरे पड़े हैं, या करीब-करीब मर रहे हैं, जब कि वे कुछ नहीं सुन सकते हैं। जीते-जी जिनको सुनने की बुद्धि नहीं आ सकी, मरते वक्त लोग उनको गंगाजल पिला रहे हैं, इस आशा में कि शायद मुक्ति हो जाए!
जब जीते थे, तब वे गंगा न जा सके। बोतलों में बंद गंगा उनको अब पिलाई
जा रही है! जीते-जी ज्ञान की यात्रा न कर सके, अब मुर्दा शास्त्रों के शब्द उनके कानों में दोहराए जा रहे हैं। और जो दोहरा रहे हैं, वे किराए के लोग हैं। वे अपने लिए नहीं दोहरा रहे हैं। वे भी चार पैसे उनको मिलने वाले हैं इसलिए वे दोहरा रहे हैं। उनको खुद भी पता नहीं है कि वे जो कह रहे हैं वह क्या है? मरते वक्त उनको भी जरूरत पड़ेगी कि कोई चार पैसे लेकर दोहराए। आदमी ने इस जीवन में ही धोखे नहीं दिए, उसने परम जीवन के लिए भी धोखों
का इंतजाम किया है। हम इतने चालाक हैं कि हम सोचते हैं कि हम परमसत्ता को भी धोखा दे ही देंगे। तो हमने ऐसी कहानियां गढ़ ली हैं कि कोई आदमी मरता था, कोई पापी, उसका बेटा था नारायण। वह मरते वक्त उसने कहा, नारायण! और ऊपर जो नारायण है, वह समझा कि मुझे बुला रहा है। और वह पापी जो था, जिसने कभी प्रभु का स्मरण नहीं किया था, वह सीधा स्वर्ग पहुंच गया।
यह जरूर पापियों ने ही कहानी गढ़ी होगी। बेटे को बुला रहे थे वे, जिसका नाम नारायण था। और पता नहीं, कोई पाप का सीक्रेट बताने के लिए बुला रहे थे कि बेटा तू भी ऐसा करना! जहां तक तो मरता बाप बेटे को इसीलिए बुलाता है कि बता दे राज। और जिंदगीभर पाप किए थे, लोगों को धोखा दिया, चोरी की होंगी, जेब काटी होंगी, कुछ किया होगा, वह बेटे को तरकीबें बताना चाहते होंगे कि ये अपने ट्रेड, ये अपने धंधे के राज हैं। नारायण जो ऊपर हैं, वे धोखे में आ गए। तो ये नारायण जो ऊपर बैठे हैं, निपट मूढ़ सिद्ध होते हैं। मगर पापी अपने को समझाने के लिए बड़ी कहानियां गढ़ लेते हैं।
इतना आसान नहीं है। अस्तित्व को धोखा देने का कोई उपाय नहीं है। परमात्मा को धोखा देने का कोई मार्ग नहीं है। और वहां कोई भूल-चूक हो... ! यह कोई सरकारी दफ्तर नहीं है, कि कुछ का कुछ समझ लिया जाए, कि फाइलें कहीं की कहीं हो जाएं। परमसत्ता के साथ हमारा जो सत्य का, जो हमारा सत्य जीवन है, बस उतना ही परमसत्ता के साथ हमारा संबंध होता है। हम वहां पूरे नग्न हो जाते हैं। हम वहां जैसे हैं, वैसे ही होते हैं। इसमें कुछ किसी तरह का उपाय बचाव का नहीं है।
इसलिए इस तरह की कहानियां सुनकर अपने को मत बहलाना। और यह मत सोचना कि कोई हर्ज नहीं, अपने बेटे का नाम भी नारायण रख लेंगे। अनेक लोग शायद बेटों का नाम भगवान के नाम पर इसीलिए रखते हैं। कोई नारायण, कोई राम, कोई कृष्ण। तो शायद इसीलिए रख रहे हैं कि अजामिल की तरकीब अपने भी हाथ रहे, वक्त पर काम आ जाए। नहीं तो किराए का पंडित है, वह कान में भगवान का नाम दोहरा देगा।
भगवान का नाम भी कोई किराए का आदमी दोहरा सकता है? प्रार्थना भी आपके लिए कोई और कर सकता है? पूजा भी उधार आदमी कर सकेगा? तो आप समझ ही नहीं पा रहे हैं कि पूजा और प्रार्थना का क्या अर्थ है! क्या गरिमा है! यह तो ऐसा हुआ, जैसे आपका किसी से प्रेम हो जाए और आप एक नौकर रख दें कि तू मेरी तरफ से प्रेम किया कर। मुझे तो फुरसत नहीं है। नहीं, प्रेम के मामले में आप ऐसी भूल न करेंगे। लेकिन प्रार्थना के संबंध में सदियों से यह भूल हो रही है। प्रार्थना प्रेम है, महानतम प्रेम है, जो हो सकता है। लेकिन पैसे वाले लोग हैं, वे एक मंदिर बना लेते हैं, एक पुजारी रख देते हैं, वह उनकी तरफ से पूजा करता रहता है। तिब्बती बड़े होशियार हैं। उन्होंने एक यंत्र बना लिया है। उसको वे प्रेयरव्हील कहते हैं। एक छोटा-सा गोल चाक बना लिया, उस पर मंत्र लिख दिया। बैठे-बैठे वे उस चक्के को घुमाते रहते हैं! दूसरा भी काम

करते रहते हैं और उसको घुमा दिया। वह चाक जितने चक्कर लगा लेता है, उतने मंत्र पूरे हो गए!
एक तिब्बती लामा मुझे मिलने आए। मैंने कहा, तुम यह क्या कर रहे हो? इसको बिजली के प्लग से जोड़कर लगा दो। यह चलता ही रहेगा, तुम अपना काम करो, तुम क्यों इसके साथ उलझे हो? इससे बाधा पड़ती है काम में, बीच-बीच में तुमको फिर इसको घुमाना पड़ता है। यह तो काम बिजली कर देगी।
लेकिन कहीं प्रार्थनाएं इस तरह पूरी हुई हैं? लेकिन आदमी चूंकि बेईमान है, इसलिए वह अपनी बेईमानी सभी दिशाओं में फैला देता है। परमात्मा की दिशा में भी बेईमानी फैल जाती है।
शरीर के रहते, शरीर के भीतर जो ध्यान की अवस्था को साध लेता है, वही जीवन-मुक्त होकर एक दिन देहमुक्त भी हो जाता है।
यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
जो विशुद्ध, परमधाम में रहने वाला, स्वयंप्रकाश पुरुषोत्तम है, वही अंतरिक्ष में निवास करने वाला वसु है, घरों में उपस्थित होने वाला अतिथि और यज्ञ की वेदी पर स्थापित अग्निस्वरूप तथा उसमें आहुति डालने वाला होता है, तथा समस्त मनुष्यों में रहने वाला, मनुष्यों से श्रेष्ठ देवताओं में रहने वाला, सत्य में रहने वाला और आकाश में रहने वाला है तथा जलों में नाना रूपों से प्रगट, पृथ्वी में नाना रूपों से अभिव्यक्त, सत्कर्मों में प्रगट होने वाला, पर्वतों में प्रगट होने वाला, वही सबसे बड़ा सत्य, वही सब जगह है।
सभी स्थानों पर, यहां और वहां, नीचे और ऊपर, बाहर और भीतर, वही एक प्रगट
हो रहा है। लेकिन इस एक के प्रगटीकरण की बात आपको तभी बोध बनेगी जब ध्यान आपका गहन होगा, और शरीर से भिन्न आप अपने को देख पाएंगे। जब तक आप देखते हैं कि आप शरीर के साथ एक हैं, तब तक आपको अनेक दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि अनेक शरीर हैं।
ऐसे ही, जैसे हम यहां एक हजार घड़े रख दें। जहां-जहां आप बैठे हैं, वहां- वहां एक-एक घड़ा रख दें। एक हजार घड़े रख दें। हर घड़े के भीतर आकाश है। सब घड़ों के भीतर एक ही आकाश है। पर जो आदमी घड़ों को गिनेगा, वह कहेगा, यहां एक हजार घटाकाश हैं। जो आदमी घड़ों को गिनेगा, वह कहेगा, यहां एक हजार घड़ों के आकाश हैं। हर घड़े का अपना आकाश है, उसके भीतर बंद है। और जो एक घड़े के भीतर बंद है, वह दूसरे के भीतर कैसे हो सकता है? दूसरे के भीतर दूसरा, तीसरे के भीतर तीसरा, तो एक हजार घटाकाश हैं।
फिर कोई आदमी आए और एक-एक डंडा बजाकर घड़ों को फोड़ता चला जाए। फिर वहां
एक आकाश रह जाता है।
आपके शरीर घड़े से ज्यादा नहीं हैं। और जब मौत आपके घड़े को तोड़ती है, उस वक्त अगर आप घड़े से जिंदगीभर न बंधे रहे हों, तो आप कहेंगे--ठीक है, तोड़ दो घड़ा, क्योंकि आकाश थोड़े ही डंडे से टूटता है; सिर्फ घड़ा टूटता है। तोड़ दो, हो भी गया पुराना।
अगर मरते वक्त कोई यह देख पाए कि घड़ा टूट रहा है और आकाश तो सुरक्षित है। फिर कोई घड़े की जरूरत न रही, फिर कोई देह में प्रवेश न होगा। लेकिन हम शरीर को ही अपना होना मानते हैं। तो फिर इतने शरीर हैं जगत में, उतने ही व्यक्तित्व, उतना ही भेद। हर शरीर एक दीवाल बन जाता है और विराट आकाश को घेर लेता है।
सबके भीतर एक ही आकाश है और एक ही आत्मा है। लेकिन इसे आप सिद्धांत की तरह मानकर और जिंदगीभर दोहराते रहें, तो कुछ भी न होगा। इसे आप अनुभव की तरह भीतर जान लें--अपने घड़े से अलग होकर जान लें--तो आपको सारे घड़े मिट गए, सिर्फ घड़ों के भीतर एक ही आकाश रह गया। उस एक आकाश का नाम ही ब्रह्म है। वही है बाहर, वही भीतर, वही नीचे, वही ऊपर, वही सब जगह है। क्षुद्र में और विराट में, निम्न में और उच्च में, पर्वतों में और नदियों में, पृथ्वी में और आकाश में, सभी जगह वही है।
जो प्राण को ऊपर की ओर उठाता है और अपान को नीचे ढकेलता है, शरीर के मध्य हृदय में बैठे हुए उस सर्वश्रेष्ठ भजने योग्य परमात्मा की सभी देवता उपासना करते हैं।

भारतीय योग की एक गहरी खोज इस सूत्र में छिपी है। पश्चिम का चिकित्साशास्त्र, मेडिकल साइंस अभी भी इस संबंध में करीब-करीब अपरिचित है। यह खोज है प्राण और अपान की।
भारतीय चिकित्साशास्त्र आयुर्वेद, योग, तंत्र, इन सबकी यह प्रतीति है
कि शरीर में वायु की दो दिशाएं हैं। एक दिशा ऊपर की ओर है, उसका नाम प्राण। और एक दिशा नीचे की ओर है, उसका नाम अपान। शरीर में वायु का दोहरा रूप है और दो तरह की धाराएं हैं। जो मल-मूत्र विसर्जित होता है, वह अपान के कारण है। वह जो नीचे की तरफ वायु बह रही है, वही मल-मूत्र को नीचे की तरफ अपनी धारा में ले जाती है। और जीवन में जितनी भी ऊपर की तरफ जाने वाली चीजें हैं, वे सब प्राण से जाती हैं।
इसलिए जो जितना ज्यादा प्राणायाम को साध लेता है, उतना ऊपर उठने में कुशल हो जाता है। क्योंकि ऊपर जाने वाली धारा को विस्तार कर रहा है, फैला रहा है, बड़ा कर रहा है।
ये दो धाराएं हैं, दो करेंट हैं वायु के, शरीर के भीतर। और इन दोनों के मध्य स्थित है परमात्मा, या आत्मा, या चेतना, या जो भी नाम आप देना चाहें। वह जो अंगुष्ठ आकार का आत्मा है, वह इन दोनों धाराओं के बीच में उपस्थित है। वही वायु को नीचे की तरफ धकाता है, वही वायु को ऊपर की तरफ धकाता है। प्राण--ऊपर की तरफ जाने वाली वायु। अपान--नीचे की तरफ जाने वाली वायु। पश्चिम का चिकित्साशास्त्र अभी भी इस दोहरी धारा को नहीं पहचान पाया है। उनका ख्याल है, वायु एक ही तरह की है। इसलिए वायु के आधार पर जो बहुत-से काम आयुर्वेद कर सकता है, वह ऐलोपैथी नहीं कर सकती। वायु की इन धाराओं को ठीक से समझ लेने वाला व्यक्ति जीवन में बड़ी क्रांतियां कर सकता है।
छोटा बच्चा श्वास लेता है, तो आपने देखा है कि जब छोटा बच्चा श्वास लेता है तो उसका पेट ऊपर-नीचे जाता है। बच्चा लेटा है, श्वास लेता है, तो पेट ऊपर जाता है, नीचे जाता है। छाती पर कोई हलन-चलन भी नहीं होती। उसकी श्वास बड़ी गहरी है। आप जब श्वास लेते हैं तो सीना ऊपर उठता है, नीचे गिरता है। आपकी श्वास उथली है, गहरी नहीं है।
मनसविद बड़े हैरान हैं कि यह घटना क्यों घटती है? उम्र बढ़ने के साथ श्वास उथली क्यों हो जाती है? और बच्चे की श्वास गहरी क्यों होती है? जानवरों की श्वास भी गहरी होती है। जंगली आदमियों की श्वास भी गहरी होती है। जितना सभ्य आदमी हो, उतनी उथली श्वास हो जाती है। बड़ी मुश्किल की बात है कि सभ्यता से श्वास का ऐसा क्या संबंध होगा? और वह कौन-सी घड़ी है जब से बच्चा गहरी श्वास लेना बंद कर देता है?
योग इस राज को जानता है। और यह राज अब मनोविज्ञान को भी थोड़ा-थोड़ा साफ होने लगा है। क्योंकि मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे को जिस दिन से काम का भय पैदा हो जाता है, वासना का भय, मां-बाप जिस दिन से उसे सचेत कर देते हैं सेक्स के प्रति, उसी दिन से उसकी श्वास उथली हो जाती है। क्योंकि श्वास जब गहरी जाती है, तो कामकेंद्र पर चोट करती है। वह अपान बन जाती है। और कामवासना को जगाती है।
जितनी गहरी श्वास होगी, उतनी कामवासना सतेज होगी। बच्चे भयभीत कर दिए जाते हैं कि काम बुरा है, सेक्स पाप है। वे घबरा जाते हैं। तो अपनी श्वास को ऊपर सम्हालने लगते हैं, वे उसको गहरा नहीं जाने देते। फिर धीरे-धीरे उनकी श्वास सिर्फ ऊपर-ऊपर चलने लगती है। उनके कामकेंद्र और स्वयं के बीच एक फासला हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों के जीवन में कामवासना विकृत हो जाती है। वे संभोग का किसी तरह का भी सुख नहीं ले पाते, क्योंकि संभोग के लिए बड़ी गहरी श्वास जरूरी है।
और जब गहरी श्वास हो, तो पूरा शरीर आंदोलित होता है। और शरीर के पूरे आंदोलन में, शरीर के पूरी तरह समाविष्ट हो जाने में इस प्रक्रिया में, पूरी तरह डूब जाने से, थोड़ा-बहुत सुख का आभास मिलता है। लेकिन वह आभास भी असंभव हो जाता है, क्योंकि श्वास इतनी गहरी नहीं जाती। और न-मालूम कितनी बीमारियां इसके साथ पैदा होती हैं, क्योंकि आपका अपान कमजोर हो जाता है। जो लोग भी उथली श्वास लेते हैं, उनको कब्जियत हो जाएगी। क्योंकि अपान,
जो वायु नीचे जाकर मल को विसर्जित करती है, वह वायु नीचे नहीं जा रही है। लेकिन डर वही है। क्योंकि वीर्य भी मल है, उसको भी निष्कासित करने के लिए

वायु को नीचे तक जाना चाहिए। अपान बनना चाहिए। तो जो व्यक्ति भी डरेगा सेक्स से, उसको कब्जियत भी पकड़ लेगी। क्योंकि वह एक ही वायु दोनों को धक्का देती है।
ब्रह्मचर्य का प्रयोग अपान को रोकने से नहीं होता। ब्रह्मचर्य का प्रयोग प्राण को बढ़ाने से होता है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। हम सारे लोगों ने ब्रह्मचर्य के नाम पर गलत कर लिया है और अपान को रोक लिया है। उसकी वजह से हम सिर्फ रुग्ण और बीमार हो गए हैं। हमारे व्यक्तित्व की जो गरिमा और जो स्वास्थ्य हो सकता था, वह नष्ट हो गया है। और शरीर न-मालूम कितने जहर से भर जाता है। क्योंकि जो अपान सारे जहरों को शरीर के बाहर फेंकती है, वह नहीं फेंक पाती। आप डरे हुए हैं। ब्रह्मचर्य की यह निषेधात्मक प्रक्रिया है--निगेटिव।
एक विधायक प्रक्रिया है--अपान को मत छेड़ें, प्राण को बढ़ाएं। प्राण इतना ज्यादा हो जाए कि अपान उसके मुकाबले बिल्कुल छोटा हो जाए। एक बड़ी लकीर खींच दें। तो अपान शुद्ध रहे और प्राण विराट हो जाए, तो आपकी ऊर्जा ऊपर की तरफ बहने लगे।
इसलिए प्राणायाम का इतना उपयोग है योग में, क्योंकि प्राणायाम धक्के देता है ऊपर की तरफ ऊर्जा को। जो काम-ऊर्जा अपान के द्वारा सेक्स बनती है, वही काम-ऊर्जा प्राण के द्वारा कुंडलिनी बन जाती है। वह ऊपर की तरफ बहने लगती है। और ऊपर की तरफ बहते-बहते मस्तिष्क में जाकर उसका कमल खिल जाता है।
अपान के धक्के से वही कामवासना किसी बच्चे का जन्म बनती है, प्राण के धक्के से वही कामवासना आपका स्वयं का नया जन्म बन जाती है--लेकिन मस्तिष्क तक आ जाए तब। तो प्राण उसे ऊपर की तरफ लाता है।
यह सूत्र कह रहा है कि प्राण और अपान दोनों के बीच में छिपा है वह परमात्मा, जिसके संबंध में तुमने पूछा था। वही नीचे की तरफ अपान को ले जाता है, वही प्रकृति का आधार है। और वही प्राण को ऊपर की तरफ ले जाता है, वही परलोक का आधार है। यह तेरे ऊपर निर्भर है कि तू किस धारा में प्रविष्ट होना चाहता है। अगर तू नीचे की धारा में प्रविष्ट होना चाहता है, तो तुझे अपान को बढ़ाना होगा।
सभी पशुओं का अपान बड़ा प्रबल होता है, उनका प्राण बहुत निर्बल होता है। सिर्फ योगियों का प्राण सबल होता है। अपान स्वस्थ होता है और प्राण इतना सबल होता है कि अपान, स्वस्थ अपान भी उस पर कब्जा नहीं कर पाता; कब्जा प्राण का ही होता है। साधारण आदमी का प्राण तो कमजोर होता ही है, वह अपान भी कमजोर कर लेता है, डर और भय के कारण।
भयभीत आदमी गहरी श्वास नहीं लेता। सिर्फ निर्भय आदमी गहरी श्वास लेता है। किसी भी कारण से डरा हुआ आदमी गहरी श्वास नहीं लेता। कोई आदमी आपकी छाती पर छुरा लाकर रख दे, श्वास रुक जाएगी। जब भी आप भयभीत होंगे, श्वास रुक जाएगी। जहां भी आप घबड़ा जाते हैं, किसी से मिलने गए हैं, किसी बड़े आफिसर से और घबड़ा गए हैं, बस श्वास उथली हो जाती है, ऊपर-ऊपर चलने लगती है। फिर आप बाहर आकर ही ठीक से श्वास ले पाते हैं।
हम इतना डरा दिए हैं एक-दूसरे को कि हमारा सब श्वास का पूरा यंत्र-जाल अस्वस्थ हो गया है।
दोनों के बीच में छिपा है परमात्मा, दोनों का मालिक वही है।
अपान से डरने की कोई भी जरूरत नहीं, क्योंकि शरीर का सारा स्वास्थ्य
उस पर निर्भर है। निष्कासन उसका काम है। और अगर निष्कासन ठीक न हो, तो शरीर में जहर, टाक्सिन्स इकट्ठे हो जाएंगे। और वे इकट्ठे हो गए हैं। हर आदमी के खून में जहर चल रहा है।
व्यायाम कोई आदमी करे, दौड़े, चले, तैरे, तो अपान सबल हो जाता है। इसलिए शरीर में एक ताजगी और स्वास्थ्य आ जाता है। लेकिन कोई गहरी श्वास ले-- प्राणायाम सिर्फ गहरी श्वास नहीं है, प्राणायाम बोधपूर्वक गहरी श्वास है। इस फर्क को ठीक से समझ लें। बहुत से लोग प्राणायाम भी करते हैं, तो बोधपूर्वक नहीं, बस गहरी श्वास लेते रहते हैं।

अगर गहरी श्वास ही आप सिर्फ लेंगे, तो अपान स्वस्थ हो जाएगा। बुरा नहीं है, अच्छा है। लेकिन ऊर्ध्वगति नहीं होगी। ऊर्ध्वगति तो तब होगी जब श्वास की गहराई के साथ आपकी अवेयरनेस, आपकी जागरूकता भीतर जुड़ जाए। बुद्ध ने कहा है, श्वास चले, नाक को छुए, तब तुम जानो कि नाक छू रही है। भीतर चले, नासापुटों में स्पर्श हो, जानो कि नासापुटों में स्पर्श हो रहा है। कंठ में उतरे, जानो कि कंठ में स्पर्श हो रहा है। फेफड़ों में आए, नीचे जाए, पेट तक पहुंचे, तुम देखते चले जाओ, उसके पीछे-पीछे ही तुम्हारी स्मृति लगी रहे। फिर एक क्षण को रुक जाएगी--गैप। वह गैप बड़ा कीमती है।
जब आप श्वास गहरी लेंगे, एक क्षण को जब भीतर पहुंच जाएंगे, एक क्षण को कोई श्वास नहीं होगी, न बाहर न भीतर। सब ठहर जाएगा। फिर श्वास बाहर लौटेगी। एक सेकेंड विश्राम करके फिर बाहर की तरफ चलेगी, तब तुम भी उसके साथ बाहर चलो। उठो, उसी के साथ। आओ कंठ तक, आओ नाक तक। बाहर निकल जाए, उसका पीछा करते रहो। फिर बाहर जाकर एक सेकेंड को सब ठहर जाएगा। फिर नई श्वास शुरू होगी। फिर भीतर, फिर बाहर।
बुद्ध ने कहा है, तुम इसको माला बना लो और तुम इसी के गुरियों के साथ अपने स्मरण को जगाते रहो। अगर गहरी श्वास के साथ बोध हो, तो प्राण का विस्तार होता है, और जीवन-ऊर्जा की गति ऊपर की तरफ होनी शुरू हो जाती है। बोध ऊपर का सूत्र है, मूर्च्छा नीचे का सूत्र है।
अगर कोई व्यक्ति निरंतर, जब भी उसे स्मरण आ जाए, सिर्फ श्वास पर बोध को साधता रहे, तो किसी और साधना की जरूरत नहीं। उतना काफी है। पर वह बड़ा कठिन है। चौबीस घंटे, जब भी ख्याल आ जाए, तो श्वास को... । किसी को पता भी नहीं चलेगा, चुपचाप यह हो सकता है। किसी को खबर भी नहीं होगी कि आप क्या कर रहे हैं। किसी को भी पता नहीं चलेगा।
जीसस ने कहा है कि तुम्हारा बायां हाथ जब कुछ करे, तो दाएं हाथ को पता
न चले।
यह इस तरह की प्रक्रिया है, जिसमें किसी को भी पता नहीं चलेगा। तुम चुपचाप अपनी श्वास के साथ धीरे-धीरे स्मृति से भरते चले जाओगे। और जैसे- जैसे स्मृति गहन होगी, श्वास गहरी होगी, वैसे-वैसे उसकी चोट स्मरणपूर्वक तुम्हारी ऊर्जा को रीढ़ के मार्ग से ऊपर की तरफ उठाने लगेगी। और यह कोई कल्पना की बात नहीं है, तुम अपनी रीढ़ में निश्चित रूप से विद्युत की धारा को उठता हुआ पाओगे। तरंगें तुम्हारी रीढ़ में दौड़ने लगेंगी। वे तरंगें उत्तप्त होंगी। और तुम चाहो तो तुम अपने हाथ से छूकर देख भी सकते हो, जहां तरंगें होंगी वहां रीढ़ गरम हो जाएगी। और जैसे-जैसे यह गर्म ऊर्जा ऊपर की तरफ उठेगी, तुम्हारी रीढ़ उत्तप्त होने लगेगी। तुम अनुभव करोगे कि कहां तक जाती है यह ऊर्जा। फिर गिर जाती है, फिर जाती है।
निरंतर अभ्यास से एक दिन यह ऊर्जा तुम्हारे ठीक सहस्रार तक पहुंच जाती है। लेकिन इस बीच यह और चक्रों से गुजरती है और हर चक्र के अपने अनुभव हैं। हर चक्र पर तुम्हारे जीवन में नया प्रकाश, और हर चक्र से जब यह ऊर्जा गुजरेगी तो तुम्हारे जीवन में नई सुगंध, नए अर्थ, नए अभिप्राय प्रगट होने लगेंगे। नए फूल खिलने लगेंगे।
योगशास्त्र ने पूरी तरह निश्चित किया है--हजारों-लाखों प्रयोग करने
के बाद--कि हर केंद्र पर क्या घटता है। एक-दो उदाहरण, ताकि ख्याल में आ जाए। और उसी हिसाब से इन केंद्रों के, चक्रों के नाम रखे हैं।
जैसे दोनों आंखों के बीच में जो चक्र है, उसको योग ने आज्ञा-चक्र कहा है। उसको आज्ञा-चक्र इसलिए कहा है कि जिस दिन तुम्हारी ऊर्जा उस चक्र से गुजरेगी, तुम्हारा शरीर, तुम्हारी इंद्रियां तुम्हारी आज्ञा मानने लगेंगी। तुम जो कहोगे, उसी क्षण होगा। तुम्हारा व्यक्तित्व तुम्हारे हाथ में आ जाएगा, तुम मालिक हो जाओगे।
इस चक्र के पहले तुम गुलाम हो। इस चक्र में जिस दिन ऊर्जा प्रवेश करेगी, उस दिन से तुम्हारी मालकियत हो जाएगी। उस दिन से तुम जो चाहोगे, तुम्हारा शरीर तुम्हारी आज्ञा मानेगा। अभी तुम्हें शरीर की आज्ञा माननी पड़ती है, क्योंकि जहां से शरीर को आज्ञा दी जा सकती है, उस जगह पर तुम अभी भी खाली हो। वहां ऊर्जा नहीं है, जहां से आज्ञा दी जा सकती है। इसलिए उस चक्र का नाम आज्ञा-चक्र है।

ऐसे ही सब चक्रों के नाम हैं। वे नाम सार्थक हैं। और हर चक्र के साथ एक विशिष्ट अनुभव जुड़ा है। आखिरी चक्र है सहस्रार। सहस्रार का अर्थ होता है-- सहस्र पंखुड़ियों वाला कमल। निश्चित ही जिस दिन वहां ऊर्जा पहुंचती है, वहां पूरा मस्तिष्क ऐसा मालूम होता है कि जैसे हजार पंखुड़ियों वाला कमल हो गया। और वह कमल खिला है, आकाश की तरफ उन्मुख, सारी पंखुड़ियां खिल गयीं। और उससे जो अपूर्व आनंद का अनुभव, और जो अपूर्व सुगंध की वर्षा, और जीवन में जो पहली बार पूर्ण प्रकाश उतरता है--ठीक ही कमल से उसको हमने चुना है। कई कारण हैं। उसको हमने सहस्रार कहा है, सहस्रदल कमल।
कमल की एक खूबी है कि वह कीचड़ में पैदा होता है और उससे ज्यादा सुंदर
और उससे ज्यादा पवित्र कुछ भी नहीं है। उससे ज्यादा अपवित्र जगह में कोई भी पैदा नहीं होता। गंदे कीचड़ में पैदा होता है, लेकिन गंदे कीचड़ से एक डंठल उठता है, उठता है, और पानी के पार निकल जाता है। वह डंठल आपकी रीढ़ है। वह गंदा कीचड़ आपकी कामवासना है। आपकी रीढ़ के डंठल से फूल खिलता है एक दिन। और जिस दिन यह कमल का फूल खिलता है, उस दिन यह इतना अदभुत है कि कीचड़ से पैदा हुआ कमल का फूल, उसको पानी भी छू नहीं पाता। पानी भी उस पर गिरे तो वह अछूता रहता है। उसे फिर कोई चीज नहीं छू पाती। वह अस्पर्शित रहता है।
यह कमल का फूल संन्यास की परम अभिव्यक्ति है। उसको कुछ भी छू नहीं पाता। गिरता रहे उसके ऊपर, तो भी उसे कुछ छू नहीं पाता। वह अछूता ही रहता है। अस्पर्शित। कीचड़ से पैदा होकर कीचड़ के पार, इतनी पवित्रता को उपलब्ध होने की जो संभावना कमल की है, वही प्रत्येक मनुष्य की है। इसलिए हमने आखिरी चक्र को सहस्रदल कमल कहा है।
ये दो, प्राण और अपान वायु हैं। इन दोनों के मध्य में वह परमात्मा बैठा है।
इस शरीर में स्थित, एक शरीर से दूसरे शरीर में जाने वाले जीवात्मा के शरीर से निकल जाने पर, यहां इस शरीर में शेष ही क्या रहता है?
जब जीवात्मा निकल जाता है तो शरीर में शेष ही क्या रहता है?
वह जो निकल जाता है, यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
कोई भी मरणधर्मा प्राणी न तो प्राण से जीता है और न अपान से ही जीता है; किंतु जिसमें प्राण और अपान ये दोनों आश्रय पाए हुए हैं, ऐसे किसी दूसरे से ही सब जीते हैं।
उसी परमात्मा में, उसी मध्य में छिपे हुए जीवात्मा में इन दोनों का आश्रय है--प्राण का भी, अपान का भी। उससे ही हम जीते हैं।
हे गौतमवंशी नचिकेता! वह रहस्यमय सनातन ब्रह्म जैसा है और जीवात्मा मरकर जिस प्रकार से रहता है, यह बात अब मैं तुम्हें फिर से बतलाऊंगा।
कुछ सत्य ऐसे हैं जो बार-बार कहने पड़ते हैं। इसलिए नहीं कि बार-बार कहने से, उन्हें पुनरुक्त करने, दोहराने से, कुछ दोहराने वाले को मिलने वाला है, वरन इसलिए कि आप इतने बहरे हैं कि एक बार शायद आपके कान पर वह बात पड़कर भी न पड़ पाए। तो दुबारा।
बुद्ध की आदत थी कि हर बात को वे तीन बार कहते थे। अब जो लोग बुद्ध के शास्त्रों का अनुवाद करते हैं, वे उसमें से दो हिस्से काट देते हैं। वे कहते हैं, पुनरुक्ति है। इतनी पुनरुक्ति की क्या जरूरत है? वे बुद्ध से भी ज्यादा समझदार मालूम पड़ते हैं। पुनरुक्ति की जरूरत इसलिए है कि बुद्ध जिससे कह रहे हैं, उसको एक बार में समझ में आने वाला नहीं है। उसे दो बार में भी समझ में आने वाला नहीं है। बुद्ध पूरी कोशिश कर रहे हैं कि किसी तरह कोई चोट, आघात उसमें लग जाए, तो वे तीन बार दोहराते हैं।
यम भी नचिकेता से कहता है--हे नचिकेता! अब मैं तुझे फिर से दोबारा बतलाऊंगा।
जिसका जैसा कर्म होता है और शास्त्रादि के श्रवण द्वारा जिसको जैसा भाव प्राप्त होता है, उन्हीं के अनुसार शरीर धारण करने के लिए कितने ही जीवात्मा तो नाना प्रकार की योनियों को प्राप्त हो जाते हैं, और दूसरे कितने ही जीवात्मा वृक्ष, लता, पर्वत आदि स्थावर-भाव का अनुसरण करते हैं। जो यह जीवों के कर्मानुसार नाना प्रकार के भोगों का निर्माण करने वाला, परमपुरुष परमेश्वर प्रलयकाल में सबके सो जाने पर भी जागता रहता है,

वही परम विशुद्ध तत्व है, वही ब्रह्म है, वही अमृत कहलाता है; तथा उसी में संपूर्ण लोक आश्रय पाए हुए हैं। उसे कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
इसमें एक बात बहुत ठीक से समझ लेने जैसी है। प्रलयकाल में सबके सो जाने पर भी जो जागता रहता है, वही है वह परमात्मा जिसके संबंध में नचिकेता ने पूछा है। प्रलयकाल में जब सब नष्ट हो जाता है, या सब सो जाता है, प्रकृति का सारा क्रिया-कलाप सो जाता है, तब भी जो जागता रहता है... ।
हमें तो प्रलयकाल का कोई पता नहीं, हम कहां से इसे समझें? हम अपनी ही नींद से इसे समझें तो आसान होगा। नींद में शरीर तो सो जाता है--शरीर यानी प्रकृति--सब सो जाता है। लेकिन क्या आपने कभी ख्याल किया कि कोई आपके भीतर जागता रहता है?
एक मां है, उसका छोटा बच्चा है। बाहर तूफान हो, आंधी गरजे, आकाश में बादल घुमड़ें, बिजली गिरे, उसकी नींद नहीं टूटेगी; उसका बच्चा जरा कुनमुनाए, वह जल्दी से जाग जाएगी। बड़ी हैरानी की बात है। बिजली कड़कती थी बाहर, उसकी नींद न टूटी, और बच्चे की जरा-सी आवाज! कोई उसके भीतर जागता है, जो बच्चे का स्मरण रखता है।
आप हजार लोग यहां सो जाएं, गहरी नींद में खोए हों, और मैं आकर कहूं-- राम! किसी को सुनाई नहीं पड़ेगा। लेकिन जिसका नाम राम है, वह कहेगा, कौन मेरी नींद खराब कर रहा है? जरूर कोई हिस्सा जागता है, जो जानता है कि मेरा नाम राम है।
सुबह आप उठते हैं, कहते हैं, रात बड़ी गहरी नींद आई। किसने जानी? अगर आप बिल्कुल ही सो गए थे, तो कौन है जो कह रहा है कि बड़ी गहरी नींद आई? कौन है जो जानने वाला है नींद का भी? अगर नींद पूरी थी, तो वहां कोई भी नहीं था, सब सो गया था। लेकिन कोई जागता रहा है। कोई हिस्सा देखता रहा है कि नींद गहरी आई कि नहीं, कि सपने थे कि नहीं। रात देखे गए सपने सुबह कोई याद रखता है। अगर आप बिल्कुल सो गए थे तो किसने बनाई स्मृति? कौन लाया सपनों को जागने तक? नहीं, आप बिल्कुल नहीं सो जाते।
सम्मोहन गहरी से गहरी निद्रा है। पश्चिम में बहुत प्रयोग होता है हिप्नोसिस का, और अब तो पूरा विज्ञान बन गया है। अब तो कोई मदारीगिरी न रही, क्योंकि सम्मोहन अब तो अस्पतालों में उपयोग होता है। और छोटे-मोटे काम में नहीं, बड़े से बड़ी सर्जरी में भी सम्मोहन का उपयोग होता है। इसलिए साधारण नींद तो कुछ भी नहीं है। साधारण नींद में आप किसी की सर्जरी नहीं कर सकते। कांटा ही चुभाएंगे तो वह उठकर खड़ा हो जाएगा। लेकिन सम्मोहित अवस्था में, ठीक हिप्नोटाइज्ड हालत में, बड़ी सर्जरी की जा सकती है। पेट काटा-पीटा जा सकता है, एपेंडिक्स निकाली जा सकती है। घंटों लग जाएं, लेकिन वह आदमी सोया रहेगा।
तो सम्मोहन गहरी से गहरी नींद है। लेकिन एक बड़े मजे की बात सम्मोहन में है। और वह यह कि आप पेट की अंतड़ी काट डालें और आदमी सोया रहेगा, लेकिन उस आदमी की धारणाओं, नैतिक धारणाओं के विपरीत अगर आप कोई काम करवाना चाहें, वह फौरन जग जाएगा। जैसे अगर कोई हिंदू स्त्री, जिसने सच में ही हिंदू-धारणा के अनुसार एक पति के सिवाय किसी को नहीं चाहा है--अगर चाहा है, तब बात अलग है--तो उसे सम्मोहित किया जाए और उससे कहा जाए कि एक पुरुष तेरे पास बैठा है, तू इसे चुंबन दे दे। कितना ही गहरा सम्मोहन हो, तत्क्षण टूट जाएगा। वह उठकर बैठ जाएगी। वह कहेगी, क्या कहा? यह असंभव है। आप पेट काट सकते हैं और नींद नहीं टूटेगी! जरूर भीतर कोई जाग रहा है।
लेकिन अगर कोई स्त्री राजी हो जाती है, तो मनसविद कहते हैं कि वह चुंबन तो देना चाहती थी, वह उसके अचेतन में दबा पड़ा था, लेकिन समझ के कारण इसको दबाए थी। सम्मोहित अवस्था में उसे मौका मिल गया। अपनी कोई जिम्मेदारी नहीं है। कहा जा सकता है, हम बेहोश थे। क्या किया, उसका हम पर कोई दायित्व नहीं है। तो वह चुंबन दे सकती है।
नैतिक धारणा के विपरीत सम्मोहन में भी आदमी जागा रहता है। आप उसके विपरीत उससे कुछ भी नहीं करवा सकते। वह करना चाहे तो ही करता है। वहां भी आखिरी चुनाव उसी का है। गहरी से गहरी नींद में भी कोई जागा हुआ है।

यह सूत्र यह कह रहा है कि आपके शरीर की निद्रा में जो जागता है, वही तत्व, जब सारी प्रकृति प्रलय में सो जाती है... ।
प्रलय का अर्थ है, पूरी प्रकृति की रात। इसलिए हमने इस देश में जैसा गणित फैलाया था, अब पश्चिम के वैज्ञानिक और गणितज्ञ भी उसको सम्मान से देखने लगे हैं। क्योंकि पश्चिम में ईसाइयत की धारणा थी कि दुनिया का निर्माण परमात्मा ने किया बहुत थोड़े ही दिन पहले, चार हजार चार साल पहले। अब यह बात बिल्कुल गलत हो गई और इसलिए ईसाइयत को बड़ा नुकसान हुआ, क्योंकि वे जिद्द किए रहे कि हमारी किताब में ऐसा लिखा है, यह सच होना चाहिए। लेकिन उनके ही वैज्ञानिकों ने खोजा है कि इस जमीन को बने तो कोई चार अरब वर्ष हो चुके हैं। और तुम कहते हो, चार हजार चार साल पहले! इस जमीन में ऐसे अवशेष मौजूद हैं, जो लाखों साल पहले के प्रमाण देते हैं। तो वह धारणा गलत हो गई। लेकिन हिंदुओं की धारणा गलत नहीं हो पाई।
हिंदुओं ने जो गणित का फैलाव किया है, वह अरबों वर्षों का है। और इन अरबों वर्षों को उन्होंने ब्रह्मा का एक दिन कहा है। प्रकृति की शुरुआत, सृष्टि और प्रलय--इसको उन्होंने ब्रह्मा का दिवस कहा है। एक दिवस परमात्मा का। हमारे लिए अरबों वर्ष, परमात्मा के लिए एक दिन। फिर होती है रात, प्रलय में सब सो जाता है, पूरी प्रकृति।
आखिर प्रकृति भी थक जाएगी। आप ही नहीं थक जाते दिनभर में, ये सब वृक्ष,
ये पौधे, ये पहाड़, यह पृथ्वी, ये चांद-तारे, ये सब भी थक जाएंगे। थकान की यह दृष्टि भारत को बड़ी साफ है। कि आप जब थक जाते हैं, तो हर चीज एक दिन थक जाएगी, चाहे कितनी ही लंबाई हो। जिस दिन सब चीजें थककर विश्राम में पड़ जाएंगी, उस दिन प्रलय हो जाएगा। सब सो गया, ब्रह्मा की रात शुरू हो गई।
उस दिन भी जो जागता रहता है, वही है वह परमात्मा, जिसके संबंध में तुमने पूछा था।
आपके शरीर और आपके बीच जो संबंध है, वही प्रकृति और परमात्मा के बीच संबंध है। कहें कि यह पूरा जगत उसका शरीर है। आप छोटे रूप में एक मिनिएचर अस्तित्व, एक विश्व हैं। शरीर और आप, ऐसे ही पूरी प्रकृति और वह परमात्मा। जब सब सो जाता है, तब भी वह जागा हुआ है।
कृष्ण ने इसलिए गीता में कहा है कि योगी उस समय भी जागता है, जब भोगी
सो जाता है। रात्रि भी उसके लिए भीतर निद्रा नहीं है। शरीर ही उसका सोता है, भीतर वह सतत जागता रहता है।
जैसे-जैसे आपका होश बढ़ेगा, वैसे-वैसे नींद में भी आप पाएंगे कि आप जाग रहे हैं। और जिस दिन आपको लगने लगे, नींद में भी आप जाग रहे हैं, नींद भी आपका प्रत्यक्ष अनुभव है, उस दिन आप समझना कि अब शरीर से, शरीर के किनारे से खूंटियां टूटने लगीं और आत्मा की तरफ नाव का बहना शुरू हुआ है।
अब ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
बारहवां प्रवचन

परमात्मा एक माध्यमरहित अनुभव

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।। 9।।

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।। 10।।

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य च्रुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः।। 11।।

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।
12।।

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।। 13।।

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा।। 14।।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।। 15।।

समस्त प्राणियों के अंतरात्मारूप परमेश्वर एक होते हुए भी विभिन्न देहधारियों में प्रविष्ट होकर उन्हीं के रूप वाला बना हुआ है। वह भीतर रहने वाला ईश्वर बाहर भी है, जैसे संपूर्ण विश्व में प्रविष्ट एक ही अग्नि विभिन्न रूप वाली हो जाती है।। 9।।

जिस प्रकार समस्त ब्रह्मांड में प्रविष्ट वायु एक होते हुए भी विभिन्न रूप वाला हो रहा है, वैसे ही सब प्राणियों में निवास करने वाला परमेश्वर एक होते हुए भी देहधारियों के अनुरूप रूप वाला रहता है। वही उनके बाहर भी स्थित है।। 10।।

जिस प्रकार समस्त ब्रह्मांड का प्रकाशक सूर्यदेवता (लोगों की) आंखों
से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सब प्राणियों का अंतरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दुखों से लिप्त नहीं होता, क्योंकि सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है।। 11।।

जो सब प्राणियों का अंतर्यामी, अद्वितीय एवं सबको वश में रखने वाला (परमात्मा अपने) एक ही रूप को बहुत प्रकार से बना लेता है, उस अपने अंदर रहने वाले परमात्मा को जो ज्ञानी निरंतर देखते रहते हैं, उन्हीं को सदा अटल रहने वाला परमानंदस्वरूप वास्तविक सुख (मिलता है), दूसरों को नहीं।।
12।।

जो नित्यों का (भी) नित्य (है), चेतनों का (भी) चेतन है (और) अकेला ही इन अनेक (जीवों) के कर्मफल-भोगों का विधान करता है, उस अपने अंदर रहने वाले (पुरुषोत्तम) को ये जो ज्ञानी निरंतर देखते रहते हैं, उन्हीं को सदा अटल रहने वाली शांति (प्राप्त होती है), दूसरों को नहीं।। 13।।

(जिज्ञासु नचिकेता इस प्रकार उस ब्रह्मप्राप्ति के आनंद और शांति की महिमा सुनकर मन ही मन विचार करने लगाः) वह अनिर्वचनीय परम सुख यह (परमात्मा ही है), ऐसा (ज्ञानीजन) मानते हैं, उसको किस प्रकार से मैं भलीभांति समझूं! क्या (वह) प्रकाशित होता है या अनुभव में आता है? ।। 14।।

(नचिकेता के इस आंतरिक भाव को समझकर यमराज ने कहाः) वहां न (तो) सूर्य प्रकाशित होता है, न चंद्रमा और तारों का समुदाय (ही प्रकाशित होता है)। (और) न ये बिजलियां ही (वहां) प्रकाशित होती हैं। फिर यह (लौकिक) अग्नि-- इनसे वह कैसे (प्रकाशित हो सकता है, क्योंकि) उसी के प्रकाश से (ऊपर बतलाए हुए सूर्यादि) सब प्रकाशित होते हैं; उसी के प्रकाश से यह संपूर्ण जगत प्रकाशित होता है।। 15।।

जीवन के परम रहस्य के संबंध में तीन दृष्टियां हैं।
एक दृष्टि है हिंदू उपनिषदों, वेदों, गीता की। उस दृष्टि के अनुसार वह परम तत्व एक ही है, शेष सब उसी की अभिव्यक्तियां हैं। आत्माएं नहीं हैं, परमात्मा है। व्यक्ति नहीं है, समष्टि है। दूसरी दृष्टि है जैनों की। वह परम तत्व एक नहीं है; असंख्य है, अनेक है। परमात्मा नहीं है, आत्माएं हैं। समष्टि नहीं है, व्यक्ति है। तीसरी दृष्टि है बौद्धों की। बौद्धों के अनुसार न तो परमात्मा है और न आत्मा है। न तो समष्टि है और न व्यक्ति है। परम शून्य है।
ये तीनों बड़ी विपरीत दृष्टियां हैं। और हजारों वर्ष तक इन तीनों दृष्टियों के बीच विवाद चलता रहा है। कोई निष्पत्ति, कोई निष्कर्ष भी नहीं निकलता। इन तीनों दृष्टियों को प्रस्तावित करने वाले लोग परमज्ञानी हैं। इन तीनों दृष्टियों का समर्थन अनुभवियों के द्वारा हुआ है, जिन्होंने जाना है। इसलिए बड़ी कठिनाई है कि इतना बड़ा भेद क्यों? पंडितों में विवाद हो, समझ में आ जाता है। क्योंकि अनुभव तो वहां नहीं है, शब्दों का जाल है, सिद्धांतों की तार्किक व्याख्या और व्यवस्था है, भीतर का कोई अनुभव नहीं है।
लेकिन महावीर, बुद्ध या शंकर--वे पंडित नहीं हैं। वे जो कह रहे हैं, वह किसी विचार का प्रतिपादन नहीं है। वह कोई फलसफा नहीं है। वे अपने अनुभव को ही कह रहे हैं। उन्होंने जो जाना है, वही कह रहे हैं। और उनके जानने में रत्तीभर भूल नहीं है। फिर इतना बड़ा विवाद क्यों?
इस कारण भारत की पूरी जीवन-धारा तीन हिस्सों में बंट गई। हिंदुओं की, जैनों की, बौद्धों की--तीन चिंतनाएं भारत के मन पर हावी रही हैं। और निर्णय न हो सकने से भारत का मन भी दुविधाग्रस्त हो गया है।
इसे थोड़े गहन और सूक्ष्म से समझना जरूरी है।
मेरे देखे इन तीनों में रत्तीभर भी भेद नहीं है। वक्तव्य बिल्कुल भिन्न है, सार जरा भी भिन्न नहीं है। और वक्तव्य केवल भिन्न नहीं हैं, बिल्कुल स्पष्ट रूप से विपरीत हैं--लेकिन प्रयोजन और अभिप्राय एक है। जो उस एक अभिप्राय को नहीं देख पाता, वह समस्त धर्मों के बीच एकता को भी कभी नहीं देख पाएगा। फिर भी इन तीन जीवन-धाराओं ने अलग-अलग प्रतिपादन किए, उसके कारण हैं।
वेद, उपनिषद, ब्रह्म-सूत्र, गीताएं घोषणा करती रही हैं कि वह एक है। इस
एक का अज्ञानियों ने जो अर्थ लिया, वह भयंकर हो गया। इस एक का यह अर्थ हुआ कि तब करने योग्य कुछ भी नहीं है। सभी रूप उसके हैं--पाप में भी वही है, पुण्य में भी वही है। साधु में भी वही है, चोर में भी वही है। संसार में भी वही है, मोक्ष में भी वही है। यहां भी वही है, वहां भी वही है। सब जगह वही है। बुरे में भी वही है। तो करने योग्य क्या है? कर्तव्य जैसी कोई चीज बचती नहीं।
अगर एक ही तत्व का सारा विस्तार है, तो जीवन में करने का कोई उपाय नहीं बचता। तब शुभ और अशुभ में भेद क्या है? तब धर्म और अधर्म में भेद क्या है? तब माया और ब्रह्म में भेद क्या है? अगर एक ही है, सच में अगर एक ही है--तो

कुछ करने को शेष नहीं रह जाता। क्या पाना है! क्या छोड़ना है! इस एक ब्रह्म की अनूठी धारणा का परिणाम एक गहन आलस्य हुआ। एक गहरा प्रमाद छा गया।
तो लोग वेद पढ़ते रहे, उपनिषद पढ़ते रहे, गीताएं कंठस्थ करते रहे, और करने योग्य कुछ भी शेष न बचा। जीवन रूपांतरित नहीं हुआ। जिन्होंने यह प्रतिपादन किया था, उनका इरादा यह नहीं था। लेकिन ज्ञानियों के इरादे और अज्ञानियों के मंतव्य कहीं मेल नहीं खाते। खा भी नहीं सकते। जिन्होंने कहा था, एक है, उनका प्रयोजन यह था कि तुम अपने को छोड़ दो। तुम नहीं हो; वही है। तुम्हारी अस्मिता, तुम्हारा अहंकार झूठा है। तुम यह समझते हो कि मैं हूं, यही तुम्हारी भ्रांति और यही तुम्हारे जीवन की बाधा है। यही तुम्हारा दुख, यही तुम्हारा बंधन है।
उस विराट में तुम अपनी सरिता को खो दो। तुम अपने को अलग बचाने की कोशिश मत करो। जीवन की सारी चिंता--मैं अलग हूं, इससे ही पैदा होती है। अगर मैं अलग हूं, तो मुझे मेरी सुरक्षा करनी पड़ेगी। अगर मैं अलग हूं, तो सबसे मैं लड़ रहा हूं। जीवन के संघर्ष में कोई मेरा साथी नहीं है, सब वस्तुतः मेरे प्रतियोगी हैं। तो जीवन एक कलह हो जाती है। उस कलह में चिंता का जन्म होता है।
और अगर मैं अलग हूं, तो मृत्यु का भय समा जाता है। क्योंकि फिर मुझे मरना पड़ेगा। व्यक्ति को तो हम रोज मरते देखते हैं, समष्टि कभी नहीं मरती। व्यक्ति तो मरते जाते हैं, विराट सदा जीता है। जीवन नष्ट नहीं होता, लेकिन जीवन अलग-अलग घेरों में बंद तो हमें रोज नष्ट होते दिखता है। दीए तो रोज बुझते हैं, अग्नि सदा है। तो फिर मृत्यु का भय समाता है। अगर मैं अलग हूं, तो मौत होगी; और अगर मैं इस विराट से जुड़ा हूं और एक हूं, तो मृत्यु का कोई आधार नहीं है; फिर जीवन अमृत है।
जिन्होंने चाहा था कि उस एक की धारणा व्यापक हो जाए, उनका प्रयोजन था
कि आपका अहंकार बिखर जाए, टूट जाए, गिर जाए। वह अहंकार तो नहीं बिखरा। यह तो ज्ञानी का प्रयोजन था। अज्ञानी ने जो अर्थ लिए, उसने परम ब्रह्म की, एक की धारणा से अहंकार को तो तोड़ा ही नहीं, अहंकार को और बढ़ाया। ब्रह्मज्ञानियों ने कहा था--अहं ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूं। उनका प्रयोजन था कि मैं नहीं हूं, ब्रह्म है। अज्ञानी ने समझा कि मैं हूं और मैं ही ब्रह्म हूं। अहं ब्रह्मास्मि जिन्होंने कहा था, उनका इरादा था कि बूंद नहीं है, सागर है। लेकिन बूंद ने समझा कि मैं सागर हूं। इससे बूंद मिटी नहीं, बल्कि बूंद और अहंकार से भर गई।
ज्ञानियों ने चाहा था कि जिस दिन ऐसा साफ अनुभव हो जाएगा कि एक ही है,
उस दिन पाप गिर जाएगा। क्योंकि पाप दूसरे के विरोध में है। हम पाप करते कब हैं? हम पाप तभी करते हैं, जब हम अपने सुख के लिए दूसरे को बलिदान करते हैं, वही पाप है। और अगर मैं ही हूं सबमें, अकेला मैं ही हूं सबमें फैला हुआ, और एक ही है, दूसरा कोई है नहीं, तो पाप का कोई उपाय नहीं रह जाता।
पाप के लिए दूसरा चाहिए। और पाप के लिए दूसरे को बलिदान करना चाहिए, अपने हित के लिए दूसरे के हित को नष्ट करना चाहिए। अगर एक ही है, तो कोई दूसरा नहीं है। और जहां कोई दूसरा नहीं है, वहां स्वार्थ और पाप का कोई उपाय नहीं है। तब मैं दूसरे को हानि पहुंचाता हूं तो अपने को ही हानि पहुंचाता हूं।
ज्ञानियों का अभिप्राय था कि जिस दिन आप न होंगे, उस दिन पाप का कोई उपाय न रह जाएगा। अज्ञानी ने समझा कि जब एक ही है, तो न कुछ पाप है, न कुछ पुण्य है, जो भी करो सभी ठीक है। क्योंकि सभी में वही एक व्याप्त है। महावीर को जिस दिन ब्रह्मज्ञान की यह पतन की अवस्था दिखाई पड़ी, तो महावीर ने सारी की सारी बात जहां मूल जड़ से उठ रही थी, उसे तोड़ने की कोशिश की। महावीर ने कहा कि कोई एक ब्रह्म नहीं है; प्रत्येक व्यक्ति स्वयं परमात्मा है। और बूंद को किसी सागर में नहीं खोना है, वरन बूंद को शुद्ध होते जाना है, परम शुद्ध होना है।
खोना--बात ही गलत है। क्योंकि खोने का जो अज्ञानियों ने अर्थ लिया था, उससे यह पूरा का पूरा देश गहन प्रमाद और आलस्य से भर गया था। ब्रह्म अज्ञान का आधार बन गया था, अज्ञान को मिटाने का कारण नहीं।

तो महावीर ने ब्रह्म को बिल्कुल ही छोड़ दिया। महावीर ने कहा कि ब्रह्म जैसी कोई चीज है ही नहीं। बस व्यक्ति, आत्मा है। और तुम्हें शुद्ध होना है, परिशुद्ध होना है। और पाप पाप है, पुण्य पुण्य है। और सभी में एक ही नहीं छाया हुआ है। बुरा बुरा है और भला भला है, और दोनों के बीच की भेद-रेखा साफ रखनी है; उस भेद-रेखा को खो नहीं देना है।
इसलिए महावीर ने अपने विचार को भेद-विज्ञान कहा है। उपनिषद कहते हैं-- अभेद। और महावीर ने अपनी पूरी पद्धति को कहा है--भेद का स्पष्ट बोध। गलत कहां है, सही कहां है? शुभ कहां है, अशुभ कहां है? साधुता कहां शुरू होती है, असाधुता कहां शुरू होती है? संसार कहां समाप्त होता है और मोक्ष कहां शुरू होता है? इसका ठीक-ठीक विवेक और भेद ही अध्यात्म का महावीर ने आधार बनाया, कि प्रत्येक व्यक्ति अलग है, उसे कहीं खोना नहीं है। और जब प्रत्येक व्यक्ति अलग है, तो सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर है।
अगर आप दुख में पड़ते हैं तो आप जिम्मेवार हैं--कोई परमात्मा नहीं। और अगर आप आनंद को उपलब्ध होते हैं तो आप ही जिम्मेवार हैं--किसी परमात्मा का प्रसाद नहीं। प्रार्थना महावीर ने विदा कर दी, सिर्फ ध्यान रह गया। और ध्यान का अर्थ था, अपने को इतना शुद्ध करते जाना कि एक दिन परमशुद्ध चेतना बचे। उस परमशुद्ध चेतना को महावीर ने परमात्मा कहा। परमात्मा परमेश्वर के अर्थों में नहीं है, परम आत्मा के अर्थों में है, शुद्धतम आत्मा के अर्थों में है।
महावीर का प्रयोजन था कि व्यक्ति का आलस्य टूटे, प्रमाद टूटे। यह जो धोखे का जाल उसने अपने चारों तरफ सिद्धांत का खड़ा कर लिया है, जिसके आधार से वह केवल मूर्च्छा में पड़ा है और पाप करने के लिए सुविधा पाता है, वह सारा आधार टूटे। व्यक्ति सजग हो, विवेकशील हो, जाग्रत हो और अपने ही पैरों पर खड़ा हो। किसी परमात्मा की प्रतीक्षा न करे; न प्रसाद की, न आशीर्वाद की, न परमात्मा के सहारे की; अपने ही पैरों पर खड़ा हो। यह बड़ी कीमती बात थी और व्यक्ति की परिशुद्धि के लिए बहुत बड़ा अभियान था। लेकिन जैसा सदा होगा, सदा हुआ है, वही हुआ।
महावीर का प्रयोजन था कि व्यक्ति शुद्ध हो और स्वयं परमात्मा हो जाए। अज्ञानी ने समझा कि मैं हूं, और कोई परमात्मा नहीं है जिसमें मुझे लीन होना है; मेरा होना वास्तविक है। महावीर की आत्मा का सिद्धांत अज्ञानी के लिए अहंकार की जड़ता बना। वह आत्मा नहीं बना, परमात्मा की तरफ परिशुद्ध भी नहीं हुआ, बल्कि गहन अहंकार से भर गया कि कोई परमात्मा नहीं है; मैं हूं। यह अहंकार कि मैं हूं जितना सघन होता चला जाए, उतना ही जीवन में मूर्च्छा गहन होगी। क्योंकि मैं शराब है। और जितना अहंकार होता है, उतना मद बढ़ जाता है। और उतना आदमी होश से नहीं जीता, बेहोशी से जीता है। और जहां कोई परमात्मा नहीं है, वहां झुकने की कोई वजह न रही।
तो जिन्हें भी अकड़कर खड़े रहना था, उनके लिए बड़ा सहारा मिला। झुकने का कोई सवाल नहीं। समर्पण की कोई बात नहीं। विनम्रता साधुता का लक्षण नहीं रही। दंभ, अकड़े हुए खड़े रहना... ।
अपने ही पैर पर महावीर ने कहा था, ताकि तुम प्रार्थना के नाम पर प्रमाद न करो। अपने ही पैर पर अज्ञानी ने समझा कि मैं ही हूं सब कुछ, और अपने ही पैर का भरोसा है। बस अपना ही भरोसा है। यह अहंकार सघन हुआ। इस अहंकार ने जैन-विचार को डुबाया। जैसे ब्रह्म के विचार ने हिंदू को आलस्य से भर दिया, वैसे आत्मा के विचार ने जैन को अहंकार से भर दिया।
और जब बुद्ध ने देखा कि ब्रह्म भी गर्त में ले गया और आत्मा भी गर्त में ले गई, तो बुद्ध ने कहा कि न कोई ब्रह्म है और न कोई आत्मा है, एक विराट शून्य है। बड़ा अदभुत प्रयोजन था। न कोई ब्रह्म है--क्योंकि जो भूल हिंदू- चिंतना में हुई थी, उसकी जड़ काटनी जरूरी थी। और जो भूल जैन-चिंतना में हुई थी, उसकी जड़ को भी काट देना जरूरी था--न कोई आत्मा है। तुम हो ही नहीं, भीतर कोई भी नहीं है।
इस ना-कुछ को पा लेना ही परमज्ञान है, बुद्ध ने कहा। इसलिए बुद्ध ने ब्रह्मलोक शब्द का उपयोग नहीं किया, मोक्ष शब्द का उपयोग नहीं किया, बुद्ध ने निर्वाण शब्द का उपयोग किया। निर्वाण का अर्थ है--दीए का बुझ जाना। जैसे दीया बुझ जाता है, फिर हम नहीं कहते कि उसकी ज्योति कहां है? कहां गई?

नहीं हो गई। बुद्ध कहते हैंः ज्ञानी का दीया जलता नहीं, बल्कि अस्मिता की, होने की ज्योति बिल्कुल बुझ जाती है। भीतर परम शून्य और सन्नाटा हो जाता है। उस शून्यता को पा लेना ही निर्वाण है।
बड़ी गहरी बात थी, क्योंकि इसमें न तो आलस्य को खड़े होने का उपाय था, न अहंकार के खड़े होने का उपाय था। लेकिन अज्ञानी ने सुना कि न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, तो उसे लगा, अब पाने योग्य कुछ भी नहीं है। जब कुछ है ही नहीं, तो पाना क्या है? और जब भीतर शून्य है ही, तो उपाय क्या करना है? साधना क्या करनी है?
बुद्ध का महान ख्याल अज्ञानी के लिए नास्तिकता जैसा लगा, कि जब कुछ भी नहीं है तो फिर जो भी भोग की छोटी-मोटी दुनिया है, उसको ही भोग लेना उचित है। शाश्वत तो कुछ है नहीं, तो क्षणभंगुर को छोड़ना क्यों? जो मिल रहा है, उसे ले लेना उचित है। क्योंकि आगे तो कुछ मिलने को नहीं है, आगे तो सिर्फ शून्य है।
बौद्ध-विचार शून्यता के कारण नष्ट हुआ। यह बड़ी हैरानी की बात है कि जिस विचार में जो चीज सबसे श्रेष्ठ थी, उसके कारण ही वह नष्ट हुआ। अज्ञानी अदभुत है। अज्ञानियों से ज्ञानी सदा हारे हैं। वे हर जगह से लूपहोल, वे हर जगह से भूल और छिद्र खोज लेते हैं, जिनसे वे अपने को बचा लें।
फिर विवाद में पड़ते हैं अज्ञानी। वे कहते हैं, हमारा सिद्धांत सही है; तुम्हारा गलत है।
सिद्धांतों का कोई मूल्य नहीं है धर्म के लिए, अभिप्राय का मूल्य है। इसे आप ठीक से समझ लें। सिद्धांतों का मूल्य सिर्फ दो कौड़ी के पंडितों के लिए है। धर्म का मूल्य, संतों के लिए, सिर्फ अभिप्राय का मूल्य है। क्या चाहते हैं शंकर? क्या चाहते हैं महावीर? क्या चाहते हैं बुद्ध? वे जो कह रहे हैं, वह इतना मूल्यवान नहीं है। किसलिए कह रहे हैं? वे जो कह रहे हैं, वह तो निमित्त है, वह तो सिर्फ इशारा है। किस तरफ इशारा है? लेकिन पंडित शब्दों को पकड़कर फिर सदियों तक लड़ते रहे हैं।
अभी जैन-पंडित सिद्ध ही किए चले जाते हैं कि परमात्मा नहीं है, आत्मा है। हिंदू-पंडित सिद्ध किए चला जाता है कि आत्मा नहीं परमात्मा है। बौद्ध-पंडित सिद्ध किए चला जाता है कि दोनों नहीं हैं; शून्य है।
किसी के सामने कुछ सिद्ध करने का सवाल ही नहीं है। अभिप्राय समझने की बात है, इशारे समझ लेने की बात है।
महावीर, बुद्ध और शंकर, तीनों का एक ही अभिप्राय है कि तुम बदल जाओ, तुम नए हो जाओ, तुम्हारी धूल झड़ जाए, तुम्हारा दर्पण शुद्ध हो जाए, तुम वह देख पाओ जो वस्तुतः है, दैट व्हिच इज, जो है। उसको ब्रह्म कहो, निर्वाण कहो, शून्य कहो, आत्मा कहो, सब शब्द हैं। सब कोरे शब्द हैं। कोई भी शब्द का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन जो है, वह अनाम है। उसको तुम जान पाओ, इतना अभिप्राय है।
लेकिन वे जो कहते हैं, हम उस पर विवाद करते हैं। वे जो कहते हैं, हम उस
पर चलते नहीं। वे जो कहते हैं, हम उस पर चिंतन-मनन करते हैं। वे जो कहते हैं, उस पर हम ध्यान नहीं करते। वे जो कहते हैं, उससे हम बुद्धि को भर लेते हैं। लेकिन उससे हमारे प्राणों का कोई रूपांतरण, कोई क्रांति घटित नहीं होती। तो सब हार गए हैं।
और हर बार जब भी कोई परम ज्ञान को उपलब्ध होता है, तो उसे बड़ी कठिनाई होती है कि आपसे क्या कहे? कैसे कहे? क्योंकि हजार उपाय खोजे गए हैं, लेकिन आप हर उपाय से अपने को बचा लेते हैं। नए-नए उपाय खोजे जाते हैं। थोड़े-बहुत लोग, जो बहुत चालाक नहीं हैं, सरल हैं, वे उन उपायों से लाभ उठा लेते हैं। जो चालाक हैं, वे फिर तरकीब निकाल लेते हैं।
इन चालाक लोगों ने संप्रदाय निर्मित किए हैं। ज्ञानी धर्म की बात कहता है, चालाक संप्रदाय निर्मित करते हैं। उसमें जो सीधे-सरल लोग हैं, उपनिषद की भाषा में जिनके पास सच में ही सूक्ष्म बुद्धि है, वे अपने को बदलते हैं, संप्रदाय निर्मित नहीं करते। इसकी फिक्र नहीं करते कि जो कहा गया है, वही सत्य है। वे इसकी फिक्र करते हैं, जो कहा गया है, वह उस तरफ इशारा है जहां सत्य है।

कही गई बातें सब इशारे हैं। और इशारे का मूल्य इतना ही है कि वह आपको आगे ले जाए, कहीं और आगे ले जाए। पर हम उन जैसे लोग हैं--जैसे रास्ते के किनारे मील के पत्थर होते हैं, उन पर तीर लगा होता है आगे की तरफ। अगर आप दिल्ली जा रहे हैं, तो तीर लगा होता है--दिल्ली आगे है। हम उस तरह के लोग हैं कि जहां दिल्ली लगा हुआ पत्थर देखा, उसको छाती से लगाकर बैठ गए कि दिल्ली पहुंच गए। वह जो तीर लगा है, उस पर हमारा ख्याल नहीं है। वह कोई पत्थर दिल्ली नहीं है, जिस पर दिल्ली लिखा हुआ है। सब पत्थर यही खबर दे रहे हैं कि दिल्ली दूर है। जिस दिन दिल्ली का पत्थर आएगा वहां शून्य बना होगा, जीरो। जिस दिन जीरो आ जाए उस दिन आप समझना कि दिल्ली आई। वहां कोई शब्द नहीं होगा; वहां कोई तीर नहीं होगा आगे-पीछे, सिर्फ शून्य होगा। बाकी जहां तक तीर हैं, जहां तक इशारे हैं, वहां तक आप समझना कि अभी दूर है।
कोई शास्त्र सत्य नहीं है, सभी शास्त्र मील के पत्थर हैं और कहते हैं-- आगे जाओ! मगर हम मील के पत्थरों को सिर पर रखकर बैठ जाते हैं। और अलग-अलग लोग अलग-अलग मील के पत्थरों को सिर पर रखे बैठे हैं। और उन सबमें बड़ा विवाद है कि किसकी दिल्ली सच है।
कोई शास्त्र सत्य नहीं है; सभी शास्त्र सत्य की ओर इंगित हैं। और जो
भी शास्त्र को पकड़ लेता है, वह शास्त्र को भी गलत कर देता है और अपने को भी गलत कर देता है।
सब शास्त्र कहते हैंः आगे जाना है, और उस समय तक चलते जाना है जब तक कि शब्द शून्य न हो जाए; जीरो न आ जाए। और जिस दिन शून्य आता है, उस दिन पता चलता है कि सब विभिन्न इशारे हैं। ज्ञानियों की अलग-अलग चेष्टाएं, उपाय, डिवाइसेस इस शून्य तक पहुंचाने के लिए थे। इस अनाम, निःशब्द मौन तक पहुंचाने के लिए थे।
अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।
समस्त प्राणियों के अंतरात्मारूप परमेश्वर एक होते हुए भी विभिन्न देहधारियों में प्रविष्ट होकर उन्हीं के रूप वाला बना हुआ है। वह भीतर रहने वाला ईश्वर बाहर भी है। जैसे संपूर्ण विश्व में प्रविष्ट एक ही अग्नि विभिन्न रूप वाली हो जाती है।
ऐसे ही उस परमात्मा की एक ही ऊर्जा अलग-अलग रूप वाली हो गई है। रूप भिन्न हैं, उनके भीतर जो छिपा हुआ अरूप, शक्ति है--वह एक है।
जिस प्रकार समस्त ब्रह्मांड में प्रविष्ट वायु एक होते हुए भी विभिन्न रूप वाला हो रहा है, वैसे ही सब प्राणियों में निवास करने वाला परमेश्वर एक होते हुए भी देहधारियों के अनुरूप रूप वाला रहता है। वही उनके बाहर भी स्थित है।
जिस प्रकार समस्त ब्रह्मांड का प्रकाशक सूर्यदेवता लोगों की आंखों
से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सब प्राणियों का अंतरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दुखों से लिप्त नहीं होता, क्योंकि सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है।
यह समझने जैसी है। साधक के लिए उसके मार्ग पर उपयोगी होने वाली बात है। रवींद्रनाथ ने लिखा है एक संस्मरण, कि एक दिन सुबह-सुबह उठकर मैं सागर की तरफ चला। वर्षा के दिन थे। और सब डबरे, पोखर, तालाब पानी से भरे थे। कोई डबरा गंदा भी था, कोई डबरा स्वच्छ भी था। फिर सागर के पास भी पहुंचा। सूरज उगा, गंदे डबरे में भी उसका प्रतिबिंब बना, शुद्ध स्वच्छ जल में भी उसका प्रतिबिंब बना, सागर में भी उसका प्रतिबिंब बना, एक छोटे से सड़क के किनारे बने हुए गड्ढे में भी उसका प्रतिबिंब बना।
रवींद्रनाथ ने कहा है कि मुझे आश्चर्य से भर गई यह घटना। एकदम मुझे ख्याल आया कि चाहे गंदे डबरे में प्रतिबिंब बनता हो और चाहे स्वच्छ डबरे में, प्रतिबिंब न तो गंदा होता है और न स्वच्छ। प्रतिबिंब कैसे गंदा हो सकता है? गंदे डबरे में सूरज की जो छाया बन रही है, वह कैसे गंदी हो सकती है? प्रतिबिंब को कोई गंदगी गंदा नहीं कर सकती। सागर में जो प्रतिबिंब बन रहा था, वह भी उसी सूरज का था; छोटे डबरे में जो प्रतिबिंब बन रहा था, वह भी उसी सूरज का था। और दोनों प्रतिबिंब बिल्कुल एक थे, उनमें जरा भी भेद न था।

रवींद्रनाथ ने लिखा है कि उस दिन मुझे लगा कि उपनिषदों के जो वचन हैं, उनका क्या अर्थ है--कि वह परमात्मा सभी के भीतर प्रगट हो रहा है। रूप भिन्न हैं, लेकिन वह जो प्रगट हो रहा है वह एक है।
और दूसरी बात यह सूत्र कह रहा है कि आपकी अशुद्धि उसे अशुद्ध नहीं कर सकती। कोई डबरे की अशुद्धि प्रतिबिंब को अशुद्ध नहीं कर सकती। इसलिए उपनिषद कहते हैं कि चोर के भीतर भी वह ब्रह्म चोर नहीं हो गया है, और साधु के भीतर वह ब्रह्म साधु नहीं हो गया है। क्योंकि वह कभी असाधु हुआ ही नहीं है कि साधु हो सके।
उपनिषद कहते हैं, वह ब्रह्म शुद्ध चैतन्य है। रूप कितना ही गंदा हो जाए, आकृति कितनी ही विकृत हो जाए, सारी अशुद्धियां रूप तक हैं; वह जो भीतर छिपा है, उस तक कोई अशुद्धि न कभी पहुंची है और न पहुंच सकती है।
यह बड़ी क्रांतिकारी बात है, बड़ी खतरनाक है। क्योंकि पापी सुनकर यह सोच सकता है कि तब ठीक है। जब वह अशुद्ध होता ही नहीं, तो फिर पाप करना क्यों छा.ेडना? और जब पुण्य से वह शुद्ध नहीं होने वाला है--क्योंकि वह अशुद्ध कभी हुआ नहीं--तो पुण्य करने का सार क्या?
यही अज्ञानी मन की व्याख्या उपद्रव खड़ा कर रही है।
उपनिषद कह रहे हैं कि वह कभी अशुद्ध नहीं हुआ, अगर इसे कोई समझपूर्वक समझ ले, तो अतीत का सारा बोझ एक क्षण में नष्ट हो जाएगा। अगर यह ख्याल आ जाए कि मेरे भीतर जो था वह कभी अशुद्ध नहीं हुआ, तो हमारे मन में जो अपराध की पीड़ा है, पाप का जो बोझ है, वह क्षण में नष्ट हो जाए।
मनसविद कहते हैं कि मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा दुर्भाग्य है गिल्ट, अपराध का भाव। और मनसविद कहते हैं कि ईसाइयत ने पश्चिम में अपराध का भाव पैदा करके मनुष्य को भारी नुकसान पहुंचाया।
लेकिन इस मुल्क में हमने मनुष्य को अपराध के भाव से मुक्त करके बहुत नुकसान पहुंचाया। ईसाइयत ने भी कुछ लोगों को साथ दिया और लाभ किया और हमने भी कुछ लोगों को साथ दिया और लाभ किया।
कुछ ऐसा दिखता हैः जो लोग लाभ ले सकते हैं, वे हर जगह से लाभ ले लेते हैं; और कुछ लोग जो हानि करने को उतारू हैं, वे हर जगह से हानि कर लेते हैं। कुछ ऐसे लोग हैं कि जहर से भी जीवन को सम्हाल लेते हैं, और कुछ ऐसे लोग हैं कि अमृत से भी आत्महत्या कर लेते हैं! यह लोगों पर निर्भर है। अमृत बिल्कुल बेकार है। जहर का कोई मतलब नहीं है। यह आदमी पर निर्भर है कि वह क्या करेगा।
ईसाइयत ने पश्चिम में जोर दिया कि आदमी पाप में जन्मा है। मूल आदमी का पाप में जन्म है। और ईश्वर ने आदमी को निकाला है बहिश्त से, क्योंकि उसने पाप किया, उसने ईश्वर की आज्ञा का उल्लंघन किया। और जब तक आदमी पाप से अपने को मुक्त नहीं कर लेता, बहिश्त के द्वार उसके लिए बंद रहेंगे। अदम ने जो भूल की थी, वह हर आदमी उसी पाप में सड़ रहा है। और उस पाप से उठने के लिए उसे बड़ा श्रम करना पड़ेगा।
ईसाइयत ने जोर दिया कि आदमी पापी है, पाप में ही उसका जन्म है। इससे निश्चित ही एक गहन अपराध का भाव पैदा हुआ। जो समझदार थे, उन्होंने जीवन को बदलने की कोशिश की, इस पाप से ऊपर उठने के लिए।
लेकिन जो नासमझ थे, उन्होंने कहा, जब आदमी पाप में ही पैदा हुआ है, तो पाप से कोई छुटकारा नहीं है। और जब अदम, मूल-आदमी भी पापी हुआ है, तो हम... ! और जब अदम ईश्वर के सामने भी पाप कर सका, बहिश्त में रहकर भी पाप कर सका, तो हम संसारीजन हैं, हम उसी की संतान हैं, उसी के जीवाणु हमारे भीतर चल रहे हैं--इसीलिए हमारा नाम आदमी है, क्योंकि हम अदम की औलाद हैं--तो हमसे क्या होगा! हजारों सदियों का पाप हमारे ऊपर है, इतना बोझ है, इसे फेंकना असंभव है। हमारी आत्मा ही पापी हो गई है, इसलिए पाप को स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है।
इसलिए पश्चिम भौतिकवादी हो गया। पश्चिम के भौतिकवादी होने का कारण था
कि पाप को पश्चिम ने स्वीकार कर लिया, उससे छुटकारे का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। आदमी पापी ही रहेगा। हां, प्रभु की कृपा होगी, अनुकंपा होगी, तो वह पाप से उठा लेगा।

लेकिन अगर प्रभु की अनुकंपा ही होती तो वह अदम को ही पाप से हटा लेता-- पहले ही आदमी को, जिसने पाप किया था। फिर इतनी बड़ी पाप कीशृंखला को पैदा करने की कोई जरूरत न थी।
पश्चिम भौतिकवादी हो गया, क्योंकि पाप करने के सिवाय कोई उपाय नहीं। सवाल यही है कि ढंग से पाप करो, कुशलता से पाप करो, जितना ज्यादा कर सको उतना करो। क्योंकि जीवन में कोई और रास्ता नहीं है। पाप में ही हमारा रोआं-रोआं पैदा हुआ है, इसलिए पाप हम करेंगे।
ठीक इससे उलटा प्रयोग हमने किया था कि वह शुद्ध परमात्मा कभी पापी होता ही नहीं। वह अशुद्ध नहीं होता; वह परम शुद्ध है। उसकी शुद्धि में आप कितने ही पाप करें तो कोई अंतर नहीं डाल सकते। जो समझते थे, उन्होंने इस सत्य को समझकर पाप करने की धारणा ही छोड़ दी, क्योंकि पाप करने से कुछ भी नहीं होने वाला है। और वह जो परम शुद्ध का जिन्हें बोध आ गया, उस बोध के साथ ही पाप की धारणा टूट गई, पाप की वासना टूट गई; गलत करने का सवाल न रहा। लेकिन अधिक लोगों ने कहा कि जब उसमें कोई अंतर ही नहीं पड़ता, तो पाप करने में हर्ज क्या है! जब उसमें कोई भेद ही नहीं पड़ता, जब वह सदा शुद्ध ही है, तो पाप किए चले जाओ।
अक्सर ब्रह्मज्ञानी लोगों को समझाते हैं कि वह आत्मा परम शुद्ध है। पापी सिर हिलाते हैं, वे कहते हैं, बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। उनके पाप का बोध कम होता है। उन्हें लगता है कि बिल्कुल ठीक, हम शुद्ध ही हैं। तो फिर कोई फर्क नहीं हममें और बुद्ध में, और महावीर में और हममें। भेद ऊपरी है, भीतर तो सब एक ही हैं।
पर यह बात अपने आप में बड़ी कीमत की है कि उसे अशुद्ध नहीं किया जा सकता। आप जन्मों-जन्मों तक भी कोशिश करते रहें, तो भी चेतना को अशुद्ध करने का कोई उपाय नहीं। क्योंकि चेतना का स्वभाव शुद्धि है। सिर्फ आप ऊपर कचरा इकट्ठा कर सकते हैं, लेकिन भीतर वह जो हीरा है, वह जो जगमगाता हुआ प्रकाश है, उसको आप सिर्फ ढांक सकते हैं, उसको मिटा नहीं सकते। जिनको यह स्मरण आ जाए, वे मिटाने की कोशिश छोड़ देंगे और वे उस हीरे की तलाश में लग जाएंगे, जिसको पाप नहीं छू सकता।
और यह बात थोड़े-से ही अनुभव से साफ हो सकती है, क्योंकि भीतर जो आपके
है वह कर्ता नहीं है, वह साक्षी है। जब आप चोरी करते हैं, तब भी भीतर कोई देखता रहता है कि आप चोरी करने जा रहे हैं। वह जो देखता है, उसे चोरी का कोई पाप नहीं लग सकता। वह सिर्फ विटनेस है, वह सिर्फ गवाह है। उसने सिर्फ देखा है आपको चोरी करते। और जब आप मंदिर प्रार्थना करने जाते हैं, तब भी वह द्रष्टा है। वह देख रहा है कि आप मंदिर प्रार्थना करने जा रहे हैं। कोई पुण्य उसे पकड़ नहीं सकता।
आप क्या करते हैं, वह बाहर-बाहर है। कर्म बाहर है, होश भीतर है। और होश कभी भी कर्म नहीं बनता, और कर्म कभी होश नहीं बन सकता।
तो आपके भीतर दो पृथक धाराएं हैं। एक कर्म की धारा है। यह कर्म की धारा आपके शरीर से जन्मती है।
अभी बड़े प्रयोग हुए हैं कि मनुष्य की वासना वस्तुतः कहां पैदा होती है। क्योंकि वासना ही कर्म में ले जाती है। वैज्ञानिक जो प्रयोग कर रहे हैं, वे बड़े हैरान करने वाले हैं, क्योंकि सारी वासना शरीर में पैदा होती है। पुरुष का हार्मोन होता है, स्त्री का हार्मोन होता है, रासायनिक-तत्व होते हैं। अगर एक स्त्री में पुरुष के हार्मोन के इंजेक्शन दे दिए जाएं, तो उसका सारा व्यवहार बदल जाता है। उसकी आवाज पुरुष जैसी कर्कश हो जाती है; स्त्री का माधुर्य खो जाता है। उसका ढंग आक्रामक हो जाता है।
स्त्री आक्रामक नहीं है। प्रेम में भी स्त्री आक्रमण नहीं करती, वह प्रतीक्षा करती है। प्रेम में भी इनीशिएटिव नहीं लेती। कोई स्त्री कभी किसी पुरुष से शुरू में नहीं कहती कि मैं तुम्हें प्रेम करती हूं, कि मैं तुम्हारे बिना मर जाऊंगी। अगर कोई स्त्री ऐसा कहे, तो पुरुष को वहां से भाग खड़े होना चाहिए। क्योंकि वह स्त्री स्त्री नहीं है। हमेशा पुरुष ही कहेगा कि मैं प्रेम करता हूं, और तुम्हारे बिना मर जाऊंगा। स्त्री सिर्फ राजी भरेगी, हां भरेगी। वह हां भी बड़ी मौन होगी--पैसिव, निष्क्रिय होगी। उसमें कोई सक्रियता नहीं है। उसका कारण है उसके पूरे शरीर की व्यवस्था।

स्त्री पुरुष को अपने भीतर स्वीकार करती है। पुरुष स्त्री के ऊपर आक्रमण करता है। पुरुष का स्वभाव आक्रमण है, एग्रेशन है। लेकिन अगर पुरुष के हार्मोन का इंजेक्शन स्त्री को दे दिया जाए, तो स्त्री आक्रामक हो जाती है। अगर स्त्री के हार्मोन का इंजेक्शन पुरुष को दे दिया जाए, तो वह निष्क्रिय हो जाता है। वह बैठा प्रतीक्षा करेगा कि कोई स्त्री आए और आक्रमण करे।
एक बंदरों के समूह में एक वैज्ञानिक प्रयोग कर रहा था। उसने एक स्त्रैण, अति स्त्रैण मादा को, जो कि अति विनम्र थी, और उस समूह में बंदरों के जिसका कोई पद नहीं था--क्योंकि बंदरों में पद होते हैं। ठीक जैसे राजनीतिज्ञों में सीढ़ियां होती हैं, ऐसे बंदरों में होती हैं। कोई राष्ट्रपति है, कोई प्रधानमंत्री है, कोई केबिनेट के मेंबर्स हैं! ऐसा सिलसिला होता है। वैज्ञानिक तो कहते हैं कि बंदरों की ये आदतें राजनीति में चल रही हैं। उनमें जरा भी भेद नहीं है।
वह स्त्री मादा बंदर जो कि बिल्कुल ही किसी पद पर नहीं थी, सर्वहारा थी, बिल्कुल आखिरी में थी, उसको बड़ी मात्रा के इंजेक्शन दिए नर हार्मोन्स के। जैसे ही उन इंजेक्शन्स का प्रभाव चौबीस घंटे में होना शुरू हुआ, वह स्त्री इतनी आक्रामक हो गई कि उसने सारे पदों पर जितने नर बंदर बैठे हुए थे, सबको ठिकाने लगा दिया। वह करीब-करीब इंदिरा गांधी की तरह ऊपर हो गई। वह जो समूह में कामराज, निजलिंगप्पा सब थे, वे सब बिल्कुल उतार दिए गए।
इस वैज्ञानिक ने लिखा है कि बड़े पुराने लड़ाके, उनको उसने सबको ठीक कर दिया! वे सब उदास होकर बैठ गए। उसने उन पर ऐसा कब्जा कर दिया कि वह उनको जरा उत्पात और ऊधम भी न करने दे, जो कि बंदर का स्वभाव है। और सारा फर्क इस बात से हुआ कि हार्मोन... ।
आप जो भी कर रहे हैं, उसमें शरीर का हाथ है। आपके व्यवहार में, आपके उठने-बैठने में, चलने में, आपकी वासनाओं में, आपकी इच्छाओं में, आपकी दौड़, महत्वाकांक्षा में, संघर्ष में, सबमें हार्मोन का हाथ है। थोड़े-से रासायनिक-तत्व बड़ा फर्क पैदा करते हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई--पुराने समय में, सस्ते समय में--पांच रुपये के रासायनिक-तत्व एक आदमी के शरीर में होते हैं। अब कोई पंद्रह रुपये के होते हैं! स्त्री के शरीर में कोई सोलह रुपये के होते हैं।
तो इसका ध्यान रखना कि रासायनिक रूप से स्त्री ज्यादा कीमती है। बस
वह एक रुपए के रासायनिक-तत्वों का स्त्री-पुरुष में फर्क है। और इसलिए अब वैज्ञानिक कहते हैं कि स्त्री शरीर को बाद में भी इंजेक्शन देकर पुरुष बनाया जा सकता है, पुरुष के शरीर को स्त्री बनाया जा सकता है। और इस सदी के पूरे होते-होते आप निर्णय भर कर लें कि आपको स्त्री होना है कि पुरुष होना है, वह हो सकेगा। उसमें कोई कठिनाई अब प्रयोग के रूप में नहीं रह गई है। फिर एक आदमी चोरी कर रहा है, और एक आदमी हत्या कर रहा है, हिंसा कर रहा है, वैज्ञानिक कहते हैंः इनका भी कारण शारीरिक है। इसलिए हम जो दंड देते हैं, वह नासमझी है। वह ऐसे ही है जैसे कोई आदमी टी.बी. का बीमार है, आप उसको सजा कर दें कि तुमको टी.बी. क्यों हुई? अब वह आदमी क्या कर सकता है?
एक आदमी हत्यारा सिद्ध होता है, वैज्ञानिक कहते हैं कि हम सजा उसको देते रहे, क्योंकि हत्या का विज्ञान हम अब तक नहीं समझ पाए कि कौन-से तत्व उसके शरीर में उसे हत्या के लिए प्रेरित कर रहे हैं। बजाय उसको हत्या करने की सजा देने के, उसको फांसी लगाने के, जिंदगीभर जेल में रखने के, बेहतर होगा उसके हार्मोन बदल देना। वह काम एक इंजेक्शन से भी हो सकेगा।
यह खोज कीमती है, लेकिन खतरनाक भी। हर कीमती खोज खतरनाक होती है, क्योंकि अज्ञानियों के हाथ में लगती है। इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम हत्यारे को गैर-हत्यारा बना सकते हैं सिर्फ इंजेक्शन देकर, तो हम गैर-हत्यारों को हत्यारा बना सकते हैं इंजेक्शन देकर। मुल्क युद्ध में हो तो आप अपने सारे मिलिट्री के जवानों को इंजेक्शन दे सकते हैं, वे बिल्कुल पागल होकर हत्या में लग जाएं। उनसे फिर कोई मुल्क जीत नहीं सकेगा दूसरा, जिसको वह कला पता नहीं। मुल्क में बगावत हो रही हो, लोग विद्रोही हों, आंदोलन कर रहे हों, सिर्फ इंजेक्शन देने की जरूरत है। वे बिल्कुल जी-हजूर

हो जाएंगे। वे बिल्कुल बैठकर पूंछ हिलाने लगेंगे आपकी प्रशंसा में। खतरनाक है खोज, लेकिन अर्थपूर्ण भी।
और भारतीय मनीषा बहुत दिन से यह कह रही है कि वह भीतर जो छिपा है, वह सिर्फ साक्षी है, वह कर्ता नहीं है। कर्ता तो बाहर है। कर्म का जो जाल है, वह शरीर है और मन से जुड़ा है। भीतर की शुद्ध चेतना साक्षी है, वह सिर्फ देखती है। उसने कभी कोई कर्म नहीं किया है।
अगर आप धीरे-धीरे अपने कर्मों के साक्षी होने लगें, तो आपके भीतर की साक्षी चेतना जगने लगेगी। वह सोई पड़ी है, उसका आपने कभी उपयोग नहीं किया। इसलिए ध्यान के सब प्रयोग मूलतः भीतर सोए हुए साक्षी को जगाने की चेष्टाएं हैं कि वह देखने वाला जग जाए, वह होश से भर जाए। जैसे ही वह होश से भर जाता है, वैसे ही जो गलत है आपकी जिंदगी में, अपने आप गिरने लगेगा। जो सही है, वह अपने आप बढ़ने लगेगा। क्यों? क्योंकि आपके सहयोग के बिना शरीर भी कर्म नहीं कर सकता है। आपका सहयोग तो चाहिए ही। आप कर्म नहीं करते हैं, लेकिन आपका आंतरिक सहयोग, कोआपरेशन तो शरीर को भी चाहिए।
अगर कोई व्यक्ति पूरी तरह साक्षी है, तो आप उसको कितने ही इंजेक्शन दे दें आक्रमण के, वह आक्रामक नहीं होगा।
इसे थोड़ा समझने जैसा है।
जैनियों के चौबीस तीर्थंकर ही क्षत्रिय हैं, आक्रामक घरों में पैदा हुए। और अगर कभी इनके हार्मोन की कोई व्याख्या हो सकती--अब तो मुश्किल है-- तो इन सबके भीतर आक्रमण के भयंकर हार्मोन रहे होंगे। क्योंकि क्षत्रिय घरों में पैदा हुए थे, राजाओं के बेटे थे। इनकी सारी परंपरा, इनके मां-बाप का सारा ढंग आक्रमण का था। हार्मोन तो वसीयत में मिलते हैं, हिरेडिटरि होते हैं। ये चौबीस जैनों के तीर्थंकर, बुद्ध, ये सब क्षत्रिय हैं--और इन सबने अहिंसा का उपदेश दिया! ये सब हिंसक घरों में पैदा हुए और हिंसा इनकी बपौती थी, और इन्होंने अहिंसा का उपदेश दिया! निश्चित ही ये इतने गहन रूप से साक्षी हो गए होंगे कि इनके आक्रमण के हार्मोन इन पर कोई प्रभाव नहीं कर सके।
यह बड़े मजे की बात है कि अब तक कोई भी, एक ब्राह्मण भी--एक भी ब्राह्मण--अहिंसा का उपदेष्टा नहीं हुआ है। और खतरनाक से खतरनाक जिस ब्राह्मण को हम जानते हैं वह परशुराम है, जिसने क्षत्रियों को पृथ्वी से कई दफे समाप्त कर दिया। और ये पच्चीस--एक बुद्ध और चौबीस जैनों के तीर्थंकर--ये सब क्षत्रिय हैं, जिनके खून में लड़ाई थी, लेकिन ये अहिंसा के उपदेष्टा बन सके।
परशुराम और इनके बीच एक ही बात घट रही है। परशुराम भी साक्षी हैं। और साक्षी होकर परशुराम ने जाना--उसके ब्राह्मण के हार्मोन सारे के सारे अहिंसा के हैं--लेकिन साक्षी होकर परशुराम को दिखाई पड़ा कि क्षत्रियों ने भयंकर उत्पात कर रखा है। सारे जीवन को उपद्रव से भर दिया है। इनके कारण ही हिंसा है। हिंसा को मिटाने के लिए परशुराम ने सारे क्षत्रियों का सफाया शुरू कर दिया।
एक ब्राह्मण इतनी हिंसा कर सकता है, अगर साक्षी जगे। तो कर्म से अपने
को अलग कर लेता है, फिर सोच पाता है कि क्या करना उचित है और क्या करना उचित नहीं। ये पच्चीस--चौबीस जैनों के तीर्थंकर और एक बुद्ध--ये सब क्षत्रिय हैं, इनके पास लड़ाई का तत्व है, इनके खून में लड़ाई है, लेकिन साक्षी-भाव ने दिखाया कि लड़ाई व्यर्थ है, और उससे कुछ परिणाम नहीं निकलते। वे शांत हो गए और उनके जीवन से हिंसा बिल्कुल गिर गई।
साक्षी-भाव हो तो हार्मोन का प्रभाव नष्ट हो जाता है, यह मैं कह रहा हूं। फिर चाहे परशुराम की तरह नष्ट हो, चाहे महावीर की तरह नष्ट हो। लेकिन साक्षी-चेतना अपना निर्णय करती है, शरीर उसका मालिक नहीं रह जाता। शरीर उसको नहीं खींच सकता। साक्षी-चेतना अपने ही जीवन को अपनी ही सहजता से जीने लगती है, साक्षी-चेतना की अपनी ही गति है। वह गति परम स्वतंत्र है।
और दूसरी बात, साक्षी-चेतना कुछ भी करे, करते हुए भी जानती है कि मैं करने वाली नहीं हूं, मैं सिर्फ साक्षी हूं। इसलिए मैं मानता हूं कि परशुराम को कोई पाप लगा नहीं होगा, लग नहीं सकता। परशुराम भी समझने जैसे

व्यक्तित्व हैं। कोई पाप लगा नहीं होगा, क्योंकि बड़े साक्षी-भाव से ये हत्याएं की गई थीं।
कृष्ण इसी हत्या की सलाह अर्जुन को भी गीता में दे रहे हैं कि तू साक्षी-भाव से... । इसकी फिक्र छोड़कर कि तू कर्ता है; मात्र निमित्त, मात्र साक्षी तू इस युद्ध में उतर जा। अर्जुन की तकलीफ यह है कि वह साक्षी नहीं हो पा रहा है। उसे बार-बार ऐसा लग रहा है कि मैं कर रहा हूं। मैं हत्या करूंगा अपने प्रियजनों की! वह आइडेंटिफाइड है। वह अपने कर्म से अपने को जोड़ रहा है। कृष्ण की पूरी चेष्टा अर्जुन में साक्षी-भाव लाने की है कि युद्ध करते वक्त भी जान कि तू करने वाला नहीं है।
जैसे ही कोई व्यक्ति भीतर होश से भर जाता है, वैसे ही करने वाला नहीं
रह जाता।
यह सूत्र कह रहा हैः
जिस प्रकार समस्त ब्रह्मांड का प्रकाशक सूर्यदेवता लोगों की आंखों
से होने वाले बाहर के दोषों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार सब प्राणियों का अंतरात्मा एक परब्रह्म परमात्मा लोगों के दुखों से लिप्त नहीं होता, क्योंकि सबमें रहता हुआ भी वह सबसे अलग है।
वह अलगपन का बोध ही साक्षी-भाव है।
जो सब प्राणियों का अंतर्यामी, अद्वितीय एवं सबको वश में रखने वाला परमात्मा अपने एक ही रूप को बहुत प्रकार से बना लेता है, उस अपने अंदर रहने वाले परमात्मा को जो ज्ञानी पुरुष निरंतर देखते रहते हैं, उन्हीं को सदा अटल रहने वाला परमानंद स्वरूप वास्तविक सुख मिलता है, दूसरों को नहीं। केवल वे ही लोग सुख की थोड़ी-सी अनुभूति उपलब्ध कर पाते हैं, जो कर्ता
से अपने साक्षी को अलग तोड़ लेते हैं। जैसे-जैसे यह अनुभूति गहरी होने लगती है, वैसे-वैसे आनंद भी बढ़ने लगता है। आखिरी क्षण में जब साक्षी बिल्कुल ही पृथक हो जाता है, देखने वाला करने वाले से बिल्कुल अलग हो जाता है, तो परम आनंद की अनुभूति होती है।
जो नित्यों का भी नित्य है, चेतनों का भी चेतन है और अकेला ही इन अनेक जीवों के कर्मफल-भोगों का विधान करता है, उस अपने अंदर रहने वाले पुरुषोत्तम को ये जो ज्ञानी निरंतर देखते रहते हैं, उन्हीं को सदा अटल रहने वाली शांति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं।
भीतर के इस स्वभाव की, साक्षीपन की, जागरूकता की जिन्हें सदा प्रतीति बनी रहती है, वे ही केवल अटल शांति को प्राप्त होते हैं।
जिज्ञासु नचिकेता इस प्रकार उस ब्रह्म-प्राप्ति के आनंद और शांति की महिमा सुनकर मन ही मन विचार करने लगा--वह अनिर्वचनीय परमसुख यह परमात्मा ही है, ऐसा ज्ञानीजन मानते हैं, उसको किस प्रकार से मैं भलीभांति समझूं! क्या वह प्रकाशित होता है या अनुभव में आता है?
बड़ा गहन सवाल नचिकेता के मन में उठा कि जिससे परम शांति मिलती है और जिससे परम आनंद मिलता है, वह परमात्मा प्रकाशित होता है या अनुभव में आता है? यह भेद समझने जैसा है।
आपको मैं देख रहा हूं, आप मेरे अनुभव में नहीं आ रहे, आप प्रकाशित हो रहे हैं। अगर यहां अंधेरा हो जाए, तो मैं आपको नहीं देख सकूंगा। प्रकाश चाहिए। दूसरे को देखने के लिए प्रकाश चाहिए। दूसरा प्रकाशित हो तो ही दिखाई पड़ता है, लेकिन स्वयं को देखने के लिए प्रकाश नहीं चाहिए। स्वयं को देखने के लिए अनुभव काफी है। अंधेरे में भी हो जाता है।
नचिकेता के मन में सवाल उठा कि यह परमात्मा बाहर की एक वस्तु की तरह प्रगट होगा--कि मैं प्रकाश में उसको देखूंगा कि खड़ा है महिमामंडित परमपुरुष--या मेरे भीतर के अनुभव में आएगा, जहां बाहर के किसी प्रकाश की कोई भी जरूरत नहीं है? परमात्मा पदार्थ की तरह प्रगट होगा, अन्य की तरह प्रगट होगा या स्वयं की तरह प्रगट होगा, चैतन्य की तरह प्रगट होगा? परमात्मा मेरे भीतर प्रगट होगा या मेरे बाहर प्रगट होगा? यह परमात्मा बाहर है या भीतर?
क्योंकि बाहर जो भी चीजें हैं, उनके लिए कोई माध्यम चाहिए प्रकाशित होने का, तभी वे दिखाई पड़ती हैं। सिर्फ भीतर बिना माध्यम के, बिना प्रकाश के, मात्र अनुभव से घटना घटती है।

तो नचिकेता के मन में सवाल उठा है कि यह परमात्मा प्रकाशित होता है या अनुभव में आता है? क्योंकि अगर प्रकाशित होता है, तो फिर मुझसे कहीं दूर है--उसे खोजना पड़ेगा। उसका मंदिर, उसका महल, उसका स्थान, उसका परमपद मुझे खोजना पड़ेगा। और अगर प्रकाशित होता है, तो मुझे वह प्रकाश खोजना पड़ेगा, जिसमें मैं उस परमात्मा को देख सकूं। प्रक्रिया बिल्कुल बदल जाएगी। और अगर वह अनुभव में आता है, तो फिर मुझे कहीं जाने की जरूरत नहीं। अगर वह अनुभव में आता है, तो फिर किसी प्रकाश की भी जरूरत नहीं। फिर मैं अपने भीतर ही डूब जाऊं, तो मैं उसे पा लूंगा। ये दो मार्ग हैं।
साधारणतः लोग परमात्मा की प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना का मतलब है,
वह बाहर है। प्रार्थना प्रकाश का काम करेगी, फोकस का, और हम उसको देखेंगे। पूजा करते हैं, पूजा प्रकाश है। पूजा के प्रकाश में वह प्रगट होगा; हम उसे देखेंगे। एक मार्ग पूजा और प्रार्थना का है, उपासना का है। उपासना की धारणा है कि वह बाहर है; वह परमपुरुष कहीं छिपा है बाहर, आकाश में--वह प्रगट होगा। अगर हम तैयार हो गए, तो वह प्रगट होगा।
दूसरा मार्ग ध्यान का है, साधना का है। वह परमपुरुष बाहर नहीं छिपा है, भीतर मौजूद है। इसलिए किसी पूजा-पाठ का सवाल नहीं है; मेरे ही निखार का सवाल है। मैं ही भीतर शुद्ध होता चला जाऊं, जागता चला जाऊं--वह प्रगट होगा। उसके लिए किसी बाह्य-साधन, अनुष्ठान, रिचुअल की कोई भी जरूरत नहीं है। पहला मार्ग बिल्कुल गलत है, लेकिन बहुत लोगों को अपील करता है। दूसरा मार्ग बिल्कुल सही है, लेकिन बहुत कम लोगों को आकर्षित करता है। क्यों? क्योंकि पहला मार्ग सुगम मालूम होता है। हम सत्य से कम, सुगम से ज्यादा आकर्षित होते हैं। फिर पहले मार्ग में हमें खुद को नहीं बदलना होता है। पूजा की सामग्री इकट्ठी करने में क्या अड़चन है! दीया जलाने में, धूप-दीप बालने में, घंटा बजाने में क्या अड़चन है! हम तो वही के वही रहते हैं।
आदमी मंदिर चला आता है, वही का वही आदमी जो दुकान पर बैठा था, उसमें रत्तीभर फर्क नहीं होता। वह जैसे दुकान पर दुकान का काम करता था, ऐसे मंदिर में आकर मंदिर का, पूजा का क्रियाकांड पूरा कर देता है। मंदिर से वापस चला जाता है वैसा का वैसा, जैसा आया था। दुकान पर उसमें रत्तीभर फर्क नहीं पाएंगे। वह वही आदमी होगा। शायद और भी ज्यादा खतरनाक हो सकता है। क्योंकि घंटाभर जो पूजा में खराब हुआ, इसका बदला भी उसको दुकान में ही निकालना पड़ेगा। वह ग्राहक को ज्यादा चूसेगा, क्योंकि घंटाभर जो खराब हुआ, वह जो परमात्मा को दे आया है, ग्राहक की जेब से निकालेगा।
इसलिए धार्मिक दुकानदार अक्सर खतरनाक दुकानदार होते हैं। तो धार्मिक आदमी से जरा सावधान रहना चाहिए, क्योंकि कुछ समय वह परमात्मा को दे रहा है, जो उसे लग रहा कि व्यर्थ जा रहा है। उसको कहीं से वह निकालना चाहेगा। उसकी जिंदगी में कोई फर्क नहीं दिखाई पड़ता। जिंदगीभर मंदिर जाकर, वह वही का वही बना रहता है।
लेकिन सुगम है मंदिर जाना; मन में जाना कठिन है। इसलिए सुगम को लोग चुन लेते हैं। पर सुगमता से कोई सत्य का संबंध नहीं है। सुविधा से सत्य का कोई संबंध नहीं है। इसलिए अधिक लोग पूजा करते हैं, प्रार्थना करते हैं। बहुत थोड़े लोग ध्यान करते हैं। पर जो ध्यान करते हैं, वे ही पहुंचते हैं। यही नचिकेता के मन में सवाल उठा है कि मैं प्रार्थना करूं? कि ध्यान करूं? मैं उसे बाहर खोजूं किसी क्रियाकांड से, या भीतर खोजूं स्वयं जागकर? वह अनुभव में आता है, या प्रकाशित होता है?
नचिकेता के इस आंतरिक-भाव को समझकर यमराज ने कहा--वहां न तो सूर्य प्रकाशित होता है, न चंद्रमा और तारों का समुदाय ही प्रकाशित होता है, और न ये बिजलियां ही वहां प्रकाशित होती हैं। फिर यह लौकिक अग्नि--ये दीए तुम जो जलाते हो--इनसे वह कैसे प्रकाशित हो सकता है, क्योंकि उसी के प्रकाश से ऊपर बतलाए हुए सूर्यादि सब प्रकाशित होते हैं। उसी के प्रकाश से यह संपूर्ण जगत प्रकाशित होता है।
सूरज निकला हो तो हम उसे कैसे जानते हैं?
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन सुबह अपने नौकर से कह रहा था, तू जरा बाहर जाकर देख, सर्दी बहुत है, सूरज निकला कि नहीं? उस आदमी ने लौटकर कहा कि

बाहर तो घुप्प अंधेरा है! तो नसरुद्दीन ने कहा, दीया जलाकर देख, सूरज निकला कि नहीं?
सूरज को देखने के लिए किसी दीए की कोई जरूरत तो है नहीं। सूरज स्वयं प्रकाशित है। असल में दूसरी चीजों को हम सूरज के प्रकाश से देखते हैं। सूरज को किसी प्रकाश से नहीं देखते।
यम कह रहा है कि सूर्य का प्रकाश भी उसके ही प्रकाश से प्रकाशित है। सूरज के पीछे भी उसी की ऊर्जा छिपी है। सारी अग्नि में वही जल रहा है, सारी किरणें उसी की हैं। इसलिए तुम उसे किसके प्रकाश में देखोगे? उसे देखने के लिए किसी प्रकाश की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि वह स्वयं ही प्रकाश का मूल स्रोत और आधार है।
वह अनुभव से देखा जाएगा, प्रकाश से नहीं। मूल स्रोत में सरककर देखा जाएगा। उसके लिए कोई दीया लेकर खोजने की आवश्यकता नहीं है। उसे खोजने के लिए कहीं भी नहीं जाना है। अपने ही भीतर, अपने जीवन के मूल स्रोत में सरक जाना है। वह वहां मौजूद है। उससे ही सब प्रकाशित है। आंखें उसी से देख रही हैं। चांद-तारे उसी से ज्योतिर्मय हैं। सारा अस्तित्व उसकी ही धड़कन है। उसे जानने के लिए किसी माध्यम की कोई भी जरूरत नहीं है।
उसे हम इमीजिएट, इसी क्षण जान सकते हैं, क्योंकि कोई माध्यम आवश्यक नहीं है। उसका ज्ञान सीधा हो सकता है, उसका ज्ञान परोक्ष नहीं है।
ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
तेरहवां प्रवचन

सत्य की अभिव्यंजना विपरीतताओं में

तृतीय वल्ली

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत्।। 1।।

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।। 2।।

भयादस्याग्निस्तपति भयात तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः।। 3।।

इह चेदशकद बोद्धुं प्राक शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते।। 4।।

ऊपर की ओर मूल वाला और नीचे की ओर शाखा वाला यह (प्रत्यक्ष जगत) सनातन पीपल का वृक्ष है। इसका मूलभूत तत्व वह (परमेश्वर) ही है। वही ब्रह्म है (और) वही अमृत कहलाता है। सब लोक उसी के आश्रित हैं। कोई भी उसको लांघ नहीं सकता। यही है वह (परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था)।। 1।।

(परब्रह्म परमेश्वर से) निकला हुआ यह जो कुछ भी संपूर्ण जगत है, उस प्राणस्वरूप परमेश्वर में ही चेष्टा करता है। इस उठे हुए वज्र के समान महान भयस्वरूप (सर्वशक्तिमान) परमेश्वर को जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं, अर्थात जन्म-मरण से छूट जाते हैं।। 2।।

इसी के भय से अग्नि तपती है, (इसी के) भय से सूर्य तपता है तथा इसी के भय
से इंद्र, वायु और पांचवें मृत्यु देवता (अपने-अपने काम में) प्रवृत्त हो रहे हैं।। 3।।

यदि शरीर का पतन होने से पहले इस मनुष्य शरीर में ही (साधक) परमात्मा
को साक्षात कर सका (तब तो ठीक है), नहीं तो फिर अनेक कल्पों तक नाना लोक और योनियों में शरीर धारण करने को विवश होता है।। 4।।

जैसे किसी सरोवर के किनारे कोई वृक्ष खड़ा हो तो सरोवर में जो प्रतिबिंब बनता है, वह उलटा होगा। तट पर खड़े हुए वृक्ष की शाखाएं आकाश में ऊपर की ओर फैली होंगी, तट पर खड़े वृक्ष की मूल, जड़ें नीचे जमीन में फैली होंगी। लेकिन प्रतिबिंब उलटा होगा। उसमें जड़ें ऊपर होंगी, शाखाएं नीचे होंगी। सभी प्रतिबिंब उलटे होते हैं। प्रतिबिंब कभी भी सीधा नहीं हो सकता। इस वैज्ञानिक सत्य को ध्यान में रखकर इस सूत्र को समझना बहुत आसान होगा।
चीजें जैसी हैं, ठीक उससे उलटी दिखाई पड़ती हैं, क्योंकि देखना भी एक तरह का प्रतिबिंब है। आंख भी एक दर्पण है। आंख पर भी प्रतिबिंब बनते हैं। प्रतिबिंब सभी उलटे हो जाते हैं। तो इस जगत को जैसा हम देख रहे हैं, यह जगत इससे ठीक उलटा है। जगत का जो नियम हमें मालूम होता है, वास्तविक नियम उससे ठीक उलटा होगा।
आभास सत्य से विपरीत होते हैं, इस मौलिक विचार के आधार पर भारत के मनीषियों ने एक बहुत पुराना प्रतीक उपयोग किया है। वह प्रतीक--

ऊपर की ओर मूल वाला और नीचे की ओर शाखा वाला यह प्रत्यक्ष जगत सनातन पीपल का वृक्ष है। इसका मूलभूत तत्व वह परमेश्वर ही है। वही ब्रह्म है और वही अमृत कहलाता है।
ऊपर की ओर मूल वाला और नीचे की ओर शाखा वाला यह प्रत्यक्ष जगत सनातन पीपल का वृक्ष है।
हम तो जो भी देखते हैं, उसमें जड़ें नीचे की तरफ हैं, शाखाएं ऊपर की तरफ हैं। लेकिन यह यम का सूत्र नचिकेता को कहा गया है, इसमें यम कह रहा है कि ऊपर की ओर मूल, नीचे की ओर शाखाएं हैं। जैसा भी हमारा जानना है, जीवन का सत्य उससे ठीक विपरीत है। इसे हम कुछ जीवन के अलग-अलग पहलुओं से समझने की कोशिश करें।
हम सोचते हैं कि मृत्यु जीवन की दुश्मन है, लेकिन सत्य बिल्कुल विपरीत है। मृत्यु के बिना जीवन हो ही नहीं सकता। तो मृत्यु जीवन की शत्रु तो जरा भी नहीं, मित्र है। मृत्यु के बिना जीवन के होने की कोई संभावना नहीं है। जिस दिन मृत्यु मिट जाएगी, उसी दिन जीवन भी मिट जाएगा। लेकिन हमारे देखने में सब चीजें उलटी हो जाती हैं। हमें लगता है कि जीवन और मृत्यु में विरोध है, जब कि वस्तुतः मृत्यु ही जीवन का आधार है। और मृत्यु के बिना जीवन हो नहीं सकता।
हमें अनुभव में आता है कि प्रेम और घृणा विपरीत हैं, जब कि सचाई बिल्कुल उलटी है। मनसविद कहते हैं कि प्रेम और घृणा एक ही ऊर्जा के दो पहलू हैं, वे साथ-साथ हैं। फ्रायड ने जो महानतम खोजें इस सदी में की हैं, उसमें एक खोज यह भी थी कि आदमी जिसको प्रेम करता है, उसी को घृणा भी करता है। हम भी अगर थोड़ा सोचें, तो ख्याल में बात आ सकती है। आप किसी भी व्यक्ति को सीधा शत्रु नहीं बना सकते। शत्रु बनाने के पहले मित्र बनाना जरूरी होगा। सीधी शत्रुता पैदा ही नहीं हो सकती; शत्रुता के लिए पहले मित्रता चाहिए। तो मित्रता शत्रुता का पहला कदम है, अनिवार्य कदम है, उसके बाद ही शत्रुता हो सकती है।
तो शत्रुता और मित्रता विपरीत नहीं हैं, बल्कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस-जिसको हम प्रेम करते हैं, उस-उसको घृणा भी करते हैं; और जिस-जिसको हम घृणा करते हैं, उस-उसको हम प्रेम भी करते हैं। शत्रुओं से हमारा बड़ा लगाव होता है, उनकी याद आती है। उनके बिना हम अधूरे हो जाएंगे; उनके बिना हमारे जीवन में कुछ खाली हो जाएगा। उसी तरह, जैसे मित्र के मिट जाने पर कुछ खाली हो जाएगा। मित्र भी हमें भरते हैं, शत्रु भी हमें भरते हैं। बुद्ध ने कहा है कि मैं कोई मित्र नहीं बनाता, क्योंकि मैं कोई शत्रु नहीं बनाना चाहता हूं। पर हम तो सोचते हैंः शत्रु और मित्र विपरीत हैं। जीवन में ऐसी बात नहीं है। हम तो सोचते हैंः रात और दिन विपरीत हैं, अंधेरा और प्रकाश विपरीत हैं। सचाई यह नहीं है। अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। प्रकाश अंधेरे का ही एक ढंग है। वे दोनों एक ही ऊर्जा के अलग-अलग क्रम हैं। अगर जगत से अंधकार पूरी तरह मिट जाए तो हमारी साधारण बुद्धि कहेगी कि
सब तरफ प्रकाश ही प्रकाश रह जाएगा। विज्ञान इससे राजी नहीं होगा। विज्ञान कहेगा, अंधकार अगर बिल्कुल मिट जाए तो प्रकाश बिल्कुल मिट जाएगा, या प्रकाश बिल्कुल मिट जाए तो अंधकार बिल्कुल मिट जाएगा।
अगर जगत से घृणा बिल्कुल मिटानी हो तो प्रेम को बिल्कुल मिटाना पड़ेगा। जब तक प्रेम है, घृणा जारी रहेगी। जब तक मित्र हैं, तब तक शत्रु पैदा होते रहेंगे। और अगर मृत्यु को बिल्कुल पोंछ देना हो, तो जन्म को बिल्कुल पोंछ देना होगा। जब तक जन्म है, मृत्यु होती रहेगी।
अगर दुनिया से युद्ध मिटाने हों, तो हम सोचते हैं कि जब युद्ध मिट जाएंगे तो दुनिया में परम शांति होगी। लेकिन युद्ध अगर बिल्कुल मिट जाएं तो शांति भी मिट जाएगी। यह जरा कठिन मालूम पड़ता है। यही हमारे आभास और सत्य की विपरीतता है। दुनिया में तभी तक शांति रह सकती है, जब तक युद्ध जारी रहेंगे। शांति और युद्ध एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उनमें से एक भी खो जाए तो दूसरा भी खो जाएगा।
हम सोचते हैं कि बीमारी है, स्वास्थ्य है--विपरीत हैं। और हमारी चेष्टा होती है कि ऐसा वक्त आ जाए कि आदमी के जीवन में कोई बीमारी न रहे।
जिस दिन ऐसा होगा, उसी दिन कोई स्वास्थ्य भी न रह जाएगा।

इस बात की संभावना है कि वैज्ञानिक धीरे-धीरे ऐसी व्यवस्था निकाल लें
कि बीमारी न रह जाए। वह व्यवस्था एक ही हो सकती है कि धीरे-धीरे वे मनुष्य के सारे अंगों को बदल डालें। उनकी जगह प्लास्टिक और स्टेनलेस स्टील और कृत्रिम अंगों को डाल दें। बीमारी मिट जाएगी, लेकिन स्वास्थ्य भी मिट जाएगा। स्वास्थ्य का जो अनुभव है, जो वेल बीइंग है, वह स्टेनलेस स्टील और प्लास्टिक के अंगों से नहीं हो सकती। बीमारी के साथ ही जुड़ा है स्वास्थ्य।
अब इस बात के उपाय हैं। अब हृदय बदला जा सकता है, मस्तिष्क के हिस्से
भी बदले जा सकते हैं। आज नहीं कल, सारे के सारे मनुष्य के शरीर में जो भी खराब होने वाले, जिनकी संभावना रुग्ण होने की है, ऐसे जो भी अंग हैं, वे सब अलग कर दिए जा सकते हैं। प्लास्टिक बीमार नहीं पड़ेगा। स्टेनलेस स्टील बड़ी लंबी उम्र की होगी। आपके हाथ में हड्डियों की जगह स्टेनलेस स्टील हो सकती है। नसों की जगह प्लास्टिक की नसें होंगी। और आज नहीं कल, हम खून से भी बेहतर रासायनिक-द्रव्य खोज सकते हैं। शरीर को पूरा का पूरा यंत्रवत बनाया जा सकता है। फिर शरीर बीमार नहीं पड़ेगा। लेकिन भीतर जो आत्मा छिपी है, उसको स्वास्थ्य का भी कोई अनुभव नहीं होगा।
असल में स्वास्थ्य बीमारियों के बीच एक संतुलन है। और बीमारियां स्वास्थ्य का डगमगा जाना है। दोनों साथ हैं। एक को हटा दें, दूसरा विनष्ट हो जाता है। लेकिन हमें ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। हमें तो दिखाई पड़ता है कि एक को मिटा दें, तो दूसरा बचेगा। यही हमारे आभास की विपरीतता है।
तो जहां-जहां हमें जैसा-जैसा दिखाई पड़ता है, बहुत गौर से उससे उलटा करके सोचना, उलटे के सत्य होने की संभावना ज्यादा है।
ऐसा देखें, जहां-जहां मनुष्य को सुख दिखाई पड़ता है, वहां-वहां अंत में दुख हाथ लगता है। लेकिन मन कहता है कि जहां सुख दिखाई पड़ता है, वहां सुख होगा। खोजने पर दुख हाथ लगता है। और जीवन में अनेक बार हम प्रयोग कर चुके हैं। जहां सुख दिखाई पड़ा, वहीं दौड़े, और पाया कि दुख हाथ लगा।
ऋषियों ने इस सूत्र को उलट लिया। उन्होंने कहा, जहां-जहां दुख दिखाई पड़े, वहां-वहां प्रवेश करने की कोशिश करना। जब सुख दिखाई पड़ने पर दुख मिलता है, तो जहां दुख दिखाई पड़ता है, उसमें खोजने से सुख मिलेगा। इस वैज्ञानिक खोज का नाम ही तप है। तप का मतलब हैः दुख में खोजना सुख को। क्योंकि सुख में खोजने वाले दुख पा रहे हैं। सूत्र उलटा लिया। एक यात्रा भ्रांति में ले जाती थी, तो हमने दिशा बदल ली।
भोगी हम उसे कहते हैं, जो सुख के आभास में सोचता है कि खोजने से सुख मिलेगा। योगी हम उसे कहते हैं, जिसकी यह भ्रांति टूट गई और जिसने सूत्र को उलटा कर लिया, और अब जो दुख में कोशिश करता है खोजने की। और जो व्यक्ति दुख में खोजता है, वह निश्चित ही सुख पाता है। क्योंकि सुख में खोजने वालों ने सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं पाया है।
इस बात को कि जीवन के सत्य हमें उलटे दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि हमारा चित्त उनके प्रतिबिंब बनाता है; झील की भांति वृक्ष उलटा हो जाता है--तो इसके पहले की आप अपने जीवन का दर्शन निर्मित करें, जीवन का पथ चुनें और जीवन का गंतव्य चुनें--इस महत्वपूर्ण बात को स्मरण रखना।
इसलिए ऋषियों ने कहा है कि जो वृक्ष तुम्हें दिखाई पड़ता है कि जड़ें नीचे हैं और शाखाएं ऊपर हैं, वस्तुतः इससे उलटा होगा। जीवन के वृक्ष की शाखाएं ऊपर नहीं नीचे, और मूल नीचे नहीं ऊपर है। इसे शाश्वत, सनातन पीपल का वृक्ष ऋषियों ने कहा है।
यह तो सिर्फ काव्य-प्रतीक है। और इस काव्य-प्रतीक को जीवन में उपयोग किए बिना, और जीवन में जगह-जगह नियोजित किए बिना इसका अर्थ साफ नहीं होता है।
ऊपर की ओर मूल वाला और नीचे की ओर शाखा वाला यह प्रत्यक्ष जगत सनातन पीपल का वृक्ष है। इसका मूलभूत तत्व परमेश्वर ही है।
लेकिन वह दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई हमें पदार्थ पड़ता है। दिखाई हमें पड़ता है पदार्थ और वस्तुतः है परमेश्वर।
परमेश्वर हमें अदृश्य है, पदार्थ हमें दृश्य है। जब कोई व्यक्ति जीवन
की इस प्रक्रिया को उलटा करता है, तो पदार्थ अदृश्य होने लगता है और

परमात्मा दृश्य होने लगता है। और जिस दिन पदार्थ पूरी तरह अदृश्य हो जाता है, सिर्फ परमात्मा दृश्य रह जाता है, उस दिन जानना कि सत्य की अनुभूति हुई।
इसलिए उस परम अवस्था में ज्ञानियों ने जगत को माया कह दिया। कह दिया इसलिए कि वह दिखाई नहीं पड़ती थी, खो गई। जैसा कि अज्ञानी ईश्वर को असत्य कहते हैं। कहेंगे ही। जो नहीं दिखाई पड़ता, वह नहीं है। अज्ञानी कहता है, कहां है ईश्वर? उसे दिखाने का कोई उपाय भी नहीं है। क्योंकि सवाल ईश्वर के होने का नहीं है, सवाल अज्ञानी के देखने के ढंग का है। उसके देखने का ढंग ऐसा है कि पदार्थ पकड़ में आता है और ईश्वर छूट-छूट जाता है।
ज्ञानी को पदार्थ पकड़ में नहीं आता, छूट-छूट जाता है; सिर्फ परमेश्वर
ही पकड़ में आता है। इसलिए अज्ञानी कहता है--जगत सत्य, ब्रह्म मिथ्या। ज्ञानी कहता है--ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या। उलटा हो जाता है। इस गणित को अगर आप ख्याल रख लें और जीवन में थोड़ा-सा इसका उपयोग करने लगें, तो आप पाएंगे, आप बदलने लगे, आप नए होने लगे।
इसका कैसे उपयोग करें? यह तो मैंने आपको तात्विक उदाहरण दिए। आचरण में इसका उपयोग हो सकता है। यह सूत्र बड़ा कीमती है। जब कोई गाली दे, तो आपको क्रोध पैदा होता है--यह सहज, प्राकृतिक, अज्ञानी मनुष्य की स्थिति है। ज्ञानी कहते हैंः जब कोई क्रोध करे, तो क्षमा पैदा हो। उलटा कर लेना है। जब कोई क्रोध करे, तो क्षमा करना; क्षमा के भाव को जन्माना। तुम्हारा जीवन नया हो जाएगा। जब कोई गाली दे और क्रोध तुम करो, तो तुम्हारा जीवन जैसा था, वैसा ही रहेगा। उसमें कोई रूपांतरण संभव नहीं है। क्योंकि तुम कोई बुनियाद बदल नहीं रहे हो।
जब कोई तुम्हारा आदर करे तो हम प्रफुल्लित होते हैं, प्रसन्न होते हैं। ज्ञानी ने कहा है, जब तुम्हारा कोई आदर करे, तब तुम उदास हो जाना, उपेक्षा से भर जाना। क्यों जब कोई आदर करता है, सम्मान करता है तो हम प्रसन्न होते हैं? क्योंकि अहंकार तृप्त होता है। और अहंकार रोग है। इसलिए आपके दुश्मन आपको उतना नुकसान नहीं पहुंचा सकते, जितने आपके खुशामदी आपको नुकसान पहुंचा सकते हैं। क्योंकि वे आपके अहंकार को भर रहे हैं।
कबीर ने तो कहा है कि आंगन कुटी छवाकर, जो तुम्हारी निंदा करते हैं, उनको अपने घर के पास ही बसा लेना। यह उलटा है। जो तुम्हें गाली देते हैं, उनको तुम मकान के बगल में ही बसा लेना, ताकि सुबह-शाम वे तुम्हें गाली देते रहें। क्योंकि जो तुम्हें गाली देता है, वह तुम्हारे अहंकार को तोड़ता है। और जो तुम्हारी प्रशंसा करता है, स्तुति करता है, वह तुम्हारे अहंकार को बढ़ाता है। और अहंकार ही महारोग है, वही दुख का आधार है, स्रोत है।
आचरण में इस सूत्र का अर्थ होगा कि जो सहज, प्राकृतिक प्रतिक्रिया मालूम होती है, वह मत करना, उससे उलटा करना। तुम्हारा जीवन धार्मिक होता चला जाएगा।
जीसस को सूली दी गई और अंतिम समय कहा गया कि तुम्हें कुछ कहना तो नहीं है? तो जीसस ने परमात्मा की तरफ हाथ उठाकर कहा कि इन सबको क्षमा कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।
जब तुम्हें कोई सूली दे रहा हो, तो तुम्हारे मन से अभिशाप निकल सकते हैं। वरदान के निकलने का कोई उपाय नहीं है। अभिशाप बिल्कुल प्राकृतिक प्रक्रिया है। वह तो पशुओं से भी वही निकलेगा, पत्थर से भी वही निकलेगा। उसके लिए मनुष्य होने की कोई जरूरत नहीं है। वह तो जीवन का जड़ नियम है। जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है और आग जलाती है, ऐसे ही पशुता क्रोध के उत्तर में दुगुना क्रोध पैदा करती है। वह पशुता का सहज नियम है। लेकिन पशु का अर्थ हैः जो थिर है और जो गतिमान नहीं है। पशु का अर्थ हैः जो जड़ है, रुका है और जिसके जीवन में कोई ऊर्ध्वगमन नहीं है।
संस्कृत का यह शब्द पशु बड़ा अदभुत है। संस्कृत के सभी शब्द अदभुत हैं। कोई भाषा इस अर्थ में वैज्ञानिक नहीं है जैसी संस्कृत है। एक-एक शब्द के पीछे पूरा तत्व-दर्शन है। और एक-एक शब्द को ऐसे ही कामचलाऊ ढंग से नहीं बना लिया गया है, बड़े विचार और बड़ी चिंतना से निखारा गया है।

पशु शब्द बनता है पाश से। पाश का अर्थ होता हैः जो बांध ले, बंधन। पशु
का अर्थ हैः जो बंधा हुआ है। पशु का अर्थ जानवर नहीं है; जो बंधा हुआ है, जो जकड़ा हुआ है, जो प्रकृति के अंधे नियमों का गुलाम है, जो स्वतंत्र नहीं है। पशुता से ऊपर उठना हो तो प्रकृति जो सहज रूप से करने को कहे, उससे विपरीत को तुम अपनी साधना समझना। जब तुम्हारी कोई प्रशंसा करे तो तुम रोना, और जब तुम्हें कोई गाली दे तो तुम हंसना। अगर जीवन इस एक छोटे-से सूत्र को मानकर चल पड़े, तो मोक्ष ज्यादा दूर नहीं है। और तुम्हें परमात्मा को खोजने नहीं जाना पड़ेगा, परमात्मा तुम्हें खोजता हुआ आ जाएगा। फिर उसकी तलाश की कोई जरूरत नहीं है।
एक बार तुमने जीवन की साधारण प्रक्रिया को बदलकर विपरीत किया कि तुम सत्य के जगत में प्रवेश कर गए, कि तुम उस पथ पर आ गए जहां से सत्य तुम्हें खींच लेगा।
अभी हम उलटे खड़े हैं। जिसे हम सीधा होना समझ रहे हैं, वह शीर्षासन है। हमें सब उलटा दिखाई पड़ रहा है। हमें पैर के बल खड़ा होना होगा। जैसे हम हैं, उससे उलटा हो जाना पड़ेगा।
सारे संतों का बस एक ही प्रयास है कि तुम्हारे जीवन की जो अंधी प्रक्रियाएं हैं, वे होशपूर्ण हो जाएं। तुम जहां जड़ की तरह व्यवहार करते हो, यंत्र की तरह व्यवहार करते हो, वहां तुम सचेतन हो जाओ। और सचेतन कोई तभी होता है, जब प्रकृति का अतिक्रमण करता है। कोई गाली दे, तो क्रोध करने के लिए सचेतन होने की कोई भी जरूरत नहीं है।
क्रोध मूर्च्छा है। उसके लिए होश की कोई भी जरूरत नहीं है। लेकिन कोई गाली दे और क्षमा करना है, तो बहुत सावधान होना पड़ेगा; बहुत जागरूक होना पड़ेगा; बहुत चित्त को ऊंचाई पर उठाना पड़ेगा; भीतर की ज्योति को खूब जगमगाना पड़ेगा। तब भी डर है कि क्रोध की पुरानी आदत पकड़ ले और नीचे खींच ले। लेकिन बड़े मजे की प्रक्रिया है। अगर कोई व्यक्ति जीवन की सामान्य प्रक्रियाओं को उलटा करने लगे, तो बड़ा रस उपलब्ध होगा। तब पूरा जीवन एक प्रयोगशाला हो जाता है।
तब दूसरे भी बहुत चकित होंगे, क्योंकि दूसरे भी तभी चकित होते हैं जब
वे पाते हैं कि तुम अंधे नहीं हो। दूसरे भी तभी चकित होते हैं और मुसीबत में पड़ते हैं, जब तुम उनके सहज अनुमान के अनुसार नहीं चलते हो।
बुद्ध को कोई गाली देता है तो बुद्ध चुपचाप सुन लेते हैं। बुद्ध के ऊपर कोई थूक जाता है तो बुद्ध चुपचाप अपनी चादर से पोंछ लेते हैं। और जिसने थूका है, उस आदमी से कहते हैं, तुम्हें कुछ और भी कहना है? आनंद क्रोध से भर जाता है--उनका शिष्य--और वह कहता है, आप क्या पूछ रहे हैं इस आदमी से? यह पागल है और इसने आपके ऊपर थूका! मुझे आज्ञा दें तो मैं इसे ठीक करूं।
बुद्ध कहते हैं, उसे मैं क्षमा कर दूं, क्योंकि वह नासमझ है; लेकिन तू इतने दिन से मेरे पास है और तू बिल्कुल ही मूर्च्छित व्यवहार कर रहा है! यह आदमी कुछ कहना चाहता है, जो शब्दों में नहीं कहा जा सकता, इसलिए थूककर प्रगट कर रहा है।
थूकना एक भाषा है। बहुत बार भाव गहरा होता है, आप प्रगट नहीं कर पाते, किसी को गले लगा लेते हैं, वह एक भाषा है। कुछ इतना गहरा था हृदय में, जिसे शब्द नहीं कह पाते, तो आप छाती से लगा लेते हैं।
तो बुद्ध कहते हैं, कुछ भाव है इसके मन में बहुत गहरा, जिसको यह शब्द
से नहीं कह पाता, थूककर जाहिर कर रहा है। बड़े गहरे क्रोध से भरा है, वह क्रोध शब्द से पूरा नहीं होगा। इसलिए मैं इससे पूछता हूं कि और भी कुछ कहना है? इतना कहा, यह समझा; कुछ और भी कहना है? कुछ इसकी व्याख्या भी करनी है?
वह आदमी तो बड़ा बेचैन हो गया। क्योंकि जब कोई आपके ऊपर थूके तो अपेक्षा करता है कि अब कुछ उपद्रव होगा। लेकिन यहां एक तात्विक चर्चा छिड़ जाए कि थूकना भी एक भाषा है और इस आदमी ने कुछ कहा है! तो वह आदमी थोड़ा बेचैन हुआ, उसे थोड़ा अपराध-भाव लगा होगा कि मैंने गलत आदमी पर थूक दिया। वह चला गया।

वह दूसरे दिन सुबह आया, बुद्ध के चरणों में सिर रखकर रोने लगा। उसकी आंख से आंसू बहने लगे। उसने कहा कि मुझे क्षमा कर दें। मैं कल आपके ऊपर थूक गया था। मुझसे बड़ी भूल हो गई। मैं पीछे पछताया। मैं रातभर सो नहीं सका। बुद्ध ने कहा, तू बिल्कुल नासमझ है। उस बात को बीते कितना समय हो गया! तब से गंगा का कितना पानी बह गया! अब उसको तू याद क्यों रखे है? और तूने थूका था, हमने उसे लिया नहीं था, इसलिए व्यर्थ पश्चात्ताप मत कर। तूने थूका होगा, लेकिन हमें कोई चोट नहीं पहुंची, इसलिए तू व्यर्थ पश्चात्ताप मत कर।
और बुद्ध ने आनंद से कहा, आनंद! देख, यह आदमी फिर कुछ कहना चाहता है। लेकिन बात इतनी गहन है कि नहीं कह पाता, तो इसने आंसुओं से पैर धो डाले। व्यक्ति जैसे ही जीवन की सामान्य धारा के ऊपर अपने को उठाना शुरू करता है, एक बड़ी रसपूर्ण प्रक्रिया शुरू होती है। और एक बहुत मधुर और एक बहुत मीठी यात्रा का प्रारंभ होता है, जो रोज-रोज मधुर होती जाती, रोज-रोज मीठी होती जाती है, रोज-रोज सुगंधित होती जाती है, और भीतर एक रस झरने लगता है। इस यात्रा के अंत में ही अमृत की वर्षा है।
लेकिन जैसे हम हैं, जहां हम हैं, हम बिल्कुल उलटे हैं। हम वही कर रहे हैं, जो नहीं करना चाहिए। हम वैसे ही जी रहे हैं, जैसा नहीं जीना चाहिए। हम अपने ही हाथ से कांटे बो रहे हैं और अपने ही हाथ से मार्ग पर पत्थर रख रहे हैं, जिनकी वजह से यात्रा असंभव हो जाएगी। हम अपने ही दुश्मन हैं।
तत्व और आचरण दोनों में यह सूत्र ख्याल में आ जाए कि हमारी बुद्धि विपरीत देख रही है, तो जीवन के रूपांतरण की कुंजी आपके हाथ में उपलब्ध हो जाती है।
इसका मूलभूत तत्व वह परमेश्वर है, वही ब्रह्म है और वही अमृत है। सब लोक उसी के आश्रित हैं। कोई भी उसको लांघ नहीं सकता। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
उसको कोई लांघ नहीं सकता। उसके पार जाने का कोई उपाय नहीं है। उसको ट्रांसेंड नहीं किया जा सकता। परमात्मा का अर्थ ही यही है कि जो अंत है, कि जो आखिरी है--सीमांत--जिसके पार कुछ शेष नहीं रह जाता। अगर उसके पार कुछ शेष रह जाता है, तो वह परमात्मा नहीं है।
इसे ऐसा समझें कि जब तक आपके मन में पाने की कोई कामना है, तब तक आप परमात्मा नहीं हैं। जिस दिन आपके मन में पाने की कोई कामना न रही, उसका अर्थ हुआ कि अब आगे जाने को कुछ भी न बचा, उस दिन आप परमात्मा हो गए।
इसलिए ज्ञानियों ने परमात्मा की परिभाषा की है--निर्वासना से भरी हुई चेतना। क्योंकि वासना अतिक्रमण करना चाहती है--और आगे, और आगे। और वासना अनेक रूप लेती है, वह कहीं भी तृप्त नहीं होती। अगर आप इसी क्षण, जैसे हैं वहीं तृप्त हो जाएं और कह दें कि बस आगे और कुछ भी मांग नहीं है--कहने से नहीं होगा, यह भीतर भाव प्रविष्ट हो जाए--तो इसी क्षण आपका सब अंधकार गिर जाए और आप परमात्मा हो जाएं।
परमात्मा का अर्थ हैः इसी क्षण में पूर्ण तृप्ति, जिसके पार कुछ भी नहीं बचता।
लेकिन आदमी बहुत उपद्रवी है। अगर वह एक तरफ से अपने उपद्रव को छोड़ता है, तो तभी छोड़ता है जब दूसरी तरफ अपने उपद्रव को तैयार कर लेता है।
एक मित्र मेरे पास आए। वृद्ध हैं। रो रहे थे। बड़े भाव से भरे थे। रोकर
कह रहे थे कि मेरी कुंडलिनी अभी तक जगी नहीं। बीस वर्ष से भटक रहा हूं। न-मालूम कितने आश्रम, कितने गुरु, कितनी साधनाएं कर चुका हूं, लेकिन कुंडलिनी नहीं जगी।
उनके भाव में कमी नहीं है, उनकी खोज में कमी नहीं है, लेकिन उनकी मौलिक दृष्टि भ्रांत है। वे कुंडलिनी को ऐसे ही खोज रहे हैं, जैसे कोई धन को खोजता हो। और न मिले तो रोता हो। न मिले तो परेशान हो, पीड़ित हो, संतप्त हो। कुंडलिनी उनका लोभ बन गई है।
और ध्यान रहे, इस आंतरिक यात्रा की यही सबसे बड़ी कठिनाई है कि वहां लोभ के द्वारा कोई भी प्रवेश नहीं हो सकता। वहां तृप्ति के द्वारा प्रवेश है।
जो नहीं मिला है, उसकी फिक्र छोड़ें; जो मिला है, उसका अनुग्रह मानें और प्रवेश बढ़ता जाएगा। लेकिन वे परेशान हैं। इस परेशानी से कुंडलिनी जाग्रत

होने वाली नहीं है। उस परेशानी से ही रुकी है। बीस साल की खोज के कारण नहीं मिली, ऐसा नहीं है। बीस साल की खोज के कारण ही रुकी है। वह जो अति तनाव है पाने का, उसी से भीतर सब सिकुड़ गया है।
जहां पाने का तनाव रहेगा, वहां हम संसार में हैं। यह पाने की दौड़ संसार है। और न पाने के लिए राजी हो जाना, संसार से बाहर हटने लगना है।
एक आदमी धन के लिए दौड़ रहा है। एक आदमी पद के लिए दौड़ रहा है। एक आदमी
यश के लिए दौड़ रहा है। और एक आदमी मोक्ष के लिए दौड़ रहा है। फर्क क्या है? कोई भी फर्क नहीं है। मोक्ष के लिए दौड़ा ही नहीं जा सकता। मोक्ष तो खड़े होने वाले को मिलता है।
धन के लिए दौड़ा जा सकता है, क्योंकि धन खड़े होने वाले को नहीं मिलता। दौड़ने वाले को भी नहीं मिल पाता है, तो खड़े होने वाले को तो मिलने का कोई उपाय नहीं है। धन, पद, यश, सब दौड़ें हैं। मोक्ष दौड़ नहीं है। मोक्ष ठहर जाना है, रुक जाना है।
एक साधिका ने आज ही मुझे आकर कहा कि अभी तक कोई अनुभव नहीं हो रहा है! अनुभव करना क्या है? प्रकाश दिखाई पड़ने लगे तो कुछ हो जाएगा? कि भीतर रंग दिखाई पड़ने लगें तो कुछ हो जाएगा? कि भीतर कोई सुगंध आने लगे तो कुछ हो जाएगा? या आपके हाथ से राख झड़ने लगे तो कुछ हो जाएगा? कि ताबीज निकलने लगे तो कुछ हो जाएगा? कि आप बीमारों को छू दें और वे ठीक हो जाएं तो कुछ हो जाएगा? वह सब खेल संसार का है और मन का है।
अनुभव की तलाश लोभ है। उस तलाश को गिर जाने दें। अनुभव को नहीं चाहिए; अनुभोक्ता को। वह जो अनुभव करने वाला है, उसकी पहचान। अनुभव तो फिर भी पराए हैं, बाहर हैं। अध्यात्म अनुभव नहीं है। अध्यात्म, अनुभव जिसको होते हैं, उसके साथ एक हो जाना है। जिसके सामने प्रकाश आते हैं, और जिसके सामने सुगंधें तैरती हैं, और जिसके सामने रंगों की बहार आ जाती है और इंद्रधनुष फैल जाते हैं, और जिसके भीतर संगीत बजने लगता है... । लेकिन ये सब बाहर ही हैं। चाहे आंख बंद करके ये घटनाएं घट रही हों, तो भी बाहर हैं। इनको जानने वाला तो और भीतर है। जानने वाला हमेशा, जिसे भी जानता है, उससे भीतर है, पीछे है, पार है। और जब तक आप जानने वाले में न ठहर जाएं, तब तक अध्यात्म का कोई स्वाद आपको नहीं मिल सकता।
तो कोई बाहर का सेंसेशन खोज रहा है कि चलो फिल्म देखें, रेडियो सुनें; कोई नायिका आई, कोई नर्तकी आई--उसको देखें। कोई बाहर का रूप-रंग खोज रहा है; कुछ भीतर के रूप-रंग खोज रहे हैं, कि चलो कुंडलिनी जगाएं, भीतर का प्रकाश देखें, कि भीतर का आनंद लें, लेकिन खोज वही है कि कुछ सेंसेशन, कोई उत्तेजना। दोनों ही अध्यात्म नहीं हैं।
अध्यात्म तो उसकी तलाश है, उस चैतन्य की, उस साक्षी-भाव की, जहां सब अनुभव समाप्त हो जाते हैं और केवल अनुभोक्ता रह जाता है। जहां सब दृश्य खो जाते हैं और केवल द्रष्टामात्र रह जाता है। जहां सब ज्ञेय समाप्त हो जाते हैं और मात्र ज्ञाता शेष रह जाता है। उस केवल-ज्ञान की, उस कैवल्य की खोज अध्यात्म है।
सब लोक उसी के आश्रित हैं। कोई भी उसको लांघ नहीं सकता। यही है वह परमात्मा, जिसके विषय में तुमने पूछा था।
तो जिस दिन आप उस घड़ी में पहुंच जाएं जहां लांघने को कुछ न बचे, समझना
कि आ गया घर। समझना कि आ गया वह मंदिर, जिसकी तलाश थी। यह इसी क्षण भी हो सकता है। क्योंकि परमात्मा का समय से कोई संबंध नहीं है कि साल लगेगी कि दो साल लगेगी, कि दो जन्म लगेंगे कि पचास जन्म लगेंगे। आप के ऊपर निर्भर है। अनंत जन्म लग सकते हैं। और एक क्षण भी काफी है।
यह बोध साफ हो जाए कि नहीं कुछ लांघना है, नहीं कहीं जाना है, नहीं कुछ पाना है। जो भी मैं हूं, वहीं परम तृप्ति का भाव सजग हो जाए, तृप्ति का दीया जल जाए--इसी क्षण आप उसमें प्रवेश कर गए, जिसको लांघने का कोई उपाय नहीं। जो लांघने की कोशिश कर रहा है, वह संसार में भटकता रहेगा।
हम सब लांघने की कोशिश कर रहे हैं--और! और! कुछ भी हो। चाहे कुंडलिनी
हो और चाहे धन हो--और! और चाहिए! कुछ भी हमें मिल जाए, और की दौड़-धूप नहीं मिटती। वह और की आपाधापी भीतर जारी रहती है--और! और! यह और ही संसार है।

जो है, उससे राजीपन। जितना है, उससे स्वीकार। जो है, उससे एक तथाता का भाव। एक परम अहोभाव, उसको लांघने की कोई वृत्ति नहीं।
लांघने की वृत्ति का नाम महत्वाकांक्षा है, एंबीशन है। दस रुपये पास हों, तो लांघने की वृत्ति कहती है कि सौ के बिना कैसे चलेगा? सौ पास हों, तो लांघने की वृत्ति कहती हैः हजार के बिना कैसे चलेगा? और यह वृत्ति कभी समाप्त नहीं होती।
एंड्रू कारनेगी मरा तब उसके पास दस अरब रुपये थे। मरने के दो दिन पहले उसने कहा कि मैं अतृप्त मर रहा हूं, क्योंकि मेरे इरादे सौ अरब रुपये इकट्ठे करने के थे।
दस अरब केवल! जैसे कोई भिखमंगा कहे, दस पैसे केवल! दस नए पैसे! दस अरब केवल! सौ अरब की योजना थी। और यह मत सोचिए कि सौ अरब से कोई फर्क पड़ जाता। दस अरब से जब कोई फर्क नहीं पड़ा, सौ अरब से क्या फर्क पड़ने वाला था? जब तक आप सौ अरब पर पहुंचते हैं, तब तक आपकी महत्वाकांक्षा हजार अरब पर पहुंच चुकी होगी। वह सदा आपके आगे है। जैसे छाया पीछे चलती है, वैसे महत्वाकांक्षा आगे चलती है। जहां आप पहुंच जाते हैं, वह सदा उसके आगे होती है।
बायजीद सूफी फकीर ने कहा है कि महत्वाकांक्षा आकाश के क्षितिज की भांति है। आपके और क्षितिज के बीच फासला हमेशा वही रहता है, चाहे आप कितनी ही यात्रा करें। क्योंकि क्षितिज कहीं है नहीं; सिर्फ भासता है। दूर लगता है कि आकाश जमीन को छू रहा है। आकाश जमीन को कहीं भी नहीं छूता। बढ़ें तो ऐसा लगता है, जैसे अभी कुछ ही समय में पहुंच जाएंगे उस जगह जहां आकाश जमीन को छू रहा है। जितना आप बढ़ते जाते हैं, उतना ही क्षितिज आगे बढ़ता जाता है। वह और आगे छूता है, फिर और आगे छूता है। आप पूरी पृथ्वी का चक्कर लगाकर अपनी जगह पर वापस लौट आएं, तब भी वह उतना ही आगे छूता रहता है। वह छूता नहीं, सिर्फ छूता हुआ मालूम पड़ता है।
आपके और क्षितिज के बीच के फासले को कम करने का कोई भी उपाय नहीं है।
आप सोचते हों कि पैदल चलने से पूरा नहीं होता, तो शायद कार में चलने से पूरा होगा, या हवाई जहाज में उड़ने से पूरा होगा। नहीं, कोई उपाय ही नहीं है, क्योंकि क्षितिज की कोई रेखा वस्तुतः नहीं है। नहीं तो उपाय हो सकता था। वहां सिर्फ रेखा भासती है। वहां है नहीं; प्रतीत होती है।
महत्वाकांक्षा की रेखा क्षितिज की भांति है। बस लगता है कि दस अरब पर रेखा है, जब तक आप दस अरब की रेखा पर पहुंचते हैं, पाते हैं कि रेखा आगे हट गई, फासला उतना का उतना है। यह बड़े मजे की बात है। इस लिहाज से देखने पर एक बड़ी गहरी आर्थिक प्रक्रिया समझ में आ जाती है। दुनिया में गरीब और अमीर के बीच धन का कितना ही फर्क हो, गरीबी का फर्क नहीं होता।
एक आदमी के पास दस पैसे हैं, उसको सौ पैसे की चाह है। वह नब्बे पैसे से गरीब है। एक आदमी के पास दस रुपये हैं, उसे सौ रुपये की चाह है, वह नब्बे रुपये से गरीब है। वह नब्बे का आंकड़ा बराबर चलेगा। दस अरब हों, तो सौ अरब की चाह है। वह नब्बे का आंकड़ा बराबर कायम रहता है। वह क्षितिज और आदमी के बीच की दूरी है--वह नब्बे। आपके पास कितना है, क्या है, इससे कोई सवाल नहीं, लेकिन आप नब्बे गुना गरीब, नब्बे के फासले से गरीब बने रहेंगे।
भिखमंगा और सम्राट दोनों बराबर गरीब होते हैं। उनके खाते-बही में आंकड़े अलग-अलग होते हैं, लेकिन दोनों की आकांक्षा मानवीय आकांक्षा है। जितना होता है, उससे एक खास फासले पर आकांक्षा होती है। कि आप सोचते हैं कि एक भिखमंगा खड़ा हो और एक सम्राट खड़ा हो, तो क्षितिज की रेखा दोनों के लिए अलग-अलग होगी? क्षितिज की रेखा दोनों के लिए बराबर होती है। और दोनों ही यात्रा करें, सम्राट अपनी पूरी संपत्ति के साथ, और गरीब अपनी पूरी दीनता के साथ, जहां भी वे खड़े होंगे, वहां से फासला उतना ही होगा जितना पहले था। और दोनों के फासले में कभी कमी-ज्यादा नहीं आएगी।
दुनिया में दो तरह के गरीब हैं। एक, जिनके पास धन है; और एक, जिनके पास
धन नहीं है। बाकी गरीबी में कोई भेद नहीं है।
तो फिर अमीर कौन हो सकता है? अमीर वही हो सकता है जिसकी क्षितिज-रेखा आगे नहीं, पैर के नीचे है। इसका ही अर्थ है तृप्ति--जिसकी क्षितिज-रेखा पैर के नीचे है; जो क्षितिज को वहां देखता है जहां उसका पैर है; जो कहता है,

जहां मेरा पैर पड़े वहीं आकाश जमीन को छूता है, और कहीं भी नहीं। जिस दिन कोई व्यक्ति इस भाव से भर जाता है, उस भाव का नाम संन्यास है, वीतरागता है, तृप्ति है। या हम जो भी नाम देना चाहें। वह व्यक्ति दौड़ से मुक्त हो गया। जो दौड़ से मुक्त है, वह लांघने के पागलपन से मुक्त है। जो लांघने के पागलपन से मुक्त है, वह उस परमात्मा में प्रवेश कर जाता है जिसे लांघने का कोई भी उपाय नहीं।
परब्रह्म परमेश्वर से निकला हुआ यह जो कुछ भी संपूर्ण जगत है, उस प्राणस्वरूप परमेश्वर में ही चेष्टा करता है। इस उठे हुए वज्र के समान महान भयस्वरूप सर्वशक्तिमान परमेश्वर को जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं, अर्थात जन्म-मरण से छूट जाते हैं।
यहां एक बहुत महत्वपूर्ण शब्द का प्रयोग है। सोचने जैसा है। क्योंकि जगत में परमात्मा की तरफ यात्रा करने वालों की दोशृंखलाएं हैं, दो धाराएं हैं। एक कहती है कि परमात्मा प्रेमस्वरूप है और एक कहती है कि परमात्मा भयस्वरूप है। दोनों बड़ी विपरीत हैं।
तुलसीदास ने कहा है, भय बिन होइ न प्रीति। परमात्मा का अगर भय न हो, तो प्रेम न होगा। लेकिन वह जो प्रेमस्वरूप मानती है--जैसे जीसस ने कहा हैः गॉड इज लव, परमात्मा प्रेम है--वह दूसरी धारा कहेगी कि जहां भय हो, वहां प्रेम तो हो ही नहीं सकता। आप जिससे भयभीत हैं, उससे घृणा कर सकते हैं, प्रेम कैसे? जहां भय पैदा हो जाएगा, वहां आप डर के कारण झुक सकते हैं, लेकिन आदर नहीं हो सकता। भय के कारण आप पैरों पर सिर रख सकते हैं, लेकिन समर्पण नहीं हो सकता। प्रेम का तो कोई उपाय नहीं है, जहां भय है।
लेकिन जो कहते हैं कि परमात्मा भयस्वरूप है और उसके भय से ही चांद-तारे चल रहे हैं, उसके भय से ही प्रकृति अपनी लीक पर कायम है, उसके भय के कारण ही सब व्यवस्था है। उसका भय टूट जाए तो सारी व्यवस्था टूट जाए। उसके भय के कारण अनुशासन है। उनके कहने की भी बात समझने जैसी है। दोनों धाराएं समझने जैसी हैं। और दोनों धाराएं उस तक ले जाती हैं।
प्रेम की बात समझनी बहुत आसान है कि परमात्मा प्रेमस्वरूप है। होना
ही चाहिए। परम प्रेम, परम प्रेम का धाम, और उससे प्रेम की धाराएं हमारी तरफ बह रही हैं। यह बात बहुत कठिन नहीं है, क्योंकि हमारी धारणा परमात्मा के प्रति वही होती है, जो हमारी धारणा पिता और मां के प्रति होती है। इसलिए हमने अकारण ही परमात्मा को पिता, महापिता, या मां या माता नहीं कहा है। कारण से कहा है।
फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं कि परमेश्वर की धारणा पिता की धारणा का ही विस्तार है, उसका ही प्रक्षेप है। जो बच्चे पिता के पास बड़े होते हैं, और जो पिता के प्रेम से भर जाते हैं, और पिता के प्रति आदर से भर जाते हैं, वे बच्चे बाद में धार्मिक हो जाएंगे। और जो बच्चे पिता के प्रति अवज्ञा से भर जाते हैं, विरोध-विद्रोह से भर जाते हैं, वे बच्चे बाद में नास्तिक हो जाते हैं। पिता और बेटे के बीच कैसा संबंध है, इस पर निर्भर करेगा कि व्यक्ति और परमात्मा के बीच कैसा संबंध होगा। फ्रायड की इस बात में अर्थ है।
लेकिन पिता की तरफ भी अगर हम ध्यान दें, तो वहां भी दो धाराएं मौजूद हो जाती हैं। पिता प्रेम भी करता है, लेकिन पिता से बच्चा भयभीत भी होता है। अकेला प्रेम ही नहीं है पिता, साथ में भय भी है। और बड़ा भय तो यही है कि वह चाहे तो अपने प्रेम को देने से रोक सकता है।
बड़ा भय क्या है बच्चे के सामने? मां या पिता चाहें, तो प्रेम देने से
वे वंचित कर सकते हैं। वह भय भी है। वे प्रेम भी दे सकते हैं, वे प्रेम देने से रोक भी सकते हैं। और बच्चे के लिए इससे बड़ी भय की कोई बात नहीं होती। क्योंकि असहाय है बच्चा और पिता और मां का प्रेम उसे न मिल सके, तो वह खत्म हो जाएगा। तो मृत्यु का भय मालूम होता है। अगर मां इतना ही मुंह फेर ले, कह दे कि नहीं, मुझे तुझसे कुछ भी लेना-देना नहीं, तो बच्चे की पीड़ा हम नहीं समझ सकते हैं कि कितनी भयंकर हो जाती है।
जिससे हम प्रेम करते हैं, उसके साथ-साथ छाया में छिपा हुआ भय भी है। और
वह भय इस बात का है कि प्रेम नष्ट हो सकता है, प्रेम टूट सकता है; प्रेम न दिया जाए, यह हो सकता है। प्रेम के और हमारे बीच में अवरोध आ सकते हैं।

इसलिए बाप से बेटा सिर्फ प्रेम ही नहीं करता, भयभीत भी होता है। ये दोनों ही भाव साथ जुड़े रहते हैं। और बड़ी कला यही है, इन दोनों के बीच संतुलन पिता स्थापित कर ले। नहीं तो हर हालत में अयोग्य पिता सिद्ध होता है। और योग्य पिता होना बड़ा कठिन है। बच्चे पैदा करना बिल्कुल आसान बात है। उससे आसान और क्या होगा! लेकिन पिता होना बड़ा कठिन है। मां होना बड़ा कठिन है; जन्म देना बिल्कुल आसान है।
कठिनाई यही है कि भय और प्रेम के बीच संतुलन स्थापित करना है। अगर बाप इतना ज्यादा भयभीत कर दे बेटे को कि बेटे की आस्था ही प्रेम से उठ जाए, तो भी बेटा नष्ट हो जाएगा। क्योंकि जिंदगीभर अब वह किसी को प्रेम न कर सकेगा। जिस बच्चे को प्रेम नहीं मिला हो बचपन में, वह बिना प्रेम के ही जीएगा। वह बातें कितनी ही प्रेम की करे, कविताएं लिखे, शास्त्र रच डाले, लेकिन प्रेम उसके जीवन में नहीं होगा। वह प्रेम का पहला जो संस्पर्श था, जिससे प्रेम का बीज जमता, वह नहीं जम पाया। अगर मां और बाप बेटे को प्रेम न कर सकें, तो बेटा फिर किसी को प्रेम नहीं कर पाएगा। और वह जो क्रुद्ध बेटा है, वह सब तरफ से विनाश का कारण हो जाएगा।
आज सारी दुनिया में विद्यालय, विश्वविद्यालय बड़े उत्पात के कारण बने हैं। विशेषकर पश्चिम के मुल्कों में बहुत भयंकर आग है। पूरब के मुल्कों में भी फैल रही है। क्योंकि पूरब के शिक्षालय भी पूरब के नहीं हैं, वे भी पश्चिम की अनुकृतियां हैं, नकल हैं। तो वहां जो बीमारी पैदा होती है, वह कोई तीन-चार साल में पूरब में आ जाती है। उसमें भी हम पीछे हैं। वहां दवा कोई नई होती है, उसको भी तीन साल लग जाते हैं, हमारे मुल्क के अस्पताल में उपयोग में आए तब तक। वहां कोई बीमारी भी पैदा होती है, उसको भी आने में वक्त लग जाता है। हम हर हालत में पीछे हैं।
वहां युवकों का एक भारी विद्रोह चल रहा है पुरानी पीढ़ी के खिलाफ, शिक्षा के खिलाफ, संस्कृति के खिलाफ, समाज के खिलाफ। अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि उसका मूल कारण यही है कि इन बच्चों को इनके मां-बाप से प्रेम नहीं मिला; यह पीढ़ी बिना प्रेम के बड़ी हुई है। और पश्चिम में प्रेम का उपाय कम हो गया है। क्योंकि करीब-करीब बच्चे इसके पहले कि बड़े हों, तलाक हो जाते हैं। सौ विवाह में पचास तलाक हो रहे हैं। तो पचास परिवार विच्छिन्न हो रहे हैं। बाप बदल जाते हैं, मां बदल जाती है। सौतेली मां के पास बड़ा होना पड़ता है, या सौतेले बाप के पास बड़ा होना पड़ता है। जिंदगी की जो प्रेम की धारा है, वह सब जगह से टूट जाती है।
ये पिछले तीस वर्षों में पश्चिम में तलाक के बढ़ने के साथ जो बच्चे पैदा हुए हैं, इनको प्रेम नहीं मिला। ये उसका बदला ले रहे हैं। ये प्रेम नहीं कर सकते। ये विध्वंस से भर गए हैं। प्रेम सृजनात्मक है। और जब प्रेम न मिले तो आदमी तोड़ने लगता है, नष्ट करने लगता है।
हिटलर के ऊपर जिन लोगों ने अध्ययन किया है, वे कहते हैं, हिटलर को उसकी मां का और पिता का प्रेम नहीं मिला। उस न मिलने के कारण, इतना भयंकर युद्ध हुआ। हिटलर तोड़ना चाहता था, सब तरह से नष्ट करना चाहता था। बनाने में उसका कोई रस नहीं था, क्योंकि प्रेम न हो तो बनाने में रस होता ही नहीं।
जिस दिन आपके जीवन में प्रेम आता है, उसी दिन सृजन आता है। एक युवक एक युवती के प्रेम में पड़ता है, तत्क्षण घर बसाने की सोचने लगता है। तत्क्षण घर को कैसे सजाना, कैसे कमाना, एक सृजनात्मक प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जहां प्रेम न हो, वहां विध्वंस की धारा पकड़ जाती है।
सारी दुनिया में चल रहे युवकों के विद्रोह प्रेम की कमी के कारण हैं।
और सारी दुनिया में युवक नास्तिक होते जा रहे हैं। होंगे ही। क्योंकि जिनको पिता का और मां का प्रेम न मिला हो, वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि इस जगत का कोई पिता और मां है। और अगर हो भी, तो वह गोली मार देने योग्य है। उसकी पूजा करने का कोई सवाल नहीं है।
मां या पिता के होने की कला यह है कि अकेला भय अगर हो... । जो कि बहुत जो अनुशासन को थोपने वाले बाप होते हैं, या मां होती हैं, वे अपने सब तरह के प्रेम को रोक लेते हैं, कि कहीं बेटा प्रेम के कारण बिगड़ न जाए! वे उसे भयभीत करते हैं, डंडे के बल पर उसको सुधारने की कोशिश में लगे रहते हैं। वह सुधार अंततः विकृति सिद्ध होता है।

लेकिन दूसरी तरफ भी खाई है। कुछ मां-बाप इस डर से--और पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने बहुत डरा दिया है कि बच्चे को जरा भी भयभीत मत करना, उसे जरा भी डराना मत, उस पर जरा भी कुछ थोपना मत, अनुशासन मत लादना, नहीं तो वह विद्रोही हो जाएगा--तो मां-बाप डर गए हैं। सिर्फ प्रेम करना, अकेला प्रेम भी जहरीला हो जाता है। क्योंकि अकेले प्रेम का मतलब स्वच्छंदता हो जाता है। और तब बेटों को लगता है कि प्रेम उनका अधिकार है। तुम्हें प्रेम देना ही पड़ेगा। प्रेम को अर्जित करने का कोई सवाल नहीं है कि बेटा कुछ करे और प्रेम अर्जित करे। नहीं, बेटे का हक है। कर्तव्य कुछ भी नहीं है।
और अगर मां-बाप सिर्फ प्रेम दें और भय की कोई भी उपस्थिति न हो, तो भी बेटा बिगड़ जाता है। तब वह सारी दुनिया से प्रेम मांगता है। दुनिया आपकी मां-बाप नहीं है। दुनिया कोई आपको प्रेम देने के लिए नहीं बैठी है। दुनिया में जब आप जाएंगे, तो वहां संघर्ष है, प्रतियोगिता है, युद्ध है। वहां कोई आपके लिए प्रेम देने नहीं बैठा है।
और जिसके मां-बाप ने सिर्फ प्रेम दिया है, वह कोमल हो जाता है। वह इतना कोमल हो जाता है कि संघर्ष में वह टिक नहीं पाता, वह टूट जाता है। वह सब से प्रेम की आशा करता है। वह सब तरफ हाथ फैलाए रहता है कि मुझे प्रेम करो। और उसे एक बात भूल ही गई है कि संसार प्रेम देगा, लेकिन तुम्हें उसका प्रेम अर्जित करना पड़ेगा। तुम्हें कुछ करना पड़ेगा अपने जीवन में। तुम्हें कमाना पड़ेगा प्रेम। मुफ्त नहीं मिलेगा।
मां-बाप का प्रेम मुफ्त मिल सकता है। इस जगत में फिर प्रेम मुफ्त नहीं मिलेगा। पत्नी का प्रेम भी मुफ्त नहीं मिलेगा, उसको भी अर्जित करना होगा। तो फिर बच्चा मां-बाप की तलाश कर रहा है। तो वह हो सकता है ईश्वरवादी हो जाए। और बैठा मंदिर में हाथ जा.ेडे ऊपर आकाश में कहे कि हे पिता! हे परम पिता!! मगर जीवन उसका बांझ होगा। क्योंकि जीवन में संघर्ष से जो प्रौढ़ता आती है, जो शक्ति आती है, वह उसके पास नहीं होगी।
इसलिए अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि मां और बाप के होने की कला यह है
कि भय और प्रेम के बीच एक संतुलन हो। इतना भय कि बच्चा बगावती न हो जाए और इतना प्रेम की बच्चा मुफ्त प्रेम को मांगने का आदी न हो जाए। यह बड़ी जटिल है बात। यह ऐसा ही है जैसे कि कोई रस्सी पर--दो पहाड़ों के बीच बंधी हुई रस्सी पर--कोई नट चलता हो, तो उसे पूरे वक्त बैलेंस, संतुलन सम्हालना पड़ता है। जरा ही बाएं झुकता है, तो दाएं झुक जाता है, ताकि बाएं न गिर जाए। और जैसे ही दाएं झुकता है कि दाएं गिरने की हालत आ जाती है, तो बाएं झुक जाता है। दाएं गिरने का डर पैदा होता है, तो बाएं झुकता है।
जरा ही भय से डर पैदा होता है तो प्रेम, जरा ही प्रेम से भय पैदा होता
है तो डर। दोनों के बीच जो रस्सी की तरह, रस्सी पर चलने वाले नट की तरह अपने को सम्हाल ले, वही कुशल पिता और कुशल मां हो सकते हैं।
परमात्मा के संबंध में भी दो ही दृष्टियां हैं।
ईसाइयत मानती है कि परमात्मा प्रेम है। और जीसस और यहूदी-धर्म का विरोध यही था, क्योंकि यहूदी-धर्म मानता है--परमात्मा भयावह है। यहूदी शास्त्र यम के इस वचन से राजी हो जाएंगे कि वह उठे हुए वज्र की भांति भयस्वरूप है। वह पूरे समय अपने हाथ में शस्त्र लिए हुए है। जरा-सी बात, और वह नष्ट कर देगा। जरा-सी नाराजगी, और आग बरसा देगा। जरा-सा क्रोध, और प्रलय हो जाएगा। यहूदी-धर्म भय के ऊपर आधारित है। वह कहता है, परमात्मा जो है वह भयंकर है। विराट ऊर्जा है वहां। और वह विराट ऊर्जा प्रेमपूर्ण नहीं है। इसे थोड़ा हम समझें। वह विराट ऊर्जा प्रेमपूर्ण नहीं है, वह विराट ऊर्जा तो जो उसके अनुकूल चलता है, बस उसी के लिए कृपापूर्ण है। जो उसके विपरीत चलता है, उसे नष्ट कर देती है।
यह बात कविता में बहुत अच्छी नहीं मालूम पड़ती, लेकिन विज्ञान इससे राजी है कि जगत का कोई भी नियम प्रेमपूर्ण नहीं है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि आपका दुश्मन है।
जमीन में कशिश है, ग्रेविटेशन है। अगर आप जरा ही इरछे-तिरछे चले, तो गिरेंगे। हाथ-पैर की हड्डी टूट जाएगी। जमीन की कशिश आपको माफ नहीं करेगी, कि तुम कहते थे, हे पृथ्वी माता! कि तुमने कई दफा सिर झुकाकर पृथ्वी के चरण छुए थे! अगर आप तिरछे चले, तो हड्डी टूटेगी। उस वक्त पृथ्वी माता कुछ भी

दया नहीं करेगी। नियम के विपरीत आप गए कि आप नुकसान उठाएंगे। लेकिन आप सम्हलकर चलते रहें, तो पृथ्वी आपकी हड्डी तोड़ने को जरा भी उत्सुक नहीं है।
विज्ञान भी कहता है कि जगत के नियम प्रेमपूर्ण नहीं हैं। इसका मतलब
यह नहीं है कि वे आपके दुश्मन हैं। इसका कुल इतना मतलब है कि वे तटस्थ हैं।
और आप अगर अनुकूल चलते हैं, तो आप सुख को उपलब्ध होंगे। अगर प्रतिकूल चलते हैं, तो दुख को उपलब्ध होंगे।
पुराने धर्मों की भाषा में, यहूदी और उस तरह के, जिन्होंने भयस्वरूप माना है परमेश्वर को, उनका भी कहना यही है कि वह आपका दुश्मन नहीं है। लेकिन वह शाश्वत नियम है। अगर आप उसके अनुकूल चलते हैं, तो परम मोक्ष तक पहुंच जाएंगे। और अगर प्रतिकूल चलते हैं, तो महानर्क में पड़ जाएंगे।
यम भी नचिकेता को उसके भयस्वरूप का वर्णन कर रहा है। कारण भी है कि यम भयस्वरूप का वर्णन करे। क्योंकि यम स्वयं भय की ही प्रक्रिया है। यम का अर्थ है, मौत का देवता। मौत का देवता प्रेम की बात भी कैसे करे? मौत का देवता भय की ही बात करेगा।
और यम की यह बात आधी सच है कि परमात्मा से सिर्फ जो प्रेम की ही आशा रखेंगे, वे नष्ट हो जाएंगे। क्योंकि वे अपने को बदलने की कोई भी कोशिश न करेंगे। जो परमात्मा से भयभीत भी होंगे और जो समझेंगे कि अगर मैं अनुकूल नहीं हूं तो मेरी स्तुतियां काम आने वाली नहीं हैं, मेरी खुशामद से परमात्मा नहीं बदला जा सकता, केवल मेरे आचरण से... । वह भी मैं परमात्मा को नहीं बदलता हूं, अपने को बदलता हूं--जब मेरा आचरण ठीक होता है और मैं परमात्मा की धारा में बहता हूं।
जब कोई आदमी नदी की धारा में बहता है तो नदी उसे ले चलती है सागर की तरफ। और जब कोई आदमी नदी के विपरीत लड़ता है तो नदी भयावह हो जाती है। परमात्मा भयावह है, अगर हम विपरीत हैं। परमात्मा प्रेमपूर्ण है, अगर हम अनुकूल हैं। अगर हम नदी की धारा में बह रहे हैं, तो परमात्मा हमें ले चलेगा। फिर हमें तैरने की भी जरूरत नहीं है, हमें हाथ भी हिलाने की जरूरत नहीं है, नदी खुद ले चलेगी।
रामकृष्ण कहते थे, तुम सिर्फ उसकी हवा का रुख पहचान लो, फिर तुम अपनी नाव का पाल खोल दो। फिर तुम्हें पतवार भी न चलानी पड़ेगी, फिर नाव, उसकी हवाएं ले चलेंगी गंतव्य की ओर। लेकिन तुम उसकी हवा का रुख पहचान लो। और अगर तुम हवा के विपरीत चले, तो तुम्हें बड़ी मेहनत करनी पड़ेगी, और मेहनत करके भी तुम सफल न हो पाओगे, सिर्फ टूटोगे। क्योंकि विराट से लड़कर कोई भी सफल नहीं हो सकता।
भयावह का अर्थ इतना ही है कि विराट से तुम लड़ना मत, विराट के प्रति समर्पित हो जाना।
इस उठे हुए वज्र के समान महान भयस्वरूप सर्वशक्तिमान परमेश्वर को जो जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं। जन्म-मरण से छूट जाते हैं।
क्योंकि वस्तुतः अगर हम ठीक से समझें, तो मृत्यु भी हमारे गलत चलने का परिणाम है। हम अपने को शरीर से बांधते हैं, इसलिए मृत्यु घटित होती है। अगर हम शरीर से अपने को न बांधें, मृत्यु घटित न होगी।
शरीर की ही मृत्यु होती है, हमारी तो मृत्यु नहीं होती, लेकिन हम शरीर
से बांध लेते हैं। जैसे कोई कागज की नाव पर सवार हो जाए, फिर नाव डूब जाए, तो गलती नाव की नहीं है, गलती सागर की भी नहीं है। आप कागज की नाव पर सवार थे, डूबना तो निश्चित ही था। जितनी देर चल गई, वही काफी है। वह भी चमत्कार है!
शरीर के साथ जिसने अपने को बांधा है, उसने मरने की तो तैयारी कर ही ली, क्योंकि शरीर मरणधर्मा है। जो व्यक्ति भी मरणधर्मा के साथ चलेगा, वह अमृत के विपरीत चल रहा है। वह मरेगा, बार-बार मरेगा। जो व्यक्ति अमृत के अनुकूल चलेगा, मरणधर्मा से नहीं बांधेगा अपने को, यम कह रहा है, वह समस्त भयों से मुक्त हो जाता है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है, जन्म-मरण से छूट जाता है। वे अमर हो जाते हैं, जो परमात्मा के भयस्वरूप को स्मरण करते हैं और उसके अनुकूल अपने जीवन को अनुशासन से भर लेते हैं।

इसी के भय से अग्नि तपती है, इसी के भय से सूर्य तपता है, इसी के भय से इंद्र, वायु और पांचवें मृत्यु देवता अपने-अपने काम में प्रवृत्त हो रहे हैं।
यदि शरीर का पतन होने से पहले इस मनुष्य शरीर में ही साधक परमात्मा को साक्षात कर सका, तब तो ठीक है, नहीं तो फिर अनेक कल्पों तक नाना लोक और योनियों में शरीर धारण करने को विवश होता है।
मनुष्य की अवस्था में, मनुष्य की योनि में, एक विशेषता है। मनुष्य से नीचे भी योनियां हैं। पशु हैं, पक्षी हैं, वृक्ष हैं, पदार्थों का फैलाव है। मनुष्य से ऊपर की भी योनियां हैं--देवता हैं, स्वर्गों के निवासी हैं। मनुष्य से पीछे और मनुष्य से आगे, दोनों तरफ योनियां हैं। मनुष्य ठीक मध्य की योनि है। लेकिन मध्य की योनि होने के कारण एक विशेषता है, और वह यह कि मनुष्य एक चौराहा है। वहां से नीचे की तरफ भी रास्ता जाता है, वहां से ऊपर की तरफ भी रास्ता जाता है। और वहां से ऊपर-नीचे, दोनों से मुक्त होने की तरफ भी रास्ता जाता है। इसे हम थोड़ा समझें।
नीचे की योनियां बिल्कुल ही दुख में डूबी हैं। नर्क है समझें कि मनुष्य के नीचे का जगत। वहां दुख ही दुख है। वहां दुख इतना ज्यादा है कि दुख से मुक्त होने की आशा भी नहीं बंधती। दुख से मुक्त होने की आशा तभी बंधती है, जब थोड़ी-बहुत सुख की रेखा हो।
मनोवैज्ञानिक, जो क्रांतियों का गहन अध्ययन करते हैं, उनका कहना है
कि क्रांति तब तक नहीं होती जब तक दुख बहुत ज्यादा हो। यह बड़ी उलटी बात लगेगी। राजनीति के विद्यार्थी समझते हैं कि जब दुख बहुत ज्यादा होता है समाज में, तो क्रांति हो जाती है। यह बात गलत है। दुख बहुत ज्यादा होता है तो क्रांति होती नहीं, क्योंकि दुख के लोग इतने आदी हो जाते हैं। सुख की कोई आशा ही न हो, तो क्रांति किसलिए करनी?
राजनीतिक विचारक कहते हैं कि गरीब क्रांति करता है, जो कि गलत है। गरीब क्रांति नहीं कर सकता। क्रांतिकारी सभी मध्यवित्तीय घरों में पैदा होते हैं। चाहे लेनिन, चाहे मार्क्स, सब मध्यवर्गीय परिवारों में पैदा होते हैं।
न तो अमीर घर में पैदा होते हैं क्रांतिकारी, और न गरीब घर में पैदा होते हैं। मध्यवर्गीय, बीच में, जिनको दुख का भी अनुभव है और जिन्हें सुख की भी आशा है। जो महल में भी नहीं पहुंच गए हैं और झोपड़े में भी नहीं हैं, जो बीच के मकान में हैं। कोशिश की जाए, तो वह महल बन सकता है। और अगर कोशिश न की जाए, तो जल्दी ही झोपड़ा हो जाएगा। जो बीच में अटके हैं, जिनको दुख की भी प्रतीति है और सुख का स्वप्न भी जिनके साथ है, वे लोग क्रांति पैदा करते हैं।
मनुष्य के पीछे दुख का जगत है। इसलिए कोई पशु मोक्ष पाने की कोशिश नहीं करता। दुख, मूर्च्छा इतनी सघन है कि कोई आशा भी नहीं है। आशा न हो तो आप कोशिश भी नहीं करते।
हिंदुस्तान में पांच हजार साल का इतिहास है, शूद्रों ने कोई बगावत नहीं की। कोई आशा ही नहीं थी, बगावत का कोई कारण नहीं था। अंग्रेजों ने आशा बंधाई। अंग्रेजों के आने के बाद शूद्रों को आशा बंधनी शुरू हुई। राज्य हिंदुओं का नहीं है, बगावत हो सकती है। आशा बंधनी शुरू हुई, शूद्र भी शिक्षित हो सकता है--हिंदुओं की व्यवस्था होती तो शूद्र शिक्षित ही नहीं हो सकता था--शूद्र भी शिक्षित होकर नौकरी कर सकता है। वे मध्यवर्गीय होने लगे, कुछ लोग शूद्रों में मध्यवर्गीय होने लगे। उन मध्यवर्गीय शूद्रों के मन में स्वभावतः क्रांति उठनी शुरू हो गई।
हिंदुस्तान में, आप जानकर हैरान होंगे कि जिन्होंने आजादी की लड़ाई लड़ी, वे सब वे ही लोग थे जो पश्चिम से शिक्षा लेकर लौटे। यह बड़े मजे की बात है कि पश्चिम से शिक्षा लेकर लौटे हुए लोगों ने आजादी की लड़ाई लड़ी--चाहे वे गांधी हों, चाहे नेहरू, चाहे अरविंद। पश्चिम ने गुलामी दी थी, पश्चिम ने ही आजादी भी दी। क्या कारण होगा? जो भारत में ही रह रहा था, उसको कोई आशा नहीं थी।
सुभाष ने अपने संस्मरणों में कहीं कहा है, कि यूरोप जब मैं शिक्षित होने गया, पढ़ने गया, और जब मैंने देखा कि अंग्रेज मेरे जूते पर पालिश करता

है, तब मुझे लगा कि गुलाम होना अनिवार्य नहीं है। अंग्रेज भी जूते पर पालिश कर सकता है। तो अंग्रेजों की मालकियत कोई अनिवार्य तत्व नहीं है। जो बच्चे हिंदुस्तान से बाहर पढ़ने गए, उनको आशा बंधी। उस आशा का परिणाम था कि भारत आजादी की लड़ाई में लग गया। जो बच्चे भारत में ही पढ़ रहे थे, उनको आशा भी नहीं बंध सकती थी।
मनुष्य के पीछे जो योनियां हैं, वे अत्यंत दुख की हैं; दारुण दुख की हैं। वहां कोई आशा नहीं बंधती। वहां कोई क्रांति नहीं हो सकती। मनुष्य के ऊपर की जो योनियां हैं, बड़े सुख की हैं, महासुख की हैं। सुख से कोई क्रांति कभी नहीं करता। क्योंकि जो सुख में है, वह क्रांति कैसे करेगा? जिसके पास कुछ भी है खोने को, वह बदलाहट नहीं करना चाहता।
इसलिए क्रांतिकारी को मारना हो, तो उसको कुछ दे दो, कोई पद दे दो। कितना ही कम्यूनिस्ट क्रांतिकारी हो, उसको मिनिस्ट्री दे दो, क्रांति समाप्त हो गई। एक फियेट कार भी क्रांति को नष्ट कर सकती है। कुछ खोने को भर पास हो जाए, तो क्रांति से खुद ही भय पैदा हो जाता है। जिसके पास सुख है, वह बदलाहट नहीं चाहता। सुख हमेशा स्टेटस को चाहता है--स्थिति वैसी ही बनी रहे। सुखी व्यक्ति कोई रूपांतरण नहीं चाहता।
इसलिए स्वर्ग में कोई क्रांति नहीं होती। स्वर्ग में अब तक कोई एक बुद्ध पैदा नहीं हुआ, न कोई एक महावीर, न कोई एक कृष्ण। स्वर्ग में लंपट देवता हैं। इंद्र हैं, जिनकी विवेक की दृष्टि से कोई कीमत नहीं है, और धंधा अप्सराओं को नचाने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। खुद तो किसी साधना में, स्वर्ग के देवताओं की कोई कथा नहीं है, बल्कि अगर कोई और साधना कर रहा हो तो उसको हिलाने-डुलाने में उनका बड़ा रस है। तो कोई ऋषि-मुनि, कोई बेचारा अपने झोपड़े में, अपने पहाड़ पर, अपने वृक्ष के नीचे, बैठकर कुछ साध रहा हो, तो जरूर इन देवताओं को उसको सताने में रस आता है कि भेज दो उर्वशी को कि ऋषि-मुनि को परेशान करे।
स्वर्ग से कभी कोई मुक्त नहीं हुआ है। हो नहीं सकता। सुख से कोई मुक्त होना ही क्यों चाहेगा? इसलिए सुख की अतिशयता भी अभिशाप है। दुख की अतिशयता तो अभिशाप है ही, सुख का अतिशय होना भी अभिशाप है।
मनुष्य मध्यवर्गीय योनि है। न तो वह नर्क में है, और न स्वर्ग में। वह त्रिशंकु की तरह; वह बीच में है। वह जरा ही भूल-चूक करे तो नर्क में गिर सकता है, और जरा ही होशियारी करे तो स्वर्ग में प्रवेश कर सकता है। वह दोनों के मध्य में है।
मनुष्य योनि रूपांतरण की, ट्रांसफार्मेशन की अवस्था है। और अगर समझ जाए ठीक से, तो न नर्क में जाना चाहेगा और न स्वर्ग में। क्योंकि सुख भी बार-बार भोगने पर बासे हो जाते हैं, और दुख जैसे हो जाते हैं। अगर आप स्वर्ग में जाएं तो वहां आप हर देवता को जम्हाई लेते हुए पाएंगे। ऊब गया होगा। सुंदर-सुंदर स्त्रियां चौबीस घंटे आपके पास मौजूद रहें, आप उनसे भी भागना चाहेंगे कि थोड़ी देर मुझे अकेला रहने दो।
सौंदर्य भी कुरूपता हो जाती है। मिष्ठान्न खाते-खाते जीभ तरसने लगती है, विपरीत के लिए। सुविधा में बैठे-बैठे मन असुविधा में जाने की आकांक्षा करने लगता है। स्वर्ग में जो बैठे हैं, वे बुरी तरह ऊबे हुए हैं। बोरडम स्वर्ग का लक्षण है। वहां हर आदमी ऊबा हुआ है। ऊबा हुआ है, इसीलिए तो इतना मनोरंजन का उपाय कर रहा है। नाच, गाना, शराब--वह चल रहा है।
मुसलमानों के स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। बोतलों से काम वहां नहीं चल सकता। झरने! कि आप पीएं ही मत, डूबें, तैरें, नहाएं! स्वर्ग में सिर्फ मनोरंजन के साधन हैं।
आप थोड़ा समझें। जमीन पर भी आज अमेरिका स्वर्ग होने के करीब पहुंच गया है। बड़ी ऊब है। सब सुलभ है और कोई रस नहीं है। मनोरंजन ही मनोरंजन चारों तरफ इकट्ठा हो गया है। सुबह से रात तक आप मनोरंजन करते रहें। लेकिन रस बिल्कुल नहीं है। और कितनी ही बड़ी बात घट जाए, मिनटों में रस खत्म हो जाता है। चांद पर पहुंचने की कितनी पुरानी आकांक्षा है आदमी की! जब से आदमी जमीन पर है, तब से चांद का सपना है। छोटे बच्चे पैदा होते ही से हाथ बढ़ाने लगते हैं चांद पकड़ने के लिए। आदमी हजारों-हजारों वर्ष से चांद पर पहुंचने की आकांक्षा रखे है।

फिर पहला आदमी एक दिन चांद पर उतर भी गया और अमेरिका में पंद्रह मिनट में रस चला गया। पंद्रह मिनट, दस मिनट तक लोगों ने टेलीविजन पर देखा, फिर उन्होंने टेलीविजन अलग--बंद--दूसरा प्रोग्राम शुरू। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि पंद्रह मिनट के बाद किसी का रस नहीं था कि चांद पर आदमी पहुंच गया। पंद्रह मिनट में इतनी बड़ी घटना व्यर्थ हो गई। बस हो गई बात, खत्म हो गई। देख लिया कि आदमी चांद पर उतर गया, अब और क्या है! अब कुछ और। भयंकर ऊब है। स्वर्ग में भी मनोरंजन के इतने साधन हैं, भयंकर ऊब होगी। ऊब जहां होती है, वहां मनोरंजन के साधन जुटाने पड़ते हैं। जहां मनोरंजन के साधन जुटते जाते हैं, वहां ऊब बढ़ती चली जाती है। बहुत कथाएं हैं स्वर्ग के देवताओं की कि वे तरसते हैं जमीन पर आकर किसी युवती को प्रेम करने को, कि वहां की उर्वशी तड़पती है कि पृथ्वी के किसी पुरुरवा को प्रेम करे। यहां थोड़ा रस है, क्योंकि यहां जीवन एकदम सुखद नहीं है। यहां जीवन संघर्ष है। यहां कठिनाई भी है, असुविधा भी है।
जो मनुष्य इस बात को समझ लेता है कि दुख तो दुख है ही, सुख भी अंततः दुख
हो जाता है, और दुख से तो छुटकारा चाहिए ही, अंततः सुख से भी आदमी छूटना चाहता है। जो इस सत्य को समझ लेता है, वह न तो स्वर्ग को चाहता है न नर्क को, वह मुक्त होना चाहता है। वह समस्त वासनाओं के पार जाना चाहता है।
तो मनुष्य के अस्तित्व से तीन मार्ग निकलते हैं। एक दुख का, एक सुख का
और एक मोक्ष का, मुक्ति का। मुक्ति न तो सुख है न दुख। मुक्ति दोनों के पार है।
यदि शरीर का पतन होने के पहले इस मनुष्य शरीर में ही साधक परमात्मा को साक्षात न कर सका -- कर सका तो ठीक, न कर सका--तो फिर, अनेक कल्पों तक नाना लोक और योनियों में शरीर धारण करने को विवश हो जाता है।
बहुत लंबी यात्रा के बाद कभी-कभी चेतना मनुष्य की स्थिति में खड़ी होती है। फिर लंबी यात्रा का चक्र शुरू हो जाता है।
जो व्यक्ति मनुष्य होने की अवस्था में मोक्ष की प्यास से नहीं भरते, उनका भविष्य अंधकारमय है। कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि कितनी उनकी लंबी यात्रा होगी। फिर दुबारा चौराहे तक पहुंचने में कितना समय लगेगा, कहना कठिन है। चौराहे से चूक जाना बहुत आसान है। क्योंकि कोई लंबा समय नहीं है। चौराहे को फिर से पाना बड़ा कठिन हो सकता है।
करीब-करीब ऐसी हालत है कि मैंने सुना है, एक आदमी अपनी कार को भगाए जा रहा है। वह रोककर एक वृक्ष के नीचे बैठे आदमी से पूछता है कि दिल्ली कितनी दूर है? वह आदमी कहता है, इट डिपेंड्स--यह निर्भर करता है--कि दिल्ली कितनी दूर है? जिस तरफ तुम जा रहे हो, दिल्ली बहुत दूर है। क्योंकि दिल्ली पीछे छूट गई। अगर तुम लौटने को राजी हो जाओ, तो दिल्ली बहुत पास है। लेकिन तुम्हें दिशा बदलनी पड़ेगी।
आदमी तेजी से भागा जा रहा है मौत की तरफ। और जिस जगह से वह मुक्त हो सकता है, वह पीछे छूटी जा रही है, प्रतिपल। फिर दुबारा कब इस संयोग को उपलब्ध होगा, कहने का कोई उपाय नहीं है।
अगर रुक जाए, ठहर जाए और आगे की तरफ दौड़ने की फिक्र छोड़ दे और भीतर की तरफ चलना शुरू हो जाए, दिशा मोड़ ले बाहर की तरफ से भीतर की तरफ, पदार्थ की तरफ से परमात्मा की तरफ, तो योनियों में भटकाव बंद हो जाता है। और मनुष्य अयोनि हो जाता है, मनुष्य मुक्त हो जाता है। फिर किसी और शरीर में उसका प्रवेश नहीं है।
नचिकेता से यम ने कहा--यही है वह परमात्मा, जिसके संबंध में तुमने पूछा था।
अब ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
चौदहवां प्रवचन

परमात्माः परम तटस्थता

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके।। 5।।

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति।। 6।।

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम्।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम्।। 7।।

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति।। 8।।

जैसे दर्पण में (सामने आई हुई वस्तु दिखती है), वैसे ही शुद्ध अंतःकरण में (ब्रह्म के दर्शन होते हैं)। जैसे स्वप्न में (वस्तुएं स्पष्ट दिखलाई देती हैं), उसी प्रकार पितृलोक में (परमेश्वर दिखता है)। जैसे जल में (वस्तु के रूप की झलक पड़ती है), उसी प्रकार गंधर्वलोक में परमात्मा की झलक-सी पड़ती है। (और) ब्रह्मलोक में (तो) छाया और धूप की भांति (आत्मा और परमात्मा दोनों का स्वरूप पृथक-पृथक स्पष्ट दिखलाई देता है)।। 5।।

(अपने-अपने कारण से) भिन्न-भिन्न रूपों में उत्पन्न हुई इंद्रियों की
जो पृथक-पृथक सत्ता है और जो उनका उदय और लय हो जानारूप स्वभाव है, उसे जानकर (आत्मा का स्वरूप उनसे विलक्षण समझने वाला) धीर पुरुष शोक नहीं करता।। 6।।

इंद्रियों से (तो) मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से उसका स्वामी जीवात्मा श्रेष्ठ है (और) जीवात्मा से अव्यक्त शक्ति श्रेष्ठ है।। 7।।

परंतु अव्यक्त से (भी वह) व्यापक और सर्वथा आकाररहित परमपुरुष श्रेष्ठ है, जिसको जानकर जीवात्मा मुक्त हो जाता है और अमृतस्वरूप आनंदमय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।। 8।।

थोड़ी सी बातें कल के सूत्र के संबंध में और।
जर्मनी के एक बहुत बड़े विचारक रुडोल्फ ओटो ने एक बड़ी महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है--दि आइडिया आफ होलीः उस परम पवित्र का प्रत्यय। उसमें एक शब्द का रुडोल्फ ओटो ने बार-बार प्रयोग किया है--ट्रिमेंडम। वह परमात्मा अत्यंत भयंकर है। यम ने भी नचिकेता को परमात्मा भयस्वरूप है, ऐसी दृष्टि दी। यह दृष्टि थोड़ी और गहराई से समझ लेने जैसी है, क्योंकि भ्रांति हो जाने की संभावना है।
पहली तो बात यह कि परमात्मा का भयस्वरूप होना, वस्तुतः परमात्मा का स्वरूप नहीं है, वरन हमारा ही भय है। हम भयभीत होते हैं। परमात्मा भयानक है, ऐसा कहने की बजाय, हम भयभीत होते हैं, ऐसा कहना ज्यादा उचित है। और हमारे भयभीत होने का कारण समझ लेना चाहिए। जैसे बूंद सागर में गिरने के पहले डरेगी, क्योंकि सागर में गिरने का अर्थ मिटना है, समाप्त होना है। बूंद का भयभीत होना स्वाभाविक है।
सागर से मिलने का अर्थ मृत्यु है। मृत्यु भय देती है। लेकिन अगर बूंद जान पाए कि सागर में मिटने का एक दूसरा पहलू भी है--बूंद की तरह तो बूंद मिट जाएगी, लेकिन सागर की तरह हो जाएगी; क्षुद्र की भांति तो खो जाएगी, लेकिन विराट की भांति हो जाएगी। काश, बूंद को यह दिखाई पड़ सके कि उसकी मृत्यु

विराट से मिलन भी है, तो बूंद का भय खो जाए। और अगर बूंद को यह दिख सके कि मेरी मृत्यु परम जीवन का द्वार है, तो बूंद परमात्मा को प्रेमस्वरूप अनुभव कर सके।
परमात्मा भयस्वरूप है या प्रेमस्वरूप, यह हमारी दृष्टि पर निर्भर है। आदमी भी जब परमसत्ता की खोज में जाता है, तो मिटने की घड़ी आती है। वह क्षण आता है, जब स्वयं को खोना पड़ेगा। और जहां भी स्वयं को खोने की बात उठती है, वहां हृदय भय से कंपित हो जाए, स्वाभाविक है।
हम मृत्यु से किस लिए डरते हैं? हम मृत्यु से इसीलिए डरते हैं कि वह हमें मिटा देगी। लेकिन मृत्यु भी इस भांति नहीं मिटा पाती, जिस भांति परमात्मा मिटाता है। क्योंकि मृत्यु के बाद भी हम बचेंगे, नई देह लेंगे, नई योनियों में यात्रा करेंगे। हमारी देह ही छूटेगी मृत्यु में, हमारा होना नहीं छूटेगा। लेकिन परमात्मा हमारे होने को भी पोंछ डालेगा। हमारी सब आकृति खो जाएगी उस निराकृति में, उस निराकार में, हमारा सब रूप खो जाएगा। मृत्यु शायद हमारी देह को ही छीनती है, परमात्मा हमारी अस्मिता को, हमारे अहंकार को भी छीन लेगा। वह बड़ी मौत है, वह महामृत्यु है।
तो जब हम मृत्यु से डरते हैं, तो स्वाभाविक है कि हम परमात्मा से भी डरें। वह डर परमात्मा का स्वभाव नहीं है, हमारे अहंकार का भय है। लेकिन जो मिटने को राजी है, परमात्मा उसके लिए भयस्वरूप नहीं है। जो मिटने को राजी है, परमात्मा उसके लिए प्रेमस्वरूप है।
इसे हम इस भांति भी समझें। भय के कारण ही लोग प्रेम करने में समर्थ नहीं हो पाते। क्योंकि प्रेम भी मिटाता है, प्रेमी को पोंछ डालता है। उसकी सारी अस्मिता डूब जाती है। और जो प्रेमी अपने प्रेम में अपने को खोने को राजी नहीं है, वह प्रेम को कभी उपलब्ध नहीं हो पाता।
प्रेम का अर्थ ही है विसर्जन, अपने को डुबाने की तैयारी, मिटाने की तैयारी। प्रेम भी थोड़े अर्थों में अहंकार का विनाश है। भयभीत व्यक्ति प्रेम भी नहीं कर पाता। और जो अपने को खोने को राजी है, उसके जीवन में महाप्रेम का उदय होता है और आनंद की बड़ी वर्षा हो जाती है। तो भय और प्रेम इस बात पर निर्भर हैं कि हम मिटने को राजी हैं या नहीं।
ध्यान में जो लोग गहरे जाते हैं, वे एक न एक दिन मेरे पास आकर निश्चित
ही कहते हैं कि एक ऐसी घड़ी आ गई थी कि जहां हमें डर लगने लगा कि हम मिट तो न जाएंगे। फिर हम भयभीत होकर वापस लौट आए। वही घड़ी थी, जहां से परमात्मा निकट था। और अनेक ध्यान करने वाले लोग आखिरी क्षण में वापस लौट जाते हैं। छलांग के ठीक पहले, बूंद गिरती सागर में कि वापस हो जाती है। तट से ही वापस हो जाती है। लेकिन सभी को ऐसा होना स्वाभाविक है।
ध्यान भी मृत्यु है, क्योंकि ध्यान छलांग है विराट में। जब आपको घबड़ाहट पकड़ ले तब आप समझना कि ठीक क्षण आया, उससे लौटना मत। उस समय ही जो साहस रख पाता है, वही साधक है। उस समय जो डरा, मन में वापस लौट आया, अपने को सम्हाल लिया वापस अपनी स्थिति में, वह एक बड़ा अवसर चूक गया। फिर न मालूम वह अवसर कितने दिनों बाद आए! अगर आप ऐसा कोई अवसर चूक गए हों, तो दुबारा जब अवसर आए तो उसे चूकें नहीं। उसकी ही तो तलाश है, उस मिटने की ही हम खोज कर रहे हैं।
लेकिन अहंकार आखिरी समय तक पकड़ता है। और डर, भय मन में पैदा हो जाता है
कि मैं मिट तो न जाऊंगा, मैं मर तो न जाऊंगा। उस भय की झंकार में हम वापस अपने शरीर में खड़े हो जाते हैं, फिर से पकड़ लेते हैं किनारे को जोर से कि नदी खो न जाए।
परमात्मा भयस्वरूप है, क्योंकि परमात्मा महामृत्यु है। लेकिन जितनी बड़ी मृत्यु, उतने बड़े जीवन का उससे जन्म होता है। छोटी मृत्यु से छोटा जीवन पैदा होता है।
जिस मृत्यु को हम जानते हैं, वह छोटी मृत्यु है, केवल शरीर मरता है। और
तो मन भी बचता है, अहंकार भी बचता है, सब बचता है। और बड़ी मृत्यु हो, तो और बड़े जीवन का जन्म है। जितनी मिटने की तैयारी, उतनी ही मात्रा में पुनर्जीवन उपलब्ध होता है। जो पूरी तरह मिटने को राजी है, उसे परिपूर्ण जीवन उपलब्ध हो जाता है।

जीसस ने कहा है, जब तक तुम अपने को खोओगे नहीं, तब तक तुम उसे नहीं पा सकते हो। और जो अपने को बचाने की कोशिश करेगा, वह खो जाएगा। और जो अपने को खो देगा, वही केवल बच रहता है। जीसस ने बार-बार बीज का उदाहरण लिया है और कहा है, बीज जैसे मिट्टी में खो जाता है तो अंकुरित होता है, ऐसे ही तुम जिस दिन विराट में खो जाओगे, महाजीवन तुम्हारे भीतर जन्मेगा।
उस जीवन का फिर कोई अंत नहीं है। जिसका अंत हो सकता था, उसे तो तुमने
खो ही दिया। जो मिट सकता था, उसे तुमने खुद ही छोड़ दिया। सिर्फ वही बच रहा है अब, जो मिट नहीं सकता है। सिर्फ वही बच रहा है, जिसे खोने का कोई उपाय ही नहीं है।
इसीलिए परमात्मा भयस्वरूप मालूम पड़ता है। लेकिन वह भय हमारा प्रोजेक्शन है। और चूंकि ये वचन मृत्यु के देवता ने कहे हैं, इसलिए ये वचन अधूरे होंगे ही। अगर कोई जन्म का देवता हो तो वह कहेगा, परमात्मा प्रेमस्वरूप है।
इसे भी थोड़ा समझ लें।
अगर कोई जन्म का देवता हो तो वह कहेगा, परमात्मा प्रेमस्वरूप है। क्योंकि जन्म की प्रक्रिया प्रेम से है; जन्म का अंकुरण प्रेम से है। जीवन की शुरुआत प्रेम से है। जीवन की पहली पुलक, पहली स्फुरणा प्रेम से है। अगर कोई प्रेम का देवता हो तो वह आधी ही बात जानेगा। वह कहेगा, परमात्मा प्रेमस्वरूप है। अगर नचिकेता ने यम से न पूछकर ब्रह्मा से पूछा होता, जो कि जन्म का देवता है, सृष्टि का देवता है, तो परमात्मा भयस्वरूप है, ऐसा वचन नहीं आता; तो परमात्मा होता प्रेमस्वरूप। लेकिन वह भी आधी ही बात होती।
मृत्यु के देवता को सिर्फ मृत्यु का ही अनुभव है। जीवन की पहली झलक का नहीं, आखिरी बुझते हुए दीए का ही अनुभव है। और मृत्यु के देवता ने जब भी किसी को बुझते देखा है, तो उसे भय से कंपते देखा होगा, स्वभावतः। अरबों- खरबों लोग मरे हैं, मृत्यु का देवता उन सबका गवाह है। जिसको भी मिटते देखा है, उसको भय से कंपते देखा है। तो मृत्यु के देवता की यह गवाही अर्थपूर्ण है, लेकिन अधूरी।
और मृत्यु का देवता जानता है कि परमात्मा तो महामृत्यु है। जब मेरी मौजूदगी में लोग कंपते हैं और भयभीत होते हैं, और मरना नहीं चाहते और मिटना नहीं चाहते, और हर कोशिश करते हैं बचे रहने की। सब खो जाए, किसी तरह बचे रहें। अंधा हो आदमी, लंगड़ा हो, लूला हो, कोढ़ी हो, बूढ़ा हो, बीमार हो, सड़क पर पड़ा हो, खाने को न हो, कुछ भी न हो, लेकिन तो भी आदमी बचना चाहता है। मरने के लिए कोई भी राजी नहीं होना चाहता। सब खो जाए, सिर्फ श्वास ही चलती रहे। और महानर्क हो, दुख हो, पीड़ा हो, तो भी कोई मरने को राजी नहीं है।
मृत्यु के देवता का यह अनुभव स्वभावतः उसे यह निष्कर्ष देता है कि परमात्मा तो और भी भयस्वरूप होगा। क्योंकि वहां तो सभी कुछ मिट जाता है। वहां तो शून्य ही रह जाता है। जहां आप थे, वहां सिर्फ एक रिक्तता रह जाती है। वह आपको पूरी तरह बहाकर ले जाता है।
मृत्यु के देवता का वचन है, इसलिए अधूरा है। जन्म का देवता कहेगा, तो
भी अधूरा। लेकिन जिन्होंने जन्म और मृत्यु दोनों को जाना है-- बुद्धपुरुषों ने--जिन्होंने जन्म और मृत्यु दोनों को जाना है, वे दो बातें कहेंगे। या तो वे कहेंगे कि परमात्मा दोनों है--प्रेमस्वरूप और भयस्वरूप। या वे कहेंगे कि परमात्मा दोनों नहीं है, हमारी दृष्टि के अनुसार हमें प्रतीत होता है, या तो प्रेमस्वरूप, या भयस्वरूप।
दूसरी बात सत्य के निकटतम है। परमात्मा तटस्थ है। हम उसमें वही देख लेते हैं, जो हमारी मनोदशा होती है। हमारा ही मन, हमारी ही वृत्तियां, हमारे ही विचार, हमारी ही समझ उसको रंग देती है। परमात्मा रंगहीन है, आकारहीन है। न तो भयस्वरूप है और न प्रेमस्वरूप है; तटस्थ है। अगर हम डरते हैं मिटने से, तो भयस्वरूप मालूम होगा। अगर हम तैयार हैं मिटने को, तो प्रेमस्वरूप मालूम होगा।
जीसस को परमात्मा प्रेमस्वरूप मालूम पड़ा। और जीसस ने परमात्मा की परिभाषा में कहा कि वह प्रेम है, क्योंकि जीसस मिटने को तैयार थे। सूली पर हमने अनुभव कर लिया कि जीसस मिटने से जरा भी भयभीत नहीं थे। वे सूली पर

मिटने को इतनी आसानी से तैयार थे कि क्रास उनका प्रतीक हो गया। सूली उनकी प्रतीक हो गई। मरने की ऐसी तैयारी थी कि जीसस का प्रतीक सूली हो गई।
मृत्यु जैसे स्वीकृत थी, सहज थी। इसलिए जीसस को अगर परमात्मा प्रेमस्वरूप मालूम पड़ा, तो बिल्कुल स्वाभाविक है।
आपका परमात्मा आपके मन का प्रतिबिंब होगा। आपका परमात्मा आपकी ही निर्मिति है। उसका प्रत्यय, उसकी धारणा आप ही करेंगे।
मेरे देखे परमात्मा दोनों नहीं है। परमात्मा तो एक विराट, निराकार, शून्य जैसा अस्तित्व है। उसमें हम अपने को देख लेते हैं। इसलिए जैसे-जैसे आदमी विकसित होता है, उसका परमात्मा विकसित होता चला जाता है।
परमात्मा विकसित नहीं होता, परमात्मा तो जैसा है, है। लेकिन आदमी विकसित होता है, तो परमात्मा विकसित होता चला जाता है--उसकी धारणा, हमारा प्रत्यय, हमारा कनसेप्ट विकसित होता चला जाता है।
अलग-अलग जातियां परमात्मा की अलग-अलग धारणा करती हैं। अलग-अलग युग परमात्मा की अलग-अलग धारणा करते हैं। अलग-अलग व्यक्ति परमात्मा की अलग-अलग प्रतीति, प्रतिमा निर्मित करते हैं।
परमात्मा एक है, लेकिन सभी उसे अलग-अलग अर्थोंर्ं में देखेंगे। और जब
तक आपको परमात्मा में कोई भी अर्थ दिखाई पड़ता रहे, तब तक आप समझना कि अभी परमात्मा नहीं देखा, अभी आप अपने को ही परमात्मा में झांक रहे हैं।
जिस दिन आपको परमात्मा में कोई भी अर्थ न दिखाई पड़े; जिस दिन परमात्मा में कोई प्रतिबिंब न बने, दर्पण बिल्कुल कोरा रह जाए; कोई भी दिखाई न पड़े वहां, परम शून्य रह जाए--उस दिन आप जानना कि जो आपने जाना वह अब सत्य है। वह मन का आरोपण नहीं है।
इसलिए बुद्ध उस परम सत्य को शून्य कहते हैं। और जब तक वह परम सत्य शून्य की तरह प्रगट न हो जाए, तब तक हम अपने को उस पर आरोपित करते चले जाते हैं। यह स्वाभाविक है मनुष्य के लिए। यम के लिए भी स्वाभाविक है। परमात्मा तटस्थ ऊर्जा है, किसी तरफ झुकी हुई नहीं। परमात्मा का होना कोई भी चुनाव से भरा हुआ नहीं है, चुनावरहित है। कोई पक्ष नहीं है उसका। उस अवस्था में किसी तरह का रंग-रूप नहीं है। इसलिए जो भी हम उसमें देखें, इसे स्मरण रखना कि वह देखना हम पर निर्भर है।
जिस दिन हमें वहां कुछ भी न दिखाई पड़े, एक विराट कोरापन रह जाए--न कृष्ण बनें वहां, न राम बनें वहां, न बुद्ध की प्रतिमा उभरे, न जीसस वहां दिखाई पड़ें; न वहां भय, न वहां प्रेम; वहां कुछ भी न दिखाई पड़े। यह उसी दिन होगा जिस दिन आपका मन इतना निर्विकार हो जाएगा कि उस मन से कोई भी विकार परमात्मा पर प्रतिफलित न हो। जिस दिन आप भीतर शून्य हो जाएंगे, उस दिन परमात्मा शून्य हो जाएगा।
मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि जैसे आप हैं, वैसा ही आपका परमात्मा होगा। यह यम का वक्तव्य है, अधूरा है। ब्रह्मा का वक्तव्य होगा, वह भी अधूरा होगा। दोनों एक-एक छोर से परिचित हैं। एक जन्म के छोर से, एक मृत्यु के छोर से।
लेकिन अगर आप, जो कि दोनों हैं, जन्म भी और मृत्यु भी, जन्मे भी हैं और मरेंगे भी, जो दोनों छोर को छू रहे हैं, स्पर्श कर रहे हैं, अगर आप सजग हो जाएं, तो आप पाएंगे कि परमात्मा तटस्थ है। वह न प्रेमस्वरूप है और न भयस्वरूप है।
अब हम सूत्र में प्रवेश करें।
जैसे दर्पण में सामने आई हुई वस्तु दिखती है, वैसे ही शुद्ध अंतःकरण में ब्रह्म के दर्शन होते हैं।
शुद्ध अंतःकरण में ब्रह्म के दर्शन होते हैं। जितना शुद्ध होगा अंतःकरण, उतना ही ब्रह्म का दर्शन भी शुद्ध होगा। परम शुद्ध होगा अंतःकरण, तो परम शुद्ध दर्शन होगा। दर्पण विकृत होगा, तो उतने ही विकार प्रतिबिंब में भी हो जाएंगे। दर्पण टूटा-फूटा होगा, तो उतनी ही टूट-फूट प्रतिबिंब में भी हो जाएगी। दर्पण आड़ा-तिरछा होगा, तो वही प्रतिबिंब में भी प्रवेश कर जाएगा।
दर्पण का परम शुद्ध होना, अंतःकरण का परम शुद्ध होना, ब्रह्म के शुद्ध दर्शन के लिए अनिवार्य है। लेकिन ब्रह्म के दर्शन बहुत तरह से हो सकते

हैं। क्योंकि दर्पण बहुत स्थितियों में हो सकता है। ये दर्पण की स्थितियां हैं।
जैसे स्वप्न में वस्तुएं स्पष्ट दिखलाई देती हैं, उसी प्रकार पितृलोक में परमेश्वर दिखता है।
ये लोक प्रतीक हैं अलग-अलग स्थितियों के। पहली तो बात, अगर शुद्ध अंतःकरण हो तो यहीं पृथ्वीलोक पर परमात्मा के सीधे दर्शन हो जाते हैं। अगर अंतःकरण बहुत शुद्ध न हो, तो शरीर के छूटने पर जो लोक है, पितृलोक, जहां देहरहित आत्माओं का वास है, वहां भी परमात्मा के दर्शन होते हैं। शरीर के छूट जाने से, शरीर के कारण जो विकृतियां आती हैं मन पर, वे वहां नहीं होतीं। वहां जो परमात्मा के दर्शन होते हैं, वे इतने स्पष्ट होते हैं, जैसे स्वप्न स्पष्ट होता है।
जैसे जल में वस्तु के रूप की झलक पड़ती है, उसी तरह गंधर्वलोक में परमात्मा की झलक सी पड़ती है।
लेकिन स्वर्ग में, गंधर्वों के लोक में, जैसे जल में झलक पड़ती है किसी वस्तु की, हल्की सी झलक, एक आभास, ऐसा स्वर्गलोक में भी आभास भर मालूम होता है।
स्वर्गलोक सुख की उत्तेजना से भरा हुआ लोक है। दुख एक उत्तेजना है, यह
हम जानते हैं, सुख भी एक उत्तेजना है, यह हम नहीं जानते हैं। दुख में भी मन विचलित होकर कंपित हो जाता है, सुख में भी मन विचलित होकर कंपित हो जाता है। इसलिए जो लोग आनंद की तलाश में हैं, वे उत्तेजना से मुक्त होना चाहते हैं--वह चाहे दुख की हो और चाहे सुख की हो।
आपको ख्याल है कि सुख में भी आप कंप जाते हैं? यह बड़े आश्चर्य की बात है। मेडिकल साइंस का कथन है कि दुख में हृदय का दौरा कम पड़ता है, सुख में ज्यादा पड़ता है। और हार्टफेल के, हृदय-अवरुद्ध हो जाने की घटनाएं दुख में नहीं घटतीं, सुख में घटती हैं। होना नहीं चाहिए ऐसा। उलटा है यह। होना तो यह चाहिए कि दुखी आदमी मर जाए एकदम घबड़ाकर, लेकिन दुखी आदमी नहीं मरता। सुखी आदमी सुख की चोट में मर जाता है।
इसलिए जितना मुल्क सुखी होता जाता है, उतना हृदय-रोग बढ़ता चला जाता है। गरीब और दुखी मुल्कों में हृदय-रोग नहीं होता। आदिवासियों को हृदय-रोग का पता ही नहीं है। दुख बहुत है, लेकिन हृदय-रोग का पता नहीं है। हृदय-रोग के लिए संपन्न होना जरूरी है, सुखी होना जरूरी है।
चिकित्साशास्त्र का कहना है कि यह बड़ी अनूठी बात है कि सुख में आदमी
का हृदय इतना कंप जाता है कि टूट जाता है। दुख में इतना नहीं कंपता। दुख को सहना आसान है, सुख को सहना बहुत मुश्किल है। दुख से तो बहुत लोग बचकर निकल आते हैं। सुख से बचकर निकलने में बड़ी कुशलता चाहिए, नहीं तो आदमी टूट जाता है।
आपको भी ख्याल होगा कि अगर सुख की कोई अचानक घटना घट जाए, तो कैसा आघात पहुंचता है। अभी कोई खबर आकर दे दे कि पांच लाख की लाटरी मिल गई। डर यह है कि लाटरी लेने तक आप पहुंच नहीं पाएंगे। एकदम कंप जाएंगे, इतना ज्यादा हो जाएगा। लेकिन पांच लाख रुपये आपके खो जाएं, तो भी आप कंपेंगे, लेकिन इतने नहीं। पांच लाख मिलने से जितना हृदय को धक्का पहुंचने वाला है, उतना पांच लाख खोने से नहीं पहुंचता।
सुख एक तरह की तीव्र उत्तेजना है। गंधर्वलोक, जहां सुख की वर्षा हो रही है... । सिर्फ प्रतीक हैं ये लोक। हममें से कई लोग गंधर्वलोक में हैं, यहीं। कई लोग पितृलोक में हैं, यहीं। कई लोग नर्कलोक में हैं, यहीं। कई लोग ब्रह्मलोक में हैं, यहीं। ये लोक भौगोलिक स्थितियां कम, मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं ज्यादा हैं।
जहां सुख बहुत है, वहां परमात्मा की कभी-कभी आभास की स्थिति भर हो सकती है। क्योंकि दर्पण हमेशा कंपता रहेगा, उत्तेजित रहेगा। इसे आप ऐसा भी समझेंः इसीलिए सुखी लोग परमात्मा को भूल जाते हैं। जब आप सुख में होते हैं, तब प्रार्थना, पूजा, मंदिर, सब विस्मृत हो जाते हैं। दुख में होते हैं, तब शायद याद भी आ जाए, सुख में याद भी नहीं आती। दुख से आदमी छूटना चाहता है, तो परमात्मा की तलाश करता है। सुख से छूटना ही नहीं चाहता, तो परमात्मा की तलाश का सवाल क्या है?

जुन्नैद एक सूफी फकीर हुआ। कभी कोई बीमारी, कभी कोई और बीमारी, कभी फिर कोई और बीमारी उसे पकड़े रहती थी। उसके शिष्यों ने कहा, जुन्नैद, तुम और बीमार रहो! तुम तो परमात्मा को इशारा भी कर दो कि मैं बीमार नहीं होना चाहता, तो बात खतम हो गई। जुन्नैद ने कहा कि मैं उससे यह प्रार्थना ही करता रहता हूं कि तू मुझे एकाध न एकाध बीमारी चलाए रख। तो शिष्यों ने कहा, तुम पागल तो नहीं हो गए हो? यह भी कोई बात हुई!
जुन्नैद ने कहा, बीमारी रहती है तो मैं उसका स्मरण कर पाता हूं। बीमारी दुख बनी रहती है; उस दुख में मैं उसकी प्रार्थना कर पाता हूं। एक बार ऐसा हुआ था कि बहुत दिन तक मैं बीमार नहीं रहा था, तो मैं उसे भूल गया था। तब से मेरी यही प्रार्थना है कि तू मुझे दुख देते रहना।
दुख में तो उसकी स्मृति भी आ जाती है, सुख में उसकी स्मृति खो जाती है।
सुख में कभी-कभी उसका कोई आभास मिल जाए तो मिल जाए, जैसे जल में पड़ी हुई कोई झलक।
लेकिन अगर कोई व्यक्ति विदेह हो जाए, जिसको पितृलोक कह रहा है यम... ।
विदेह का मतलब जरूरी नहीं है कि आपकी देह छूट ही जाए; जरूरी इतना है कि आपको देह का स्मरण न रहे। इसलिए हमने जनक को विदेह कहा है, जीते-जी। देह का कोई स्मरण नहीं है, देह की कोई प्रतीति नहीं है। जैसे देह है या नहीं है, कोई फर्क नहीं है; देह भूल गई है।
तो ऐसी विदेह अवस्था में उसकी झलक इतनी साफ होती है, जैसे स्वप्न में चीजें साफ होती हैं। लेकिन स्वप्न में, आंख बंद करके उसके विजन हैं, उसकी प्रतीतियां होती हैं। लेकिन आंख खोलते ही उसकी प्रतीतियां खो जाती हैं। स्वप्न जैसी।
और ब्रह्मलोक में तो छाया और धूप की भांति आत्मा और परमात्मा दोनों
का स्वरूप पृथक-पृथक स्पष्ट दिखाई देता है।
तो एक विदेह अवस्था है, जहां स्वप्न जैसी स्पष्ट प्रतीति होती है। पर बस, स्वप्न जैसी, आंख खोलते ही खो जाती है। संसार के दिखाई पड़ते ही धूमिल हो जाती है।
एक दूसरी अवस्था है, जहां सुख की उत्तेजनाओं से भरा हुआ चित्त है, वहां सिर्फ कभी उसकी आभास, भनक, दूर से आती हुई ध्वनि की तरह सुनाई पड़ती है। या पानी में पड़े हुए प्रतिबिंब की तरह। और पानी तो प्रतिपल कंप रहा है। प्रतिबिंब कभी भी थिर नहीं हो पाता।
तीसरी ब्रह्मलोक की अवस्था है। उस अवस्था का नाम ब्रह्मलोक है, जब आप
सब भांति शुद्ध हैं, अंतःकरण पूरी तरह शुद्ध है, ब्रह्म जैसे हो गए हैं। कोई विकार नहीं है, वहां चीजें बिल्कुल दो और दो की तरह साफ हो जाती हैं। वहां स्वप्न की तरह साफ नहीं होतीं, वहां जागृति की तरह साफ हो जाती हैं, जैसे जागने में सब साफ दिखाई पड़ रहा हो। यह जो अवस्था है ब्रह्मलोक की, अंतःकरण की शुद्धता की आखिरी ऊंचाई है।
यह अंतःकरण क्या है, इसे हम थोड़ा समझ लें। क्योंकि जिसे हम अंतःकरण समझते हैं, वह अंतःकरण है ही नहीं। अंतःकरण के साथ बड़ी भूल-चूक जुड़ी हुई है। अंग्रेजी में शब्द है कान्शीयन्स, संस्कृत का शब्द है अंतःकरण।
आप चोरी करने जाते हैं। भीतर से कोई आवाज आती है, चोरी बुरी है, मत करो। इसे हम अंतःकरण कहते हैं। यह अंतःकरण नहीं है, यह स्यूडो कान्शीयन्स है, यह मिथ्या अंतःकरण है। यह समाज के द्वारा सिखाया हुआ है, यह आपका नहीं है। क्योंकि ऐसी जातियां हैं, जो चोरी को पाप नहीं मानतीं। बल्कि ऐसी जातियां हैं, राजस्थान में भी जाटों का समूह है, जो सैकड़ों वर्षों से चोरी को पाप नहीं मानता रहा है। बल्कि पुराने दिनों में जाट युवक की शादी ही नहीं हो सकती थी, जब तक वह दो-चार चोरी नहीं कर ले और सफल न हो जाए। युवक की शादी करते वक्त पूछते थे कि वह कितनी चोरियों में सफल हो चुका! वह उसकी कुशलता का प्रमाण था।
चोरी कुशलता तो है ही। हर कोई नहीं कर सकता। थोड़ी बुद्धि चाहिए। बुद्धू के बस का काम नहीं है। और बुद्धि प्रखर चाहिए। फिर साहस भी चाहिए, भीरु का धंधा नहीं है वह। कमजोर की वहां गति नहीं है। कमजोर तो अपनी ही संपत्ति हाथ में लेते कंपता है। दूसरे की संपत्ति को अपनी की तरह मान लेने के लिए बड़ा कड़ा हृदय चाहिए। अपने ही घर में अंधेरे में चलना मुश्किल हो

जाता है, दूसरे के घर में अंधेरे में चलने के लिए कदमों में आंखें चाहिए।
और बड़ा निष्कंप हृदय चाहिए कि कंपे नहीं। एक तरह की एकाग्रता भी चाहिए।
चोर बड़ा एकाग्र होता है। उसका मस्तिष्क एक ही बिंदु पर टिका रहता है।
अगर चोर का मन बहुत ज्यादा यहां-वहां भटके, तो मुसीबत में पड़ जाएगा। एक लक्ष्य और सारी प्राण-ऊर्जा उसी तरफ बहती है।
तो चोरी सभी समाजों में बुरी नहीं रही है। तो जिस समाज में चोरी बुरी नहीं है, उस समाज में चोरी करते वक्त कभी भी यह ख्याल पैदा नहीं होगा, कोई अंतःकरण नहीं कहेगा कि रुको।
हिंदू है। एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करे तो भीतर से अंतःकरण कहता
है कि पाप कर रहे हो, बुरा कर रहे हो। मुसलमान चार को करे, कोई दिक्कत नहीं मालूम होती। कुरान आज्ञा देती हैः चार विवाह कर सकते हो। मुहम्मद ने खुद नौ विवाह किए। जरा भी चिंता नहीं होती। पर इससे आप ऐसा मत सोचना कि मुहम्मद ने बहुत बुरा किया।
अपने कृष्ण की कथा आप स्मरण रखना। मुहम्मद तो कुछ भी नहीं हैं, उस हिसाब में। लेकिन कृष्ण की हमने कभी निंदा नहीं की है। सोलह हजार रानियों की कथा है। यह हमें कहानी मालूम पड़ सकती है कि सोलह हजार! एक स्त्री इतना उपद्रव खड़ा कर सकती है! कृष्ण बड़ी हिम्मत के आदमी रहे होंगे! लेकिन उस समाज में कोई अस्वीकृति नहीं थी। सम्राट सैकड़ों विवाह करते ही थे।
अभी निजाम हैदराबाद की पांच सौ पत्नियां थीं। जिस दिन भारत आजाद हुआ,
उस दिन पांच सौ पत्नियां थीं। बीसवीं सदी में पांच सौ पत्नियां हो सकती हैं, तो कोई ज्यादा बड़ी संख्या नहीं है, सिर्फ बत्तीस गुनी, सोलह हजार। कोई बहुत बड़ा मामला नहीं है। कहानी बनाने की जरूरत नहीं है। यह हो सकता है। लेकिन कोई अड़चन नहीं थी। समाज की धारणा ही यही थी कि सम्राट की पत्नियां ज्यादा होंगी ही।
असल में जितना बड़ा सम्राट, उसका प्रमाण ही एक था कि कितनी पत्नियां!
वह उसकी संपदा का गणित था कि कितनी पत्नियां! गरीब आदमी एक ही पत्नी नहीं रख सकता। पत्नी रखना खर्चीला मामला है। सभी एफोर्ड नहीं भी कर सकते। तो जितना बड़ा सम्राट, उतनी पत्नियां, यह स्वीकृत मान्यता थी।
तो कोई अड़चन नहीं होती थी किसी सम्राट को हजारों शादियां कर लेने में। कोई भाव भी नहीं उठता था। अंतःकरण कभी नहीं कहेगा कि यह तुम क्या कर रहे हो। या इसमें कुछ पाप है। इस बात पर निर्भर करता है कि समाज ने क्या सिखाया है।
जुआ स्वीकृत था, तो युधिष्ठिर जुआ खेलते रहे। लेकिन हमने कभी उनको धर्मराज के पद से नीचे नहीं उतारा। आज अधार्मिक आदमी भी जुआ खेलता है तो अंतःकरण में चोट पड़ती है। युधिष्ठिर को जरा भी न पड़ी! और जुआ कोई साधारण नहीं था, सब तो लगाया ही, पत्नी भी लगा दी। अभी आप जरा पत्नी को लगाकर देखें। छाती साथ नहीं देगी, अंतःकरण इनकार करेगा। लेकिन युधिष्ठिर को बिल्कुल भी नहीं किया। और युधिष्ठिर के पीछे लिखने वालों ने कभी भी एतराज नहीं उठाया। उनके धर्मराज होने में कोई शंका पैदा नहीं हुई।
समाज को स्वीकार था, जुआ एक खेल था। और जितने बड़े खिलाड़ी थे, उतने बड़े दांव थे। युधिष्ठिर बड़े खिलाड़ी थे, पत्नी को भी दांव पर लगाने की हिम्मत उन्होंने जुटाई। इसमें कहीं कोई नीति-निषेध नहीं था। इसमें कोई कठिनाई नहीं आ रही थी।
द्रौपदी के पांच पति हैं। लेकिन हमने द्रौपदी को पांच महाकन्याओं में गिना है। जिन्होंने पांच महाकन्याओं में गिना, उनकी मान्यता और रही होगी। हम अगर आज एक स्त्री के पांच पति हों तो उसे कहां रखेंगे? उसे हम पांच प्रातः स्मरणीय कन्याओं में नहीं गिन सकते। लेकिन जिन्होंने गिना है, उन्हें कोई अड़चन न थी। पांच पति हो सकते थे। पांच पत्नियां हो सकती थीं, पांच पति हो सकते थे। बहुपत्नी, बहुपति प्रथा स्वीकृत थी, तो अंतःकरण में कोई चोट नहीं थी।
यह जो अंतःकरण है, यह समाज पर निर्भर है। यह जो अंतःकरण है, यह वास्तविक अंतःकरण नहीं है, यह समाज के द्वारा आरोपित है, प्लांटेड है। यह ऊपर से थोप दिया गया है। इस अंतःकरण की शुद्धि से परमात्मा का कोई संबंध नहीं। जिस अंतःकरण की बात उपनिषद कह रहे हैं, उसका अर्थ है... ।

हमारे पास जितनी इंद्रियां हैं वे बहिर्करण हैं, उनके द्वारा बाहर का ज्ञान होता है। अंतःकरण वह है, जिसके द्वारा भीतर का ज्ञान होता है। जिसके द्वारा चेतना भीतर सजग होती है। इस भीतर के ज्ञान वाली स्थिति को, जिसको हम विवेक कह रहे हैं, प्रज्ञा कह रहे हैं, उसी का एक नाम अंतःकरण है।
इस भीतर की प्रज्ञा को निखारने की जो व्यवस्था है, वह समाज के अंतःकरण
के अनुकूल चलने से नहीं उपलब्ध होने वाली है। न ही प्रतिकूल चलने से उपलब्ध होने वाली है। इसका यह मतलब नहीं है कि आप समाज जो कहता है, उसको इनकार करके व्यर्थ उपद्रव में पड़ें। उसकी भी कोई जरूरत नहीं है। वह एक समझौता है। वह समाज में जीने की एक व्यवस्था है।
जहां इतने लोग एक बात को मानकर चल रहे हैं, वहां चुपचाप उनकी बात मान लेने से कम उपद्रव होता है। और आप अपने भीतर की यात्रा पर आसानी से जा सकते हैं। अन्यथा व्यर्थ की छोटी-छोटी बातों में उलझाव खड़ा हो जाएगा और बाहर अटकाव हो जाएगा।
अगर साधुपुरुषों ने समाज की मान्यता स्वीकार की है, तो इसलिए नहीं कि
वह ठीक है, बल्कि इसलिए कि उससे शांति में जाना आसान है। इस बात को ठीक से समझ लें। अगर साधुपुरुषों ने समाज की सारी व्यवस्था स्वीकार कर ली, तो इसलिए नहीं कि वह बिल्कुल ठीक है। कोई समाज की व्यवस्था बिल्कुल ठीक नहीं है। और बिल्कुल ठीक समाज की व्यवस्था हो भी नहीं सकती। क्योंकि जब तक सारे व्यक्ति ठीक न हों, तो उनके जोड़ के ठीक होने का कोई उपाय नहीं है।
समाज तो अनिवार्यरूप से गलत है और गलत रहेगा। बस, कम गलत होता जाए इतनी ही आशा करनी काफी है। केवल व्यक्ति ही पूरा ठीक हो सकता है, समाज तो भीड़ है। और जैसे पानी अपना तल बना लेता है, ऐसे ही भीड़ भी अपना तल बना लेती है। भीड़ हमेशा अपने निम्नतम व्यक्ति के तल पर उतर जाती है।
समाज की धारणाएं सही हैं या गलत, यह महत्वपूर्ण नहीं है। साधुपुरुष उनको स्वीकार कर लेता है, सिर्फ इसलिए ताकि बाहर कोई उपद्रव खड़ा न हो और वह भीतर की यात्रा पर सुगमता से जा सके।
लेकिन यह अंतःकरण जीवन की चरम बात नहीं है। अंतःकरण तो भीतर की उस चेतना शक्ति का नाम है, जिससे हम बाहर नहीं देखते बल्कि भीतर देखने में समर्थ हो जाते हैं।
आप आंख बंद करते हैं, तो भीतर अंधेरा हो जाता है। उस अंधेरे में भी कोई जानता हुआ मालूम पड़ता है। आप कान बंद कर लें, तो भीतर सन्नाटे की आवाज आने लगती है। लेकिन उस सन्नाटे की आवाज में भी कोई सुनता हुआ मालूम पड़ता है। यह जो भीतर जानता हुआ, सुनता, देखता हुआ मालूम पड़ता है, यह आपका अंतःकरण है। और इसको जितना आप प्रगाढ़ करते जाएं... । पहले तो बहुत धीमी झलक उसकी मिलेगी। क्योंकि हम बाहर देखने के इतने आदी हो गए हैं कि आंखें हमारी बाहर के लिए नियोजित हो गई हैं। अचानक भीतर आंख बंद करते हैं तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
यह ठीक वैसे ही है, जैसे आप सूरज की रोशनी से एकदम अंधेरे कमरे में आ जाएं तो आपको कुछ दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन थोड़ा बैठें। थोड़ी ही देर में आंखें अपने फोकस को बदल लेती हैं। वह कमरे के लिए एडजस्ट होती हैं, समायोजित होती हैं। फिर जितना अंधेरा दिखाई पड़ता था, उससे कम अंधेरा दिखाई पड़ता है। फिर आप बैठे ही रहें, चुपचाप कमरे के साथ एक होते जाएं। थोड़ी देर में कमरा प्रकाशित मालूम होने लगता है। अंधेरे से अंधेरे कमरे में भी अगर आप राजी होकर बैठें, तो थोड़ी देर में थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। लेकिन हम अपने भीतर के अंधेरे कमरे में कभी बैठते ही नहीं। कभी थोड़ी-बहुत आंख बंद करते हैं... ।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि क्या आप कहते हैं भीतर देखें, भीतर देखें! आंख बंद करते हैं, वहां तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।
आप जन्मों-जन्मों से बाहर देख रहे हैं। अनंत-अनंत काल से बाहर देख रहे हैं। इतने काल के बाद जब आप भीतर जाएंगे, तो अंधेरा तो दिखाई पड़ेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वहां अंधेरा है। आप जिस रोशनी को देखने के आदी हो गए हैं, वह रोशनी वहां नहीं है। वहां और तरह की रोशनी है। उस और तरह की रोशनी के लिए थोड़ा धीरज रखना जरूरी है।

इतना ही एक आदमी कर ले कि रोज एक घंटा आंख बंद करके बैठ जाए और भीतर देखता रहे, चाहे कुछ दिखे और चाहे न दिखे। तीन महीने के भीतर पाएगा कि भीतर रोशनी मालूम पड़ने लगी। सिर्फ एक घंटा। इतनी प्रतीक्षा ही करे--कुछ न करे। लेकिन हमारे पास धैर्य इतना कम है, जिसका हिसाब नहीं। धैर्य है ही नहीं। एक आदमी बैठता है दो मिनट आंख बंद करके, तो कहता हैः कुछ भी सार नहीं है। कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता। न कोई आत्मा है, न कोई ब्रह्म के दर्शन होते हैं! छोड़ो भी। इतनी देर में तो रेडियो से न्यूज ही सुन लेते, कि एक दफा अखबार फिर से पढ़ लेते!
धैर्य बिल्कुल नहीं है। पेशेन्स जैसी कोई चीज नहीं है। और इस भीतर की यात्रा में धैर्य तो आत्मा है। सारे प्रयत्न की आत्मा धैर्य है।
आप कुछ भी न करें अगर, इतना ही कर लें कि रोज एक घंटा आंख बंद करके बैठ जाएं, चाहे कुछ हो, चाहे कुछ न हो। बस भीतर देखने की कोशिश करते रहें, टटोलते रहें। आप थोड़े ही दिनों में पाएंगे कि अंधेरा उतना घना नहीं है, जितना आपको लगता था। थोड़ी-थोड़ी रोशनी प्रगट होने लगी। चीजें थोड़ी साफ होने लगीं। तीन महीने निरंतर धैर्यपूर्वक देखने पर आपको पहली दफा अंतःकरण समझ में आएगा कि क्या है।
अंतःकरण का मतलब हैः भीतर की इंद्रिय, जो भीतर देखने में समर्थ है। करण का अर्थ होता है, इंद्रिय, उपकरण; और अंतः का अर्थ होता है, भीतर की ओर ले जाने वाली।
हमारी बाकी इंद्रियां बहिर्करण हैं। भीतर की तरफ ले जाने वाली इंद्रिय हम उपयोग ही नहीं कर रहे हैं। और ध्यान रहे, जिस इंद्रिय का उपयोग नहीं होता, वह अपनी लोच की क्षमता खो देती है। आप एक सालभर पैर बांधकर बैठ जाएं और उपयोग न करें। फिर पैर चल नहीं सकेंगे। पैर चल सकते थे पहले, लेकिन सालभर जड़ बने रहे तो फिर चल नहीं सकेंगे। आप जिन-जिन चीजों का उपयोग नहीं करेंगे, वे-वे चीजें जड़ हो जाएंगी।
उपयोग जीवन का हिस्सा है, उससे चीजें सजग रहती हैं। हमने बहुत-सी चीजों का उपयोग बंद कर दिया है, वे समाप्त हो गई हैं। और अंतःकरण का उपयोग तो हमने न मालूम कितने जन्मों से नहीं किया है। किया ही नहीं।
तो इसलिए थोड़ी प्रतीक्षा, धैर्य अत्यंत आवश्यक है। जो पैर बहुत दिन
से न चला हो, उसकी मसाज भी करनी पड़ेगी, उसे चलाने के थोड़े से अभ्यास भी करने पड़ेंगे। और धीरे-धीरे ही उसमें गति होगी, खून दौड़ेगा, प्राण आएंगे। ठीक वैसी ही स्थिति अंतःकरण की है।
यम नचिकेता से कह रहा है--शुद्ध अंतःकरण। जिस दिन यह भीतर की इंद्रिय पूर्ण शक्तिवान हो जाती है और देखने में समर्थ हो जाती है, और इसका प्रत्यक्ष शुद्ध हो जाता है, चीजें साफ होने लगती हैं--इस शुद्धता की आखिरी अवस्था में ब्रह्मलोक है, जहां आप ब्रह्म जैसे हो जाते हैं। वहां दो और दो चार, ऐसा जाग्रत में साफ हो जाए, स्वप्न में नहीं। प्रतिबिंब में नहीं, सीधा प्रत्यक्ष हो जाए, साक्षात्कार, वैसी सत्य की प्रतीति होती है। अपने-अपने कारण से भिन्न-भिन्न रूपों में उत्पन्न हुई इंद्रियों की
जो पृथक-पृथक सत्ता है और जो उनका उदय और लय हो जानारूप स्वभाव है, उसे जानकर आत्मा का स्वरूप उनसे विलक्षण समझने वाला धीर पुरुष शोक नहीं करता। और जैसे-जैसे अंतःकरण शुद्ध होगा, वैसे-वैसे आपको दिखाई पड़ेगा कि बाकी इंद्रियों की सारी शक्ति उसी में लीन होती जा रही है। जैसे-जैसे अंतःकरण सजग होगा, बाकी इंद्रियों की जो बहती हुई ऊर्जा है, जो व्यर्थ उनसे लीकेज--उनसे व्यर्थ शक्ति बाहर जा रही थी--वह सब की सब अंतःकरण को उपलब्ध होने लगी। और एक घड़ी आती है, जब सारी बहिईंद्रियां अपनी पूरी ऊर्जा को अंतःकरण में ही लीन कर देती हैं, उसी में डूब जाती हैं। कान, आंख, जीभ, नाक--सब उसी में डूब जाते हैं।
डूब जाने का अर्थ है कि गंध की जो क्षमता नाक में थी, वह अंतःकरण को उपलब्ध हो जाती है। आंख की जो क्षमता आंख में थी देखने की, वह अंतःकरण को उपलब्ध हो जाती है। अब तो वैज्ञानिक भी इससे किसी दूसरे अर्थ में राजी हैं।
आप जानते हैं कि अंधा आदमी आपसे ज्यादा अच्छी तरह से सुनने लगता है। इसलिए अंधा संगीतज्ञ हो सकता है--आपसे ज्यादा अच्छा। क्या कारण है?

क्योंकि आंख की ऊर्जा कान को उपलब्ध हो जाती है। ट्रांसफर हो जाती है। आंख काम नहीं कर रही है तो जो ऊर्जा आंख से बाहर जाती है... और अस्सी प्रतिशत ऊर्जा आंख से बाहर जा रही है शरीर की। आप अपनी आंखों के दुरुपयोग के कारण जितना थकते हैं, उतना और किसी चीज के कारण नहीं थक रहे हैं।
अमेरिका में नई खोजें कह रही हैं कि टेलीविजन कैंसर का मूल आधार बनता
जा रहा है। क्योंकि टेलीविजन आंख को बुरी तरह थकाने वाला है, जैसी और कोई चीज नहीं थका सकती। अमेरिका में डर पैदा हो रहा है, टेलीविजन का जैसा विस्तार हुआ है, वह पूरे जीवन को रुग्ण किए दे रहा है। और टेलीविजन इतना विक्षिप्त कर देता है छोटे-छोटे बच्चों को भी कि वे दिनभर देख रहे हैं। जब भी उनको मौका है, तब वे टेलीविजन पर अटके हुए हैं! न उन्हें खेलने में रस है, न कहीं बाहर जाने में। सब कुछ टेलीविजन हो गया है।
आंख की इतनी ऊर्जा का व्यय कैंसर पैदा कर सकता है।... थक जाए तो कैंसर है। वह बीमारी कम है, इसलिए उसका इलाज नहीं खोजा जा रहा है, इलाज खोजना मुश्किल मालूम पड़ रहा है। क्योंकि वह बीमारी होती, तो हम कुछ दवा खोज लेते। वह बीमारी कम है, वह पूरे यंत्र की गहरी थकान है। जैसे पूरा यंत्र मरना चाहता है, इतना थक गया है। पूरे यंत्र का रोआं-रोआं, कण-कण मरने के लिए आतुर है, आत्मघाती हो गया है, तो फिर उसे जगाना बहुत मुश्किल है। उसको वापस जीवन में लौटा लेना बहुत मुश्किल है।
आपकी आंख जितना थकाती है, उतनी कोई चीज नहीं थकाती। अंधे आदमी की आंख
की ऊर्जा बह नहीं रही, वह कान की तरफ बहने लगती है। हैलन केलर है, वह अंधी भी है, बहरी भी है, गूंगी भी है। तो सारी की सारी ऊर्जा उसके हाथों से बहने लगी। उसके हाथ इतने संवेदनशील हैं, कि पृथ्वी पर किसी के हाथ नहीं। क्योंकि वह सारा काम हाथ से ही लेती है। किताब भी हाथ से ही पढ़ती है। लोगों से मिलती भी है तो उनके चेहरे को हाथ से ही छूती है। और जिस आदमी का चेहरा एक बार हाथ से छू लेती है, उसके हाथ की स्मृति में प्रविष्ट हो जाता है वह चेहरा। दस साल बाद भी चेहरे को छूकर पहचान लेगी कि वह कौन है। सारी ऊर्जा हाथ में चली गई, स्पर्श ही सब कुछ हो गया।
वैज्ञानिक इसको स्वीकार करते हैं कि ऊर्जाएं ट्रांसफर हो सकती हैं।
एक जगह से दूसरी जगह उपयोग में आ सकती हैं। एक इंद्रिय दूसरे में लीन हो सकती है। लेकिन योग की बहुत पुरानी धारणा है कि भीतर एक छठवीं इंद्रिय है जिसमें पांचों इंद्रियां लीन हो सकती हैं। और जिस दिन उस छठवीं इंद्रिय का जागरण होता है और सभी इंद्रियां उसमें लीन हो जाती हैं, उस दिन भीतर के अनुभव शुरू होते हैं।
भीतर ऐसी सुगंध है, जैसी बाहर उपलब्ध करने का कोई उपाय नहीं। और भीतर ऐसा नाद है कि उस नाद को बाहर का श्रेष्ठतम संगीत भी केवल इशारा ही करता है। और भीतर ऐसा प्रकाश है कि कबीर ने कहा है कि हजार-हजार सूरज जैसे एक साथ उदय हो जाएं।
अरविंद कहते थे कि जब मैं जागा हुआ नहीं था, तो जिसे मैंने जीवन समझा था, अब वह मृत्यु जैसा मालूम होता है। क्योंकि अब मैं भीतर के जीवन से परिचित हुआ हूं, तो तौल सकता हूं। जिसे मैंने सुख समझा था, वह आज परम दुख मालूम पड़ता है। क्योंकि भीतर के आनंद का उदय हुआ है, अब मैं तुलना कर सकता हूं कि सुख क्या था। वह परम दुख मालूम होता है।
जिस दिन सारी इंद्रियां उसी मूल इंद्रिय में खो जाती हैं जो अंतःकरण है, उस दिन भीतर के अनुभव शुरू होते हैं। भीतर जैसा सौंदर्य है, जैसी सुगंध है, जैसा रस है, बाहर तो केवल उसकी झलक है। जिसे हम संसार कह रहे हैं, वह सब फीका हो जाता है। त्यागियों ने संसार छोड़ा नहीं; उन्होंने भीतर के, उस परम भोग को अनुभव किया है, जिसके कारण बाहर का सब व्यर्थ हो गया।
इसलिए मैं निरंतर दोहराता हूं कि सिर्फ अज्ञानी छोड़ते हैं, ज्ञानी छोड़ते ही नहीं। ज्ञानी तो और श्रेष्ठतर को पा लेते हैं। उसके पाते ही बाहर का व्यर्थ हो जाता है। आप कंकड़-पत्थर से खेल रहे थे, फिर किसी ने कोहिनूर आपके हाथ में दे दिया। कोहिनूर हाथ में पड़ते ही पत्थर-कंकड़ छूट जाते हैं।
फिर कोई समझाने की जरूरत नहीं कि छोड़ो, ये कंकड़-पत्थर हैं; इनका त्याग करो।
इसे समझाने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

कंकड़-पत्थर तभी तक हीरे मालूम होते हैं, जब तक हीरे को न जाना हो। हीरे
को जानते ही वे कंकड़-पत्थर हो जाते हैं, क्योंकि तुलना का उदय होता है। अंतःकरण की जो प्रतीतियां हैं, वे जगत के सारे सुखों को एकदम फीका और क्षीण कर जाती हैं, बासा कर जाती हैं।
बाहर भी संभोग है। बाहर का संभोग क्षणभर का सुख है। लेकिन जब अंतःकरण
को वीर्य की पूरी ऊर्जा मिल जाती है, तो भीतर जो संभोग का रस है... । भीतर के पुरुष और स्त्री का जो मिलन है, हमने उसी के प्रतीक अर्धनारीश्वर की प्रतिमा बनाई है, शंकर की प्रतिमा बनाई है, जो आधी पुरुष है और आधी स्त्री है। सिर्फ भारत ने वैसी प्रतिमा बनाई, पृथ्वी पर कहीं भी कोई वैसी प्रतिमा नहीं है। वह एक भीतर के अनुभव का अंकीकरण है बाहर।
भीतर जब स्त्री और पुरुष की दोनों ऊर्जाएं संयुक्त हो जाती हैं... क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में दोनों ऊर्जाएं हैं। कोई भी आदमी न तो पुरुष है अकेला और न ही कोई स्त्री पूरी स्त्री है। हर पुरुष आधा पुरुष आधा स्त्री, और हर स्त्री आधी स्त्री आधा पुरुष है। इस संबंध में इस सदी के एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग की खोजें बड़ी महत्वपूर्ण हैं। जुंग ने प्रमाणित किया है कि हर आदमी आधा-आधा है। होगा ही। क्योंकि हर
एक का जन्म स्त्री और पुरुष के मिलने से हुआ है। और दोनों ने दान दिया है। आप जो भी हैं, आपके पिता का भी अंश है और आपकी मां का भी अंश है। तो आप एकदम पुरुष नहीं हो सकते। आप एकदम स्त्री भी नहीं हो सकते। कुछ मां ने भी दिया है, कुछ पिता ने भी दिया है, इसलिए फर्क जो है वह मात्रा का है। अगर मां का अंश ज्यादा है, तो आप स्त्री हो जाएंगे। और अगर पिता का अंश ज्यादा है, तो आप पुरुष हो जाएंगे। लेकिन यह मात्रा का फर्क है। साठ परसेंट पुरुष, चालीस परसेंट स्त्री, तो आप पुरुष हो जाएंगे। साठ परसेंट स्त्री, चालीस परसेंट पुरुष--आप स्त्री हो जाएंगे।
इसलिए कभी-कभी तो ऐसी भी घटनाएं घटती हैं कि कुछ बाउंड्री केसेज होते हैं, सीमांत--कि करीब-करीब पचास परसेंट दोनों, तो थर्ड सेक्स, एक तीसरी यौन की स्थिति बन जाती है।
कभी-कभी इक्यावन प्रतिशत और उन्नचास प्रतिशत, ऐसा फर्क होता है। तो पुरुष होता तो पुरुष है, लेकिन उसके सारे ढंग स्त्रैण होते हैं। स्त्री होती तो स्त्री है, लेकिन उसके ढंग बिल्कुल पुरुष जैसे होते हैं। लक्ष्मीबाई और जोन आफ आर्क और दुर्गावती--इनके शारीरिक विश्लेषण का हमें कोई पता नहीं है, लेकिन इस बात की पूरी संभावना है कि इनमें पुरुष-तत्व बहुत ज्यादा थे। खूब लड़ी मर्दानी, वह केवल कवि की ही भाषा नहीं है, अगर कभी खोज-बीन हो सके, तो वह विज्ञान की भी भाषा हो सकती है।
लेकिन यह समाज पुरुषों का है, इसलिए स्त्री अगर तलवार लेकर लड़े, तो हम कहते हैं--शानदार, मर्दानी! और अगर पुरुष बाल बढ़ा ले और मधुर ढंग से नाचे, तो हम कहते हैं--नामर्द! यह समाज पुरुषों का है, इसमें स्त्री होना पाप है। इसमें पुरुष होना बड़ी गुणवत्ता है। अगर एक पुरुष बड़े बाल बढ़ाकर स्त्रैण, मधुरभाव में जीता है, तो हम निंदा से देखते हैं। और एक स्त्री तलवार लेकर मैदान में आ जाती है, तो हम बड़ी प्रशंसा से देखते हैं। यह बड़ी अजीब बात है। अगर मर्दानी स्त्री प्रशंसा के योग्य है, तो नामर्द पुरुष क्यों प्रशंसा के योग्य नहीं है? दोनों ही गुणवान हैं। और अगर एक निंदा के योग्य है, तो दूसरा भी निंदा के योग्य है। लेकिन पुरुष अपनी प्रशंसा करता है, स्त्री की निंदा करता चला जाता है। और समाज पुरुषों का है और पुरुषों ने इतना उपद्रव किया है कि स्त्रियों तक को राजी कर लिया है, कि वे भी पुरुष की धारणाओं से राजी हो गई हैं। वे भी कहेंगी कि क्या महान लक्ष्मीबाई, मर्दानी! और स्त्रियां भी किसी पुरुष को स्त्रैण ढंग से देखकर कहेंगी कि नामर्द। उनके मन में भी निंदा है। लेकिन हर आदमी के भीतर दोनों हैं।
आदमी बायसेक्सुअल है, द्विलिंगीय है। इसलिए कभी-कभी तो ऐसी घटनाएं घट जाती हैं कि एक पुरुष अचानक थोड़े से हार्मोन्स के फर्क से, बीमारी से, चोट से, दुर्घटना से स्त्री हो जाता है। या स्त्री पुरुष हो जाती है। इंग्लैंड में कई मुकदमे अदालत में आए हैं, जिनमें एक पुरुष ने शादी की स्त्री से, लेकिन बाद में साल दो साल के बाद वह पुरुष स्त्री हो गया और अदालत को डायवोर्स दिलवाना पड़ा। फिर तो इसकी वैज्ञानिक खोज बढ़ती चली गई। और अब तो

वैज्ञानिक कहते हैं कि ये हमारे हाथ में है कि किसी भी स्त्री को पुरुष और पुरुष को स्त्री में रूपांतरित किया जा सकता है। यह सर्जरी हो सकती है। व्यक्ति के भीतर दोनों हैं। और आपके भीतर जो पुरुष है, वह बाहर की स्त्रियों में इसीलिए उत्सुक है। जिस दिन भीतर की स्त्री से मिलन हो जाए, उस दिन बाहर की स्त्री में रस खो जाएगा।
और वह जो परम संभोग है, जो महासंभोग है, जो भीतर घटित होता है, उसकी प्रतीक है अर्धनारीश्वर की प्रतिमा--आधा पुरुष आधी स्त्री। जब भीतर दोनों मिल जाते हैं, तब पहली दफा इनडिवीजुअल, पहली दफा आप में व्यक्ति पैदा होता है; विभेद, खंड टूट जाते हैं। आपकी दोनों विपरीतताएं इकट्ठी हो जाती हैं। एक वर्तुल निर्मित होता है। उस वर्तुल का नाम, उस अंतर्संभोग का नाम समाधि है।
अंतःकरण को सारी शक्ति मिल जाती है सारी इंद्रियों की। और तब भीतर जिस आनंद की, अमृत की वर्षा होती है, कबीर ने कहा है कि घनघोर बरस रहे हैं अमृत के बादल और कबीर नहा रहा है! हजार-हजार सूरज उगे हैं और प्रकाश इतना, इतना विराट है कि जिसकी कोई सीमा नहीं!
संतों को निरंतर लगा है कि वे जो जानते हैं, उसे कहना मुश्किल है। क्योंकि जो भी वे कहें, बाहर की भाषा में कहना पड़ेगा। और बाहर की चीजें ही सब इतनी फीकी हो गईं कि अब उस भाषा का क्या उपयोग करना! सब बासा मालूम होने लगा; बाहर सब बासा मालूम होने लगा। और भीतर इतने ताजे का, इतने युवा का, इतने स्फूर्त जीवन से भरी हुई धारा का अनुभव होता है कि बाहर के शब्दों का उसके लिए उपयोग करना अन्यायपूर्ण लगता है।
इसलिए बहुत संत चुप रह गए हैं। या उन्होंने कहा भी है तो फिर प्रतीक गढ़े हैं। या फिर उन्होंने अपनी भाषा ही गढ़ ली है अलग। विद्वानजन कबीर, नानक, दादू की भाषा को सधुक्कड़ी कहते हैं। क्योंकि उन्होंने अपनी भाषा गढ़ ली। वे कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग करने लगे, जो उनके ही हैं।
कबीर ने उलटबासियां लिखीं, जिनमें से कुछ मतलब नहीं निकलता। उलटी हैं
ही वे। जैसे कबीर ने लिखा है कि मछली झाड़ पर चढ़ गई! कहीं मछली कोई झाड़ पर चढ़ती है? कि नदी में आग लग गई! नदी में कहीं कोई आग लगती है?
लेकिन कबीर की मजबूरी है। आपकी जो भाषा है अगर उसका प्रयोग करें, ठीक वैसा ही जैसा होता है, तो वे जो कहना चाहते हैं, वह इतना बड़ा है कि उसमें समाता नहीं। तो फिर वे आपसे उलटी भाषा का प्रयोग करते हैं कि शायद आपको चौंका दें। शायद आप समझने को उत्सुक हो जाएं। शायद आप पूछने लगें, क्या मतलब नदी में आग लग जाने का? कि मछली का झाड़ पर चढ़ जाने का क्या प्रयोजन? शायद आप इस उलटी भाषा से चौकें। यह एक शॉक ट्रीटमेंट है, एक धक्का है, जिससे आपकी बंधी हुई धारणाएं टूट जाएं। बंधी हुई भाषा अस्तव्यस्त हो जाए। तब इशारे किए जा सकते हैं।
और जब सारी इंद्रियां लीन हो जाती हैं अंतःकरण में, तो इस आत्मा के विलक्षण स्वरूप को समझने वाला धीर पुरुष शोक नहीं करता। शोक का कोई कारण नहीं है। आनंद से परिपूर्ण हो जाता है।
इंद्रियों से तो मन श्रेष्ठ है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है, बुद्धि से उसका स्वामी जीवात्मा श्रेष्ठ है, और जीवात्मा से अव्यक्त शक्ति श्रेष्ठ है। परंतु अव्यक्त से भी वह व्यापक और सर्वथा आकाररहित परमपुरुष श्रेष्ठ है, जिसको जानकर जीवात्मा मुक्त हो जाता है और अमृतस्वरूप आनंदमय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।
इसे थोड़ा समझ लें।
भीतर से बाहर की यात्रा के पड़ाव हैं। ठीक वे ही पड़ाव बाहर से भीतर की तरफ जाते वक्त फिर से पड़ेंगे। जब चेतना उतरती है पदार्थ तक, तो उसके पड़ाव हैं, एक-एक सीढ़ी नीचे उतरती है। जब वापस लौटती है, तो उन्हीं सीढ़ियों पर फिर चढ़ती है। सांख्य ने ये पड़ाव बड़े स्पष्ट किए हैं। पहले क्या है, फिर वह कैसे तीन में बंटता है, फिर वह कैसे नीचे उतरता चला आता है। शरीर तक आते- आते कितनी जगह चेतना रूपांतरित होती है।
जैसे हम पानी को गर्म करते हैं, या बर्फ को गर्म करना शुरू करते हैं। बर्फ गर्म होता है तो पिघलता है। पिघलकर पानी बनता है। एक खास डिग्री पर

बर्फ पानी हो जाता है। फिर हम गर्म करते चले जाते हैं। एक खास डिग्री पर पानी उबलने लगता है, फिर सौ डिग्री पर आकर भाप बनने लगता है।
अगर हमें वापस बर्फ बनाना हो, तो हमें लौटना पड़ेगा। फिर हमें पानी से गर्मी खींचनी पड़ेगी; भाप को ठंडा करना पड़ेगा। भाप ठंडी होगी तो पानी बन जाएगी। पानी और ठंडा होगा तो बर्फ बन जाएगा। लेकिन वे ही बिंदु हमें पार करने पड़ेंगे, वे ही डिग्रियां, जो हमने बर्फ से भाप की तरफ जाते वक्त की थीं। वे ही हमें लौटते में, उलटी यात्रा पर, बर्फ की तरफ आने में, फिर से उन्हीं डिग्रियों से गुजरना होगा।
ये डिग्रियां हैंः इंद्रियों से तो मन श्रेष्ठ है। इसलिए पहले इंद्रियां मन में लीन हो जाती हैं, जब भीतर की यात्रा शुरू होती है। मन से बुद्धि श्रेष्ठ है। इसलिए मन विवेक में लीन हो जाता है, जब भीतर की तरफ चलते हैं। बुद्धि से जीवात्मा श्रेष्ठ है। फिर बुद्धि जीवात्मा में लीन हो जाती है। जीवात्मा से अव्यक्त शक्ति श्रेष्ठ है।
अव्यक्त शक्ति को हम ईश्वर कहें। हमारी जो प्रचलित भाषा में अव्यक्त शक्ति का नाम ईश्वर है; वह जो अप्रगट होकर काम कर रहा है। ईश्वर ब्रह्म का काम करता हुआ रूप है।
परंतु ईश्वर से भी, अव्यक्त से भी व्यापक और सर्वथा आकाररहित परमपुरुष श्रेष्ठ है, जिसको जानकर जीवात्मा मुक्त हो जाता है और अमृतस्वरूप आनंदमय ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।
जीवात्मा से ईश्वर, ईश्वर से और पीछे परम निराकार ब्रह्म।
उस ओर से हम ऐसे ही चलकर यहां तक आए हैं। भाप बनते तक ब्रह्म पिघला है, ईश्वर बना है। ईश्वर भी पिघला है, जीवात्मा बना है। जीवात्मा पिघली है, बुद्धि बनी है। बुद्धि पिघली है, मन बना है। मन पिघलकर इंद्रियां हो गया है। इंद्रियां आखिरी पड़ाव हैं। ठीक ऐसे ही वापस लौटना पड़ेगा। और एक-एक चीज को उसके पीछे छिपी हुई शक्ति में लीन करते चले जाना है।
जिस दिन लीन करने को कुछ भी न बचे, जिस दिन आखिरी भाव भी लीन हो जाए-- ईश्वर का भाव आखिरी भाव है, उसके पार फिर कोई भाव नहीं, फिर निर्भाव की दशा है--जिस दिन आखिरी भाव भी लीन हो जाए, उस दिन उस परम का अनुभव है, जिसे उपनिषद ब्रह्म कहते हैं, जिसे बुद्ध ने निर्वाण कहा है, महावीर ने मोक्ष कहा है।
इंद्रियों से ब्रह्म तक सरकना है, पीछे वापस।
यह सरकना हो सकता है। क्योंकि जैसे हम इंद्रियों तक आ गए हैं, वैसे ही
हम वापस जा सकते हैं। इंद्रियों तक आना हो सकता है, तो इंद्रियों से वापस जाना भी हो सकता है। जिस रास्ते से आप इस माउंट आबू शिविर तक आए हैं अपने घर से, लौटते वक्त उसी रास्ते से आप वापस अपने घर की तरफ जाएंगे। रास्ता वही होगा; आप भी वही होंगे। लेकिन एक बार वह रास्ता माउंट आबू तक लाया और दूसरी बार वही रास्ता माउंट आबू के विपरीत आपको ले जाएगा। सिर्फ फर्क होगा--दिशा भिन्न होगी। अभी माउंट आबू की तरफ मुंह था; जाते वक्त माउंट आबू की तरफ पीठ होगी। बस इतना ही फर्क होगा।
बाकी सब वही है। घर भी वही, माउंट आबू भी वही। आप भी वही, रास्ता भी वही। चलने की शक्ति भी वही। सब वही है--सिर्फ दिशा। अभी इस तरफ मुंह था, जाते वक्त इस तरफ पीठ होगी।
अभी हमारे मुंह इंद्रियों की तरफ हैं। इंद्रियों की तरफ पीठ हो जाए, यात्रा घर की तरफ वापस शुरू हो गई।
और जब तक खोया हुआ घर न मिल जाए, तब तक आदमी के जीवन में कोई चैन संभव नहीं है।
ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
पंद्रहवां प्रवचन

अचाह छलांग है प्रभु में

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न च्रुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद विदुरमृतास्ते भवन्ति।। 9।।

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।। 10।।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।। 11।।

इस परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप अपने सामने प्रत्यक्ष विषय के रूप में नहीं ठहरता, इसको कोई भी चर्मच्रुओं द्वारा नहीं देख पाता। मन से बारंबार चिंतन करके ध्यान में लाया हुआ (वह परमात्मा) निर्मल और निश्चल हृदय से (और) विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने में आता है। जो इसको जानते हैं, वे अमृतस्वरूप हो जाते हैं।। 9।।

जब मन के सहित पांचों ज्ञानेंद्रियां भलीभांति स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती, उस स्थिति को (योगी) परमगति कहते हैं।। 10।।

उस इंद्रियों की स्थिर धारणा को ही योग मानते हैं, क्योंकि उस समय (साधक) प्रमादरहित हो जाता है। परंतु योग उदय और अस्त होने वाला है, अतः योगयुक्त रहने का दृढ़ अभ्यास करते रहना चाहिए।। 11।।

इस परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप अपने सामने प्रत्यक्ष विषय के रूप में नहीं ठहरता, इसको कोई भी चर्मच्रुओं द्वारा नहीं देख पाता। मन से बारंबार चिंतन करके ध्यान में लाया हुआ वह परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से और विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने में आता है। जो इसको जानते हैं, वे अमृतस्वरूप हो जाते हैं।
पहली बात, परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। लेकिन सभी धर्मों ने जिस भांति की परमात्मा की चर्चा की है, उससे यह भ्रांति बैठ गई है लोक-मन में कि परमात्मा कोई व्यक्ति है। यदि परमात्मा व्यक्ति है तो फिर उसके साक्षात्कार करने की अभिलाषा जगती है कि उसे हम देखें, कि उसे हम जानें, कि उसे हम पहचानें, कि उसकी निकटता उपलब्ध हो, कि उसका सामीप्य मिले। लेकिन परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। व्यक्ति की तरह परमात्मा की धारणा केवल काव्य-प्रतीक है।
परमात्मा शक्ति है, व्यक्ति नहीं है। इसलिए कहीं आप उसे खोज न पाएंगे। कोई ऐसा क्षण नहीं होगा, जब आप आमने-सामने खड़े हो जाएंगे। इसलिए सूत्र कहता है, परमात्मा को प्रत्यक्ष करने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो व्यक्तियों का हो सकता है, वस्तुओं का हो सकता है। फिर यह भी समझ लेना जरूरी है कि परमात्मा को जब मैं कह रहा हूं कि शक्ति है, तो शक्ति भी बहुत विशिष्ट ढंग की है। शक्ति तो विद्युत भी है। शक्ति तो कशिश भी है। शक्ति तो चारों तरफ व्याप्त है। परमात्मा शक्ति है, इतना कहने से भी बात पूरी नहीं होती। परमात्मा सब्जेक्टिव एनर्जी है, विषयीगत शक्ति है।
एक तो ऐसी शक्ति है जो देखी जा सकती है, और एक ऐसी शक्ति है, जो सदा देखने वाले में होती है; जो दृश्य में नहीं होती, बल्कि द्रष्टा में होती है। एक तो आब्जेक्टिव एनर्जी है, जिसे हम देख सकते हैं--बिजली है। एक सब्जेक्टिव एनर्जी है, एक अंतरात्मा की ऊर्जा है, जिसे हम कभी भी नहीं देख सकते। क्योंकि हम उसी के द्वारा देख रहे हैं। या और भी उचित होगा कहना कि

हम स्वयं वह ऊर्जा हैं। और ऐसा नहीं है कि वह ऊर्जा बाहर नहीं है। वह बाहर भी है। लेकिन उसे देखने का ढंग पहले भीतर उसके अनुभव से शुरू होता है।
और जो व्यक्ति उस ऊर्जा को अपने भीतर अनुभव कर लेता है, उसे वह सब जगह प्रत्यक्ष हो जाती है। जो उस ज्योति को भीतर देख लेता है, उसके लिए सारे जगत में उस ज्योति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह जाता। लेकिन उसका पहला अनुभव, पहली दीक्षा, उसका पहला संस्पर्श भीतर होगा। वह अंतर्तम ऊर्जा है। तो परमात्मा की खोज कोई बहिर्खोज नहीं है। न तो उसे खोजने के लिए हिमालय जाना जरूरी है, न तिब्बत के पर्वतों में भटकना। न मक्का-मदीना कुछ साथ देंगे, न काशी और प्रयाग, न गिरनार, न जेरूसलम। कोई बाहर की खोज परमात्मा नहीं है। इसलिए कोई मंदिर, कोई तीर्थ उसकी जगह नहीं है। इससे कठिनाई बहुत बढ़ जाती है।
अगर वह किसी मंदिर में होता, किसी तीर्थ में होता, वह चाहे तीर्थ हो एवरेस्ट के शिखर पर, कैलाश पर, तो भी कोई अड़चन न थी, हम वहां पहुंच ही जाते। वह सरल बात थी। बाहर की यात्रा जरा भी कठिन नहीं है। कितनी भी अड़चन हो, बाहर की यात्रा कठिन नहीं है। वहां हम पहुंच ही जाते। लेकिन परमात्मा की तरफ पहुंचने की कठिनाई यही है कि वह खोज के अंत में नहीं है, वह खोजी के भीतर प्रारंभ से ही मौजूद है। वह कोई मंजिल नहीं है; वह यात्री का अंतस्तल है।
जो उसे बाहर खोजता है, बाहर खोजने के कारण ही नहीं खोज पाता है। क्योंकि वह गलत जगह खोज रहा है। उसे खोजना हो तो खोजी में ही खोजना होगा। उसे खोजना हो तो सब तीर्थों से मुक्त होकर भीतर आना होगा। उसे पाना हो तो बाहर से सारे इंद्रियों के द्वार बंद ही कर लेने पड़ेंगे। क्योंकि जितना हम उसे खोजने जाते हैं, उतना ही उससे दूर निकलते जाते हैं। जितना हम बाहर सोचते हैं कि वह होगा, उतना ही यह ख्याल मिटने लगता है कि भीतर है।
तो परमात्मा व्यक्ति नहीं है, उसका कोई साक्षात्कार नहीं हो सकता। परमात्मा शक्ति है। लेकिन शक्ति भी पदार्थगत नहीं है, आत्मगत है। इसलिए उसका पहला अनुभव स्वयं में प्रवेश पर ही होता है।
और यह जो स्वयं-प्रवेश है, इसका हमें स्मरण ही नहीं आता। हम सब तरफ भटकते हैं, हम सब जगह खोजते हैं। हमारी आंखें, हमारे हाथ, हमारे कान कोई स्थान नहीं छोड़ते जहां हम उसे न खोजते हों। चाहे हमारे नाम अलग हों--सभी लोग परमात्मा को नहीं खोज रहे हैं--कोई आनंद को खोज रहा है, कोई शांति को खोज रहा है, कोई परमात्मा को खोज रहा है, कोई मुक्ति को खोज रहा है। ये सब नाम उस एक ही चीज के हैं। एक बात पक्की है कि सभी खोज रहे हैं। उनकी खोज का नाम कुछ भी हो।
और जो भी उसे खोज रहा है, वह दो ही जगह खोज सकता हैः या तो बाहर खोजे, या भीतर खोजे। दो आयाम हैं। जो बाहर खोज रहा है, वह भटकता रहेगा। उसकी पहली चिनगारी भीतर से शुरू होती है। उसे पहले भीतर ही जानना होगा; उसे पहले स्वयं में ही जानना होगा। क्योंकि जो स्वयं के भीतर ही झांकने में असमर्थ है, वह किसी और के भीतर झांकने में कैसे समर्थ हो सकेगा? जिसके भीतर का दीया बुझा है, वह कहीं भी खोजता रहे, वह जहां भी जाएगा, वहीं अंधेरा हो जाएगा। उसे प्रकाश नहीं मिल सकता। वह अंधेरे को अपने साथ ही लेकर चल रहा है।
और जिसके भीतर का दीया जला है, वह अंधेरे से अंधेरे में भी जाए तो वहां प्रकाश हो जाएगा। क्योंकि वह अपने भीतर के प्रकाश को लेकर चल रहा है। वह जहां जाता है, उसका प्रकाश उसके साथ चला जाता है।
परमात्मा अंतर्खोज है।
यह सूत्र कह रहा है--इस परमेश्वर का वास्तविक स्वरूप अपने सामने प्रत्यक्ष विषय के रूप में नहीं ठहरता। इसको कोई भी चर्मच्रुओं द्वारा नहीं देख पाता है। मन से बारंबार चिंतन करके... ।
इसको थोड़ा एक-एक कदम समझने की कोशिश करें।
मन से बारंबार चिंतन करके ध्यान में लाया हुआ वह परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से और विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने में आता है।
पहली बात, मन से बारंबार चिंतन करके... ।

हमें उसका कोई पता नहीं, कोई ठिकाना नहीं। हमें उसके नाम का भी कोई पता नहीं। हम यह भी नहीं जानते कि वह है भी या नहीं। तो कहां से शुरू करें! यह अंधेरे की यात्रा कहां से शुरू हो! यह अज्ञात किस जगह से हम उघाड़ें! कहां से पर्दे उठाएं! हमें उसका कुछ भी पता होता तो हम शुरू कर सकते थे। जैसे अंधा आदमी एक अंधेरे में खड़ा हो और दरवाजा उसे पता भी नहीं है कि किस दिशा में है। आंखें होतीं तो देख भी लेता। देख भी नहीं सकता। आंखें भी होतीं तो भी मुश्किल था, क्योंकि घना अंधेरा है। फिर यह भी पक्का नहीं है कि जहां खड़ा है, वहां दरवाजा है भी या नहीं। या सब तरफ कारागृह की दीवाल है। अंधा कहां से शुरू करेगा? अंधा टटोलना शुरू करेगा। सब तरफ टटोलेगा। टटोलने में बहुत भूल-चूक होगी। क्योंकि दरवाजे पर हाथ सीधा नहीं पड़ जाएगा। दीवाल पर पड़ेगा। बहुत बार दरवाजा चूक-चूक भी जा सकता है।
चिंतन टटोलना है। चिंतन का अर्थ हैः हमें कुछ पता नहीं; टटोलते हैं।
मन से सोचते हैं, विचारते हैं, प्रश्न उठाते हैं, हल खोजने की कोशिश करते हैं। सब टटोलना है। इसमें सौ में निन्यानबे मौके पर तो दीवाल पर हाथ पड़ेगा। एक ही मौके पर दरवाजे पर हाथ पड़ेगा। और डर यह है कि निन्यानबे दफा जब दीवाल पर हाथ पड़े, तो हाथ भी दीवाल का आदी हो जाएगा। हो सकता है कि दरवाजे पर भी जब हाथ पड़े, तब भी आपको भरोसा न आए कि दरवाजा है। निन्यानबे बार दीवाल मिली, शायद यह भी दीवाल ही हो!
चिंतन सौ में से निन्यानबे बार नास्तिकता पर पहुंचेगा, एक बार ही आस्तिकता पर पहुंचता है। यह थोड़ा समझ लेने जैसा है।
जो लोग भी सोचना शुरू करेंगे, पहले नास्तिक हो जाएंगे। दीवाल पहले मिलेगी। दरवाजा तो बहुत छोटी-सी जगह होता है, दीवाल बड़ी है। हाथ दीवाल पर ही पड़ेगा। कभी संयोग की ही बात है, या बहुत जन्मों तक दीवाल टटोलकर जो चले हों, उनका हाथ किसी जन्म में सीधा दरवाजे पर पड़ जाए। अन्यथा नास्तिकता ही प्रारंभ होगी। चिंतनशील व्यक्ति पहले नास्तिक हो जाएगा।
और ध्यान रहे, जो नास्तिक होने से डरेगा, वह पहला कदम ही नहीं उठा पाएगा। इसलिए मैं नास्तिकता को आस्तिकता का विरोध नहीं मानता हूं, आस्तिकता का प्राथमिक चरण मानता हूं। इसलिए नास्तिक की मेरे मन में जरा भी निंदा नहीं है, पूरी प्रशंसा है। क्योंकि जो नास्तिक ही नहीं हुआ, उसके आस्तिक होने का कोई भी उपाय नहीं। और अगर आप नास्तिक होने के पहले आस्तिक हो गए हैं, तो आपकी आस्तिकता नपुंसक होगी, झूठी होगी, सिर्फ अंधी होगी। ऐसी आस्तिकता के पास आंखें नहीं हो सकतीं।
क्योंकि जिसने नहीं कहने की हिम्मत नहीं जुटाई, उसके हां में कोई बल नहीं होता। उसकी हां निर्बल होती है। और जिसने कभी चिंतन की धारा को निखारा नहीं, पैना नहीं किया, और जिसने चिंतन की तलवार पर धार नहीं रखी, जो इसलिए डरता रहा कि कहीं इनकार न हो जाए, उसकी बोथली तलवार--आस्तिकता की भी--किसी काम की नहीं है।
इसलिए दुनिया में बड़ी अजीब घटना घटी है। वह घटना यह है कि कुछ हैं बड़ी संख्या में लोग, जो नास्तिक न हो जाएं इसलिए सोचते ही नहीं। सोचने से भयभीत हैं, विचार करने से डरे हुए हैं। लेकिन अगर आपकी आस्तिकता विचार करने से डरती है, तो दो कौड़ी की है। जो विचार को भी नहीं सह सकती, वह आस्तिकता कहां ले जाएगी!
विचार बड़ी कमजोर चीज है। जो विचार से ही टूट जाती है, उसका क्या मूल्य है। तर्क कोई बड़ी वजनी बात नहीं है, खेल है शब्दों का। और तर्क से ही जो आस्तिकता भयभीत होती है, उस आस्तिकता के नीचे कोई भूमि नहीं है, वह अधर में लटकी है। वह ताश का घर है, जरा सा तर्क का झोंका उसे गिरा देता है।
क्या आप डरते हैं? क्या आपकी श्रद्धा कंपती है? तो आप जानना कि आप पहला कदम चूक गए हैं। आपने ठीक चिंतन नहीं किया।
तो सौ में से निन्यानबे लोग झूठे आस्तिक हैं। सौ में से कभी कोई एक आदमी नास्तिक होने की हिम्मत जुटाता है। नास्तिक होना हिम्मत है। हिम्मत इसलिए है कि आस्तिकता के साथ सारी व्यवस्था है; आस्तिकता का सारा विस्तार है; आस्तिकता के साथ हमारे जीवन के सब मूल्य जुड़े हैं। आस्तिकता के साथ हमारे स्वार्थ संयुक्त हैं। नास्तिकता असुरक्षा में डाल देती है।

नास्तिक आदमी कहीं का नहीं रह जाता। उसकी कोई बिलांगिंग नहीं रह जाती। वह किसका है? किसका साथी? किसका मित्र? किस समाज का हिस्सेदार?
नास्तिक का कोई समाज नहीं है, न कोई संप्रदाय है, न कोई चर्च, न कोई मंदिर, न कोई कुरान, न कोई बाइबिल, नास्तिक बिल्कुल शून्य में अटक जाता है। सौ में से कभी एक आदमी नास्तिक होने की हिम्मत करता है; निन्यानबे झूठे आस्तिक बने रहते हैं। और जो नास्तिक होने की हिम्मत करता है, वह फिर नास्तिक ही होकर अटक जाता है। नास्तिकता अंत नहीं है, पहला कदम है। वह जैसे एक आदमी ने पैर उठाया और फिर वहीं पैर उठाए खड़ा रह गया; वह पैर पूरा भी नहीं हुआ।
तो नास्तिक बड़ी बेचैनी में पड़ जाता है। उससे तो झूठा आस्तिक कम बेचैनी में होता है। उसके दोनों पैर कम से कम जमीन पर खड़े होते हैं। उसने पैर उठाया ही नहीं, उसने यात्रा शुरू ही नहीं की। उसने, दूसरों ने जो कहा, वह मान लिया। पिता ने, मां ने, शिक्षक ने, परिवार-समाज ने जो कहा, उसने आंख बंद करके हां भर दी। उसने कभी सोचा नहीं, क्योंकि सोचता तो हां भरना मुश्किल होता। इसलिए सारा समाज चिंतन का दुश्मन है।
आपके घर में कोई बेटा विचारशील पैदा हो जाए, आप सब उसका विचार नष्ट करने में लग जाएंगे। क्योंकि विचार बगावती है, वह रिबेलियन है। जो भी विचार करेगा, वह सभी बातों में हां नहीं भरेगा। वह हां भी भरेगा तो बहुत मुश्किल से भरेगा। अधिकांश मौकों पर वह न कहेगा। तो कोई नहीं चाहता कि विचार हो। इसलिए हम बच्चों की विचार की क्षमता को कुचल डालते हैं। हम उसे नष्ट करने का पूरा उपाय करते हैं। और हम सोचते हैं कि शायद इस भांति हम बच्चों को नास्तिक बनाने से रोक लेंगे? हम उन्हें आस्तिक बनने से ही रोक रहे हैं। वे झूठे आस्तिक हो जाएंगे।
झूठे आस्तिक से सच्चा नास्तिक बेहतर है। लेकिन नास्तिकता सिर्फ पहला कदम है, वह यात्रा का अंत नहीं है। और जो पहले कदम को उठाकर ही रुक गया, वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। इसलिए नास्तिक बड़ा बेचैन होता है, बड़ी चिंता उसे पकड़ती है। और चित्त उसका सदा अशांत होता है। बड़े तनाव, संताप उसे जकड़ लेते हैं। जिंदगी अर्थहीन मालूम होती है; बिना परमात्मा के होगी ही मालूम। क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त यह अस्तित्व व्यर्थ है। परमात्मा के साथ ही इस अस्तित्व में कुछ अर्थ हो सकता है, कोई मीनिंग हो सकता है। अगर परमात्मा नहीं है, तो सब व्यर्थ है। तब हम सिर्फ दुर्घटनाएं हैं; हमारा होना मात्र संयोग है; हमारे अस्तित्व में कोई अभिप्राय नहीं है। और हम कहीं जा नहीं रहे हैं, व्यर्थ ही भटक रहे हैं। और कहीं हम पहुंच भी नहीं सकते हैं, क्योंकि कोई किनारा फिर है भी नहीं। परमात्मा ही किनारा है। इसलिए जितना कोई व्यक्ति नास्तिक हो जाएगा, उतना ही ज्यादा चित्त तनावग्रस्त हो जाएगा, मुश्किल में पड़ जाएगा। हर चीज कठिन हो जाएगी। और सब जगह नहीं कहकर जीना बड़ा मुश्किल है। हां के बिना जीवन के लिए कोई आधार नहीं मिलता। नहीं तो अटका देता है शून्य में। नकार किसी भी व्यक्ति को सुखद नहीं हो सकता। नहीं कहने से कोई जीवन की आस्था, जीवन की श्रद्धा, जीवन का आनंद, जीवन का सौंदर्य, कुछ भी निर्मित नहीं होता। नहीं तो सिर्फ निषेध है। नहीं तो मृत्यु का प्रतीक है। हां जीवन का प्रतीक है। तो नास्तिक मुश्किल में होता है।
चिंतन जो भी करेगा ठीक से, वह पहले नास्तिक बनेगा। क्यों? क्योंकि जो
भी सिखाया गया है, वह सब संदिग्ध मालूम पड़ेगा। पहले सब आस्थाएं टूट जाएंगी; एक शून्य निर्मित होगा। और जब शून्य निर्मित हो जाए, तब आप समझना कि आप समाज से मुक्त हो गए।
चिंतन समाज से मुक्त होने की प्रक्रिया है। जो-जो सिखाया था, वह आप भूल गए। अब आप कोरे कागज हो गए। अब अगर अस्तित्व में कोई अर्थ है, तो इस कोरे कागज पर उतर सकता है। अब इस कागज पर जो भी लिखावट औरों की थी, वह सब पोंछ डाली गई। अब यह स्लेट कोरी है।
नास्तिकता कीमती प्रयोग है, अगर वह अंत न हो। तो नास्तिकता की अग्नि
से प्रत्येक को गुजरना ही चाहिए। क्योंकि नास्तिकता निखार देती है, कचरे से छुटकारा दिला देती है। दूसरों का जो उधार ज्ञान था, उससे मुक्ति हो

जाती है। और अपने ज्ञान के पहले दूसरे के ज्ञान से मुक्त हो जाना अत्यंत अनिवार्य है।
स्वयं की प्रज्ञा जगे इसके पहले, दूसरों ने जो हमें सिखाया है, जो हमारी अपनी अनुभूति नहीं है, उससे छुटकारा आवश्यक है। अज्ञान से तो छुटकारा चाहिए ही, उधार ज्ञान से भी छुटकारा चाहिए।
गीता आपने पढ़ी, कुरान पढ़ा, बाइबिल पढ़ा। सुना--जीसस के संबंध में, कृष्ण
के संबंध में, मुहम्मद के संबंध में। भर लिया मन में। अपनी कोई प्रतीति नहीं है, अपना कोई अनुभव नहीं है। सब बासा और उधार है। सब मुर्दा है।
जीसस के पुरोहित से पूछो, वह कहता है, जीसस ऐसा कहते हैं। उससे पूछो, तुम क्या कहते हो? उसके पास कहने को कुछ भी नहीं है। वह सिर्फ बाइबिल को दोहरा सकता है। वह आदमी है या यंत्र!
गीता के भक्त से पूछो तो वह कहता है, कृष्ण ऐसा कहते हैं। उससे पूछो, तुम क्या कहते हो? तुम किसलिए हो? तुम्हें परमात्मा ने सिर्फ कृष्ण का हि.ज मास्टर्स वाइस रिकार्ड--तुम ग्रामोफोन हो? तो फिर कृष्ण के बाद किसी के पैदा होने की कोई जरूरत नहीं। तो परमात्मा बिल्कुल व्यर्थ ही तुम्हें पैदा किए जा रहा है।
तो ध्यान रहे, इस अस्तित्व में कोई पुनरुक्ति नहीं है। परमात्मा दुबारा उसी आदमी को, उसी जैसा आदमी पैदा ही नहीं करता। परमात्मा कोई साधारण स्रष्टा नहीं है। परमात्मा हर व्यक्ति को अनूठा पैदा करता है। उसकी कला का कोई अंत नहीं है। जिनकी कला का अंत हो जाता है, वे पुनरुक्ति करते हैं।
परमात्मा या विराट जगत की जो ऊर्जा है, वह प्रतिपल नई लहर पैदा करती है। वह कृष्ण को दुबारा नहीं दोहराती। इसलिए तो कृष्ण दुबारा पैदा नहीं होते, बुद्ध दुबारा पैदा नहीं होते। नहीं तो परमात्मा सोचता कि बुद्ध और कृष्ण जैसे बढ़िया लोग हो चुके, आपको पैदा करने की क्या जरूरत है! कृष्ण और बुद्ध की कतार लगा दे। जैसे कि कार की फैक्ट्री से कतारबद्ध एक सी कारें निकलती हैं, ऐसा ही वह कृष्णों की कतार लगा दे। लेकिन वह आपको पसंद किया है पैदा करना, कृष्ण को दुबारा दोहराना पसंद नहीं करता। जरूर आपसे कुछ प्रयोजन है। कोई अभिप्राय आपसे पूरा होना चाहता है। और अगर आप कृष्ण को ही दोहरा रहे हैं, तो आप उस अभिप्राय में बाधा बन रहे हैं।
प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। और जैसा वह हो सकता है, इस जगत में न पहले कोई हुआ है और न पीछे कोई होने का उपाय है। इसलिए अगर आप दोहराते हैं, तो आप एक महान अवसर खो रहे हैं।
पंडित तोतों की तरह हो जाते हैं। वे दोहराए चले जाते हैं, वे रटी हुई बातें कहे चले जाते हैं। उन बातों से उनकी आत्मा का कहीं कोई संबंध नहीं है।
गीता हो, कुरान हो, या बाइबिल हो; मुहम्मद, कृष्ण, महावीर हों, वे प्यारे लोग हैं, लेकिन पुनरुक्त करने योग्य नहीं। उन जैसे होने की कोई भी जरूरत नहीं। और उनकी बातें दोहराकर आप उन जैसे हो भी नहीं सकते। महावीर को हुए पच्चीस सौ साल हो रहे हैं। पच्चीस सौ साल में हजारों लोगों ने उनकी बातें तोतों की तरह दोहराई हैं, उनमें से एक भी महावीर पैदा नहीं हो सका। कभी हो भी नहीं सकता।
महावीर ने किसी की बात नहीं दोहराई, इसलिए वे महावीर हो सके। कृष्ण किसी की बात नहीं दोहरा रहे हैं, इसलिए वे कृष्ण हो सके। जीसस पुराने शास्त्रों से कुछ उल्लेख नहीं कर रहे हैं; जो खुद जाना है उसे कह रहे हैं, इसलिए वे जीसस हो सके। और आप उनकी बातें दोहराकर होना चाहते हैं!
जो व्यक्ति जितना दोहराने में पड़ जाएगा, उतनी ही चिंतन की क्षमता क्षीण होती है। चिंतन पैदा होता है अपना सत्य खोजने से। जो दूसरों के सत्य मान लेता है, वह खोजता ही नहीं। जो खोजता नहीं, वह सोचेगा क्यों? जो सोचता नहीं है, उसके भीतर सब द्वार बंद हो जाते हैं। वह टटोलता ही नहीं। दीवाल ही रह जाती है, वह कारागृह में बैठा रह जाता है।
यह हो सकता है कि कारागृह में बैठे-बैठे ही आप सोचें, कोई कारागृह नहीं है, सब कारागृह माया है। लेकिन इससे कोई मुक्ति नहीं होती। बैठे आप कारागृह में ही हैं। बाहर की हवा, खुला आकाश, बाहर का प्रकाश, उससे आपका

कोई भी संबंध नहीं है। आप आंख बंद किए दोहरा सकते हैं कि यह सब कारागृह माया है, मैं बंधन में हूं ही नहीं। लेकिन सच में ही अगर कारागृह माया है और आप बंधन में नहीं हैं, तो यह दोहराने की भी क्या जरूरत है? उठें और चल पड़ें। लेकिन हर जगह दीवाल मिलती है। चलने के लिए दरवाजा खोजना जरूरी है। उपनिषद का यह सूत्र कहता है--मन से बारंबार चिंतन करके... ।
जो बारंबार चिंतन करता ही चला जाएगा, पहले तो उधार विचार गिर जाएंगे; शास्त्र, गुरु से छुटकारा हो जाएगा; शून्यता आएगी; एक नास्तिकता आ जाएगी; नहीं ठीक है यह भी; नहीं ठीक है वह भी--ऐसा नेति-नेति का भाव पैदा हो जाएगा। उससे जो डर जाएगा, वह पीछे आस्तिकता को पकड़ लेगा। जो उसी को पकड़ लेगा, वह दुख में पड़ जाता है।
और थोड़ा आगे बढ़ने की जरूरत है। अगर परमात्मा है, तो हमारे सोचने से नष्ट नहीं हो सकता। अगर परमात्मा है, तो हमारे सोचने से निश्चित ही मिलेगा। अगर नहीं मिल रहा है, तो समझना कि सोचना अभी पूरा नहीं हुआ है। परमात्मा उस दिन मिलता है, जिस दिन चिंतन अपने पूरे शिखर पर पहुंच जाता है। परमात्मा, चिंतन के पूरे शिखर पर उसकी पहली किरण उतरती है। वह विचार के परम शिखर पर हुई पहली प्रतीति है--कि वह है। उसका होना अंधी श्रद्धा में नहीं, आंख वाले विचार का परिणाम है।
जो सोचता ही चला जाता है, सोचता ही चला जाता है, निर्भीक होकर; कुछ भी टूटे, टूट जाए; परंपरा टूटे, टूट जाए; शास्त्र गलत दिखें, दिखाई पड़ने दे, सोचता ही चला जाता है, एक दिन जब सब उधार से मुक्ति हो जाती है, अचानक आंखें साफ हो जाती हैं और जहां नहीं प्रतीत हो रहा था, वहां परमात्मा का पहला आभास, पहली झलक मिलती है।
आस्तिक परम विचारक है। उन्होंने बहुत सोचा है। उस जगह तक सोचा है, जहां सोचना पीछे पड़ गया और वे आगे निकल गए। उन्होंने सोचने का पीछा अंत तक किया है। उस जगह तक जहां सोचना ही गिर गया और वे आगे चले गए।
परमात्मा की पहली प्रतीति चिंतन से मिलती है, पहला आभास। लेकिन अनुभव नहीं, सिर्फ आभास। सिर्फ इस बात की झलक कि वह है। इस झलक पर ही जो रुक जाएगा, वह भी परमात्मा को नहीं पहुंच पाया। उसने भी अनुभव नहीं किया। यह झलक जरूरी है, पर काफी नहीं है।
चिंतन के बाद, मन में बारंबार चिंतन करके ध्यान में लाया हुआ परमात्मा... ।
यह जो पहली झलक मिले, फिर इसको ध्यान में रूपांतरित करना है। यह जो पहली झलक आए, यह सदा स्मरण रहने लगे; यह ध्यान बन जाए; इसे भूला ही न जा सके। उठते-बैठते, सोते-जागते वह झलक सम्हालकर रखनी है भीतर। जैसे मां अपने बच्चे को गर्भ में सम्हालकर रखती है। चलती भी है तो सम्हलकर, काम भी करती है तो सम्हलकर। एक स्मरण बना ही रहता है कि वह गर्भवती है। एक छोटा जीवन अंकुरित हो रहा है, उसे कोई चोट न पहुंच जाए। ठीक जिसे झलक मिल गई, उस झलक को वह अपने भीतर सम्हालकर चलता है।
कबीर ने कहा है, जैसे गांव की वधुएं नदी से पानी भरकर सिर पर मटकियां रखकर गांव की तरफ लौटती हैं, तब वे गपशप भी करती हैं, बातचीत भी करती हैं, हंसती भी हैं, राह से चलती भी हैं, पर उनका ध्यान सदा गगरी में लगा रहता है; वह गिरती नहीं। सब चलता रहता है--चलना, बात करना, हंसना, गीत गाना--लेकिन ध्यान गगरी में लगा रहता है। कोई भीतर की स्मृति गगरी को सम्हाले रखती है। इसको कबीर ने सुरति कहा है, नानक ने भी सुरति कहा है।
सुरति बुद्ध के वचन स्मृति का बिगड़ा हुआ रूप है। बुद्ध ने कहा था-- माइंडफुलनेस, स्मृति; होश बना रहे निरंतर एक तत्व का। सब कुछ भूल जाए, वह न भूले। उसी को कबीर, नानक, दादू ने सुरति कहा है। सुरति बनी रहे, जगी रहे। पुराने संतों ने निरंतर एक कहानी का उल्लेख किया है। कहानी अर्थपूर्ण है।
एक खोजी अनेक-अनेक संतों के पास गया। लेकिन कहीं भी उसे कोई सार न मिला। तब उसके आखिरी गुरु ने कहा कि तू अब जनक के पास चला जा। पर उस खोजी ने कहा कि मैं बड़े-बड़े संतों के पास गया, ज्ञानियों के पास गया, वहां मुझे कुछ न मिला; तो इस भोगी सम्राट के पास मुझे क्या मिलेगा! फिर भी गुरु ने कहा, तू

जा। जब संतों के पास तुझे कुछ नहीं मिला, तो अब जरा भोगी के पास भी जाकर खोजने की कोशिश कर, शायद... ।
जब वह पहुंचा तो देखा कि जनक, संध्या का समय है और अपने मित्रों के साथ बैठे गपशप कर रहे हैं। शराब ढाली जा रही है। आसपास सुंदर युवतियां नाच रही हैं। संगीत चल रहा है।
वह खोजी तो बड़ा दुखी हुआ कि मैं किस गलत जगह आ गया। वह जाने को हुआ। जनक ने कहा, रुको। इतनी जल्दी मत करो। खोजी को थोड़ा धैर्य रखना चाहिए। आ ही गया था और अब वापस लौटना, जंगल में, रात मुश्किल भी था। तो सोचा, रात रुक ही जाऊं, सुबह उठकर चला जाऊंगा। अब कुछ पूछने की जरूरत नहीं है। इससे क्या मिलने को है! यह आदमी खुद अज्ञान में डूबा हुआ है, यह मुझे क्या जगाएगा? सांझ भोजन के बाद सम्राट उसे उसके कमरे में छोड़ गया और कहा कि आप ठीक से विश्राम करें।
बड़ा सुंदर कमरा था, सजा हुआ था, विशेष अतिथियों के लिए बनाया गया था। बहुमूल्य गद्दियां थीं। बड़ा सुखद वातावरण था। सुगंधित था। वह खोजी सोया। लेकिन जैसे ही बिस्तर पर लेटा कि घबड़ाहट हो गई। ऊपर ठीक छत से, जो काफी ऊंची थी, एक नंगी तलवार लटक रही थी और एक पतले धागे से बंधी! उसने कहा कि यह भी क्या स्वागत की कोई व्यवस्था है! यह आदमी मुझे मारना चाहता है? यह तलवार कभी भी गिर सकती है। एक कच्चा-सा धागा बंधा है। जरा-सा हवा का झोंका... ।
तो वह रात--बहुत उसने सोने की कोशिश की, लेकिन सो न सका। करवट बदले, फिर आंख खोलकर देखे कि तलवार अभी लटकी है! फिर करवट बदले, फिर उठकर बैठ जाए, फिर देखे--तलवार अभी लटकी है!
सुबह सम्राट आया। उसने पूछा कि रात ठीक से तो सो सके? उसने कहा, खाक।
यह कोई सोने की व्यवस्था है? यह कोई आतिथ्य है? यह तलवार ऊपर लटकी है पतले धागे से, इसकी स्मृति पीछा करती रही। नींद असंभव थी।
सम्राट ने कहा, ऐसी ही पतले धागे से लटकी तलवार मेरे ऊपर भी है। तुम्हें नहीं दिखाई पड़ती, मुझे दिखाई पड़ती है। वह मौत की तलवार है। और चाहे मैं नाच में बैठा रहूं, और चाहे शराब ढलती हो वहां बैठा रहूं, चाहे संगीत बजता हो वहां बैठा रहूं, उस तलवार की स्मृति मिटती ही नहीं, वह लटकी है। तुम रातभर नहीं सो सके, मैं भी जिंदगीभर से सोया नहीं हूं। सोना असंभव ही हो गया। जब से यह स्मृति आई है मृत्यु की, तब से सोना असंभव हो गया।
कोई एक चीज भीतर धुन की तरह बजती रहे, उसका नाम ध्यान है। कोई एक चीज भीतर चलती ही रहे। झलक मिल जाए चिंतन से कि परमात्मा है; ऐसी प्रतीति आ जाए--अस्तित्व है; नकार नहीं, एक स्वीकार का भाव आ जाए, फिर इस भाव को भीतर जो सम्हालता चलता है, उस सम्हालने का नाम ध्यान है।
बारंबार मन से चिंतन करके ध्यान में लाया हुआ परमात्मा निर्मल और निश्चल हृदय से और विशुद्ध बुद्धि के द्वारा देखने में आता है।
ध्यान से जो निरंतर परमात्मा को अपने भीतर गर्भ की भांति सम्हालता रहेगा, उसकी सुरति को सम्हाले रखेगा, वैसा व्यक्ति निर्मल और निश्चल हृदय से और विशुद्ध बुद्धि से परमात्मा को देखने में सफल हो जाता है।
यह जो ध्यान है, इसके परिणाम हैं। अगर कोई व्यक्ति परमात्मा के स्मरण
को निरंतर सम्हाले रहे, या और किसी स्मरण को... । जरूरी नहीं है, स्मरण जरूरी है। सुरति जरूरी है। किसकी--यह बात, सवाल नहीं है बड़ा।
एक आदमी चौबीस घंटे श्वास को ही ख्याल रखे। श्वास भीतर आई, बाहर गई। भीतर आई, बाहर गई। बुद्ध ने इसे बड़ा मूल्य दिया है। श्वास को कोई देखता रहे, उसे उन्होंने अनापानसती योग कहा है, आती-जाती श्वास की स्मृति का योग। भीतर गई, बाहर गई। श्वास भीतर आई, बाहर गई। इसे कोई स्मरण रखे।
वे कहते हैं, परमात्मा को न भी स्मरण किया तो कोई हर्ज नहीं। स्मृति आ जाए बस, इसके भीतर आते-जाते होश जगता जाएगा। इस होश के दो परिणाम होंगे। इस होश के जगते ही जीवन में जो विकार पकड़ते हैं, वासनाएं पकड़ती हैं, वे पकड़ना बंद हो जाएंगी।
इसे आप छोटा-सा प्रयोग करके देखें, उससे समझ में आ जाएगा। आपको क्रोध
आए तो आप क्रोध के लिए कुछ मत करें; तत्काल गहरी श्वास लें और श्वास को देखें। एक सात बार गहरी श्वास लें। श्वास को देखते हुए भीतर जाएं, फिर

बाहर जाती श्वास के साथ बाहर आएं। फिर गहरी श्वास लें, सात बार। फिर आंख खोलकर देखें--क्रोध कहां है? आप अचानक चकित हो जाएंगे कि वह क्रोध गया! सात गहरी श्वास का स्मरण और क्रोध विसर्जित हो गया।
मन में कामवासना उठे, आप सात बार गहरी श्वास लेकर देखें। फिर लौटकर देखें--कामवासना शरीर से विदा हो गई। ये छोटे-छोटे प्रयोग आपको यह स्मरण दिला देंगे कि जितनी ही स्मृति सजग होती है, उतनी ही वासनाएं क्षीण हो जाती हैं। जितना होश सघन होता है, उतने ही विकार मन को कम पकड़ते हैं और हृदय शुद्ध होता चला जाता है। जिस चीज से भी आपको छुटकारा चाहिए हो, उससे लड़ें मत। उसकी जगह श्वास का स्मरण करें।
जापान में छोटे बच्चों को वे सिखाते हैं कि जब भी तुम्हें क्रोध आए,
तो तुम गहरी श्वास लो। जापान सबसे कम क्रोधी मुल्क है पूरी दुनिया में। और जापान में जैसी मुस्कुराहट दिखाई पड़ती है, वैसी दुनिया के किसी मुल्क में नहीं दिखाई पड़ती। और जापान का आदमी जितना संयत होता है... कि आप गाली दें, तो दुनियाभर में जिस गाली से क्रोध आ जाए, उसमें भी जापानी आदमी को क्रोध में लाना मुश्किल होगा। अब जापान की वह प्रतिभा खोती जा रही है, क्योंकि वह पश्चिम के प्रभाव में भारी है। लेकिन फिर भी जापानी व्यक्तित्व की कुछ खूबियां हैं।
एक अमेरिकन यात्री ने लिखा है कि वह पहली दफा जापान गया और जब वह टोकियो के एअरपोर्ट के बाहर आया--कोई तीस साल पहले की घटना है--तो उसने देखा कि वहां दो आदमी लड़ रहे हैं। लड़ नहीं रहे हैं, सिर्फ एक-दूसरे को गालियां देते हैं, घूसे दिखाते हैं, मुंह बनाते हैं, जैसे जान ले लेंगे। और बड़ी एक भीड़ खड़ी हुई देख रही है। यह बड़ी देर तक चलता रहा। वह भी खड़े होकर देखता रहा। उसे तो कुछ समझ में न आया कि मामला क्या है! जब लड़ाई ही होनी है और इतने जोर-शोर से तैयारी चल रही है, तो होती क्यों नहीं? वे बिल्कुल पास आ जाते हैं एक-दूसरे के और फिर दूर हट जाते हैं।
तो उसने एक आदमी से पूछा कि मामला क्या है? यह इतनी देर से चल रहा है शोरगुल। इतनी भूमिका बांधी जा रही है! इतनी देर में तो कभी का मामला खतम हो जाता। और आप सब लोग खड़े होकर देख क्या रहे हैं?
उस आदमी ने कहा, हम यह देख रहे हैं कि इनमें से पहले कौन हारता है? मतलब--इनमें से पहले कौन क्रोधित होता है! ये दोनों एक-दूसरे को क्रोधित करने की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन अभी दोनों क्रोधित नहीं हैं। सिर्फ यह देख रहे हैं। जो क्रोधित हो गया, वह हार गया। भीड़ हट जाएगी, क्योंकि उसने संयम खो दिया। वह आदमी गया; उसका कोई मूल्य नहीं है। मारपीट की जरूरत नहीं है। क्रोधित कौन पहले होता है? ये अभी दोनों संयत हैं और ये सब गालियां वगैरह दूसरे को उकसाने के लिए दी जा रही हैं! जैसे ही एक आदमी इनमें से फूट पड़ेगा, वस्तुतः क्रोधित हो जाएगा, भीड़ विदा हो जाएगी। हार हो चुकी। कौन जीतता है, यह सवाल नहीं है; कौन पहले क्रोध से हार जाता है, यह सवाल है। जापान ने श्वास के ऊपर बड़े प्रयोग किए हैं। और बड़े से बड़ा प्रयोग यह
है कि जब भी कोई वासना मन को पकड़े, तो आप गहरी श्वास लें। सिर्फ गहरी श्वास न लें, श्वास को होशपूर्वक भी लें--श्वास भीतर गई, बाहर गई--और उतने में ही आप पाएंगे कि सारी वासना तिरोहित हो गई। उसे दमन भी नहीं करना पड़ा। उससे लड़ना भी नहीं पड़ा। उसे हटाने के लिए भी कोई प्रयास नहीं करना पड़ा। सिर्फ चित्त कहीं और चला गया। और जब चित्त हट जाता है, तो संपर्क टूट जाता है। जब चित्त हट जाता है, तो सहयोग टूट जाता है। जब चित्त हट जाता है, तो जो ऊर्जा आप दे रहे थे वासना को, वह उसे नहीं मिलती, वह मर जाती है।
सब वासनाएं आपके सहयोग से जीती हैं। जो व्यक्ति किसी भी तरह की सुरति
को साध ले, उस व्यक्ति का हृदय निर्मल हो जाएगा। बुद्धि शुद्ध हो जाएगी। विवेक साफ-सुथरा हो जाएगा। और ऐसे विवेक, ऐसे हृदय और ऐसी सुरति के सध गए चित्त में परमात्मा की प्रतीति होती है।
जो इसको जानते हैं, वे अमृतस्वरूप हो जाते हैं।
और जो एक बार जान लेते हैं कि भीतर परमात्मा छिपा है, उनकी फिर कोई मृत्यु नहीं। मृत्यु तो पहले भी नहीं थी, लेकिन पहले वे सोचते थे कि मृत्यु होगी। भयभीत थे, डरे हुए थे। परमात्मा का अनुभव अमृत का अनुभव है।

जब मन के सहित पांचों ज्ञानेंद्रियां भलीभांति स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती, उस स्थिति को योगी परमगति कहते हैं।
ये ध्यान के कीमती सूत्र हैं, आखिरी सूत्र हैं।
जब मन के सहित पांचों ज्ञानेंद्रियां भलीभांति स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती... ।
जब आपके भीतर सब क्रिया रुक जाती है, क्रियामात्र रुक जाती है; न शरीर में कोई गति होती है, क्रिया होती है, न इंद्रियों में कोई हलन-चलन होती है, न मन में कोई थिरकन होती है; सब क्रिया रुक जाती है; आप बिल्कुल इनएक्टिविटी में, अक्रिया में डूब जाते हैं। कुछ भी हो नहीं रहा है--सिर्फ हैं। कुछ कर नहीं रहे हैं--सिर्फ होना मात्र है। ऐसी जो ठहरी हुए चित्त की दशा है, ऐसी जो चेतना की लौ रुक जाती है निष्कंप, इसे योगियों ने परमगति कहा है।
यह बड़े मजे की बात है! जहां सब गति ठहर जाती है, उसे परमगति कहा है। और हम, जिनकी सब गति चल रही है, इसको दुर्गति कहा है।
सब चल रहा है, आंखें चल रही हैं, कान चल रहे हैं, मन चल रहा है, सब इंद्रियां भाग रही हैं, और सब अलग-अलग भाग रही हैं। हमारी हालत ऐसी है जैसे एक ही बैलगाड़ी में सब तरफ बैल जुते हों। सब बैल भागे जा रहे हैं। बैलगाड़ी कहीं पहुंचती भी नहीं है; सिर्फ अस्थिपंजर ढीले हो रहे हैं। जो बैल जरा ताकत में आ जाता है, वह खींचकर एक तरफ ले जाता है। थक जाता है, तब तक दूसरा बैल खींचकर दूसरी तरफ ले जाता है। आखिर में हम करीब-करीब वहीं पाए जाते हैं, जहां हम पैदा हुए थे। कहीं कोई गति नहीं हो पाती। मरता हुआ आदमी आमतौर से वहीं होता है, उसी दुर्गति में, जहां वह जन्म के समय था। ये साठ, सत्तर, अस्सी साल सिर्फ खींच-घसीट होती है; इंद्रियां यहां से वहां खींचती रहती हैं। यात्रा लगती है बहुत हो रही है, पहुंचना कहीं भी नहीं होता। इंद्रियों की यह गति, क्रिया की स्थिति ही हमारे ऊपर अशांति है। शांत लोग होना चाहते हैं, आनंदित लोग होना चाहते हैं, लेकिन यह राज, यह सूक्ष्म सूत्र उन्हें ख्याल में नहीं है कि आनंद अक्रिया का स्वभाव है, दुख क्रिया का स्वभाव है। इसलिए जो भी करके मिलेगा, उससे दुख मिलेगा। जो भी अनकिए मिल जाएगा, वही आनंद है। क्योंकि करके जो भी हम पाते हैं, वह हमारा स्वभाव नहीं है। जो स्वभाव है, उसे करके पाने की कोई जरूरत ही नहीं है। जो आप हैं ही, उसके लिए कुछ भी करने की कोई जरूरत नहीं।
परमात्मा आपका स्वभाव है। वह कोई उपलब्धि नहीं है कि जिसके लिए कुछ करना है। वह आप हैं ही, इसे सिर्फ जानना है, इसे सिर्फ उघाड़ना है। एक पर्दा है, जिसे खींच देना है। एक पर्त है, जिसे उघाड़ देना है। कुछ छिपा है, जिसे प्रगट कर देना है। एक झरना है, जिसके ऊपर एक पत्थर रखा है, पत्थर के हटाते ही झरना फूट पड़ेगा। झरने को पाने कहीं भी नहीं जाना है, रुकावट हटा देनी है। मनुष्य के स्वभाव में ही छिपा है सच्चिदानंद। वह किसी क्रिया से लाने की कोई भी जरूरत नहीं है।
इसलिए जितने दुनिया में परम योगी हुए हैं, उन्होंने अक्रिया सिखाई।
वे कहते हैं कि तुम ऐसी हालत में आ जाओ, जहां तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो। मैं आपको जो ध्यान सिखा रहा हूं, वह बड़ी भयंकर क्रिया है। तो आपको सवाल उठेगा कि अगर अक्रिया ही करनी है, तो क्यों गहरी श्वास लेनी? क्यों नाचना-कूदना? क्यों चीखना-चिल्लाना? ये तो सब क्रियाएं हैं!
अक्रिया ही ध्यान है, लेकिन मैं आपको क्रिया करने को कह रहा हूं, क्योंकि आप क्रिया से इस बुरी तरह भरे हैं कि जब तक क्रिया आप से उतर न जाए, अक्रिया में आपका प्रवेश नहीं हो सकता। आपकी क्रिया को थकाना जरूरी है। जब आप बिल्कुल एग्झास्टेड हो जाएं कि जब आप खुद ही कहने लगें कि अब हमें क्रिया करनी ही नहीं है... ।
मैं आपसे कहूं कि क्रिया मत करिए, तो कुछ न होगा। आप बैठकर अगर शरीर को
भी किसी तरह रोक लेंगे, तो मन क्रिया करता रहेगा। जो शक्ति शरीर से जा रही थी, वह मन में चलने लगेगी।
मैं आपसे कहता हूं कि आप एक दफा क्रिया कर ही डालिए और ऐसी जगह आ जाइए जहां कि आपके शरीर का सेल-सेल, रोआं-रोआं, कोष्ठ-कोष्ठ चिल्लाने लगे कि बस,

ठहरो! जहां शरीर ही आपसे कहने लगे कि अब बहुत हो गया, अब रुको। जहां आपका मन ही कहने लगा कि क्या अब तोड़ ही डालोगे? थोड़ा विश्राम। जहां आपका पूरा अस्तित्व विश्राम मांगने लगे, ध्यान तो वहीं शुरू होता है।
इसलिए पहले तीन चरण ध्यान के चरण नहीं हैं, सिर्फ ध्यान की तैयारी के चरण हैं। चौथा चरण ही ध्यान है, जब आप बिल्कुल अक्रिया में हो जाते हैं, जब मैं आपसे कहता हूं कि बिल्कुल ठहर जाएं। और मैंने सब तरह के प्रयोग करके देखे हैं, अनेक-अनेक तरह के लोगों पर। अगर मैं उनसे सीधा कहता हूं, ठहर जाएं, तो वे नहीं ठहर पाते। बस शांत हो जाएं। मुश्किल से सौ में से दो, तीन, चार, पांच, छह, सात, ज्यादा से ज्यादा सात प्रतिशत लोग मुश्किल से सीधे शांत हो सकते हैं। मैं बहुत कोशिश करके देखा कि कारण क्या है, लोग शांत क्यों नहीं हो पाते? वे सब समझ लेते हैं, बात उनकी समझ में आ जाती है, लेकिन शरीर में एक मोमेंटम है।
जैसे एक आदमी साइकिल चलाता है। साइकिल जब चलाता है तो पैडल मारता है। पैडल न मारे तो साइकिल न चले। लेकिन एक आदमी दस मील से पैडल मारता हुआ चला आ रहा है। अब वह पैडल मारना बंद भी कर दे, तो भी आधा मील तक साइकिल चलती हुई चली जाएगी। मोमेंटम है। दस मील से पैडल मारे जा रहे हैं, साइकिल के चक्कों ने गति ले ली है, उनमें ऊर्जा भर गई है। अब आधा मील तक वे बिना मारे भी चले जाएंगे। और अगर उतार पर हो, तब तो बहुत मुश्किल है।
और अधिक लोग उतार पर हैं। ऊंचाई की तरफ तो कोई जाता नहीं, सब नीचाई की तरफ जाते हैं। सब पतन की तरफ जाते हैं, इसलिए अधिक लोग उतार पर होते हैं। उन्होंने जन्मों-जन्मों में इतना मोमेंटम इकट्ठा कर लिया है कि अगर वे सब तरह से रोककर भी खड़े हो जाएं, तो कोई फर्क नहीं पड़ता; गति जारी रहती है। साइकिल चलती ही चली जाती है। अगर वे जोर से ब्रेक भी लगा दें, तो रुकने की संभावना कम है, उलटने की संभावना ज्यादा है, क्योंकि मोमेंटम है। आप तेज साइकिल में ब्रेक नहीं लगा सकते। इतनी गति में लगाए गए ब्रेक का मतलब होगा कि आप बुरी तरह फेंक दिए जाएंगे। इतनी गति एकदम से नहीं रोकी जा सकती।
तो मैंने निरंतर अनुभव किया कि लोग इतनी गति से भरे हैं कि उनकी गति
का निकास और रेचन होना एकदम जरूरी है। तो जहां मैं लोगों को शांत ध्यान के लिए समझा रहा था, वहां मुश्किल से पांच-सात प्रतिशत लोग उसमें प्रवेश कर पाते थे।
अब मैं आपको पहले अशांत करने की कोशिश करता हूं; क्रिया में डालता हूं। अब मैं देखता हूं कि जहां सात प्रतिशत लोग ठहर पाते थे, वहां सत्तर प्रतिशत लोग ठहर जाते हैं। और जो बाकी लोग नहीं ठहर पाते हैं, तीस प्रतिशत, वह इसीलिए कि वे पूरी क्रिया नहीं कर रहे हैं। वे आधा-आधा कर रहे हैं। वे पूरी तरह गति में नहीं आ रहे हैं। वे पूरी तरह गति में आ जाएं तो जब मैं कहूंगा, रुक जाओ, तब उनका पूरा प्राण ही राजी है रुकने को। वे बिल्कुल रुक जाएंगे।
और एक क्षण को भी स्टापिंग हो जाए, सब चीजें ठहर जाएं, सब इंद्रियां, सारा शरीर, मन, तो उस एक क्षण में आपकी ट्यूनिंग हो जाती है, उस एक क्षण में झरोखा खुल जाता है। एक झलक मिल जाती है, जैसे बिजली कौंध गई अचानक अंधेरे में।
जैसे आप रेडियो को लगाते हैं, तो एक ट्यूनिंग की जरूरत होती है। अगर रेडियो की सुई ढीली हो, कंपती हो, ठहरती न हो, तो दो-चार स्टेशन इकट्ठे साथ लग जाते हैं। अधिक लोगों की खोपड़ी में कई स्टेशन एक साथ लगे हुए हैं। उन्हें कुछ समझ नहीं आता भीतर कि क्या चल रहा है, अखबार की खबर चल रही है, संगीत चल रहा है, कि ड्रामा चल रहा है, कि क्या चल रहा है भीतर?
अगर आपकी खोपड़ी को एंप्लिफायर लगाया जा सके--कि आपके भीतर जो चल रहा है, वह बाहर माइक से सुनाई पड़ने लगे... वैज्ञानिक कहते हैं कि जल्दी ऐसी व्यवस्था खोजी जा सकेगी, क्योंकि करीब-करीब काम पूरा होने को है। कुछ वैज्ञानिकों ने जो काम किया है मस्तिष्क के लिए, तो अब वे उसके ग्राफ तो बनाने लगे हैं। जैसे कार्डियोग्राम का ग्राफ हो जाता है कि आपके हृदय की धड़कन क्या है? कैसी है? रक्त का संचार, शरीर की विद्युत, वैसे मस्तिष्क के ई.ई.जी. ग्राफ बन जाते हैं।

मस्तिष्क में इलेक्ट्रोड लगा दिए जाते हैं। इलेक्ट्रोड कागज पर ग्राफ बनाता जाता है कि आपके भीतर कितने जोर से बिजली चल रही है। धीमी चल रही है, तेज चल रही है, कितनी गति से चल रही है। उससे पता चलता है कि खोपड़ी में कितनी बेचैनी है, कितना चैन है; कितनी शांति, कितनी अशांति; क्या हो रहा है भीतर! रात आप सोए हों, तो रातभर का ग्राफ बन जाता है कि कब आपने सपना देखा और कब नहीं देखा। क्योंकि जब आप सपना देखते हैं, तब जोर से सुई चलने लगेगी। जब आप नहीं देखते हैं, तब खाली जगह छूट जाएगी।
वैज्ञानिक कहते हैं, आज नहीं कल मस्तिष्क को एंप्लिफाई करने का उपाय
हो जाएगा, कि भीतर जो चल रहा है वह बाहर जोर से सुनाई पड़ने लगे। आप पाएंगे, हर आदमी पागल है! वहां कई स्टेशन एक साथ लगे हैं। और तब आप भी पहली दफा चौंकेंगे कि यह मेरे भीतर चल रहा है? आप उसके आदी हो गए हैं। और यह पागलपन भीतर उबलता रहता है। यह कभी भी सौ डिग्री पर पहुंच सकता है।
इसलिए पागलों में और गैर-पागलों में कोई गुणात्मक अंतर नहीं होता-- सिर्फ मात्रा का, डिग्री का। आप अट्ठानबे डिग्री पर खड़े हैं, कोई निन्यानबे डिग्री पर, कोई सौ डिग्री पर। कोई हिम्मतवर एक सौ एक डिग्री पर चला गया है, वह पागलखाने में है। लेकिन बस अंतर थोड़ा-सा है। एक धक्के की जरूरत है कि आप भी छलांग लगा जाएंगे। दीवाला निकल जाए, कि पत्नी मर जाए, कि कुछ भी हो जाए, एक धक्का लग जाए, कि एक डिग्री की छलांग हुई कि आप पागलखाने के भीतर! पागलखाने के भीतर और बाहर, इंचभर से ज्यादा का फासला नहीं है।
यह जो मनोदशा है कंपती हुई, यह जो क्रिया चल रही है भीतर बहुत जोर से-- एक-एक स्नायु तना हुआ है मस्तिष्क का, एक-एक रग-रेशा खिंचा हुआ है--यह सब ठहर जाए, तो परमगति है, योगी कहते हैं। समाधिस्थ क्षण आ गया। जहां सब रुक गया, वहां पहुंचना हो गया।
संसार में जो कुछ भी पाना है, उसके लिए चलकर पाना होता है। दौड़कर जो पा ले, वह जल्दी पहुंचकर पा लेता है। जो धीमे-धीमे चलते हैं, वे संसार की यात्रा में, प्रतियोगिता में हारे हुए सिद्ध होते हैं, पराजित सिद्ध होते हैं। यहां तो जो तेज चल सकता है, दौड़ सकता है, दूसरों को धक्के दे सकता है, उनके सिरों की सीढ़ियां बना सकता है, वह ही कुछ उपलब्ध कर पाता है।
संसार में दौड़कर उपलब्धि है, परमात्मा में ठहरकर उपलब्धि है। वहां तो वही पहुंच पाता है, जो रुकने की कला जानता है, जो ठहर गया है।
जब मन के सहित पांचों ज्ञानेंद्रियां भलीभांति थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती... ।
कोई प्रयत्न नहीं करती, कोई प्रयास भीतर नहीं होता।
प्रयास को हम समझ लें कि इसका अर्थ क्या होता है। प्रयत्न का अर्थ क्या होता है? आप जब कुछ पाना चाहते हैं, तो चेष्टा करते हैं। फिर वह पाना कुछ भी हो। समाधि पाना है, कि मोक्ष पाना है, कि धन पाना है, कि पद पाना है, कुछ भी पाना हो, जब पाना है तो चेष्टा करनी पड़ेगी। और समस्त जगत के योग कहते हैं कि परमात्मा को पाना है तो वहां कोई चेष्टा न करनी पड़ेगी, वहां निश्चेष्ट होकर पड़ रहना होगा।
यह परमात्मा को पाना कुछ ऐसा है जैसे एक आदमी नदी में तैरता है। अगर नदी विराट हो, संघर्ष गहन हो, तो तैरने वाला भी डूब जाएगा। थकेगा और डूबेगा। असल में जितना ज्यादा तैरेगा उतनी ही जल्दी थकेगा और उतनी ही जल्दी डूबेगा। लेकिन एक बड़े मजे की घटना घटती है। तैरने वाला, लड़ने वाला, पूरी तरह कोशिश करने वाला डूब जाता है। लेकिन जैसे ही मरा कि ऊपर उठ आता है नदी की छाती पर।
जिंदा आदमी नीचे चला जाता है, मरा हुआ ऊपर आ जाता है! यह नदी भी बड़ी अदभुत है! नदी के नियम भी बड़े अदभुत हैं! जिंदा आदमी को डुबा देती है, मुर्दा आदमी को तैरा देती है। जो तैरना जानता ही नहीं, जो तैर सकता ही नहीं--मुर्दा तैर जाता है, जिंदा डूब जाता है। जरूर मुर्दे को कोई कला आती है, जो जिंदे को नहीं आती। कुछ राज मुर्दा जानता है। वह राज है, निश्चेष्ट होने का राज। वह कोई चेष्टा नहीं करता।
यह बड़े समझने की बात है कि हम नदी में नदी के कारण नहीं डूबते, अपनी चेष्टा के कारण डूबते हैं। अगर हम मुर्दे की भांति पड़ जाएं, कोई नदी हमें डुबा नहीं सकती। लेकिन हम पड़ नहीं सकते, क्योंकि हम जिंदा आदमी हैं, हम कुछ

न कुछ करेंगे ही। एकदम मुर्दे की भांति पड़ जाएं और नदी डुबा ही दे! इस डर से हम कुछ करते हैं। और हम जानते हैं कि मुर्दे को कोई नदी कभी नहीं डुबाती। मुर्दा तो नदी पर तैर जाता है। आप क्यों डूब जाते हैं? आप चेष्टा से ही डूब जाते हैं।
नदी में भंवर पड़ते हैं, भंवर में लोग फंस जाते हैं। तो भंवर से बचने की
एक ही कला है कि आप निकलने की कोशिश मत करना। जो लोग तैरने का शास्त्र जानते हैं, वे कहते हैं, भंवर से बचने की एक ही तरकीब है कि जब भंवर पकड़े, तो आप भंवर के साथ हो जाना। वह डुबाए तो आप डूबते चले जाना। क्योंकि भंवर ऊपर बड़ी होती है, जैसे-जैसे नीचे, उसके चक्र छोटे होते जाते हैं। बिल्कुल नीचे जाकर वह बिल्कुल छोटी हो जाती है। वहां वह आपको नहीं पकड़ सकती। अगर आपने लड़ने की कोशिश की, तो आप टूट जाएंगे ऊपर ही, नीचे पहुंचते-पहुंचते तक बचने का कोई अर्थ भी नहीं रह जाएगा, आप मरे हो चुके होंगे।
तैरने का शास्त्र कहता है, अगर भंवर पकड़ ले, तो उससे निकलने की कोशिश
ही मत करना, डुबकी लगाकर उसके साथ ही हो जाना, नीचे चले जाना। नीचे से आप छूट जाएंगे। तो जो भंवर से बचने की कोशिश करता है, वह डूब जाता है। और जो भंवर के साथ हो जाता है, वह बच जाता है। नदी में मुर्दा तैर जाता है और जिंदा डूब जाता है।
परमात्मा को जिन्हें पाना है, उन्हें निश्चेष्ट होने की कला सीखनी होगी। वहां कुछ भी करना आवश्यक नहीं है। वहां सिर्फ न-करने में ठहर जाना आवश्यक है। आप जब तक कुछ पाना चाहते हैं, कुछ होना चाहते हैं, तब तक आप चेष्टा नहीं छोड़ेंगे।
इसलिए धर्म का आपको बुनियादी सूत्र कहता हूंः धर्म अचाह है; वह कोई चाह नहीं है। और जो चाह से धर्म की तरफ जा रहा है, वह धर्म की तरफ जा ही नहीं रहा है। वह अभी फिर संसार में ही घूम रहा है। उसने नाम बदल लिए हैं अपने संसार के, उसने मंजिलों पर नए लेबल लगा लिए हैं, लेकिन अभी उसकी मांग जारी है। और जो मांग रहा है, उसे सब मिल जाए, लेकिन परमात्मा नहीं मिल सकता। निश्चेष्ट। यम कह रहा है नचिकेता को, जहां बुद्धि किसी प्रकार की चेष्टा नहीं करती। चेष्टा तभी जाएगी, जब चाह चली जाएगी। लेकिन लोग इतने अदभुत हैं कि लोगों के मन की, उनके गणित की व्यवस्था जानकर बड़ी हैरानी होती है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं कि हम शांत कैसे हो जाएं? तो मैं उनसे कहता हूं, तुम चाह छोड़ दो तो तुम शांत हो जाओगे। तो वे मेरे पास लौटकर आ जाते हैं। वे पूछते हैं, तो हम गैर-चाह कैसे हो जाएं? अब उन्होंने गैर-चाह होने की चाह बना ली। अब वे कहते हैं कि इसकी कोई तरकीब बताएं। अब हम यही होना चाहते हैं। अब हमको चाह छोड़नी है! क्योंकि चाह में दुख है और अचाह में सुख है, तो अब हम अचाह को ही चाहते हैं।
वे समझे ही नहीं। बात चूक गई। मुद्दा खो गया।
अचाह होने का मतलब ही यह है कि अब कोई चाह हम नहीं करते। अब हम यह भी नहीं चाहते कि अचाह हो जाएं। डिजायरलेसनेस भी अब हमारी मांग नहीं है। अब हम कुछ भी नहीं मांगते। और जो आदमी ऐसे क्षण में आ जाए, उसकी ट्यूनिंग हो जाती है। एक सेकेंड को भी अचाह--एकदम आनंद बरस जाता है। कांटा ठीक जगह पर आकर रेडियो पर लग गया। सब बाकी स्टेशन खो जाते हैं। ठीक कांटा जब अचाह पर लग जाता है, परमात्मा से हमारा संयोग हो जाता है। ट्यूनिंग! हम जुड़ गए। सुर बंध गए। यह एक बार भी हो जाए, तो रास्ता साफ हो जाता है, मार्ग साफ हो जाता है।
लेकिन आप यह मत समझना कि यह एक बार हो गया, तो सारी बात समाप्त हो गई। क्योंकि आगे का सूत्र बहुत साफ बात कह रहा है।
इंद्रियों की उस स्थिर धारणा को ही योग मानते हैं, क्योंकि उस समय साधक प्रमादरहित हो जाता है।
और जब हमारी चेतना परमात्मा से जुड़ती है, तो हम मिट जाते हैं। वह जो अहंकार है, जो मद है, वह खो जाता है। परमात्मा हमें आपूरित कर देता है, भर देता है। एकदम सागर बूंद में गिर पड़ता है। बूंद बिल्कुल खो जाती है, उसका कोई पता नहीं चलता।

परंतु योग उदय और अस्त होने वाला है, अतः योगयुक्त रहने का दृढ़ अभ्यास करते रहना चाहिए।
कोई यह न सोचे कि यह घटना एक बार घट गई, यह झलक एक बार मिल गई, तो अब क्या करना है! यह कांटा कई बार चूक जाएगा, लग-लगकर चूक जाएगा। यह कांटा तब तक चूकता रहेगा, जब तक है। यह तो प्राथमिक घटना है।
इसी प्राथमिक घटना को, जापान में झेन फकीर जिसको सतोरी कहते हैं, वह यही घटना है। सतोरी समाधि नहीं है, वह समाधि की पहली झलक है। बड़ा आनंद हो जाएगा। जीवन बड़ा रस से भर जाएगा। आप दूसरे आदमी हो जाएंगे। कल तक जो था वह गया, एक नए का जन्म हो जाएगा।
लेकिन यही अंत नहीं है। यह कांटा एक दफा लगकर इतना अमृत दे जाता है! यह कांटा जब तक है बुद्धि का, तब तक यह डांवाडोल होता ही रहेगा। इसे फिर डांवाडोल होने के उपाय मिल जाएंगे। यह फिर खो-खो देगा। जो संगति मिली है, वह चूक-चूक जाएगी। तो निरंतर उस एकतानता को, वह एकतानता सध सके, इसके लिए बार-बार हमें निश्चेष्ट होना, बार-बार हमें अक्रिया में डूबना, बार-बार ध्यान में लीन होने की प्रक्रिया जारी रखनी पड़ेगी।
एक घड़ी ऐसी आती है जब कि कांटा लीन ही हो जाता है, डूब ही जाता है; वह बचता ही नहीं कि डांवाडोल हो सके। मन खो जाता है। उसको कबीर ने अ-मनी, नो- माइंड की अवस्था कहा है। और जब मन खो जाता है, फिर योग साधने की कोई भी जरूरत नहीं।
कबीर परम अवस्था को पाने के बाद भी कपड़ा बुनते रहे, कपड़ा बेचने बाजार जाते रहे। उनके शिष्य उन्हें कहते थे, आप यह क्या कर रहे हैं? आप तो परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, आप तो अपना सारा समय अब प्रभु की साधना में लगाइए। तो कबीर कहते, अब साधने को कोई बचा ही नहीं। जो साधता था, वह नहीं बचा। इसलिए कबीर ने कहा है, सहज समाधि भली। अब तो वह घड़ी आ गई, जब कि हम कुछ भी करें तो समाधि बनी रहती है। अब तो हम उठें, बैठें, काम करें, न करें, कुछ भी चलता रहे, समाधि बनी रहती है। समाधि हमारा सहज होना हो गई है।
जब तक सहज न हो जाए समाधि, तब तक, तब तक निरंतर, निरंतर निश्चेष्ट होने की, अक्रिया में डूबने की, ध्यान की लीनता को खोजते ही रहना है।
उस इंद्रियों की स्थिर धारणा को ही योग मानते हैं, क्योंकि उस समय साधक प्रमादरहित हो जाता है। परंतु योग उदय और अस्त होने वाला है, अतः योगयुक्त रहने का दृढ़ अभ्यास करते रहना चाहिए।
बहुत लोग बहुत बार ध्यान शुरू करते हैं, फिर छोड़-छोड़ देते हैं। यह बार-बार छोड़ देना समय को, शक्ति को खोना और अपव्यय करना है। ध्यान को पकड़ा हो तो फिर पकड़ रखना चाहिए, और सतत चोट करते जाना चाहिए। यह सतत चोट ही एक दिन उस पत्थर को पूरी तरह तोड़ देगी, जो आपके और परम सत्य के बीच में है।
इस घटना के पहले बहुत बार झलकें मिलेंगी, लेकिन झलकों से राजी मत हो जाना। झलकों से बहुत से लोग राजी हो जाते हैं। जो झलक से राजी हो जाता है, उसे फिर पूर्ण विराट की उपलब्धि का मार्ग बंद हो जाता है। जल्दी राजी मत हो जाना। उस समय तक राजी मत होना जब तक कि सहज न हो जाए, जब तक कि ध्यान श्वास जैसा न हो जाए, कि आप सोए भी रहें, तो भी ध्यान चलता रहे। आप कुछ भी करते रहें, तो भी ध्यान चलता रहे। कुछ भी ध्यान को खंडित न कर सके। जब तक ऐसी अवस्था न आ जाए, तब तक निरंतर, निरंतर इस तलाश को जारी रखना चाहिए। बहुत बार लोग छोड़-छोड़कर फिर खोजना शुरू कर देते हैं। इसका परिणाम ऐसा होता है जैसा जलालुद्दीन रूमी ने कहा है।
एक दिन अपने शिष्यों को ले गया एक खेत में और उसने कहा कि देखो इस खेत
के मालिक की कला! उस खेत में आठ बड़े गड्ढे थे और नौवां गड्ढा खोदा जा रहा था। शिष्य भी नहीं समझ पाए। पूरा खेत खराब हो गया था। उन्होंने कहा, यह हो क्या रहा है! मालिक से पूछने पर पता चला कि कुआं खोद रहे हैं। उन्होंने कहा कि यह तो पूरा खेत कुआं ही बना जा रहा है! एक भी गड्ढे में पानी नहीं है! मालिक ने कहा, आठ हाथ खोदकर देखा कि पानी नहीं आता, तो सोचा, यहां से छोड़ो। फिर दूसरा खोदकर दस हाथ देखा, वहां भी पानी नहीं आया। वहां से भी छोड़ो। फिर तीसरा खोदा, वहां भी पानी नहीं आया। ऐसा खोदते-खोदते अब नौवां खोद रहे हैं।

रूमी ने कहा, इस आदमी को ठीक से समझ लो। यह आदमी बड़ा प्रतिनिधि है। इसी तरह के लोग हैं जमीन पर। वे एक गड्ढा खोदते हैं दस हाथ, फिर सोचते हैं, पानी नहीं आया, छोड़ो। फिर दो-चार साल बाद दूसरा गड्ढा खोदते हैं। फिर तीसरा गड्ढा खोदते हैं। अगर यह आदमी एक ही जगह खोदता चला जाता, तो पानी कभी का आ जाता। और जिस ढंग से यह खोद रहा है, पूरा खेत भी खराब हो जाएगा और पानी कभी आने वाला नहीं है।
तो आप जब खोदना शुरू करें, तो खोदते ही चले जाना। बार-बार छोड़कर अलग-अलग जगह खोदने के परिणाम घातक होंगे। सतत लगे ही रहना। पानी तो निश्चित भीतर है। अगर बुद्ध के कुएं में आया, अगर कृष्ण के कुएं में आया, तो आपके कुएं में भी आएगा। आप उतना ही सब कुछ लिए हुए पैदा हुए हैं, जितना बुद्ध या कृष्ण पैदा होते हैं। फर्क इतना ही है कि आपने ठीक से खोदा नहीं है, या खोदा भी है तो अनेक जगह खोदा है।
सतत खुदाई चाहिए; जल के स्रोत भीतर हैं। खोदते ही आप चले जाएं। पहले
तो कंकड़-पत्थर ही हाथ लगेंगे। फिर सूखी भूमि ही हाथ लगेगी। फिर धीरे-धीरे गीली भूमि आनी शुरू होगी। जब आपके ध्यान में शांति मालूम पड़ने लगे, समझना कि गीली भूमि शुरू हो गई। और अब छोड़ना मत, क्योंकि शांति पहली खबर है आनंद की। जमीन गीली होने लगी। पानी पास है।
शांत मन खबर दे रहा है कि बहुत दूर नहीं है आनंद का स्रोत। थोड़ी मेहनत, थोड़ा श्रम, थोड़ी लगन, थोड़ी प्रतीक्षा और थोड़ा धैर्य, जलस्रोत निश्चित ही फूट पड़ने को है।
अब ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
सोलहवां प्रवचन

कामना का विसर्जन ही मृत्यु का विसर्जन

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न च्रुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते।। 12।।

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्वभावः प्रसीदति।। 13।।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।। 14।।

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्धयनुशासनम्।। 15।।

वह परब्रह्म परमेश्वर न तो वाणी से, न मन से (और) न नेत्रों से ही प्राप्त किया जा सकता है। वह है, ऐसा कहने वालों से अन्यत्र भिन्न पुरुषों को वह किस प्रकार उपलब्ध हो सकता है।। 12।।

(अतः उस परमात्मा को पहले तो) है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक ग्रहण करना चाहिए, अर्थात पहले उसके अस्तित्व का दृढ़ निश्चय करना चाहिए। तदनंतर तत्वभाव से भी उसे प्राप्त करना चाहिए। इन दोनों प्रकारों में से, वह है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करने वाले साधक के लिए परमात्मा का तात्विक स्वरूप (अपने आप शुद्ध हृदय में) प्रत्यक्ष हो जाता है।। 13।।

इस (साधक) के हृदय में स्थित जो कामनाएं (हैं), जब (वे) सब की सब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है (और) यहीं ब्रह्म का भलीभांति अनुभव कर लेता है।। 14।।

जब हृदय की संपूर्ण ग्रंथियां भलीभांति खुल जाती हैं, तब वह मरणधर्मा मनुष्य इसी शरीर में अमर हो जाता है। बस, इतना ही सनातन उपदेश है।। 15।।

परमात्मा के संबंध में यह सूत्र अत्यंत सूक्ष्म और अत्यंत गहन है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि परमात्मा का अस्तित्व स्वयं आत्यंतिक गहराई है। उससे गहरा फिर कुछ और नहीं। उससे अंतहीन फिर कुछ और नहीं। उससे आदिहीन फिर कुछ और नहीं। उसके पार फिर कुछ और नहीं। उसे फिर कुछ और लांघ नहीं पाता, अतिक्रमण नहीं कर पाता। स्वभावतः, उस सत्य के संबंध में जो भी कहा जाएगा वह उतना ही गहरा, उतना ही अंतहीन, उतना ही अनंत होगा, जैसा परमात्मा है।
एक बहुत अदभुत ईसाई फकीर हुआ है, तर्तूलियन। तर्तूलियन का एक वक्तव्य समझने जैसा है, फिर हम इस सूत्र में प्रवेश करें।
तर्तूलियन ने कहा है कि मैं ईश्वर में भरोसा इसलिए करता हूं कि ईश्वर किसी भी तर्क से सिद्ध नहीं होता। बड़ा उलटा वक्तव्य है। हम भरोसा करते हैं उस बात में, जो किसी तर्क से सिद्ध होती हो। तर्तूलियन कहता है, ईश्वर में मेरा भरोसा है, क्योंकि वह अतर्क्य है, वह किसी तर्क से सिद्ध नहीं होता। सच तो यह है कि ईश्वर से ज्यादा अविश्वसनीय और कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि ईश्वर की धारणा असंभव है। ईश्वर की कल्पना ही असंभव है। उस दिशा में सोचने के सब प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं। उसकी खोज करते-करते खोजनेवाला ही मिट जाता है। वह असंभव में प्रवेश है।
तर्तूलियन कहता है, आई बिलीव इन गाड बिकाज गाड इज एब्सर्ड। तर्कहीन है। बेबूझ है। किसी तरह सिद्ध नहीं किया जा सकता, इसीलिए ही विश्वास करता

हूं। तब विश्वास का फिर और क्या आधार होगा? विश्वास का आधार अगर तर्क न हो, विचार न हो, मनन न हो, चिंतन न हो, तो फिर विश्वास का आधार सिर्फ हृदय ही हो सकता है।
जैसे आप किसी के प्रेम में पड़ जाते हैं, कोई तर्क नहीं होता। और अगर कोई तर्क करने चले, तो आप सिद्ध न कर पाएंगे कि आपके प्रेम का कारण क्या है। और जो भी बातें आप कहेंगे, वस्तुतः असार होंगी। जैसे आप कहेंगे कि जिस व्यक्ति को मैं प्रेम करता हूं, वह बहुत सुंदर है। लेकिन किसी और को वह सुंदर मालूम नहीं पड़ता, बस आपको ही मालूम पड़ता है। सचाई कुछ उलटी है। आप, सुंदर है इसलिए प्रेम करते हैं, ऐसा नहीं है। आप प्रेम करते हैं, इसलिए वह व्यक्ति सुंदर दिखाई पड़ता है। आपके प्रेम ने ही उसे सुंदर बना दिया है। सौंदर्य कोई वस्तुगत घटना नहीं है, आपके हृदय का भाव है। हम सुंदर को प्रेम नहीं करते; हम जिसे प्रेम करते हैं; वह सुंदर हो जाता है। प्रेम हर चीज को सुंदर कर देता है।
प्रेम जिसको भी घेर लेता है, उसे सुंदर कर जाता है। इसलिए प्रेमी को प्रेयसी सुंदर दिखाई पड़ती है। शेष किसी को न भी दिखाई पड़े। कोई तर्क सिद्ध न कर पाएगा कि प्रेम क्यों है। और जो भी बातें आप कहेंगे, वे पीछे से सोची गई होंगी। प्रेम की घटना पहले घट जाएगी, फिर आप सोचेंगे, रेशनलाइज करेंगे, तर्क खोजेंगे कि क्यों मैं प्रेम में हूं। लेकिन क्या गणित की तरह किसी ने कभी कोई प्रेम किया है कि पहले सब सोचा हो, सब तर्क बिठाया हो, निष्पत्ति निकाली हो, निष्कर्ष हाथ में लिया हो, फिर प्रेम किया हो! आदमी प्रेम पहले करता है, कारण पीछे खोजता है। तो जो कारण पीछे खोजे जाते हैं, वे कारण हो ही नहीं सकते। कारण तो पहले खोजे जाने चाहिए।
प्रेम तर्क से निष्पन्न नहीं होता, प्रेम हार्दिक घटना है। और हार्दिक घटना का अर्थ होता है, जिसे हम अनुभव करते हैं कि है, और जिसके लिए हम कोई उत्तर नहीं दे सकते। जिसे हमारे पूरे प्राण कहते हैं कि है, लेकिन जिसे हम किसी दूसरे को समझा नहीं सकते कि क्यों। जिसके लिए कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता, और फिर भी जिसके लिए हम मरने को तैयार हो सकते हैं। हार्दिक घटना का अर्थ यह हैः जिसके लिए हम मरने को तैयार हो सकते हैं और जिसके लिए कोई तर्क पास में नहीं होता।
निश्चित ही, जिसके लिए हम अपना जीवन खो सकते हैं, वह हमारे जीवन से बड़ा होगा। वह हमारे पूरे जीवन को घेर लेता होगा, लेकिन उसके लिए हम कोई तर्क नहीं दे पाते।
तार्किक किसी चीज के लिए कभी जीवन नहीं दे सकता। तर्क के किसी सिलोजिज्म में, तर्क की किसी प्रक्रिया में कभी कोई जीवन नहीं दे सकता। गैलेलियो ने पहली दफा कहा कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है, सूरज पृथ्वी का नहीं। यह एक तर्क निष्पत्ति थी और बिल्कुल सही थी। लेकिन ईसाइयत ने विरोध किया। रोम खिलाफ हो गया। सारा ईसाइयों का फैला हुआ जाल गैलेलियो की बात स्वीकार करने को राजी नहीं था। क्योंकि बाइबिल में कहा है कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। सारी दुनिया के लोग मानते रहे हैं कि सूरज पृथ्वी का चक्कर लगाता है। दिखाई भी यही पड़ता है। सुबह ऊगता है पूरब, सांझ डूबता है पश्चिम, फिर पूरब ऊगता है, चक्कर लगाता हुआ मालूम पड़ता है। गैलेलियो के बाद भी सारी दुनिया की भाषाओं में शब्द तो वही हैं-- सूर्योदय, सूर्यास्त। न तो सूर्य का कोई उदय होता है, न अस्त होता है; सिर्फ पृथ्वी चक्कर लगाती है। सूर्य अपनी जगह है। न ऊगता है, न डूबता है। पृथ्वी ही उसके आसपास घूमती है।
गैलेलियो ने जब पहली दफा यह बात कही, तो उसने तर्क से पूरी तरह सिद्ध
कर दी। लेकिन पोप ने उसे बुलाया और कहा कि तुम क्षमा मांग लो, अन्यथा तुम्हारा जीवन... तुम्हारे जीवन को खतरा है। गैलेलियो ने घुटने टेककर क्षमा मांग ली।
यह बड़ी कठिन बात रही है और विचारशील लोग सोचते रहे हैं कि गैलेलियो जैसा प्रतिभासंपन्न आदमी क्या अपने जीवन के लिए डर गया?
लेकिन मैं सोचता हूं कि जीवन के लिए गैलेलियो नहीं डरा। वह अपना जीवन
दे सकता था, लेकिन एक छोटे से तर्क के लिए कौन जीवन देने को तैयार होता है! इससे क्या फर्क पड़ता है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है कि सूरज पृथ्वी

का चक्कर लगाता है! गैलेलियो क्यों जीवन दे इस व्यर्थ की बकवास के लिए? यह गैलेलियो के लिए हार्दिक नहीं था, बुद्धिगत था। और उसने देखा कि इतनी-सी बात के लिए कि पृथ्वी चक्कर लगाती है कि नहीं लगाती है, मैं क्यों जीवन दूं!
मैं मानता हूं, गैलेलियो बुद्धिमान आदमी था। कोई बुद्धू होता तो शायद मरने को तैयार हो जाता। क्योंकि तर्क के लिए कोई बुद्धू ही मर सकता है। तर्क! तर्क का इतना मूल्य ही नहीं है। गणित की एक निष्पत्ति के लिए कौन अपना जीवन देने को तैयार होगा! आखिर जीवन का मूल्य बहुत ज्यादा है।
लेकिन एक छोटे से प्रेम के लिए आदमी पूरे जीवन को दे सकता है। प्रेम पूरे जीवन को घेर लेता है; पूरे अस्तित्व को पकड़ लेता है। तर्क तो केवल बुद्धि के एक कोने को पकड़ता है। आज तक बुद्धि के लिए किसी ने जीवन नहीं दिया है। और जिस चीज के लिए आप जीवन नहीं दे सकते, वस्तुतः उसका जीवन से ज्यादा मूल्य नहीं हो सकता।
मनुष्य के अनुभव में प्रेम एकमात्र अनुभव है, जिसके लिए वह जीवन दे सकता है। जो जीवन से ज्यादा मूल्यवान है। लेकिन प्रेम अतर्क्य है। लोगों ने परमात्मा के लिए जीवन दिया है। न मालूम कितने लोग शहीद हुए हैं परमात्मा के लिए, जिन्होंने जीवन को चुपचाप खो दिया है। जिन्होंने रत्तीभर भी शिकायत नहीं की कि जीवन जा रहा है। परमात्मा कुछ प्रेम जैसा मामला है।
इसलिए तर्तूलियन ठीक कहता है कि मानने का कोई कारण नहीं है, मानना असंभव है, फिर भी मैं परमात्मा को मानता हूं। यह कुछ हार्दिक घटना है। यह कुछ प्रेम का नाता है। यह संबंध बुद्धि से कहीं बहुत गहराई से आ रहा है। अब हम इस सूत्र में प्रवेश करें।
वह परब्रह्म परमेश्वर न तो वाणी से, न मन से और न नेत्रों से ही प्राप्त किया जा सकता है।
वह परमात्मा न तो वाणी से... कोई कितना ही समझाए, उसकी समझ नहीं आ सकती है। कोई कितनी ही कुश्लता से समझाए, कोई बिल्कुल मन में बिठा दे, ऐसा बिठा दे कि आप जवाब भी न दे पाएं, आप उत्तर भी न दे पाएं; आपको मानने को राजी भी होना पड़े, क्योंकि तर्क आपके पास न हो; तो भी ध्यान रहे, जब आप अतर्क हो जाते हैं, जब आप उत्तर नहीं दे पाते, तब भी हृदय अनकनविंस्ड ही रहता है। तब भी हृदय राजी नहीं होता। एक व्यक्ति आपकी बुद्धि को खंडित कर सकता है, लेकिन आपके हृदय को नहीं छू सकता।
एक बड़ा तार्किक आपकी सारी मान्यताएं तोड़ दे, आप पराजित भी हो जाएं, तो
भी आप राजी नहीं हो पाते। भीतर तो हृदय कहता ही रहता है कि मैं राजी नहीं हूं। तर्क से कभी कोई राजी नहीं हो सकता। हार सकता है, जीत सकता है, लेकिन कनविक्शन, हृदय की आस्था तर्क से पैदा नहीं होती।
इंगर सोल ने कहीं लिखा है अपने पत्रों में, कि आप उसी आदमी को तर्क से राजी कर सकते हैं, जो पहले से ही राजी हो। व्यर्थ है तर्क। उसको ही राजी कर सकते हैं, जो पहले से ही राजी था। वह राजी होने को तैयार ही था। लेकिन जो राजी नहीं है, उसे तर्क से आप छू भी नहीं सकते। तर्क ऊपर-ऊपर चला जाता है, वह जीवन के गहन में प्रवेश नहीं करता।
वाणी कर क्या सकती है? ज्यादा से ज्यादा तर्क कर सकती है। वाणी मनोरंजन कर सकती है। वाणी प्रीतिकर लग सकती है; काव्यात्मक हो सकती है, सुखद मालूम पड़ सकती है। लेकिन वाणी के कारण उस अस्तित्व के प्रति छलांग नहीं लग सकती। वाणी के धनी तो बहुत हुए हैं। और ऐसा भी नहीं कि उन्होंने नहीं जाना था। उन्होंने जाना हो तो भी, तो भी वाणी से वे किसी को भी राजी नहीं कर पाते। बुद्ध की भी सामर्थ्य नहीं है कि आपको शब्दों के द्वारा राजी कर पाएं।
बुद्ध भी जब आपको राजी करते हैं, तो आपको मौन के लिए पहले तैयारी करवाते हैं। वे भी समझाने के पहले आपको शांत और मौन कर देते हैं। वे भी वाणी से हल नहीं कर पाते। इसलिए बुद्ध तो इस संबंध में बहुत ही स्पष्ट थे। वे लोगों के प्रश्नों के उत्तर ही नहीं देते थे। वे कहते थे, इसके पहले कि तुम्हें उत्तर दूं, तुम्हें चुप होना सीखना पड़ेगा। एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष, तुम मेरे पास चुप होकर रहो। जब तुम्हारी चुप्पी बिल्कुल पूरी हो

जाएगी, तब मैं तुम्हें उत्तर दे दूंगा। लेकिन निरंतर यह होता कि जिस आदमी का मौन पूरा हो जाता, वह फिर प्रश्न ही न उठाता। मौन में ही बुद्ध वस्तुतः उसे उत्तर दे देते।
जो वाणी से नहीं कहा जा सकता, वह मौन से कहा जा सकता है। क्योंकि मौन मस्तिष्क में प्रवेश नहीं करता, सीधे हृदय में चला जाता है। शब्द तो सिर में टकराकर लौट जाते हैं। मौन, मौन से बहती हुई जीवन-धारा अबाधरूप से आपके हृदय में प्रवेश कर जाती है।
शब्द का ज्यादा से ज्यादा इतना ही उपयोग हो सकता है कि कोई आपको मौन करने के लिए राजी कर ले, बस। इतना ही शब्द से हो जाए कि आप निशब्द होने को राजी हो जाएं, तो शब्द का काम पूरा हो जाता है।
लेकिन परमात्मा वाणी से नहीं पाया जा सकता। न मन से पाया जा सकता है, न नेत्रों से ही प्राप्त किया जा सकता है।
मन सोचता है। मनन की प्रक्रिया का नाम मन है। जहां हम विचार करते हैं, सोचते हैं, चिंतन करते हैं, मनन करते हैं, उस प्रक्रिया का नाम मन है। लेकिन सोचने का एक तत्व ठीक से समझ लें कि आप उसी को सोच सकते हैं, जिसे आप जानते हों। जिसे आप जानते ही नहीं, उसे सोचेंगे कैसे?
ज्ञात को ही सोचा जा सकता है। द नोन, वह जो पहले से पता है, उसको आप सोच सकते हैं; जो पता ही नहीं है, उसको सोचेंगे कैसे? सोचना जुगाली की तरह है। जैसे गाय-भैंस पहले तो भोजन ले लेती हैं, आहार ले लेती हैं, फिर उसी आहार को निकाल-निकालकर बैठकर जुगाली करती रहती हैं। मन जुगाली करता है। जो पहले डाल लिया गया है, जो ज्ञात हो गया है, बस उसी को बार-बार सोचता रहता है। अज्ञात से, अननोन से मन का कोई संबंध नहीं है। हो भी नहीं सकता। जो ज्ञात ही नहीं है, उसमें सोचना शुरू कैसे होगा? एक अर्थ में सोचना पुनरुक्ति है। सोचना सदा बासा है। वह कभी ताजा नहीं होता। और सोचना हमेशा पीछे की तरफ लौटना है, अतीत की तरफ। सोचना स्मृति की ही पुनरुक्ति है। वह जो स्मृति में पड़ा है, उसी की जुगाली है। और परमेश्वर तो अज्ञात है। उसका हमें कोई भी पता नहीं। उसे हम सोचेंगे कैसे? इसलिए मन से परमात्मा का कोई संबंध नहीं जुड़ता। और जब तक मन मौजूद है, तब तक आप उससे टूटे रहेंगे। जिस दिन मन खो जाएगा, उस दिन आप उससे जुड़ जाएंगे। मन ही आपके और उसके बीच दीवार है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि मन ही नहीं होता कि ध्यान करें। मैं उनको कहता हूं कि मन तो कभी भी नहीं होगा कि ध्यान करें। क्योंकि मन तो ध्यान का दुश्मन है। मन तो हजार तरकीबें समझाएगा कि मत करो। कि यह तुम क्या कर रहे हो? यह पागलपन है! कि चुप होने से क्या होगा? कि सोचोगे नहीं तो भटक जाओगे। कि अपनी बुद्धि को सम्हालो, अपने तर्क को बचाओ। ऐसा किसी की बात में पड़ जाना ठीक नहीं।
मन तो हजार तर्क देगा कि ध्यान मत करो। क्योंकि ध्यान मन की मृत्यु है। ध्यान किया कि मन मरा। इसलिए मन अपनी सुरक्षा करेगा, सब तरह से सुरक्षा करेगा। और आपका भी मन वही करता है। पच्चीस कारण खोज लेता है। और उन कारणों की वजह से फिर ध्यान करने से रुक जाता है। और कभी-कभी इतने क्षुद्र कारण खोज लेता है कि कोई देखेगा, क्या कहेगा! ऐसे क्षुद्र कारण सोचकर भी रुक जाता है।
यह जो मन के रुकने की वृत्ति है, यह स्वाभाविक है मन के लिए। क्योंकि
मन जानता है कि ध्यान का मतलब है, खाई में उतर जाना। फिर वहां से मन अछूता नहीं लौटेगा, मन बचेगा नहीं। झेन फकीर ध्यान को कहते हैं, स्टेट आफ नो माइंड--मन के खो जाने की अवस्था, अ-मन की अवस्था।
उपनिषद का यह सूत्र भी वही कह रहा है कि न तो वाणी से मिलेगा और न मन से मिलेगा, न नेत्रों से ही।
इंद्रियों से कोई कितना ही खोजता रहे, इंद्रियों से केवल पदार्थ का संपर्क होता है। प्रत्येक वस्तु की सीमा है। जैसे आप आंख से सुन नहीं सकते, देख सकते हैं। कान से आप देख नहीं सकते, सुन सकते हैं। लेकिन कोई आदमी आंख से सुनने की कोशिश करे, तो मुश्किल में पड़ जाएगा। आंख की सीमा है कि वह देख सकती है। कान की सीमा है कि वह सुन सकता है। हाथ की सीमा है कि वह छू सकता है। नाक की सीमा है कि वह गंध ले सकती है। लेकिन एक इंद्रिय एक ही

काम कर सकती है। वह काम आप दूसरी इंद्रिय से नहीं ले सकते; वह दूसरी इंद्रिय की क्षमता नहीं है।
मन का काम है, वह मनन कर सकता है। मनन का अर्थ है, स्मृति में पड़ा हो तो उसे वह दोहरा सकता है। मन एक कंप्यूटर की तरह है। उसे पहले फीड करना होता है। उसे पहले आप दे दें भोजन, फिर वह उसकी जुगाली करता रहता है।
अब तो बड़े अदभुत कंप्यूटर बने हैं जो आदमी के मन से भी ज्यादा काम कर सकते हैं। बड़े से बड़ा वैज्ञानिक जो काम वर्षों में करेगा, वह कंप्यूटर सेकेंड में कर सकता है। लेकिन एक बड़ी मुश्किल है कंप्यूटर के साथ कि पहले उसमें डालना पड़ता है, जो उसे सोचने के लिए आपको देना है। उसको फीड करना पड़ता है। अगर आप कुछ भी न डालें, तो कंप्यूटर कुछ भी नहीं कर सकता।
मन में भी पहले डालना पड़ता है। समझें कि आप हिंदू हैं। हिंदू होने का क्या मतलब है? कि हिंदू-धर्म फीड किया गया है। और तो कुछ मतलब नहीं। कि आप मुसलमान हैं, कि आप जैन हैं, कि बौद्ध हैं--इसका मतलब क्या होता है? इसका मतलब होता है, आपके कंप्यूटर में बचपन से ही जैन-धर्म डाला गया है, तो वह वही-वही सोचता रहता है। किसी के कंप्यूटर में हिंदू-धर्म है। किसी के कंप्यूटर में मुसलमान-धर्म है; वह वही-वही सोचता रहता है। बस उसकी जुगाली चलती रहती है। और आप भूल से समझते हैं कि आप हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं। आप कुछ भी नहीं हैं। आदमी सिर्फ आदमी की तरह पैदा होता है, बाकी तो सब व्यवस्थाएं डाली जाती हैं। मन तो समाज के द्वारा पैदा किया जाता है।
अगर आप हिंदू-घर में पैदा हुए और बचपन में ही उठाकर आपको मुसलमान के
घर में रख दिया जाता, तो आप मुसलमान होते, हिंदू नहीं। और आप कुरान को नमस्कार करते और गीता को जला देने की इच्छा रखते। आप ही! ये सब इच्छाएं कहां से आती हैं? ये दूसरे आपको सिखा रहे हैं। इसलिए सभी धर्मों के लोग बच्चों को पकड़ लेते हैं पहले ही।
सभी धर्म उत्सुक होते हैं कि बच्चों को धर्म की शिक्षा दी जानी चाहिए। एक बार बच्चा धर्म की शिक्षा से बच गया, तो फिर बहुत मुश्किल हो जाएगा। सात साल के पहले ही, जब कि बोध सजग नहीं होता, बच्चे की खोपड़ी में सब भर देना चाहिए। फिर वह जिंदगीभर उसकी जुगाली करता रहेगा।
हिंदू अगर आप हैं, तो हिंदू-मंदिर के सामने हाथ उठ जाएंगे। यह यांत्रिक है। यह कंप्यूटर का काम है। यह आपको सिखाया गया है कि भगवान यहां रहता है। मस्जिद के सामने से आप अकड़कर निकल जाएंगे। मस्जिद का ख्याल ही नहीं आएगा कि वहां भी भगवान रहता है। वहां किसी और को ख्याल आता है, जिसके कंप्यूटर में वह बात डाली गई है कि इस्लाम ही असली धर्म है।
हमें सिखाया जा रहा है। जो हमें सिखाया जाता है, वही हम सोचते रहते हैं। और परमात्मा सिखाया नहीं जा सकता। उसके सिखाने का कोई उपाय ही नहीं। इसलिए परमात्मा सोचा भी नहीं जा सकता। लेकिन आप कहेंगे कि हम परमात्मा के संबंध में सोचते हैं। नहीं, आप हिंदू परमात्मा के संबंध में सोचते हैं। मुसलमान परमात्मा के संबंध में सोचते हैं, ईसाई परमात्मा के संबंध में सोचते हैं--परमात्मा के संबंध में नहीं। और ईसाई परमात्मा, मुसलमान-हिंदू परमात्मा, परमात्मा हैं ही नहीं। वे केवल शब्द हैं जो आपके मन में डाल दिए गए हैं।
परमात्मा तो निशब्द है। वह अस्तित्व है। उसे कोई आपको सिखा नहीं सकता। परमात्मा का कोई शिक्षण नहीं हो सकता, इसलिए कोई विद्यालय नहीं हो सकता जहां हम बच्चों को परमात्मा के लिए प्रशिक्षित कर दें। काश इतना आसान होता, तो सारी दुनिया परमात्मा से भर जाती! विज्ञान सिखाया जा सकता है, धर्म सिखाया नहीं जा सकता। यही अड़चन है। इसलिए हम वैज्ञानिक पैदा कर सकते हैं। केमिस्ट्री, फिजिक्स, गणित सिखाए जा सकते हैं। प्रार्थना सिखाई नहीं जा सकती। मगर हम सिखाते हैं प्रार्थना भी। इसलिए सब प्रार्थनाएं झूठी हो जाती हैं।
प्रेम सिखाया नहीं जा सकता। आप कोई विद्यालय खोल दें और लोगों को प्रेम करना सिखा दें। अगर आपने सिखा दिया, तो एक बात पक्की है कि जो भी उस विद्यालय से निकलेंगे, कभी प्रेम न कर पाएंगे। क्योंकि प्रेम इतनी हार्दिक बात है, और सीखना मस्तिष्क में घटता है।

इसलिए अक्सर यह होता है कि अभिनेता, जो प्रेम का ही धंधा करते हैं, कभी प्रेम नहीं कर पाते। अभिनेताओं का खुद का प्रेम-जीवन अत्यंत दुखद है। मैं जानता हूं उनको बहुत निकट से। जब भी अभिनेता मेरे पास आते हैं, तो उनकी तकलीफ प्रेम की है। और सारी दुनिया उनसे प्रेम करना सीख रही है!
वे अभिनय में कुशल हो गए हैं। वे जानते हैं, क्या-क्या करना चाहिए। और वही-वही वे अपनी प्रेयसियों के साथ या अपने प्रेमियों के साथ भी करते हैं, लेकिन वह अभिनय ही होता है, भीतर कोई हृदय नहीं होता। वे कुशल हैं। क्या कहना है, क्या बोलना है, कैसे उठना-बैठना है, कैसे किसी को हृदय से लगाना है, वे सब जानते हैं। जहां तक प्रक्रिया का टेक्निकल अंग है, वे सब जानते हैं। लेकिन प्रेम कोई टेक्नीक नहीं है। प्रेम तो बिल्कुल नान-टेक्निकल है। वह तो हृदय का आविर्भाव है।
टालस्टाय ने एक छोटी-सी कहानी लिखी है। टालस्टाय ने लिखा है कि एक झील
के किनारे तीन फकीर थे। तीनों बेपढ़े-लिखे थे। लेकिन उनकी बड़ी ख्याति हो गई, और दूर-दूर से लोग उनके दर्शन करने को आने लगे। तो रूस का जो सबसे बड़ा पुरोहित था, उसके कानों में भी खबर पहुंची कि तीन पवित्र पुरुष झील के उस पार हैं। पर उसने कहा कि मुझे उनका पता ही नहीं! और उन्होंने कभी चर्च में दीक्षा भी नहीं ली, वे पवित्र हो कैसे सकते हैं! और हजारों लोग वहां जा रहे हैं और दर्शन करके कृतार्थ हो रहे हैं! तो वह भी देखने गया कि मामला क्या है?
नाव पर सवार हुआ, झील के उस पर पहुंचा। वे तीनों तो बिल्कुल बेपढ़े- लिखे गंवार थे। वे अपने झाड़ के नीचे बैठे थे। जब महापुरोहित उनके सामने गया तो उन तीनों ने झुककर उसको प्रणाम किया। महापुरोहित तभी आश्वस्त हो गया कि कोई डर की बात नहीं है। जब तीनों चरण छू रहे हैं, इनसे कोई ईसाई-धर्म को खतरा नहीं है। उस महापुरोहित ने कहा कि तुम क्या करते हो? क्या है तुम्हारी साधना? तुम्हारी पद्धति क्या है? उन्होंने कहा, पद्धति? वे एक-दूसरे की तरफ देखने लगे।
पुरोहित ने कहा, बोलो, तुम करते क्या हो? तुमने साधा क्या है? उन्होंने कहा कि हम ज्यादा तो कुछ भी जानते नहीं। पढ़े-लिखे हम हैं नहीं। किसी ने हमें सिखाया नहीं। हमारी तो एक छोटी-सी प्रार्थना है, वही हम करते हैं। पर वे बड़े संकोच में भर गए कि इतने बड़े पुरोहित को कैसे... ! उन्होंने कहा, फिर प्रार्थना भी हमारी खुद की ही गढ़ी हुई है, क्योंकि हमने किसी से सीखा नहीं और किसी ने हमें कभी बताया नहीं।
क्या है तुम्हारी प्रार्थना? पुरोहित तो अकड़ता चला गया। उसने कहा कि बिल्कुल ही गंवार हैं! क्या है तुम्हारी प्रार्थना? उन्होंने कहा कि अब आपसे हम कैसे कहें, बड़ी छोटी-सी है। हमने सुन रखा है कि परमात्मा तीन हैं, ट्रिनिटि, त्रिमूर्ति।
ईसाई मानते हैं, तीन हैं परमात्मा--परम पिता, उसका बेटा जीसस और दोनों
के बीच में एक पवित्र आत्मा, होली घोस्ट--इन तीन के जोड़ से परमात्मा बना है, ट्रिनिटि। जैसा हम त्रिमूर्ति मानते हैं--शंकर, विष्णु, ब्रह्मा।
तो उन्होंने कहा कि हमने एक प्रार्थना बना ली सोच-सोचकर तीनों ने।
हमारी प्रार्थना यह है कि यू आर थ्री, वी आर आल्सो थ्री, हैव मर्सी ऑन अस। तुम भी तीन हो, हम भी तीन हैं, हम पर कृपा करो।
उस पुरोहित ने कहा कि बंद करो यह। यह कोई प्रार्थना है! प्रार्थना तो ऑथराइज्ड होती है। चर्च के द्वारा उसके लिए स्वीकृति और प्रमाण होना चाहिए। तो मैं तुम्हें प्रार्थना बताता हूं। इसको याद करो और आज से यह प्रार्थना शुरू करो। उन्होंने कहा, आपकी कृपा, बता दें। महापुरोहित ने, लंबी प्रार्थना थी चर्च की, वह बताई।
उन लोगों ने कहा कि क्षमा करें, हम बिल्कुल गंवार हैं, इतनी लंबी याद न रहेगी। आप थोड़ा संक्षिप्त कर दें, कुछ थोड़ा सरल! पुरोहित ने कहा कि न तो यह सरल हो सकती है और न संक्षिप्त। यह प्रमाणित प्रार्थना है। और जो इसको नहीं करेगा, उसके लिए स्वर्ग के द्वार बंद हैं। तो उन्होंने कहा कि एक दफा आप फिर से दोहरा दें, ताकि हम याद कर लें। दुबारा कही। फिर भी उन्होंने कहा, एक बार और सिर्फ दोहरा दें। और तीनों ने दोहराने की भी कोशिश की और

उन्होंने धन्यवाद दिया पुरोहित को, फिर चरण छुए। पुरोहित प्रसन्न नाव पर वापस लौटा।
आधी झील में आया था कि देखा कि पीछे से एक बवंडर चला आ रहा है पानी पर।
वह तो घबड़ाया कि यह क्या चला आ रहा है? थोड़ी देर में साफ हुआ कि वे तीनों पानी पर दौड़ते चले आ रहे हैं! पुरोहित के तो प्राण निकल गए। वे पानी पर चल रहे हैं! और तीनों आकर पास, पकड़कर बोले कि एक बार और दोहरा दें। वह हम भूल गए। हम गरीब बेपढ़े-लिखे लोग। उस पुरोहित ने कहा कि क्षमा करो। तुम्हारी प्रार्थना काम कर रही है। तुम अपनी वही जारी रखो कि वी आर थ्री, यू आर थ्री, हैव मर्सी ऑन अस।
प्रेम एक हार्दिक घटना है। न तो उसकी कोई प्रामाणिक व्यवस्था है; न कोई विधि है, न कोई तंत्र है, न कोई मंत्र है। प्रेम एक हार्दिक भाव है। प्रार्थना एक हार्दिक भाव है। उसे सिखाने का कोई भी उपाय नहीं है। और पृथ्वी पर चूंकि सभी धर्म सिखाने की कोशिश कर रहे हैं, इसलिए लोग अधार्मिक हो गए हैं। सिखाने से कभी भी कोई आदमी धार्मिक नहीं हो सकता।
इसलिए यह सूत्र कहता हैः न मन से, न नेत्रों से उसे प्राप्त किया जा सकता है।
इंद्रियों की क्षमता नहीं अदृश्य को देखने की। वे दृश्य को देखने के लिए बनाई गई हैं। और परमात्मा अदृश्य है। मन की क्षमता नहीं अज्ञात को समझने की; ज्ञात उसकी सीमा है। और परमात्मा अज्ञात है। और वाणी की क्षमता नहीं उसको प्रगट करने की, जो मौन में उपलब्ध होता है। वाणी उसे ही प्रगट कर सकती है, जो वाणी से निष्पन्न है। और परमात्मा मौन में उपलब्ध होता है। दूसरा हिस्सा इस सूत्र का बड़ा अदभुत है।
वह है, ऐसा कहने वालों से अन्यत्र भिन्न पुरुषों को वह किस प्रकार उपलब्ध हो सकता है!
जो सरलता से कहता है, वह है। कहता ही नहीं, जो अनुभव करता है कि वह है। बिना किसी कारण के, बिना किसी तर्क के, बिना इंद्रियों की गवाही के, बिना मन के मनन के, और बिना वाणी से लिए गए उपदेशों के जिसका हृदय कहता है--वह है, बस ऐसे पुरुषों के अतिरिक्त वह और किसको उपलब्ध हो सकता है!
पर ऐसी अवस्था कैसे आएगी? यह तो बहुत जटिल बात हो गई। अगर हो तो ठीक,
और न हो तो? अगर ऐसा लगे तो ठीक कि वह है। लेकिन ऐसा न लगे, तो फिर करने को क्या बचता है?
विधायक रूप से करने को कुछ भी नहीं बचता। सिर्फ निषेधात्मक रूप से करने को कुछ बचता है। अगर आपको लगता है, वह है, ऐसी श्रद्धा जन्मती है, ऐसे उसके अस्तित्व की प्रतीति आपको होती है, ऐसी आपके हृदय में स्फुरणा होती है कि वह है, तब तो ठीक, तब तो मार्ग बहुत सुगम है।
अगर नहीं होती... और कभी लाख में एकाध को ऐसी सहज प्रतीति होती है। अधिकांश को तो प्रतीति नहीं होती कि वह है, इसीलिए तो वे तर्क खोजते हैं, प्रमाण खोजते हैं कि कोई सिद्ध कर दे, कोई बता दे, कोई इशारा कर दे, कोई दर्शन करवा दे; कोई गुरु मिल जाए, कोई मार्गदर्शक हो--जो दिखा दे।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हमें परमात्मा को दिखा दें! जैसे
कि परमात्मा कोई चीज है, उनको मैं बता दूं कि यह रही; कि उनके हाथ में दे दूं कि लो सम्हालो और देख लो। वे कहते हैं, हमें तो जब तक दिखा न देंगे, तब तक हम मानेंगे नहीं! बड़ी मुसीबत है। वे कहते हैं, जब तक दिखा न देंगे, तब तक हम मानेंगे नहीं। और सब शास्त्र कहते हैं कि जब तक मानेंगे नहीं, तब तक देख न पाएंगे। और मानना भी सिर्फ बुद्धि से नहीं। क्योंकि बुद्धि के मानने से कोई नहीं देख पाता। बड़े पंडित हैं जगत में, जो बुद्धि से मानते हैं, उनको भी कुछ दिखाई नहीं पड़ा। हृदय से जो मानेगा... !
तो क्या करें? क्योंकि जो मान सकता है, वह मान सकता है। उसको हम छोड़ दें। उसको हिसाब में लेने की कोई जरूरत नहीं। वह अपवाद है। अधिक लोग तो नहीं मान सकते हैं, इनके लिए क्या किया जाए? क्या इनको तर्क दिए जाएं, जिनसे सिद्ध हो जाए कि वह है! जितने तर्क आज तक दिए गए हैं, सब फिजूल हैं। क्योंकि किसी तर्क से कुछ सिद्ध नहीं होता। और नास्तिक सभी तर्कों का खंडन कर देंगे। अगर तर्क में ही लड़ना हो, तो नास्तिक हमेशा जीतेगा, आस्तिक हमेशा हारेगा।

जीवन में आस्तिक जीत जाता है, लेकिन तर्क में सदा नास्तिक जीतता है।
आज तक कोई भी आस्तिक नास्तिक से जीत नहीं सका है। यह सुनकर आपको हैरानी होगी। आस्तिक कभी ऐसा कहते नहीं, लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि कोई आस्तिक कभी नास्तिक से तर्क में जीता नहीं है। जीत ही नहीं सकता। क्योंकि जो उसका आधार है, वह अतर्क्य है। वह जीतेगा कैसे? नास्तिक सिद्ध कर सकता है कि नहीं है। क्योंकि आपके सब तर्क तोड़े जा सकते हैं।
आस्तिक ने जितने तर्क दिए हैं सारी जमीन पर, वे बंधे-बंधाए हैं, पिटे- पिटाए हैं; उनमें कुछ नया नहीं है। या तो तर्क यह है कि जगत का कोई बनाने वाला होना चाहिए। लेकिन नास्तिक पूछता है कि अगर हर चीज को बनाने वाले की जरूरत है, तो परमात्मा को बनाने वाला कौन? मुसीबत खड़ी हो जाती है। फिर परमात्मा पर भी और कोई परमात्मा। फिर उसके पीछे कोई और परमात्मा। इनफिनिट रिग्रेस--फिर अंतहीन खड्ड हो जाता है। उसमें कोई हल नहीं है।
कहीं भी जाओ, नास्तिक पूछेगा, फिर इसको किसने बनाया? और अगर आप कहो कि नहीं, जगत को बनाने वाले की जरूरत है और परमात्मा को बनाने वाले की कोई जरूरत नहीं। तो नास्तिक कहता है, जब बिना बनाए परमात्मा हो सकता है, तो जगत बिना बनाए क्यों नहीं हो सकता? सीधी बात है, साफ बात है। जब आप मानते ही हो कि कोई चीज बिना बनाई हो सकती है, तो फिर कोई कठिनाई नहीं रही; जगत बिना बनाया हुआ है। तो आस्तिक बेईमान मालूम पड़ता है कि जगत के लिए वह यह नियम नहीं छोड़ता--बिना बनाया, और परमात्मा के लिए यही नियम छोड़ता है।
फिर नास्तिक कहता है कि जगत दिखाई पड़ता है। अगर नियम ही बनाना है तो यही नियम ठीक है कि जगत बिना बनाया, अनक्रिएटेड है। परमात्मा तो तुम्हारा दिखाई नहीं पड़ता। इसको व्यर्थ बीच में लाने की क्या जरूरत है? और आखिर में तुम्हें भी स्वीकार करना पड़ता है कि परमात्मा बिना बनाया हुआ है, तो बिना बनाई हुई घटना घट सकती है, तो जगत बिना बनाए क्यों नहीं घट सकता?
आस्तिक के पास कोई उत्तर नहीं है। सच तो यह है कि आस्तिक तर्क देता ही नहीं। ये पंडित हैं, जो तर्क देते रहते हैं कि है। और पंडित नास्तिकों से हारते रहते हैं। नास्तिक से कोई आस्तिक पंडित जीत नहीं सकता। नास्तिक जिस भूमि पर चल रहा है, वहां तर्क सार्थक है। आस्तिक जिस भूमि पर चल रहा है, वहां तर्क का कोई संयोग ही नहीं, संबंध ही नहीं है। आप दूसरे की भूमि पर लड़ने जाएंगे--हारेंगे। लेकिन जीवन में आस्तिक जीतता है, नास्तिक हारता है।
एक भी नास्तिक बुद्ध के जीवन को नहीं पा सका। एक भी नास्तिक महावीर की गरिमा नहीं पा सका। एक भी नास्तिक जीसस की करुणा नहीं पा सका। एक भी नास्तिक कृष्ण जैसा नृत्य से भरा हुआ नहीं देखा गया है। नास्तिक जीवन में तो बुरी तरह हारता है। लेकिन बुद्धि में नास्तिक की बड़ी गति है। वहां उससे जीतने का कोई उपाय नहीं है।
अब सवाल यह है कि तर्क में जीतकर भी होगा क्या? मेरे पास लोग आते हैं।
तो मैं उनसे कहता हूं कि मुझे कोई अड़चन नहीं है, तुम नास्तिक रहो, लेकिन तुम नास्तिकता से पा क्या रहे हो? वही मैं जानना चाहता हूं। अगर तुम्हें कोई महाशांति, कोई महान आनंद, कोई अपूर्व घटना घट रही है, तो तुम्हारी नास्तिकता बढ़े, ऐसी मैं प्रभु से प्रार्थना करूं; तुम ठीक रास्ते पर हो। तुम बिल्कुल बढ़े चले जाओ।
पर वे कहते हैं कि कहीं कोई आनंद भी नहीं बढ़ रहा है, कोई शांति भी नहीं
बढ़ रही है, जीवन दुख से भरा है। लेकिन ईश्वर नहीं है। उनको मैं कहता हूं, तुम फिर से सोचो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ईश्वर को अस्वीकार करने के कारण ही जीवन दुख से भरा है? क्योंकि जिन्होंने उसे स्वीकार किया है, उनका जीवन आनंद से भर गया है।
तो अब यह तुम सोच लो कि तुम्हें तर्क की निष्पत्तियां ज्यादा प्रिय हैं, या जीवन का आनंद ज्यादा प्रिय है? तुम्हें जीवन में एक अहोभाव चाहिए, या सिर्फ एक गणित का हिसाब चाहिए? अगर तुम गणित के हिसाब से तृप्त हो, तो ठीक है, ईश्वर नहीं है। और अगर तुम जीवन के हिसाब से अतृप्त हो, तो तुम्हें ईश्वर को खोजना ही पड़ेगा। तुम्हें अपने को किसी भांति बदलना ही पड़ेगा कि तुम उसके अस्तित्व को एहसास कर सको।

क्या रास्ता है फिर? जो लोग सहज उसके अनुभव को उपलब्ध नहीं होते, उनके लिए क्या मार्ग है?
उनके लिए पहली तो यह बात समझ लेने जैसी है कि ध्यान बुद्धि और तर्क पर
न दें, ध्यान जीवन पर दें। इस बात की फिक्र करें कि मेरे जीवन की उपलब्धि क्या है?
एक आदमी प्यासा नदी के किनारे खड़ा हो और हम उसे कहें कि तू पानी पी ले, नदी बह रही है, तेरी प्यास मिट जाएगी। वह कहे कि कैसे प्यास पानी से मिट सकती है, इसका तर्क चाहिए। क्यों प्यास पानी से मिटेगी? इसका क्या प्रमाण है? पानी बना है हाइड्रोजन और आक्सीजन से। न तो हाइड्रोजन पीने से प्यास मिटती है, न आक्सीजन पीने से प्यास मिटती है। तो जब दोनों में ही प्यास मिटाने का कोई गुण नहीं है, तो दोनों के जोड़ से प्यास कैसे मिट सकती है? वह तर्क में आपको हरा देगा। वह कहेगा, पानी का विश्लेषण करो। इसमें प्यास मिटाने वाली कौन-सी चीज है? न तो हाइड्रोजन से प्यास मिटती है, न आक्सीजन से प्यास मिटती है। दोनों से मिलकर पानी बना है। और जब दोनों से नहीं मिटती, तो दोनों के जोड़ से कैसे मिट सकती है? प्यास को मिटाने वाला गुण कहां से आ सकता है? तुम गलती में हो। तुम कुछ भ्रांति में पड़ गए हो। लेकिन वह आदमी नदी के किनारे खड़ा हुआ प्यासा मरेगा। तर्क तो वह ठीक दे रहा है। और अगर लोगों ने तर्क करके ही पानी पीया होता, तो सारे लोग कभी के मर गए होते। लेकिन लोग तर्क करते नहीं, पानी पीते हैं और प्यास बुझा लेते हैं। क्योंकि लोग कहते हैं, तर्क से हमें प्रयोजन नहीं; प्रयोजन प्यास के बुझने से है। प्यास कैसे बुझती है, यह भी व्यर्थ है। प्यास को बुझाने वाला पानी में कौन-सा तत्व है, यह भी सार्थक नहीं है। हम इतना ही जानते हैं कि पानी पीते हैं और प्यास बुझती है।
आप अपने जीवन की फिक्र करें कि आपका जीवन दुख, संताप, गहन पीड़ा से भरा है। वह जो परमात्मा के जीवन में जीने वाला व्यक्ति है, वह दुख, पीड़ा और संताप से मुक्त हो गया। उसके जीवन में एक नृत्य, एक संगीत, एक सुगंध है। वही सुगंध, वही संगीत अगर आपके लिए आकर्षण बन जाए, खिंचाव बन जाए, तो आपके जीवन से नास्तिकता गिरेगी। और उसके होने के भाव का उदय होगा।
नास्तिक को मैं मानता हूं कि वह आत्मघाती है। आत्मघाती इसलिए कि वह
उस सबसे अपने को वंचित कर रहा है, जिसके बिना जीवन का फूल पूरा खिल ही नहीं सकता। और मनुष्य-जाति का इतिहास इसका प्रमाण है। बड़े से बड़ा नास्तिक भी छोटे से छोटे आस्तिक के मुकाबले भी जीवन का फूल नहीं खिला पाया। बड़े से बड़ा नास्तिक छोटे से छोटे आस्तिक से भी जीवन में हार जाता है।
बर्ट्रेंड रसेल जैसा बड़े से बड़ा विचारशील नास्तिक भी रामकृष्ण परमहंस के मुकाबले क्या है? तर्क में रामकृष्ण परमहंस रसेल से जीत नहीं सकते; बुरी तरह हारेंगे। रसेल के सामने चारों खाने चित्त रामकृष्ण पड़ेंगे। कोई तर्क रसेल को राजी नहीं कर सकता। और रामकृष्ण जो भी कहेंगे, रसेल सभी कुछ खंडित कर सकता है। लेकिन यह बात ही मूल्यवान नहीं है। रसेल और रामकृष्ण आमने-सामने खड़े होंगे, तो रसेल का जीवन फीका है। उसमें कोई रस, स्निग्ध-धार नहीं है। एक गहन उदासी है। रामकृष्ण के जीवन में एक आभा है, एक पुलक है, एक ऊर्जा है, जो किसी महास्रोत से आती हुई मालूम पड़ती है।
हम अगर बुद्धि का ही विचार कर रहे हैं, तो नास्तिकता सार्थक मालूम पड़ेगी। अगर हम जीवन का चिंतन कर रहे हैं, तो बहुत जल्दी हम प्रभु है, परमात्मा है, ऐसे आभास को उपलब्ध हो जाएंगे। जीवन पर ध्यान रखें।
एक युवती ने संन्यास लेना चाहा, अभी दो दिन पहले। वह बड़ी डांवाडोल है
कि संन्यास लूं, या न लूं? सभी का मन डांवाडोल होता है। कोई भी नया कदम उठाते वक्त चिंता पकड़ती है। मैंने उस युवती को कहा कि तू एक बात समझ। बिना संन्यास के तो तू पच्चीस साल रह चुकी है। नहीं लेती है संन्यास, तो जैसी तू थी वैसी ही तू होगी। पच्चीस साल का अनुभव है तुझे गैर-संन्यास का। संन्यास का तुझे कोई अनुभव नहीं है। संन्यास का द्वार नया है। वहां कुछ हो सकता है, कोई संभावना। ज्यादा से ज्यादा इतना ही होगा कि कुछ न होगा। तो कुछ अभी भी नहीं हो रहा है। ज्यादा से ज्यादा इतना ही होगा कि कुछ न होगा। बुरा से बुरा जो हम सोच सकते हैं, वह इतना ही होगा कि कुछ न होगा। तो कुछ हुआ नहीं

है, पच्चीस साल हो गए। कुछ खोने का डर नहीं है। लेकिन कुछ संभावना खुलती है। कुछ होने की आशा बंधती है। कुछ नया कदम लिया जा रहा है।
पुराने रास्ते को बदलने में, जिस पर कुछ भी न हुआ हो, क्षणभर भी संकोच करना निपट अज्ञान है। कुछ हुआ हो, तब तो नए को चुनने का कोई सवाल नहीं है, तो उस पर बढ़ते जाना चाहिए। कुछ न हुआ हो, तो नए को चुनने की हिम्मत रखनी चाहिए।
बंधी-बंधाई लीक पर चलते जाते हैं, बिना यह सोचे हुए कि इस पर कुछ भी नहीं हुआ। पच्चीस साल से, पच्चीस जन्मों से इस पर चल रहे हैं, कुछ भी नहीं हुआ। आप बुद्धि के सहारे कितने जन्मों से चल रहे हैं? यह जिंदगी भी आपने तर्क और बुद्धि के सहारे गंवाई है।
थोड़ा-सा रास्ते से उतरकर उस घने जंगल में भी उतरना चाहिए, जो बुद्धि
का नहीं है। बुद्धि के रास्ते ठीक पटे-पटाए हैं। ठीक साफ-सुथरे हैं। सिमेंट ने उनको पत्थर की तरह बना दिया है। उन पर मील के पत्थर लगे हैं। आप कहां हैं, पक्का पता चलता है। कहां जा रहे हैं, पक्का पता चलता है। कहां से आ रहे हैं, पक्का पता चलता है।
लेकिन रास्तों के किनारे घने जंगल भी हैं जीवन के, जहां छिपे झरने हैं
और जहां सुगंधित फूल हैं और जहां पक्षियों के गीत हैं। वे रास्ते साफ नहीं हैं। वहां भय भी है। वहां खतरा भी है। रास्ते की सुरक्षा भी नहीं है। रास्ते की भीड़ भी नहीं है, जो सदा साथ थी। वहां अकेलापन है। लेकिन वहां जीवन की गहनता के खुलने की संभावना भी है। वहां भटकने का डर है, लेकिन वहां पहुंचने का उपाय भी है।
क्योंकि इस बंधे हुए रास्ते से कोई कहीं नहीं पहुंचता। रास्ता तो साफ-सुथरा है, चलना भी सुविधापूर्ण है; भीड़ सदा साथ में होती है, भय भी नहीं लगता, अकेलापन भी कभी नहीं आता। लेकिन यह रास्ता कहीं ले जाता नहीं। यह रास्ता कहीं पहुंचाता नहीं। बस यह रास्ता साफ-सुथरा है; गोल-गोल घूमकर वापस अपनी जगह आ जाता है। यह वर्तुलाकार है। इससे कोई निष्पत्ति जीवन में फलित नहीं होती।
जिस व्यक्ति को ऐसा जीवन का बोध आने लगे, वह बहुत शीघ्र उस जगह पहुंच जाएगा जहां वह बिना तर्क और बिना प्रमाण और बिना कारण के कहेगा--परमात्मा है।
वह है, ऐसा कहने वालों से अन्यत्र भिन्न पुरुषों को किस प्रकार वह उपलब्ध हो सकता है!
अतः उस परमात्मा को पहले तो है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक ग्रहण करना चाहिए अर्थात पहले उसके अस्तित्व का दृढ़ निश्चय हो जाना चाहिए। तदनंतर तत्वभाव से उसे प्राप्त करना चाहिए।
पहले तो यह प्रतीति हार्दिक हो जाए कि वह है। और उसके होने की सुगंध हमारे जीवन को बदलने लगे। वह हमें खींचने लगे। वह हमारा प्रेम बन जाए। फिर, फिर कुछ हो सकता है। फिर रूपांतरण हो सकता है। फिर हम अपने पूरे जीवन को दांव पर लगा सकते हैं। फिर वह हल्की-सी झलक! फिर हम जुआ खेल सकते हैं। फिर हम चुनौती स्वीकार कर सकते हैं। फिर हम पूरे जीवन को उसमें ढालने, उसके साथ एकरूप करने, उसमें पिघला देने के लिए राजी हो सकते हैं। पर वह पहला है का भाव, उसके अस्तित्व की पहली झलक केवल उन्हें ही मिल सकती है जो बुद्धि को नहीं, जो जीवन को उसकी पूर्णता में सोचने के लिए तैयार हों, जीवन को उसकी समग्रता में विचारने के लिए तैयार हों। और जो जीवन को देखें--दुख या आनंद?
दुख या आनंद को आप कसौटी समझ लें--निकष। इस पर कसते रहें। अगर आपके जीवन में दुख है, तो जो भी आप सोचते हैं, वह गलत है। वह तर्क के लिहाज से सही है या गलत, यह सवाल नहीं है। अगर जीवन में दुख है, तो आप जो भी सोचते हैं, आपके सोचने का ढांचा गलत है। आपका आयाम गलत है। और अगर आपके जीवन में आनंद है, तो मैं आपसे कहता हूं कि आप जो भी सोचते हैं वह सही है--बिना पूछे कि आप क्या सोचते हैं। क्योंकि ठीक सोचने का फल आनंद है। गलत सोचने का फल दुख है।
सार्त्र जैसे पश्चिम के विचारक हैं, जो कहते हैं, दुख ही जीवन है। बुद्ध ने भी कहा है कि जीवन दुख है। लेकिन बुद्ध ने इसलिए कहा है कि जीवन

दुख है--तुम्हारा जीवन, जैसा जीवन जीया जाता है वैसा जीवन। और कहा है कि जीवन दुख है, ताकि तुम जाग सको और वहां पहुंच सको, जहां जीवन दुख नहीं रह जाता है। लेकिन सार्त्र का वचन बिल्कुल बुद्ध जैसा है कि जीवन दुख है, लेकिन प्रयोजन बिल्कुल भिन्न है।
सार्त्र कहता है, जीवन दुख ही है। अतिक्रमण का कोई उपाय ही नहीं; इसके पार जाने का कोई उपाय ही नहीं। यही जीवन की समग्रता है, पूर्णता है। इसके पार कुछ भी नहीं है। दुख ही अस्तित्व है, लेकिन सार्त्र क्यों दुख अस्तित्व है, इस बात पर इतने जोर से जकड़ जाता है? खुद का जीवन ही आखिरी प्रमाण होता है। हम दूसरे के जीवन में तो प्रवेश भी नहीं कर सकते, अपने ही जीवन में प्रवेश करते हैं। अगर मेरा जीवन दुख है, तो मैं इसी को फैलाकर सारे जीवन का सत्य बना देता हूं, कि जीवन दुख है।
सब सत्य व्यक्तिगत होते हैं। फिर हम फैलाकर उनको सार्वभौम बना देते हैं। मेरा जीवन दुख है, तो सारे जगत को मैं दुख मान लेता हूं। दुखी आदमी को सब तरफ दुख दिखाई देता है। आकाश में चांद भी निकले तो उदास मालूम पड़ता है। सब तरफ उपद्रव, सब तरफ चिंता, पीड़ा पकड़ती है। भीतर दुख है।
लेकिन सार्त्र यह कभी भी नहीं सोचता कि यह मेरे होने का गलत ढंग भी हो सकता है कि जीवन दुख है। क्योंकि हमने कृष्ण का जीवन भी देखा है, जो दुख नहीं है। हमने बुद्ध का जीवन भी देखा है, जो दुख नहीं है। हमने लाओत्से का भी जीवन देखा है, जो दूर की भी भनक जिसमें दुख की नहीं है, जो कि परम आनंद है। हमारे ही बीच ऐसे लोग रहे हैं, हैं, जो परम आनंद में हैं। लेकिन सार्त्र कहेगा कि वे भ्रांति में हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि सार्त्र यह मानने को राजी नहीं है कि मेरा दुख मेरी भ्रांति हो सकती है, लेकिन कृष्ण का आनंद भ्रांति है।
मैं आपसे कहता हूं कि दुख सत्य भी हो, तो भी भ्रांत आनंद से बदल लेने जैसा है। सत्य दुख को भी रखकर क्या करिएगा? आनंद भ्रांत भी हो, तो भी चुनने जैसा है। और जो भी एक बार चुन लेता है, उसे पता चलना शुरू हो जाता है कि भ्रांत दुख था, आनंद भ्रांत नहीं है। लेकिन अनुभव से ही पता चलता है। अनुभव के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।
पहली प्रतीति--परमात्मा है। फिर दूसरा चरण--तत्व-रूप से उसकी उपलब्धि।
इन दोनों प्रकारों में से, वह है, इस प्रकार निश्चयपूर्वक परमात्मा
की सत्ता को स्वीकार करने वाले साधक के लिए परमात्मा का तात्विक स्वरूप अपने आप शुद्ध हृदय में प्रत्यक्ष हो जाता है।
पहली घटना घट जाए, तो दूसरी घटना धीरे-धीरे अपने आप घट जाती है। मगर बीज ही न हो तो वृक्ष कहां से आए? बिना बीज बोए लोग बैठे हैं, रास्ता देख रहे हैं कि अंकुरित हो, वृक्ष बने, फूल आएं, फल लगें! वे नहीं लगते, तो वे चिल्लाकर कहते हैं कि कोई वृक्ष है ही नहीं। लेकिन बीज उन्होंने कभी बोया नहीं। बीज बिना बोए प्रतीक्षा चल रही है!
नास्तिक वैसा ही व्यक्ति है, जो बिना बीज बोए जीवन के अस्तित्व का दर्शन करना चाहता है। आस्तिक इस अर्थ में ज्यादा वैज्ञानिक है। वह पहले बीज बोता है, फिर प्रतीक्षा करता है। साज-सम्हाल भी करता है। प्रतीक्षा उसकी एक दिन फलवती होती है। समय लगेगा। बीज टूटेगा, अंकुरित होगा, बड़ा होगा। लेकिन बीज जिसने बोया है, वह रास्ता देख सकता है--कितनी ही देर लगे। अगर बीज सच में ही बोया गया है, तो वृक्ष के होने की संभावना और आशा बांधी जा सकती है।
बीज है--ईश्वर है, ऐसा भाव। यह भाव आप बो दें, इसकी साज-सम्हाल करें। क्योंकि इस पर बहुत उपद्रव हैं चारों तरफ से। बीज के ऊपर कोई पत्थर रख जाएगा, तो ऊगना मुश्किल हो जाएगा। बीज पर कोई पानी नहीं डालने देगा, तो ऊगना मुश्किल हो जाएगा। बीज ऊग भी जाए, तो चारों तरफ जानवर मौजूद हैं, जो चर जा सकते हैं। तो बागुड़ लगानी पड़ेगी।
और जैसे बीज की साज-सम्हाल करनी पड़ती है, वैसी ही साज-सम्हाल इस भाव की करनी पड़ती है। चारों तरफ बहुत उपद्रव हैं। कोई भी मिल जाएगा जो कहेगा, क्या कर रहे हो? कोई ईश्वर वगैरह नहीं है! पता तो आपको भी नहीं है। भाव अभी

बहुत नन्हा है, बहुत छोटा है। उसे कोई भी तोड़ सकता है। जरा ही जोर से कोई बोल दे, तो आपको लगता है कि इतनी जोर से बोल रहा है, जरूर सही बोल रहा होगा। मैं जिस विश्वविद्यालय में पढ़ता था, उसके संस्थापक थे एक बहुत बड़े वकील, विश्वविख्यात वकील डा. हरिसिंह गौर। वे अपने विद्यार्थियों को कहा करते थे कि सदा कानून की किताबें लेकर अदालत में पहुंचो। उनको देखकर ही मजिस्ट्रेट थोड़ा भयभीत हो जाता है। दूसरा वकील भी थोड़ा डरता है। तुम्हारी हिम्मत भी, शास्त्र साथ में है, इससे बढ़ जाती है। और अगर तुम्हारा मुवक्किल कानून के अनुसार हो, तो जितना ज्यादा कानून की बातें तुम निकालकर किताबों में से प्रगट कर सको, उतनी करने की कोशिश करो। बजाय मुवक्किल को सही साबित करने के, उसमें ज्यादा चिंता लगाने के, तुम शास्त्र के उद्धरण ज्यादा दो।
उनके विद्यार्थी कभी उनसे पूछते, और कभी ऐसा होगा कि हम जिस आदमी के पक्ष में हैं, वह गलत ही है। तो वे कहते कि तब तुम इतनी जोर से बोलो और इतनी जोर से टेबल पीटो, जितनी तुम्हारी ताकत हो। क्योंकि तुम्हारा जोश-खरोश और तुम्हारा टेबल का पीटना बताता है कि तुम जरूर सही होओगे। गलत आदमी डरकर बोलता है, भयभीत होता है; पहले से ही उसकी वाणी कंपती है।
आप ध्यान रखना। जिंदगी में ऐसे बहुत से लोग हैं जो टेबल पीटकर बोलते हैं। वे इतने जोर से बोलते हैं कि आप सदमे में आ जाते हैं। आपको लगता है कि बात सही ही होगी, तभी इतनी जोर से बोल रहा है। और आपका अंकुर बहुत छोटा है। शायद अभी आपने बीज रखा ही था जमीन में कि कोई आदमी कह देता है कि कोई परमात्मा नहीं है। तो आप उखाड़कर बीज देखते हैं कि है भी बीज, कि मैं किसी भ्रांति में पड़ा हूं! लेकिन जो बीज को उखाड़-उखाड़कर बार-बार देखता है, वह उसके अंकुरण होने की क्षमता को गंवा देता है। फिर वह बीज जड़ हो जाएगा। चारों तरफ लोग हैं। आप, वे क्या कहते हैं, यह मत देखना। आप यह देखना कि
वे क्या हैं। फिर आपको कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकेगा। आप यह सुनना ही मत कि वे क्या कहते हैं। आप सिर्फ इतना देखना कि वे क्या हैं। उनके जीवन पर ध्यान रखना, उनके शब्दों पर नहीं। फिर आपको कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकेगा। आपका बीज सुरक्षित रहेगा।
निश्चित ही, जिन्होंने बीज बोया नहीं है, उन्हें कोई डर नहीं है। वे निर्भीक घूमते हैं। उन्हें कोई कारण ही नहीं है। उन्हें कुछ बचाना नहीं, कोई सुरक्षा नहीं करनी। लेकिन जिसने बीज बोया है, उसे थोड़ा-सा भयभीत भी होना पड़ेगा। उसे थोड़ा बंधकर उस बीज के आसपास बैठना भी पड़ेगा। वह थोड़ी-सी परतंत्रता भी अनुभव करेगा शुरू में, क्योंकि उसने बीज बोया है, उसे उसकी प्रतीक्षा भी करनी है, साज-सम्हाल भी करनी है।
आपके आसपास जो निर्भीकता से कुछ भी कहते हुए घूमते हैं, उनसे सावधान रहना। क्योंकि उन्होंने कुछ बोया नहीं है। वे घूम सकते हैं। उनके पास बचाने को कुछ भी नहीं है; उनके पास खोने को भी कुछ भी नहीं है। आपके पास अगर खोने को कुछ है, तो बचाने को कुछ है।
आस्तिक को निरंतर सावधान रहना चाहिए कि उसकी भूमि में अंकुरित होती
जो अभी कोमल-सी जीवन-धारा है, वह नष्ट न हो जाए। क्षुद्र बातें भी, व्यर्थ के पत्थर भी, उसे नष्ट कर दे सकते हैं। और ऐसे लोग हैं चारों तरफ, जो विनाश में रस लेते हैं। जो कोई भी चीज को तोड़ दें, तो अपने को ताकतवर समझते हैं। जिन्हें किसी बात का कोई भी पता नहीं है, वे भी कुछ कहे चले जाते हैं। कोई व्यक्ति ध्यान करना शुरू करता है, तो कोई भी व्यक्ति दूसरा--मित्र, परिवार के, साथी-संगी, परिचित, अजनबी--कोई भी कह देता है, ध्यान वगैरह में कुछ भी नहीं है! जैसे कि इन्होंने ध्यान कभी किया हो। जैसे ये ध्यान के कोई अनुभवी हैं। जब कोई ध्यान के संबंध में कुछ कहे, तो पहले यह फिकर करना कि इस आदमी ने कितना ध्यान किया है। आप हर किसी की बात नहीं मान लेते हैं और दूसरे मामलों में, लेकिन इस मामले में बड़ी जल्दी मान लेते हैं।
अगर एक आदमी कहता है कि नहीं, यह दवा बीमारी के लिए ठीक नहीं है। तो आप उससे पूछते हैं कि डिग्री क्या है आपके पास? एमड़ी. हैं? एम.बी.बी.एस. हैं? आयुर्वेद जानते हैं? हकीम हैं? क्या हैं? कुछ नहीं तो कम से कम होमियोपैथ हैं? कुछ, क्या हैं क्या आप? वह आदमी कहता है, नहीं, मैं भरोसा ही नहीं करता इन सब बातों में। इन सबको पढ़ने-वढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं। दवा से कुछ

होने वाला नहीं। तब आप समझ जाते हैं कि इस आदमी की बात सुनने की कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन ध्यान के संबंध में कोई भी नासमझ कुछ भी कह दे, आप फौरन डांवाडोल हो जाते हैं कि पता नहीं, कुछ गलती तो नहीं कर बैठे! आप पूछते ही नहीं कि यह आदमी ध्यानी है?
बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को बार-बार कहा है कि ध्यान के संबंध में केवल ध्यानियों से पूछना, नहीं तो तुम भटक जाओगे। क्योंकि इस जगत में अहंकार इतना घना है कि कोई आदमी यह तो मानने को राजी नहीं है कि मैं जानता नहीं हूं। हर आदमी सलाह देने को राजी है।
इस पृथ्वी पर सिर्फ एक चीज मुफ्त मिलती है, वह सलाह है। और इतनी मिलती
है कि जिसका हिसाब नहीं। और हर आदमी तैयार है, आप मांगो भर। न भी मांगो, तो भी देने को लोग तैयार हैं। आपके घर आकर दरवाजा खटखटाते हैं सलाह देने के लिए। आप कभी सोचते भी नहीं कि जो आदमी सलाह दे रहा है, वह कहां से दे रहा है। उसकी कितनी पहुंच है ध्यान में? उसने प्रार्थना कितनी की है? उसने कितना प्रभु-प्रेम में अपने को डुबाया है? कितना अस्तित्व का अनुभव किया है?
तो आप लोगों की बात मत सुनना, लोग कहां हैं, इस पर ध्यान देना।
साधक के हृदय में स्थित जो कामनाएं हैं, जब वे सब की सब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है। और यहीं ब्रह्म का भलीभांति अनुभव कर लेता है।
जब हृदय की संपूर्ण ग्रंथियां भलीभांति खुल जाती हैं, तब वह मरणधर्मा मनुष्य इसी शरीर में अमर हो जाता है। बस, इतना ही सनातन उपदेश है।
दो बातें। पहली, साधक के हृदय में स्थित कामनाएं हैं जो, जब वे सब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है। क्यों? आखिर कामनाओं के नष्ट होने से मरणधर्मा मनुष्य अमर क्यों हो जाएगा? कारण है। मनुष्य तो अमर है ही, सिर्फ वासनाएं मरणधर्मा हैं। सिर्फ कामनाएं मरती हैं। आदमी तो कभी मरता ही नहीं, सिर्फ कामनाएं मरती हैं। और हम कामनाओं से इतने भरे हैं कि हमें पता ही नहीं कि कामनाओं के अतिरिक्त भी हम कुछ हैं। और जब कामनाएं मरती हैं, तो हमें लगता हैः हम मर रहे हैं, हम नष्ट हो रहे हैं, हम समाप्त हो रहे हैं।
बंगाल के एक बहुत बड़े विचारक हुए ईश्वरचंद्र विद्यासागर। उन्होंने
एक संस्मरण लिखा है। उन्हें वाइसराय की कौंसिल सम्मानित करने वाली थी, महा पंडित होने के कारण। लेकिन ईश्वरचंद्र पहनते थे गरीब बंगाली का वेश-- कुर्ता-धोती; साधारण गरीब आदमी का वेश। सीधे-सादे आदमी थे। मित्रों ने कहा कि वाइसराय की कौंसिल में इन कपड़ों को पहनकर जाओगे, बड़ी भद्द होगी और अच्छा भी नहीं लगेगा। तो हम तुम्हारे लिए अच्छे वेश का इंतजाम किए देते हैं, तुम चिंता भी मत करो। शानदार चीज चाहिए, वाइसराय के सामने जब तुम मौजूद होओ।
ईश्वरचंद्र राजी हो गए। बात उनको भी जंची। मगर मन में थोड़ी चिंता रही
कि क्या सिर्फ पद पाने के लिए, उपाधि पाने के लिए, सम्मान पाने के लिए, मैं सदा का अपना भेष बदलूं? और नाहक अच्छा भी नहीं लगेगा, बचकाना लगेगा--सजा- संवारा हुआ वहां खड़ा हो जाऊंगा। मगर हिम्मत भी नहीं जुटती थी यह कहने की। जिस दिन यह वाइसराय की कौंसिल में जाना था, उसके एक दिन पहले सांझ को घूमने निकले थे। बड़ी चिंता मन में थी। सामने ही एक मुसलमान उनके पास से चला जा रहा था, अपनी छड़ी लिए हुए, आहिस्ता से, अपनी शेरवानी में।
एक नौकर भागा हुआ आया और उसने कहा कि मीर साहब--उस मुसलमान को कहा-- आपके घर में आग लग गई है। जल्दी चलिए। उसने कहा, ठीक! लेकिन चाल उसकी वही की वही रही। ईश्वरचंद्र भी थोड़े चौंके कि क्या यह आदमी समझ नहीं पाया या बात में कुछ भूल-चूक हो गई? नौकर भी थोड़ा घबड़ाया, और उसने कहा कि मीर साहब, ऐसे नहीं चलेगा। मकान जल रहा है। तेजी से चलिए।
उस मुसलमान ने कहा कि मैं जब तक न जलूं, मैं जब तक न जल रहा होऊं, तब तक तेजी से चलने का कोई कारण नहीं। मकान जल रहा है, मैं नहीं जल रहा हूं। और फिर जिंदगीभर की चाल मकान जलने की वजह से बदल दूं? और तू इतना परेशान क्यों है? तेरा क्या जल रहा है?

परेशान तो ईश्वरचंद्र तक थे, उनका तो बिल्कुल कुछ नहीं जल रहा था। वह
तो कम से कम नौकर भी था। उनके भी हृदय की धड़कन बढ़ गई थी। वे बड़े हैरान हुए कि यह आदमी कैसा है! घबड़ा तो वे भी गए थे, मकान जल रहा है यही सुनकर। कोई संबंध भी न था उस मकान से। तभी उनको ख्याल आया कि यह आदमी अपनी चाल बदलने को राजी नहीं, मकान जल रहा है! और मैं नाहक ही अपने कपड़े बदलने को राजी हो गया हूं।
दूसरे दिन वे अपने गरीब वेश में ही उपस्थित हो गए। मित्र तो बड़े चौंके वहां देखकर। बाद में निकलकर पूछा कि यह तुमने क्या किया? उन्होंने कहा कि छोड़ो, वह एक आदमी ने मेरी जिंदगी बदल दी। वह कहने लगा, जब तक मैं ही न जल रहा होऊं, तब तक कुछ नहीं जल रहा है। कुछ तेज जाने की जरूरत नहीं है।
आपकी कामनाएं मरती हैं, आप नहीं मरते। लेकिन कामनाओं से आप इतने संयुक्त हैं! आपका घर जलता है, आप नहीं जलते। लेकिन मेरा घर, इतना ममत्व है कि जलते हुए घर में आपको लगता है, आप जल रहे हैं। आप जलने ही लगते हैं। कामनाएं ही मरणधर्मा हैं। मरता हुआ आदमी जब घबड़ाता है मृत्यु से, तो इसलिए नहीं घबड़ाता कि मैं मर रहा हूं, क्योंकि मैं तो कभी मरा ही नहीं। घबड़ाता है इसलिए कि अब सब कामनाएं मरीं। जो-जो आशाएं बांधी थीं, सब टूटीं। जो-जो भविष्य में करने का सोचा था, वह सब विनष्ट हुआ। जो-जो अतीत में किया था इंतजाम कि भविष्य में कुछ फल लगेंगे, वे सब वृक्ष गिर गए। अब सब नष्ट हो रहा है।
यह सूत्र बड़ी ठीक बात कहता है कि जब साधक की सब कामनाएं छूट जाती हैं,
तब साधक अमृत हो जाता है। अमृत साधक है ही। कामनाओं का संग मरणधर्मा होने की भ्रांति देता है। हम जिसके साथ होते हैं, उसकी भ्रांति हमें पकड़ जाती है।
और कामनाएं कब नष्ट होती हैं? तब तक कामनाएं नष्ट नहीं हो सकतीं, जब तक ईश्वर के होने का भाव उदय न हो। क्योंकि कामनाएं इसीलिए हैं कि हम आनंद चाहते हैं और जीवन में आनंद नहीं है। कामनाएं हैं क्या? हमारे आनंद की खोज, हमारे आनंद को पाने की आकांक्षाएं, स्वप्न। और जीवन दुख से भरा है, इसलिए कामनाएं हैं।
इस दुख को मिटाना है। यह दुख दो तरह से मिट सकता है। एक तरह से मिट सकने का आभास होता है, वस्तुतः मिटता नहीं--कि हम कामनाओं को पूरा करें तो दुख मिट जाए। यह नास्तिक की यात्रा है। भौतिकवादी की यात्रा है कि कामनाएं सब पूरी हो जाएंगी, तब दुख मिटेगा। आस्तिक की यात्रा है कि कामनाएं तब मिटेंगी, जब आनंद उपलब्ध हो जाएगा।
इस तर्क को ठीक से समझ लें। नास्तिक का तर्क है, कामनाओं की पूर्ति पर आनंद है। आस्तिक का तर्क है, आनंद की पूर्ति पर कामनाओं का विसर्जन है। आनंद भीतर हो, कामनाएं समाप्त हो जाती हैं। दुख के कारण थीं। जिसे चाहते थे कामनाओं के कारण, वह भीतर उपस्थित हो जाए, कामनाएं गिर जाती हैं।
जब मंजिल भीतर मिल जाए, तो आप रास्तों पर किसलिए दौड़ेंगे? रास्तों पर दौड़ते हैं, क्योंकि मंजिल कहीं और है, जहां पहुंचना है। लेकिन वासनाओं के रास्तों से कोई भी कभी किसी मंजिल पर पहुंचा नहीं है। और जब भी कोई कभी किसी मंजिल पर पहुंचा है, वह मंजिल भीतर है।
प्रभु का स्मरण, प्रभु-अस्तित्व की प्रतीति, परमेश्वर है, ऐसा बोध जैसे-जैसे घना होता है, जैसे-जैसे आनंद बनता है, कामनाएं गिरती चली जाती हैं। कामनाओं के गिरते ही मृत्यु गिर जाती है।
जब हृदय की संपूर्ण ग्रंथियां भलीभांति खुल जाती हैं, तब वह मरणधर्मा मनुष्य इसी शरीर में अमर हो जाता है। बस, इतना ही सनातन उपदेश है।
यह दूसरी बात हैः जब हृदय की संपूर्ण ग्रंथियां भलीभांति खुल जाती हैं... ।
हृदय को भारतीय मनीषा ने सदा फूल की तरह समझा है। अभी जैसा है आपका हृदय, वह एक बंद कली है, जो खुली नहीं। और जैसा हम जी रहे हैं, शायद वैसे में वह कभी खुलेगी भी नहीं। जड़ हो गई है, पखुड़ियों ने क्षमता शायद खो दी है। या इतना रस ही नहीं बहता उस फूल के भीतर कि पखुड़ियां खुल सकें। या शायद इतना प्रकाश नहीं पड़ता फूल पर कि पखुड़ियां खुल सकें। निर्जीव, कुम्हलाया हुआ।

योग में तो हमारे सभी चक्रों की दो स्थितियां बताई हैं। साधारण मनुष्य, जो वासनाओं से भरा है, उसके चक्र कुम्हलाई हुई कलियों की भांति उलटे लटके हैं। शाखा भी झुक गई है कुम्हलाई कली के कारण; कली नीचे की तरफ झुक गई है। यह अवस्था है साधारण संसारी मनुष्य के चक्रों की।
जैसे-जैसे ऊर्जा ऊपर उठती है, जैसे-जैसे प्राण का संचार होता है आपके जीवन-वृक्ष में, ये कलियां सतेज हो जाती हैं। ये ऊपर उठती हैं, ये सीधी खड़ी हो जाती हैं। फूल का रुख बदल जाता है और ऊपर भागती हुई ऊर्जा इन पखुड़ियों को खोलने लगती है। एक दिन जीवन के सारे फूल भीतर खुल जाते हैं।
जब तक आपकी ऊर्जा नीचे की तरफ बह रही है, तब तक कलियां कलियां ही बनी रहेंगी। जब ऊर्जा ऊपर की तरफ बहेगी, तब कलियां फूल बनेंगी। ऊर्जा नीचे की तरफ बहती है, जब तक वासनाएं और कामनाएं हैं। क्योंकि कामनाएं नीचे का पथ है। ऊर्जा ऊपर की तरफ बहने लगती है जब कामनाएं गिर जाती हैं। हृदय की सारी ग्रंथियां टूट जाती हैं, सारे कांप्लेक्स, सारे बंधन, सारी जकड़ता मिट जाती है। हृदय एक खुला हुआ फूल बन जाता है।
यह जो खुला हुआ फूल है, इसकी प्रतीति होते ही, इसकी सुगंध के फैलते ही, इसी शरीर में मनुष्य अमर हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं है कि यह शरीर फिर मरेगा नहीं। फिर यह शरीर ही मरेगा; फिर वह जो भीतर है, कभी नहीं मरेगा। इस अमृत की उपलब्धि के लिए मरना आवश्यक नहीं है। शरीर में रहते हुए ही इस अमृत का बोध हो जाता है।
बस, इतना ही सनातन उपदेश है।
यम ने नचिकेता को कहा कि बस इतनी-सी बात ही सनातन उपदेश है। यही सदा से ज्ञानियों ने कहा है। जिन्होंने जाना है, उन्होंने दूसरों को जतलाया है। लेकिन न तो वाणी से, न मन से, न इंद्रियों से इस सत्य को जाना जा सकता है। इस सत्य को तो हृदय के भाव से कि ईश्वर है, इस प्रतीति में गहरा उतर जाने से... । इस गहराई में उतरने का नाम ही आस्था, आस्तिकता है।
जो इस गहराई को समझ लेता है और इसमें उतरने लगता है, जैसे-जैसे घनी होती है यह आस्था, जैसे-जैसे यह श्रद्धा प्रगा.ढ़ होती है और जैसे-जैसे यात्रा भीतर की तरफ मुड़ती है, वैसे-वैसे ही इसी शरीर में अमृत की प्रतीति सघन होती चली जाती है।
वासनाओं के गिरते ही मनुष्य इसी शरीर में अमृत हो जाता है।
ध्यान के लिए तैयार हों।

कठोपनिषद
सत्रहवां प्रवचन

अमृत की उपलब्धि मृत्यु के द्वार पर

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिः सृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वंड्न्या उत्क्रमणे भवन्ति।। 16।।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुंजादिवेषीकां धैर्येण
तं विद्याच्छुक्रममृतं विद्याच्छुक्रममृतमिति।। 17।।

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम्।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव।। 18।।

हृदय की (कुल मिलाकर) एक सौ एक नाड़ियां हैं। उनमें से एक (नाड़ी) मूर्धा, (कपाल) की ओर निकली हुई है (इसे ही सुषुम्ना कहते हैं)। उसके द्वारा ऊपर के लोकों में जाकर (मनुष्य) अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। दूसरी एक सौ नाड़ियां मरणकाल में (जीव को) नाना प्रकार की योनियों में ले जाने की हेतु होती हैं।। 16।।

सबका अंतर्यामी, अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष सदैव मनुष्यों
के हृदय में भलीभांति प्रविष्ट है। (साधक) उसको मूंज से सींक की भांति अपने से (और) शरीर से धीरतापूर्वक पृथक करके देखे; उसी को विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे (और) उसी को विशुद्ध अमृततत्व समझे।। 17।।

इस प्रकार उपदेश सुनने के अनंतर नचिकेता यमराज द्वारा बतलाई हुई इस विद्या को, और संपूर्ण योग की विधि को प्राप्त करके, मृत्यु से रहित (और) सब प्रकार के विकारों से शून्य विशुद्ध होकर ब्रह्म को प्राप्त हो गया। दूसरा भी जो कोई इस अध्यात्म-विद्या को इसी प्रकार जानने वाला है, वह भी ऐसा ही हो जाता है अर्थात मृत्यु और विकारों से रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।। 18।।

हृदय की कुल मिलाकर एक सौ एक नाड़ियां हैं। उनमें से एक नाड़ी मूर्धा, कपाल की ओर निकली हुई है इसे ही सुषुम्ना कहते हैं। उसके द्वारा ऊपर के लोकों में जाकर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। दूसरी एक सौ नाड़ियां मरणकाल में जीव को नाना प्रकार की योनियों में ले जाने की हेतु होती हैं।
योग का नाड़ियों के संबंध में अपना विशिष्ट विज्ञान है। आधुनिक शरीर-शास्त्र उससे राजी नहीं है। योग ने जिन नाड़ियों की चर्चा की है, वैज्ञानिक उस तरह की किसी भी नाड़ी को मनुष्य के भीतर नहीं पाते हैं। या जिन नाड़ियों को पाते हैं, उनसे योग के द्वारा प्रतिपादित नाड़ियों का कोई तालमेल नहीं है। योगियों ने इस संबंध में बड़ी चेष्टा भी की। विशेषकर पश्चिमी-शिक्षा प्राप्त योगियों ने या उन चिकित्सकों ने, शरीर-शास्त्रियों ने जो योग से परिचित हैं, योग की नाड़ियों और आधुनिक विज्ञान के द्वारा खोजी गई मनुष्य की नाड़ियों के बीच तालमेल बिठाने की अथक चेष्टा की। पर वह चेष्टा पूरी नहीं हो सकती, क्योंकि बहुत मौलिक रूप से भ्रांत और गलत है। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है।
योग जिन नाड़ियों की बात करता है, वे ठीक इस भौतिक-शरीर की नाड़ियां नहीं हैं। इसलिए इस भौतिक-शरीर में उन्हें नहीं पाया जा सकता है। और जो लोग भी कोशिश करते हैं कि इस भौतिक-शरीर की नाड़ियों से उनका तालमेल बिठा दें, वे योग का हित नहीं करते हैं, अहित करते हैं।

योग किसी और ही शरीर की बात कर रहा है, जिसे सूक्ष्म-शरीर कहते हैं। वह
इस शरीर के भीतर ही छिपा हुआ है। लेकिन स्थूल नहीं है, सूक्ष्म है। सूक्ष्म से अर्थ है कि वह शरीर पदार्थगत कम, ऊर्जागत ज्यादा है। वह एनर्जी-बॉडी है या जिसको रूस के वैज्ञानिक बायो-इलेक्ट्रिसिटी कहते हैं, जीव-विद्युत कहते हैं, उसका शरीर है।
इस शरीर के ठीक भीतर छिपा हुआ विद्युत का एक शरीर है। इस बात पर अब वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हो गए हैं। और यह जो विद्युत का शरीर है, वही इस शरीर को भी चलाता है।
रूस में एक बहुत महान प्रयोग चल रहा है। एक वैज्ञानिक विचारक, चित्रकार और फोटोग्राफर है, जिसने एक नए ढंग की फोटोग्राफी विकसित की है-- किर्लियान। यह फोटोग्राफी मनुष्य के, या पशुओं के, या पौधों के विद्युत-शरीर का चित्र लेती है। जैसे एक्स-रे से आपके भीतर की हड्डियों का चित्र आ जाता है। शरीर को एक्स-रे पार करके आपके भीतर के ढांचे को पकड़ लेती है, ठीक इसी तरह किर्लियान ने इस तरह की फोटोग्राफी विकसित की है जो आपके शरीर की ऊर्जा-देह को पकड़ती है।
यह ऊर्जा-देह जिन व्यक्तियों में एक सौ एकवीं नाड़ी में प्रविष्ट हो जाती है, यह ऊर्जा का प्रवाह, उनके मस्तिष्क के चारों तरफ एक आभामंडल, एक ऑरा निर्मित हो जाता है। कृष्ण, बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट, उनके चित्रों के आसपास आपने एक आभामंडल बना देखा होगा। वह आभामंडल साधारण आंखों से दिखाई नहीं पड़ता है। लेकिन जिस व्यक्ति के मस्तिष्क में, जिसे योग सुषुम्ना कहता है--एक सौ एकवीं नाड़ी जिसे योग ने कहा है--उसमें जब जीवन की ऊर्जा प्रविष्ट हो जाती है, तो सारे मस्तिष्क के चारों तरफ एक विद्युत का मंडल निर्मित हो जाता है।
यह विद्युतमंडल, जो लोग ध्यान को उपलब्ध हैं, उन्हें दिखाई भी पड़ने लगता है। जो जितने शांत हो जाते हैं, उतना ही यह विद्युतमंडल उन्हें दिखाई पड़ने लगता है; दूसरे के ऊपर भी दिखाई पड़ने लगता है। ऐसा विद्युतमंडल हर एक प्राणी के आसपास है। और वह विद्युतमंडल बताता है कि प्राणी किस अवस्था में है।
किर्लियान का कहना है कि कोई भी बीमारी मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट हो, इसके पहले उसके विद्युत-शरीर में प्रविष्ट होती है। और यह फासला छह महीने का होता है। अगर आप टी.बी. से बीमार पड़ने वाले हैं तो छह महीने बाद... आज आपका विद्युत-शरीर रुग्ण होगा, तो छह महीने बाद आपका भौतिक-शरीर रुग्ण होगा। विद्युत-शरीर से भौतिक-शरीर तक की यात्रा छह महीने में होगी। किर्लियान का कहना है, यह जो विद्युत-ऊर्जा है, इसका चित्र अगर पकड़ लिया जाए, तो आदमी के बीमार होने के पहले हम उसे स्वस्थ कर सकते हैं। यह आधुनिकतम महानतम खोजों में से एक है। क्योंकि एक आदमी बीमार पड़ जाए, फिर उसे स्वस्थ करना अत्यंत कष्टपूर्ण है। बीमार पड़ने के पहले, यह भौतिक-देह बीमार पड़े इसके पहले इसे स्वस्थ किया जा सकता है।
लेकिन पता बीमार को भी नहीं चलता छह महीने पहले कि मैं बीमार पड़ रहा हूं। लेकिन विद्युत-शरीर पर प्रभाव अंकित हो जाते हैं। विद्युत-शरीर उदास हो जाता है; उसकी ऊर्जा धीमी पड़ जाती है। जैसे बल्ब में अचानक विद्युत का प्रवाह कम हो गया हो; मंदा हो जाए, पीला हो जाए। जब व्यक्ति स्वस्थ होता है, तो उसकी शरीर की विद्युत प्रकाशित होती है। अपनी पूरी ऊर्जा में जगती है। और जैसे बीमार होने के करीब होता है, वैसे उसकी ऊर्जा मंदी हो जाती है। शरीर में विद्युत कम दौड़ रही है। छह महीने बाद भौतिक-शरीर उससे प्रभावित हो जाएगा। और अगर इसका पता चल जाए, तो पहले ही इलाज किया जा सकता है। मरीज के बीमार होने के पहले, मरीज को पता चलने के पहले कि वह बीमार हुआ, बीमारी से मुक्त हुआ जा सकता है।
इधर पच्चीस साल में इस दिशा में रूस में बहुत बड़ा कार्य हुआ है। कली खिलती है फूल की, उसके कई घंटों पहले कली के भीतर छिपा हुआ जो ऊर्जा-शरीर है वह खिल जाता है, कई घंटे पहले। जब वह ऊर्जा-शरीर खिल जाता है--जो हमें दिखाई नहीं पड़ता, लेकिन किर्लियान उसके फोटो ले लेता है, उसने बड़ी संवेदनशील फिल्में निर्मित की हैं--जब वह विद्युत-शरीर खिल जाता है, कुछ घंटों बाद भौतिक-शरीर भी कली का खिल जाता है। एक गुलाब की बंद कली का

किर्लियान फोटो लेगा, तो जैसा फोटो उसका विद्युत-शरीर का आएगा, बाद में जब फूल खिलेगा तो ठीक वैसा ही खिलेगा, जैसे पहले विद्युत-शरीर खिल गया था। यह जो योग ने जिन नाड़ियों की बात की है, यह विद्युत-शरीर की बात है। इस भौतिक-शरीर से इसका कोई संबंध सीधा नहीं है। यद्यपि भौतिक-शरीर पर परिणाम होंगे। विद्युत-शरीर में जो भी अंतर पड़ेंगे, उसके भौतिक-शरीर पर भी परिणाम होंगे। इसलिए योगी अपनी मृत्यु छह महीने पहले बता सकता है। यह हमने बहुत बार सुना है। लेकिन किर्लियान ने छह महीने का फासला अभी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया है।
योग का अनुभव है कि ठीक मरने के छह महीने पहले विद्युत-ऊर्जा बिल्कुल क्षीण हो जाती है। सिर्फ टिमटिमाने लगती है। उससे खबर मिल जाती है कि अब यह शरीर ज्यादा से ज्यादा छह महीने चल सकता है। मरते हुए आदमी को छह महीने पहले अपनी नाक दिखाई पड़नी बंद हो जाती है। और जब आपको अपनी नाक दिखाई पड़नी बंद हो जाए, तो आप समझना कि छह महीने के भीतर आप लीन हो जाएंगे। किर्लियान भी कहता है कि यह घटना घटती है।
कुछ संबंध नाक के सोचने जैसे हैं। आमतौर से नाक हमारे चेहरे पर अहंकार का प्रतीक है। और अहंकारी आदमी की नाक बता देती है। विनम्र आदमी की नाक बता देती है। नाक का ही सिर्फ अध्ययन किया जाए तो भी आदमी के बाबत बहुत कुछ बताया जा सकता है कि भीतर कैसा आदमी छिपा होगा। मृत्यु के छह महीने पहले अहंकार भीतर टूटने लगता है। इसलिए नाक का जो ऊर्जा-शरीर है वह तिरोहित हो जाता है। सबसे पहले शरीर में नाक का ऊर्जा-शरीर तिरोहित हो जाता है। और तब नाक को देखना मुश्किल हो जाता है। तब सिर्फ खाली खोल रह जाती है।
नाक इज्जत का प्रतीक है--अहंकार का। लोग कहते हैं कि ख्याल रखना, नाक न
कट जाए। लोग कहते हैं, अपनी नाक की प्रतिष्ठा सम्हालना। लोक में प्रचलित बातों का भी कहीं न कहीं गहरा कोई अर्थ होता है। अकारण तो कुछ भी प्रचलित नहीं होता।
पूरे चेहरे पर नाक में व्यक्तित्व है। नाक के हटते ही चेहरे से पूरा व्यक्तित्व खो जाता है। दो आदमियों की नाक एक जैसी नहीं होती। जैसे दो आदमियों के अंगूठे का चिह्न एक जैसा नहीं होता, ऐसे ही दो आदमियों की नाक एक जैसी नहीं होती। बड़ा सूक्ष्म अहंकार वहां भेद करता है।
इस शरीर के ठीक पीछे, ठीक इस शरीर के भीतर समाया हुआ एक विद्युत-शरीर है। यह विद्युत-शरीर हम अपने साथ लेकर चलते हैं। पिछले जन्म में जब आप समाप्त हुए तो आपकी भौतिक देह गिर गई, लेकिन आपका विद्युत-शरीर, सूक्ष्म-शरीर, एॅस्ट्रल-बॉडी, या जो भी नाम आप देना चाहें, वह आपका मुक्त हुआ। नए गर्भ में वही सूक्ष्म-शरीर प्रविष्ट होता है।
यह जो सूक्ष्म-शरीर है, तभी नष्ट होता है जब कोई व्यक्ति समाधि को उपलब्ध हो जाता है। और इसीलिए सूक्ष्म-शरीर के नष्ट हो जाने के बाद जन्म का कोई उपाय नहीं। फिर शरीर में आप प्रवेश नहीं कर सकते। शरीर और आपके बीच एक विद्युत की धारा का सेतु है। जब वह टूट जाए, तो फिर आप नए शरीर में प्रवेश नहीं कर सकते।
साधारण आदमी जब मरता है, तो भौतिक-शरीर ही मरता है। और जब असाधारण आदमी मरता है--ज्ञान को उपलब्ध आदमी मरता है--तो उसका विद्युत-शरीर मरता है। विद्युत-शरीर के मरते ही चेतना मुक्त हो जाती है देह से, और नई देहों में प्रवेश बंद हो जाता है।
मरते वक्त व्यक्ति जिस तरह की ऊर्जा को लेकर चलता है, उसी तरह की योनि में प्रवेश करता है। यह आपने सुना होगा--वह भी एक लोकोक्ति है और बड़ी सार्थक है। क्योंकि हजारों-हजारों साल तक जब कुछ लोग किसी बात को मानते हैं, तो उसके पीछे कहीं न कहीं कोई तत्व, कहीं न कहीं कोई बीज छिपा होता है। आपने सुना होगा कि ज्ञानी की मृत्यु कपाल को फोड़कर होती है। उसकी ऊर्जा मस्तिष्क से फूटकर बाहर जाती है। कामी की मृत्यु जननेंद्रिय से होती है। और अलग-अलग मृत्युएं अलग-अलग तलों से होती हैं। सभी लोग एक जैसे नहीं मरते। न तो सभी लोग एक जैसे जीते हैं और न सभी लोग एक जैसे मरते हैं।
हम जीने में भी व्यक्तित्व रखते हैं और मरने में भी।

सिर्फ इस कारण, यह अनुभव में आ जाने के कारण कि ज्ञानी की मृत्यु कपाल
को फोड़कर होती है, हिंदुओं ने अपने मुर्दे के कपाल फोड़ने शुरू कर दिए। तो बेटा जाकर बाप का सिर तोड़ता है लाठी से। यह सिर्फ चिह्न है। मरे हुए बाप का सिर फोड़ने से कुछ अर्थ नहीं है। वह तो प्राण जा चुका। लेकिन प्रतीक रह गया। क्योंकि परम ज्ञानियों की मृत्यु कपाल को फोड़कर हुई है और वे परम अवस्था को उपलब्ध हुए हैं, तो हर बेटा चाहता है कि उसका पिता भी परम अवस्था को उपलब्ध हो। इसलिए हम कपाल फोड़ते रहे हैं।
लेकिन मरे हुए आदमी का कपाल फोड़ने से कोई अर्थ नहीं है। और आपके फोड़ने
से कोई भी फर्क नहीं पड़ता। व्यक्ति स्वयं ही अपनी ऊर्जा को ऊपर उठाकर जब कपाल तक ले आता है, तभी कपाल फोड़कर मृत्यु होती है। और जिस केंद्र से मृत्यु होती है, शरीर में जिस केंद्र से प्राण बाहर होते हैं, उससे पता चलता है कि आप किस योनि में जाएंगे। यह योनियों का पूरा विज्ञान है।
योग कहता है, एक सौ एक हृदय में नाड़ियां हैं। सौ नाड़ियां संसार में ले जाती हैं और एक नाड़ी मोक्ष में ले जाती है। वे जो सौ नाड़ियां हैं, सौ रास्ते हैं। और उन सौ नाड़ियों पर, विभिन्न-विभिन्न नाड़ियों पर विभिन्न योनियों की यात्रा हो जाती है। कौन व्यक्ति किस नाड़ी के द्वार से जीवन के बाहर जा रहा है, इस शरीर के बाहर जा रहा है, उससे ही तय हो जाता है कि वह किस योनि में प्रवेश करेगा।
सिर्फ एक अयोनि-नाड़ी है, जिससे फिर संसार में कोई प्रवेश नहीं होता, जीवन ऊर्ध्वगमन को उपलब्ध हो जाता है। उस एक नाड़ी का नाम सुषुम्ना है। और कैसे ऊर्जा जीवन की उस नाड़ी में प्रवेश करे, यही पूरे योग का सार है; कैसे जीवन-ऊर्जा ऊपर उठे और उस एक नाड़ी में प्रविष्ट कर जाए, जहां से संसार से संबंध छूट जाता है।
साधारणतया हमारी ऊर्जा काम-केंद्र पर इकट्ठी है, सेक्स सेंटर पर इकट्ठी है। प्रकृति को वहीं जरूरत है। प्रकृति को आपकी बहुत चिंता नहीं है। आपकी सतत धारा न टूट जाए, इसकी ज्यादा चिंता है। आप मिटें या बनें, यह बड़ा सवाल नहीं है, लेकिन आपका बच्चा और बच्चों के बच्चे होते रहें। प्रकृति संतति में उत्सुक है, व्यक्तियों में नहीं। धारा चलती रहे। इसलिए काम का इतना प्रभाव है, कि आप लाख उपाय करते हैं तो भी कामवासना पकड़ लेती है। क्योंकि प्रकृति इतना बल देती है उस केंद्र पर कि आप बिल्कुल अवश हो जाते हैं। काम आपको पकड़ लेता है। वासना आपको घेर लेती है।
आपकी सारी ऊर्जा काम-केंद्र पर इकट्ठी है। और उस ऊर्जा का एक ही बहाव है, वह है कामवासना में। यही ऊर्जा ऊपर की तरफ लानी है। इसे ही ऊपर उठाना है। ये दो छोर हैं--मस्तिष्क, जिसे हम सहस्रार कहते हैं और काम-केंद्र, जिसे हम मूलाधार कहते हैं। ये दो छोर हैं।
मूलाधार में ऊर्जा इकट्ठी है। और वहां से उसे सहस्रार तक लाना है। और बीच की जिस नाड़ी से यात्रा होगी, वह सुषुम्ना है, जिससे ऊर्जा ऊपर, और ऊपर, और ऊपर उठेगी। यह बिल्कुल ही वैज्ञानिक घटना है--ऊर्जा का ऊपर उठना। और इस ऊर्जा के ऊपर उठते ही व्यक्ति के व्यक्तित्व में रूपांतरण होने शुरू हो जाते हैं। जिस जगह ऊर्जा होती है, वैसा ही व्यक्तित्व बदल जाता है।
इसे हम ऐसा समझें। एक छोटा बच्चा है, अभी उसे कामवासना का कुछ भी पता नहीं है। कामवासना उसमें छिपी है, लेकिन अभी काम का केंद्र सक्रिय नहीं हुआ। जैसे ही वह प्रौढ़ होगा काम की दृष्टि से, काम का केंद्र सक्रिय होगा, तो उसका सारा मन, सारा व्यक्तित्व, सारा आचरण कामवासना से भर जाएगा। सोचते, उठते, बैठते, स्वप्न देखते कामवासना उसे घेर लेगी। सब तरफ एक ही रस रह जाएगा। क्या हुआ? यह सारे व्यक्तित्व में इतना रूपांतरण अचानक!
इसलिए चौदह वर्ष से लेकर अठारह वर्ष के बीच बच्चे बड़ी बेचैनी और तकलीफ में पड़ जाते हैं। उनकी खुद की भी समझ में नहीं आता कि क्या हो रहा है। यह उम्र चौदह से अठारह के बीच की बड़ी बेचैनी की उम्र है। न वे किसी को कह सकते हैं, न कोई उन्हें कुछ बताता। और उनके भीतर इतने रूपांतरण हो रहे हैं और उनका सारा चित्त कामवासना से इस बुरी तरह घिर गया है कि कुछ और उन्हें सूझता भी नहीं। कुछ और सूझ भी नहीं सकता। यह जो घटना घटती है, यह घटना घटती है काम-केंद्र के सक्रिय होने से।

जिस दिन सहस्रार सक्रिय होता है, उस दिन फिर ऐसी घटना घटती है। उस दिन व्यक्ति इसी तरह परमात्मा से भर जाता है, जैसे काम-केंद्र के सक्रिय होने पर कामना से, वासना से घिर जाता है। और जिस दिन सहस्रार पर प्रगट होती है ऊर्जा, उस दिन सब तरफ सिवाय परमात्मा के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। काम-केंद्र पर प्रकृति पकड़ लेती है, सहस्रार पर परमात्मा पकड़ लेता है।
कैसे यह ऊर्जा ऊपर की तरफ जाए, यही सवाल है। पहली तो बात कि जब भी मन में कामवासना उठे, तब आप आंख बंद करके सारे काम-यंत्र को ऊपर की तरफ खींच लेना। जैसे ऊर्जा नीचे जा रही है, सारे काम-यंत्र को आप ऊपर की तरफ सिकोड़ लेना, कांट्रेक्ट कर लेना। और सिर्फ एक ही धारणा भीतर करना कि यह ऊर्जा जो काम-केंद्र को प्रभावित कर रही है, ऊपर की तरफ बह रही है, उठ रही है। था.ेड़े ही दिन प्रयोग करके आप चकित हो जाएंगे कि जब भी कामवासना उठे, तभी अगर आप काम-यंत्र को पूरा का पूरा ऊपर की तरफ खींच लें, भीतर सिकोड़ लें, तत्क्षण काम-केंद्र रिक्त हो जाएगा ऊर्जा से। और आप पाएंगे कि आपकी रीढ़ में कोई गर्म तत्व ऊपर की तरफ उठ रहा है। यह स्पष्ट अनुभव होगा कि कोई गर्मी ऊपर की तरफ बह रही है। कभी-कभी तो गर्मी इतनी साफ होती है कि दूसरा व्यक्ति भी आपकी रीढ़ छुए तो कह सकता है कि कुछ आग ऊपर की तरफ जा रही है। शीर्षासन का यही उपयोग है कि जब कामवासना उठे, तो आप जोर से सारे यंत्र को ऊपर की तरफ सिकोड़कर अगर सिर के बल खड़े हो जाएं, तो काम-ऊर्जा की यात्रा आसान हो जाएगी। क्योंकि कोई भी ऊर्जा नीचे की तरफ बहना सुगम पाती है, जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है। अगर आप शीर्षासन में खड़े हों और काम-ऊर्जा को ऊपर की तरफ खींच रहे हों--अर्थात शीर्षासन में खड़े होकर नीचे की तरफ खींच रहे हों--तो सिर की तरफ ऊर्जा बहने लगेगी।
शीर्षासन सिर्फ व्यायाम नहीं है; शीर्षासन ब्रह्मचर्य का गहरा प्रयोग है। और अगर आप काम-ऊर्जा के साथ उसे जोड़ सकें तो आप थोड़े ही दिन में पाएंगे कि आपके मस्तिष्क में कुछ नई घटना घट रही है। कोई प्रवाह आ गया है। जैसे कोई बाढ़ आ गई हो। भीतर एक-एक रज्जु, एक-एक स्नायु कंप रहा है, कंपित हो रहा है। भीतर एक गुनगुनाहट मस्तिष्क में सुनाई पड़नी शुरू हो जाएगी। जैसे कोई सन्नाटा भीतर बज रहा हो, जैसे बहुत-सी मधुमक्खियां भीतर शोर कर रही हों।
यह शोर, भीतर यह झनझनाहट मस्तिष्क में बड़ी शुभ खबर है। यह इस बात की खबर है कि ऊर्जा मस्तिष्क में आ गई है। और इस ऊर्जा को मस्तिष्क तक लाना ही आपका काम है, सहस्रार तो अपने आप खिलना शुरू हो जाएगा। जैसे ही उस कली को शक्ति मिलनी शुरू हुई कि वह कली खिलनी शुरू हो जाएगी। उसके खिलते ही अमृत की वर्षा हो जाती है। आनंद की वर्षा हो जाती है। जो कभी नहीं जाना ऐसा रस, जो कभी नहीं जाना ऐसी मधुर अनुभूति, जो कभी नहीं जानी ऐसी अलौकिक प्रतीति होनी शुरू हो जाती है।
फिर आप रहते इसी जमीन पर हैं, चलते इस जमीन पर नहीं। पैर यहीं पड़ते हैं, बस दूसरों को दिखाई पड़ते हैं, आपके पैर फिर इस जमीन पर नहीं पड़ते। आप फिर आकाश में जैसे उड़ते हैं। एकदम सब हल्का हो जाता है। जमीन की जो कशिश है, जो ग्रेविटेशन है, वह खो जाता है। वे जो कथाएं हैं कि योगी जमीन से उठ जाता है, वे कभी-कभी सच हुई हैं। लेकिन एक बात तो निश्चित सच है, जिसकी भी ऊर्जा सहस्रार में प्रवेश करती है, सुषुम्ना के द्वार से होकर सहस्रार में चली जाती है, वह अचानक पाता है कि जमीन से उठ गया है।
अगर आप ध्यान करते हुए बैठे हैं और ऐसी घटना घटेगी, तो आप आंख बंद करे पाएंगे कि आप जमीन से कम से कम चार बलिश्त ऊपर उठ गए हैं। आंख खोलकर शायद आप पाएं कि जमीन पर बैठे हुए हैं, उठे नहीं। क्योंकि जो उठ रहा है शरीर, वह भीतर का ऊर्जा-शरीर है। लेकिन कभी-कभी यह प्रवाह इतना तेज होता है कि यह भौतिक शरीर भी उसके साथ ऊपर उठ जाता है। पर यह कभी-कभी होता है। लेकिन ऊर्जा-शरीर तो निरंतर ऊपर उठता है, जिसकी भी ऊर्जा भीतर प्रवेश करती है। यूरोप में एक महिला है, जो चार फीट ऊंचा उठ जाती है, सिर्फ शांत बैठकर। उसके हजारों चित्र लिए गए हैं। और सब तरह के वैज्ञानिक प्रयोग किए गए हैं। और उनकी समझ के बाहर है कि क्या हो रहा है। क्योंकि जमीन के ऊपर उठना बड़ी अदभुत बात है, क्योंकि जमीन खींच रही है पूरी ताकत से। ग्रेविटेशन का

नियम--उसको तोड़ना है यह। और जब उस महिला को पूछा गया कि वह करती क्या है, तो उसने कहा, मैं कुछ करती नहीं। बस मैं एकदम शांत और शांत और शांत होती चली जाती हूं। जैसे ही एक शांति का क्षण आता है जब कुछ भी विचार भीतर नहीं रह जाते, अचानक मैं पाती हूं, ऊपर उठ गई। वह चार फीट ऊपर चली जाती है।
सैकड़ों लोग जमीन पर सैकड़ों बार ऊपर उठे हैं। लेकिन इस शरीर के ऊपर उठने का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। वह एक तमाशा है। पर भीतर का शरीर ऊपर उठ जाए, उसका बड़ा मूल्य है। क्योंकि उसके ऊपर उठते ही जमीन के जो-जो आप पर प्रभाव थे, वे नष्ट हो जाते हैं।
जमीन के प्रभाव गहरे हैं। जैसा मैंने आपसे कहा, आपका सारा शरीर हार्मोन, रसायन-तत्वों से बना हुआ है। जमीन से ही सारे तत्व आपको मिले हैं। और जमीन आपको प्रतिपल नीचे खींच रही है। जमीन सिर्फ चीजों को ही नीचे नहीं खींच रही है, आपके व्यक्तित्व को, आपके मन को भी नीचे खींच रही है।
जिस दिन आपकी ऊर्जा भीतर उठ जाती है, आप एक गुब्बारे की तरह हो जाते हैं।
आप इतने हल्के हो जाते हैं, कि जमीन आपको खींच नहीं सकती।
ग्रेविटेशन जैसे एक नियम है, ऐसा ही योग में एक नियम है लेविटेशन।
गुरुत्वाकर्षण नीचे खींचता है। एक और आकाशीय-आकर्षण है जो ऊपर खींचता है।
लेकिन आपके भीतर की घटना पर निर्भर करता है कि आप ऊपर से प्रभावित होंगे कि नीचे से। अगर आपकी ऊर्जा नीचे के केंद्र पर है, तो नीचे से प्रभावित होंगे। आपकी ऊर्जा ऊपर के केंद्र पर है, तो ऊपर से प्रभावित होंगे।
जब भी कामवासना जगे, तब आंख बंद करके काम-यंत्र को ऊपर सिकोड़ लेना और धारणा करना कि शक्ति ऊपर की तरफ जा रही है। तत्क्षण काम-केंद्र शिथिल हो जाएगा। और रीढ़ में कोई चीज सरकती हुई, जैसे बहुत चींटियां ऊपर की तरफ जा रही हों, या कोई उत्तप्त चीज ऊपर की तरफ बह रही हो, कोई लावा पिघलकर ऊपर की तरफ बह रहा हो, वैसा प्रतीत होगा। जैसे यह प्रतीत हो, खुश होना, आनंदित होना, इसे अहोभाव से स्वीकार करना। और इसे ऊपर खींचने के जितने भी प्रयोग कर सकें, करना।
अगर शीर्षासन न बन सके, तो भी आदमी इतना कर सकता है कि किसी स्लोप पर, ढाल पर लेट जाए, सिर नीचे की तरफ करके; या पलंग ऐसा बना ले कि नीचे के दोनों पैर ऊंचे हों, सिर की तरफ के पैर नीचे हों और पलंग पर लेट जाए और सिर्फ भाव करे कि ऊर्जा ऊपर आ रही है। जैसे-जैसे ऊर्जा ऊपर आएगी, विचार कम होते जाएंगे। या, विचार कम होते जाएं, तो ऊर्जा ऊपर आने लगती है। ये दोनों संयुक्त घटनाएं हैं।
हठयोग ऊर्जा को ऊपर लाने की कोशिश करता है। राजयोग विचार से मुक्ति करने की कोशिश करता है। दोनों एक ही दिशा में यात्रा करते हैं। हठयोग की फिक्र है कि ऊर्जा ऊपर आ जाए, इसलिए शीर्षासन है, मुद्राएं हैं, जिनके द्वारा ऊर्जा को ऊपर खींचा जा सकता है। बंध हैं, जिनसे ऊर्जा को ऊपर की तरफ खींचा जा सकता है। हठयोग फिक्र नहीं करता विचार की। वह कहता है, ऊर्जा ऊपर आ जाएगी, विचार अपने से नष्ट हो जाएंगे।
राजयोग ऊर्जा की फिक्र नहीं करता। वह कहता है, विचार शांत हो जाएं, ऊर्जा अपने से ऊपर आ जाएगी। दोनों संयुक्त घटनाएं हैं। कहीं से भी शुरू किया जा सकता है। अगर आपकी आस्था शरीर में बहुत ज्यादा हो, तो हठयोग आपके लिए मार्ग है। और अगर मन में आपकी आस्था ज्यादा हो, तो राजयोग आपके लिए मार्ग है। और दो के अतिरिक्त कोई मार्ग है नहीं।
या तो मस्तिष्क को शून्य कर लें... ।
ध्यान रहे, एक नियम है कि प्रकृति शून्य को भर देती है। जहां भी वैक्यूम होता है, उसे भरने के लिए शक्ति दौड़ पड़ती है। आप नदी में से एक घड़ा भर लें। जैसे ही आप घड़ा भरते हैं, एक गड्ढा हो जाता है; चारों तरफ का पानी दौड़कर गड्ढे को भर देता है। गर्मी आती है, तो गर्मी के बाद वर्षा आती है। क्योंकि गर्मी इतनी उत्तप्त कर देती है वायु को कि वायु विरल हो जाती है, पतली हो जाती है और वायु विरल होकर ऊपर उठने लगती है और जगह-जगह वायु के गड्ढे हो जाते हैं। उन गड्ढों को भरने के लिए बादल दौड़े चले आते हैं। बादल, आप सोचते होंगे, कोई लाता है। नहीं, सिर्फ गड्ढे उसे खींचते हैं। जहां- जहां तेज गर्मी पड़ती है, जहां-जहां वायु में गड्ढे हो जाते हैं, वहां-वहां

बादल भागे चले आते हैं। भर देते हैं आकर। प्रकृति वैक्यूम को, शून्य को पसंद नहीं करती।
आप मस्तिष्क को शून्य कर लें। बस, आपने जगह खाली कर दी। नीचे से शक्ति भागने लगेगी ऊपर की तरफ। राजयोग मस्तिष्क को शून्य करने का प्रयोग है। हठयोग मस्तिष्क की फिक्र ही नहीं करता। वह कहता है, ऊर्जा को लाओ; जैसे ही ऊर्जा आएगी, विचार शून्य हो जाएंगे।
हम जो प्रयोग कर रहे हैं, वह दोनों का इकट्ठा प्रयोग है। वह हठयोग और राजयोग की संयुक्त प्रक्रिया है। पहले तीन चरणों में हम पूरी कोशिश कर रहे हैं हठयोग के माध्यम से कि वह ऊर्जा ऊपर की तरफ आए, और चौथे में हम कोशिश कर रहे हैं राजयोग के माध्यम से कि मन शून्य हो जाए। और अगर दोनों प्रक्रियाएं संयुक्त हों, तो परिणाम द्रुत हो जाता है, दुगनी तेजी से आता है। मन भी शून्य कर रहे हैं और ऊर्जा को भी ऊपर खींच रहे हैं।
यह जो हू की आवाज है, यह ऊर्जा को चोट देने की कोशिश है, ताकि ऊर्जा ऊपर
की तरफ फिंकनी शुरू हो जाए।
काम-केंद्र पर दो तरह की चोट पड़ सकती है। एक तो जब आप विपरीत-लिंगीय व्यक्ति से आकर्षित होते हैं, तो एक चोट पड़ती है। एक सुंदर स्त्री को देखकर आपके काम-केंद्र पर हल्का-सा शॉक, एक झटका लगता है। इसलिए आदमी ने वस्त्र पहनने पर इतना आग्रह दे रखा है। क्योंकि वस्त्रों के बिना आपकी वासना एकदम प्रगट हो जाएगी, जगह-जगह प्रगट हो जाएगी।
यह बहुत आश्चर्य की बात है कि पश्चिम के, विशेषकर अमरीका के न्यूडिस्ट क्लबों में, जहां लोग नग्न स्त्री और पुरुष खेलते हैं, कूदते हैं, बैठते हैं, मिलते-जुलते हैं, एक बड़ा अजीब अनुभव हुआ, जिसका कि ख्याल नहीं था। आमतौर से हमारी धारणा है कि स्त्री नग्न होने में ज्यादा अड़चन अनुभव करेगी, शरमाएगी, पर यह अनुभव हुआ नहीं। जितने न्यूडिस्ट क्लब हैं दुनिया में, उन सबका नतीजा यह है कि स्त्रियां बड़ी जल्दी नग्न होने को तैयार होती हैं, पुरुष अड़चन डालता है।
मगर यह बात योग से तालमेल खाती है। पुरुष ही अड़चन डालेगा। क्योंकि स्त्री की वासना शरीर से प्रगट नहीं हो पाती; पुरुष की वासना तत्क्षण प्रगट होती है, इसलिए पुरुष ज्यादा डरता है नग्न होने में। कपड़ों में वह ढंका हुआ, अपनी सज्जनता को सम्हाले हुए, शिष्टता को, साधुता को सम्हाले हुए चलता है। नहीं तो हर सुंदर स्त्री उसे प्रभावित करती है। और वह प्रभाव सिर्फ मन पर ही नहीं होता, तत्क्षण... क्योंकि काम-केंद्र, मन में जरा-सा कंपन हुआ कि तत्काल प्रभावित हो जाता है।
पुरुष की जननेंद्रिय तत्काल खबर दे देगी कि वह कामातुर है। वह आंखें बचाए, सब करे, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। और एक बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि आप शरीर में सब अंगों को धोखा दे सकते हैं, जननेंद्रिय को आप धोखा नहीं दे सकते। वह सबसे ज्यादा आथेंटिक, प्रामाणिक इंद्रिय है। आपको आंख खोलना हो, आप बंद कर सकते हैं। बंद करना हो, आप खोल सकते हैं। आप आंख से विपरीत काम ले सकते हैं, लेकिन जननेंद्रिय से नहीं।
अगर जननेंद्रिय कामवासना से भर गई, तो आप कुछ भी नहीं कर सकते। और अगर
न भरे, तो आप भरने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते। जननेंद्रिय स्वचालित है। उसमें इतनी ऊर्जा है कि वह अपनी गति खुद ही करती है।
सारे नग्न क्लबों में यह अनुभव हुआ कि पुरुष डरता है नग्न होने से, संकोच करता है, भयभीत होता है। स्त्रियां जरा भी भयभीत नहीं होतीं, क्योंकि स्त्री का शरीर निगेटिव है, पैसिव है, नकारात्मक है। उसकी जननेंद्रिय छिपी हुई है। उसे छिपाने की इतनी कोई आवश्यकता नहीं है। उससे कुछ जाहिर नहीं होता कि उसके भीतर क्या घट रहा है।
फिर चूंकि स्त्री का पूरा काम निष्क्रिय है, इसलिए जब तक उसे जगाया न जाए, वह जागा हुआ नहीं होता। पुरुष का काम आक्रामक है; वह जगा ही हुआ है। जरा-सी चिनगारी की जरूरत है कि वह जाग जाएगा।
कपड़े आदमी ने खोजे हैं कामवासना को छिपाने के लिए, ढांकने के लिए।
जब भी आपको जरा-सा भी ख्याल हो कि काम-इंद्रिय सक्रिय हुई और कामवासना
भर गई है, आप तत्क्षण आंख बंद कर लें, सारे यंत्र को सिकोड़ लें ऊपर की तरफ,

और एक ही धारणा से भर जाएं कि ऊर्जा ऊपर की तरफ बह रही है। या हू की चोट करें।
एक चोट पड़ती है बाहर, विपरीत-लिंगीय व्यक्ति के द्वारा। वह बाहर की चोट है। उस चोट से ऊर्जा बाहर बहेगी। एक चोट ध्वनि के द्वारा भीतर पड़ती है, जिससे ऊर्जा भीतर टूटेगी और ऊपर की तरफ बहेगी। हू की चोट ठीक कामेंद्रिय पर जाकर पड़ती है। आप चोट करके देखेंगे, तो आपको तत्क्षण लगेगा।
बहुत मित्र मुझे आकर कहते हैं कि जब हम यह हू का प्रयोग करते हैं तो बहुत बार कामवासना जग जाती है। स्वाभाविक है। क्योंकि चोट पड़ रही है। लेकिन आप कामवासना की फिक्र ही न करें और विचार भी न करें, जगती भी हो तो भी चिंता न करें, आप चोट करते चले जाएं, थोड़ी ही देर में आप पाएंगे कि काम-यंत्र शिथिल हो गया और ऊर्जा ऊपर की तरफ बहनी शुरू हो गई।
इसलिए तीसरे चरण में मैं हू के महामंत्र के उपयोग के लिए कहता हूं। क्योंकि पहले चरण में श्वास की इतनी चोट कि पूरी ऊर्जा उत्तप्त हो जाए, जल उठे, गर्म हो जाए, पिघल जाए, जमी न रहे। और दूसरे में सारी विक्षिप्तता बाहर फेंक देनी है। उस विक्षिप्तता में कामवासना भी फिंक जाती है।
आपको ख्याल में नहीं होगा, कि जब आप दूसरे चरण में गति करना शुरू करते हैं तो आपकी गति के अधिक हिस्से कामवासना के होते हैं। या जैसे आप संभोग कर रहे हों, आपका शरीर ऐसे डोलने लगता है, ऐसे कंपने लगता है। आपकी मुद्राएं कामवासना की होती हैं दूसरे चरण में। पर उचित है कि हों, ताकि कामवासना मन से फिंक जाए। तो फिर तीसरे चरण में हू की चोट करनी है। जब कामवासना फिंक गई और तरल हो गई अग्नि भीतर की, तो हू की चोट फौरन उसे ऊपर उठाना शुरू कर देगी।
कुछ मित्रों को निरंतर ऐसा ध्यान में अनुभव होता है, यहां भी दो-तीन मित्र हैं, एकदम शीर्षासन लगाकर खड़े हो जाते हैं--बिना उनकी समझ के कि क्या हो रहा है। हो यही रहा है कि जब कामवासना की ऊर्जा ऊपर की तरफ बहती है, तो शरीर के लिए शीर्षासन बिल्कुल सहज अवस्था है उस क्षण में। उससे बेहतर कोई मुद्रा नहीं है उस क्षण में।
अगर आप शीर्षासन करना जानते हैं, तो शीर्षासन बड़ा उपयोगी हो सकता है।
और अगर चौथा चरण आप शीर्षासन में ही कर सकें, तो परिणाम बड़े गहन, बड़े मूल्यवान और बड़े शीघ्रगामी हो जाएंगे। तीन चरण खड़े होकर करें और तीसरे चरण के बाद शीर्षासन में खड़े हो जाएं, और चौथा चरण शीर्षासन में पूरा कर लें--शांत होने का, थिर होने का, जड़ होने का। शक्ति तो अभी भी जाती है मस्तिष्क की तरफ, लेकिन तब और तीव्रता से जा सकेगी।
हृदय की कुल मिलाकर एक सौ एक नाड़ियां हैं। उनमें से एक नाड़ी कपाल की
ओर निकली हुई है, इसे ही सुषुम्ना कहते हैं। उसके द्वारा ऊपर के लोकों में जाकर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है। दूसरी एक सौ नाड़ियां मरणकाल में जीव को नाना प्रकार की योनियों में ले जाने की हेतु होती हैं।
सबका अंतर्यामी, अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला परमपुरुष सदैव मनुष्यों
के हृदय में भलीभांति प्रविष्ट है। साधक उसको मूंज से सींक की भांति अपने से और शरीर से धीरतापूर्वक पृथक करके देखे; उसी को विशुद्ध अमृततत्व समझे, और उसी को विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे।
सूत्र कह रहा है कि सभी के भीतर वह परमात्मा प्रविष्ट है। वह मौजूद है। उसका एक हाथ आपके भीतर पहुंचा हुआ है। हम एक कुआं खोदते हैं, कुएं में पानी आ जाता है। पानी का मतलब है, सागर कुएं तक पहुंचा हुआ है। पानी का मतलब है कि यह कुआं दूर सागर से जुड़ा हुआ है। और पानी आप उलीचते चले जाते हैं और ताजा पानी आता चला जाता है।
हर आदमी एक कुएं की भांति है। हर आदमी परम चेतना से जुड़ा हुआ है। लेकिन हम उस कुएं की भांति हैं जिसकी मिट्टी अभी निकाली नहीं गई; बंद पड़े हैं। जल-स्रोत हमारे भीतर है, लेकिन बीच में मिट्टी की एक बड़ी पर्त है। उस पर्त को तोड़कर, उघाड़कर जो व्यक्ति भी भीतर झांक लेता है, वह जल-स्रोत को उपलब्ध हो जाता है। वह जल-स्रोत सागर से जुड़ा है। वह अनंत से जुड़ा है। इसलिए आपको निरंतर ध्यान के बाद कहता हूं कि वह जो आनंद अनुभव हो रहा है उसे उलीचें, उसे अभिव्यक्त करें, उसे फेंकें। क्योंकि जितना ही आप

फेंकेंगे, भीतर वह उतना ही बढ़ता जाएगा। वह सागर से जुड़ा है; उसका कोई अंत नहीं है।
एक बहुत बहुमूल्य सूत्र ध्यान में रख लें। दुख अगर भीतर रोकें, तो बढ़ता है। दुख अगर भीतर रोकें, तो बढ़ता है, क्योंकि सड़ता है, और भी ज्यादा विषाक्त होता चला जाता है। दुख को बाहर निकाल दें, तो घटता है। अगर पूरा निकाल दें, तो समाप्त हो जाता है।
आनंद दुख से बिल्कुल विपरीत है। बाहर निकालें, तो बढ़ता है। भीतर दबाएं, तो घटता है। जैसे कोई कुआं कंजूसी कर ले और पानी को बाहर न जाने दे, तो सड़ेगा, गंदा होगा; उसकी स्वच्छता खो जाएगी। उसकी जो झिरें हैं, वे धीरे- धीरे बंद हो जाएंगी। उनकी कोई जरूरत ही नहीं है; वे धीरे-धीरे बंद हो जाएंगी। उन पर पत्थर और मिट्टी जम जाएगी। अगर कुएं से कभी पानी न निकाला जाए, तो धीरे-धीरे कुआं खत्म ही हो जाएगा। उसका संबंध सागर से टूट जाएगा। कुएं से तो जितना पानी निकालें, झिरें उतनी ही तेजी से पानी दौड़ाती हैं। पानी दौड़ने की वजह से झिरें बड़ी होती जाती हैं, झरने प्रगट होते चले जाते हैं।
आनंद अगर भीतर दबाएं, तो नष्ट होता है। दुख भीतर दबाएं, तो बढ़ता है।
दुख बाहर फेंकें, तो घटता है। आनंद बाहर फेंकें, तो बढ़ता है। उनका स्वभाव विपरीत है। इसलिए दुख को कभी भीतर मत छुपाना।
दूसरे चरण में हम दुख को बाहर फेंक रहे हैं। और आनंद को भी कभी भीतर मत दबाएं। पांचवें चरण में हम आनंद को उलीच रहे हैं। और जितनी जोर से आप उलीचेंगे, पाएंगे उतना ही नया आनंद भीतर भर आया है।
कबीर ने कहा है, दोनों हाथ उलीचिए। और उलीचना उसी तरह है जैसे कि किसी नाव में पानी भरने लगे, तो नाविक दोनों हाथों से उलीचने लग जाता है। ऐसे ही भीतर जब आनंद भरने लगे, उसे दोनों हाथ उलीचिए। और जितना उलीचेंगे, उतना वह बढ़ता जाएगा।
हम भूल ही गए हैं आनंद को प्रगट करना। हंसते हैं--तो रोए-रोए। नाचना असंभव है। नाचने को कहता भी हूं, तो आप ऐसा थोड़ा हिलते-डुलते हैं। बड़ी दीनता है। प्रगट करने की कला ही जैसे खो गई है। आप सब तरफ से जैसे बंद कर दिए गए हैं। न आपको किसी ने हंसने दिया है, न रोने दिया है, न नाचने दिया है, न गाने दिया है। आपके जीवन में उत्सव नष्ट कर दिया गया है।
बचपन से ही हम बच्चों के पीछे पड़े हैं कि उनका उत्सव कट जाए, नष्ट हो जाए! हर बूढ़े की कोशिश यही है कि बच्चा पैदा होते ही से बूढ़ा हो जाए। इसलिए आनंद के सब स्रोत टूट गए। आपकी ऊर्जा पूरी तरह आपको कंपित नहीं कर पाती। और जब तक यह नहीं होगा, तब तक आपके जीवन में वह जो छिपा है भीतर, उसका अनुभव नहीं होगा। उसे बाहर लाना होगा। उसे खींचकर प्रगट करना होगा। उसे रोएं-रोएं से झलकाना होगा। उसे सब तरफ से वह बहने लगे, ओवर फ्लो हो जाए उसका--यह फिक्र करनी होगी।
ध्यानी के लिए नृत्य बड़ा कीमती है। और अगर ध्यानी न नाच सके तो फिर कौन नाचेगा! उसमें कृपणता मत करें। ताकि भीतर जो छिपा है वह छिपा ही न रह जाए। वह परमात्मा सबके भीतर छिपा है। लेकिन शरीर को और उसे अलग करके हमें पहचानना होगा। वे जुड़े हैं, एकदम पास-पास खड़े हैं। और इतने पास खड़े हैं कि हम भूल ही गए हैं कि वह हमारे शरीर से अलग है। शरीर ही हो गया है। निकटता, समीपता शरीर के रंग से हम को भर दी है, आइडेंटिफिकेशन हो गया है।
गुरजिएफ कहता थाः सिर्फ एक ही काम करने जैसा है, वह है आइडेंटीफिकेशन
को तोड़ना, तादात्म्य को तोड़ना। शरीर से हम पृथक हैं, ऐसी प्रतीति हो जाए। शरीर के साथ हम एक हैं, बस यही हमारी सारी परेशानी, सारे उपद्रव की जड़ है। शेख फरीद के पास कोई गया और उसने पूछा कि फरीद, सुना है हमने कि मंसूर
के जब हाथ-पैर काटे गए, तब भी वह हंस रहा था, इस पर हमें भरोसा नहीं आता। किसी के हाथ-पैर कटेंगे तो कोई कैसे हंसेगा? और सुना है हमने कि जब वह मर रहा था, तब भी वह प्रसन्न था; उसके चेहरे पर मुस्कुराहट थी। मर जाने के बाद भी उसकी लाश, उसका चेहरा मुस्कुराता हुआ मालूम पड़ता था। यह हम भरोसा नहीं कर सकते। यह कहानी कपोल-कल्पित है।
शेख फरीद ने--उसके पास नारियल पड़े थे--एक नारियल उठाकर उस आदमी को दिया
और कहा, इसे तुम तोड़कर ले आओ और इसकी गिरी को साबित बचा लाना। उस आदमी ने

नारियल हिलाकर देखा, वह कच्चा था, उसमें पानी भरा था। उसने कहा, क्षमा करो। इसकी गिरी को पूरा साबित बचाना मुश्किल है, क्योंकि गिरी अभी खोल से जुड़ी है।
फरीद ने उसे दूसरा नारियल उठाकर दिया और कहा कि इसकी गिरी बचाकर ले आना। उसने हिलाया, और गिरी अलग बजती थी अंदर, उसने कहा, यह हो सकता है, क्योंकि गिरी ने खोल छोड़ दी। फरीद ने कहा, कहीं मत जाओ, दोनों नारियल वापस रख दो।
मंसूर सूखे नारियल की तरह था। उसकी गिरी और खोल अलग हो गए थे। तुम कच्चे नारियल की तरह हो; तुम्हारी गिरी और खोल इकट्ठे हैं। इसलिए तुम्हारी खोल को कोई चोट पहुंचाए, तो गिरी को चोट पहुंचती है। मंसूर की खोल काट दी गई, तो भी गिरी को कोई चोट नहीं पहुंची, इसलिए वह हंस रहा था, इसलिए वह मुस्कुरा रहा था। वह असल में यह कह रहा था कि नासमझो, तुम जिसे काट रहे हो वह मैं नहीं हूं। तुम जिसे मार रहे हो, वह मैं नहीं हूं। तुम मुझे मार ही नहीं सकते। तुम बड़े नासमझ हो। तुम सिर्फ मेरे घर को गिरा रहे हो, तुम मुझे नहीं गिरा सकते हो।
मंसूर से भी किसी ने पूछा है, जब वह मुस्कुरा रहा है, और जब उसके पैर काट दिए गए तो उसने दोनों हाथों से खून लेकर अपने हाथ पर लगाया जैसे कि मुसलमान नमाज करने के पहले वजू करते हैं, तो किसी ने पूछा कि मंसूर, यह तुम क्या कर रहे हो? तो उसने कहा, मैं वजू कर रहा हूं। उन्होंने कहा, हमने कभी सुना नहीं कि खून से वजू की जाती है! तो उसने कहा, पानी से वे वजू करते हैं, जो खून से कर नहीं सकते। और वह हंस रहा है और वह प्रसन्न है। वह खेल समझ रहा है। और कोई उससे पूछता है कि तुम हंस रहे हो और क्या तुम इसे खेल समझ रहे हो? तुम्हारे पैर काट डाले गए और जल्दी ही तुम्हारे हाथ कटेंगे और जल्दी ही तुम्हारी आंखें।
मंसूर को एक-एक टुकड़ा काटकर मारा गया। जीसस की मौत आसान थी। सीधे सूली
पर लटका दिया था। लेकिन मंसूर के एक-एक टुक.ड़े किए गए। और मंसूर जिंदा था और एक-एक टुकड़े तोड़े जा रहे थे।
तो मंसूर ने कहा कि तुम जिसे काट रहे हो, उसे मैं पहले ही छोड़ चुका हूं, इसलिए अब कोई पीड़ा का कारण नहीं। थोड़े दिन पहले अगर तुमने मुझे काटा होता, तो मैं भी पीड़ित होता, क्योंकि तब मैं जुड़ा था।
यह सूत्र कह रहा है--साधक उसको मूंज से सींक की भांति अपने से और शरीर
से धीरतापूर्वक पृथक करके देखे। उसी को विशुद्ध अमृतस्वरूप समझे।
जो शरीर से भिन्न भीतर छिपा है, वही विशुद्ध अमृतस्वरूप है।
इस प्रकार उपदेश सुनने के अनंतर नचिकेता यमराज द्वारा बतलाई हुई इस विद्या को, संपूर्ण योग की विधि को प्राप्त करके मृत्यु से रहित और सब प्रकार के विकारों से शून्य विशुद्ध होकर ब्रह्म को प्राप्त हो गया। दूसरा भी जो कोई इस अध्यात्म-विद्या को इसी प्रकार जानने वाला है, वह भी ऐसा ही हो जाता है अर्थात मृत्यु और विकारों से रहित होकर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।
यम ने जो नचिकेता को कहा था, वही मैंने फिर से आपको कहा है। नचिकेता को
जो हुआ, वही आपको भी हो सकता है। लेकिन आपको कुछ करना पड़े। मात्र सुनकर नहीं--जो सुना है उसे जीकर, जो सुना है उस दिशा में थोड़े प्रयास, थोड़े प्रयत्न, थोड़े कदम उठाकर। हो सकता है निश्चित। आश्वासन पक्का है। जिसने भी कदम उठाए, वह कभी चूका नहीं पहुंचने से। जिसने कभी कदम नहीं उठाए, वह कभी पहुंचा नहीं।
यात्रा सोचने से नहीं होती, चलने से होती है। और इसकी चिंता मत लेना
कि पैर कमजोर हैं। इसकी भी चिंता मत लेना कि एक-एक कदम उठाकर, इतना लंबा पथ है यह ब्रह्म तक पहुंचने का, यह कैसे पूरा होगा? लाओत्से ने कहा है, एक-एक कदम से दस हजार मील की यात्रा पूरी हो जाती है। एक-एक कदम से। और दो कदम दुनिया में कोई भी आदमी एक साथ उठा नहीं सकता। इसलिए कदम उठाने के मामले में सब समान हैं, कोई असमानता नहीं। एक ही कदम एक बार उठता है।
चीनी, एक छोटी-सी कथा है कि एक आदमी बहुत दिन से सोचता था, पास ही एक पर्वत था बड़ा प्रसिद्ध, उसके सौंदर्य की बड़ी महिमा थी। और लोग कहते थे, जो उसे देख लेता है, वह धन्यभागी है। वह पास ही रहता था। दस ही मील का फासला

था। लेकिन वह सोचता था, जाऊंगा कभी, जाऊंगा कभी। फिर उसे लगा कि ऐसे तो जिंदगी बीत जाएगी। तो एक रात उसने तय ही किया। लालटेन जलाई, अंधेरी रात थी, और कोई तीन बजे रात चल पड़ा, ताकि सुबह सूरज के उगते समय पहुंच जाऊं। लेकिन गांव के बाहर गया कि बड़े विचार ने उसे पकड़ लिया।
गांव के बाहर जाते ही विचार पकड़ता है। वह लालटेन रखकर वहीं बैठ गया।
वह सोचने लगा। वह सोचने लगा कि लालटेन का प्रकाश मुश्किल से चार-छह कदम तक पड़ता है। और दस मील अंधेरा है, तो इतने छोटे प्रकाश से इतने बड़े अंधेरे को कैसे पार करेंगे? भटकना निश्चित है।
तभी कोई फकीर उसके पास से गुजरता था, उसने पूछा कि तुम बड़े उदास बैठे हो, बात क्या है? उसने कहा, उदास! वर्षों से सोचता हूं, इस पहाड़ का दर्शन करने जाऊं। और आज निकल भी पड़ा घर से, लेकिन लालटेन छोटी है, प्रकाश कम है। तो उस फकीर ने कहा, तू मेरे साथ आ। तू उठ। क्योंकि जब तू चार कदम चल लेगा, तो प्रकाश चार कदम आगे पड़ने लगेगा। बैठकर गणित मत लगा। जरा चलकर देख। दस मील बहुत कम हैं। दस हजार मील भी इस लालटेन से पार हो सकते हैं। क्योंकि कोई दस हजार मील पूरे के पूरे प्रकाशित होने चाहिए, तब तू चलेगा? चार कदम प्रकाश काफी है।
जितनी क्षमता आपकी है, उतना दीया काफी है। बस बैठ न जाएं, सोचने न लगें। जितना हम सोचने में समय गंवाते हैं, उतना प्रयास करने में लगा दें, उतना ध्यान बन जाए, तो मंजिल दूर नहीं है। और आश्वासन दिया जा सकता है। क्योंकि जिसे पाना है, वह भीतर छिपा है।
प्रत्येक व्यक्ति अमृत की तरह पैदा होता है और मरणधर्मा की तरह मानकर अपने को जीता है। यह भ्रांति एक क्षण में भी टूट सकती है। और अनंत जन्मों में भी न टूटे, यह आप पर निर्भर है। अगर आप तीव्रता से, प्रगाढ़ता से, दृढ़ता से खोजना ही चाहें, तो कोई भी बाधा नहीं है।
सिर्फ एक ही बाधा आएगी कि जितनी आप प्रगाढ़ता और तीव्रता से खोजेंगे, उतना ही पाएंगेः आप खोते जा रहे हैं। उस खोने से भयभीत मत होना। क्योंकि जिसने अपने को खोया नहीं, उसने अपने को पाया नहीं। जो खोता है, वह पाने का हकदार हो जाता है। मरने की हिम्मत के बिना अमृत को पाने की कोई पात्रता किसी में कभी पैदा नहीं होती। स्वयं को देकर ही चुकाना पड़ता है मूल्य। परमात्मा को तो बहुत लोग पाना चाहते हैं, लेकिन देने को जरा भी तैयार नहीं। कुछ भी देने को तैयार नहीं। मुफ्त पाना चाहते हैं। इसीलिए बात चलती रहती है, जीवन चुकता जाता है। दिवस आते हैं, जाते हैं; रात्रियां आती हैं, व्यतीत होती हैं, और आदमी मरता रहता है।
अपने को दांव पर लगाना होगा, उससे कम में काम होने वाला नहीं है।
नचिकेता यम की बतलाई हुई इस विद्या को और संपूर्ण योग की विधि को प्राप्त करके मृत्यु से रहित और सब प्रकार के विकारों से शून्य होकर ब्रह्म को प्राप्त हो गया।
आप भी हो सकते हैं। नचिकेता की तरह पूछते हुए आप यहां आए हैं। नचिकेता
की तरह भरे हुए आप यहां से लौट भी सकते हैं।
नचिकेता जैसी सरलता, नचिकेता जैसी निर्दोष श्रद्धा; नचिकेता जैसी अडिग, अकंप खोज की आकांक्षा, अभीप्सा; क्षुद्र प्रलोभन से न डांवाडोल हो जाना; सारा संसार भी मिलता हो, तो भी दांव पर लगा देने की क्षमता; धैर्य-- अगर ये सब आपके जीवन में थोड़े-से भी उतर आएं, तो जो नचिकेता को हुआ है, वही आपको भी हो सकता है।
आखिरी ध्यान होगा यह हमारे शिविर का, पूरी शक्ति लगानी है। बैठें दो मिनट।